अट्ठारहवीं शती के संस्कृत रूपक

डॉ० बिहारी लाल नागार्च

अधीक्षक भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण

मन्दिर सर्वेक्षण योजना

भोपाल (म प्र)

प्रकाशक

पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर, भारत

आमुख

संस्कृत भाषा मे उच्चकोटिक साहित्य की रचना अद्यावधि निरन्तर होती आ रही है। इसे प्रमाणित करने के लिये आधुनिक संस्कृत साहित्य के क्षेत्र मे शोध-कार्य की आवश्यकता का सभी संस्कृत-प्रेमी अनुभव करते हैं। सागर विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभाग ने इस दिशा मे शोध करते हुए मुझे मेरे पी-एच०डी० प्रबन्ध के लिये 'अट्ठारहवी शती मे संस्कृत रूपको का विकास' विषय दिया।

इस शोध-प्रबन्ध की सामग्री संगृहीत करने के लिए मैं भारतवर्ष के अनेक नगरो मे स्थित हस्तलिखित ग्रन्थागारो तथा शोध-पुस्तकालयो मे गया। भारत के बाहर काठमाण्डू (नेपाल) भी गया। सागर विश्वविद्यालय के पुस्तकालय का उपयोग तो मैं करता ही रहा। इसके अतिरिक्त इस विषय मे मुझे प्रयाग, वाराणसी, मद्रास, मैसूर, तञ्जोर, त्रिवेन्द्रम्, पटना, दरभंगा, गौहाटी कलकत्ता, भुवनेश्वर, कटक तथा पूना की यात्रायें करना पड़ी। इन नगरो मे स्थित विभिन्न हस्तलिखित ग्रन्थागारो तथा शोध पुस्तकालयो मे मैंने अध्ययन किया तथा सामग्री संचित की।

सामग्री के सकलन मे मेरे सम्मुख एक कठिनाई यह थी कि इस काल के अनेक रूपक ग्रन्थ, आन्ध्रो, मलयालम्, कन्नड, बग तथा उड़िया लिपियो मे लिखे हुए थे। अतः इन रूपको का अध्ययन करने के लिए मैंने इन लिपियो को जानने वाले पण्डितो की सहायता ली।

सामग्री के सग्रह करने मे मुझे मद्रास विश्वविद्यालय के भूतपूर्व प्रोफेसर तथा संस्कृतविभागाध्यक्ष डॉ०वेङ्कट राघवन् से पर्याप्त मार्गदर्शन मिला। इसके लिये मैं उनका हृदय से आभारी हूँ। गवर्नमेण्ट ओरिएण्टल मैनुस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी, मद्रास के सग्रहाध्यक्ष श्री आर० के० पार्थसारथी, अड्यार पुस्तकालय, मद्रास की अध्यक्षा श्रीमती सीता नीलकण्ठम् तथा मद्रास विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग मे तत्कालीन रीडर डॉ०के० कुञ्जुन्नि राजा ने भी इस कार्य मे मुझे सहयोग दिया। अत इन सभी विद्वानो को मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

जिन अन्य विद्वानो से मुझे सामग्री के सकलन मे सहायता मिली, वे हैं— यूनिवर्सिटी मैनुस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी, त्रिवेन्द्रम् के अध्यक्ष डॉ० के० राघवन् पिल्ले, मलयालम् शब्दकोष के प्रधान सम्पादक श्री शूरनाड् कुञ्जन पिल्लै, तञ्जोर के सरस्वती महल पुस्तकालय के सचिव श्री ओ०ए० नारायणस्वामी, ओरिएण्टल रिसर्च

इन्स्टीट्यूट, मैसूर के सचालक श्री एच० देवीरप्पा, मिथिला इन्स्टीट्यूट दरभगा के सचालक डॉ० एस० बागची, दरभगा सस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति श्री सोहनी, गौहाटी विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर तथा शोध-विभाग के सचिव डा० एस० एन० शर्मा, राजकीय सग्रहालय उडीसा, भुवनेश्वर के सग्रहाध्यक्ष श्री केदारनाथ महापात्र, कटक के विद्वान् श्री बाणाम्बराचार्य तथा विदुषी डा० श्रीमती सावित्री रावत। भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना के डॉ० ए० डी० पुसालकर तथा डॉ० पी० एल० वैद्य और पजाब विश्वविद्यालय के विश्वेश्वरानन्द शोध सस्थान होशियारपुर के पुस्तकालयाध्यक्ष श्री शिवप्रसाद ने भी इस कार्य मे मुझे योग दिया। मैं इन सभी विद्वानों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

इस प्रकार सामग्री को सचित करके मैंने उसका अनुसन्धान-दृष्टि से अध्ययन किया। तदनन्तर मैंने इस शोध-प्रबन्ध का लेखन-कार्य प्रारम्भ किया। इस शोध-प्रबन्ध मे छ अध्याय है।

प्रथम अध्याय मे अट्ठारहवी शताब्दी और समसामयिक वातावरण का परिचय दिया गया है। इसमे अट्ठारहवी शताब्दी की राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक स्थिति का विवेचन है। अट्ठारहवी शताब्दी मे सस्कृत भाषा और साहित्य की स्थिति का भी इसी अध्याय मे पर्यवेक्षण किया गया है।

द्वितीय अध्याय मे रूपककारो का परिचय दिया गया है।

तृतीय अध्याय रूपक-तत्त्वानुशीलन का है। इसमे रूपकों की वस्तु पात्रोन्मीलन तथा रस का विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

चतुर्थ अध्याय मे रूपकों का कलात्मक अनुशीलन है। इसमे भाषा-शैली, छन्दः-अलकार रीति-गुण, विविध भाषाओं के प्रयोग, गीति-योजना, सवाद-योजना, तथा लोकोक्तियों और सूक्तियों के प्रयोग का परिशीलन किया गया है।

पञ्चम अध्याय प्रकृति-चित्रण का है। इसमे पर्वत, वन, समुद्र, नदी, प्रातः मध्याह्न, सायकाल, चन्द्रमा तथा षड्ऋतुओं का विवेचन है।

अन्त मे उपसहार है। इसमे आलोचित रूपकों के स्थान, महत्त्व और प्रदेय का निरूपण करते हुए सम्पूर्ण प्रबन्ध की उद्भावनाओं का साराश दिया गया है।

इसके अतिरिक्त दो परिशिष्ट है। परिशिष्ट (1) मे अट्ठारहवी शताब्दी के उन रूपककारो का परिचय है, जिनका उल्लेख द्वितीय अध्याय मे नहीं किया जा सका है। परिशिष्ट (2) में रूपकों को रूपकों के नाटक, प्रकरणादि भेदो मे वर्गीकृत किया गया है। इसके पश्चात् सहायक ग्रन्थ-सूची दी गई है।

अट्ठारहवीं शताब्दी के रूपकों पर हुए इस शोध-कार्य का द्विविध महत्त्व है। अभी तक अट्ठारहवीं शताब्दी के रूपकों का क्रमबद्ध तथा आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने वाला कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं था। यह शोध-प्रबन्ध ऐसे ग्रन्थ के अभाव की पूर्ति करता है। इस शोध-प्रबन्ध का दूसरा महत्त्व यह है कि अट्ठारहवीं शताब्दी के रूपक-साहित्य के बहुविध महत्त्व से अब तक जो संस्कृतप्रेमी अपरिचित से हैं वे अब इसे भली प्रकार समझ सकेंगे।

सागर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष आचार्य डा० रामजी उपाध्याय का मैं अत्यन्त आभारी हूँ। उन्होंने मुझे समय समय पर इस कार्य के लिए प्रेरणा और प्रोत्साहन दिया। गुरुवर डा० भट्टाचार्य इस कार्य में निरन्तर मेरा मार्गदर्शन करते रहे और प्रेरणा देते रहे। महामहोपाध्याय डॉ० गोपीनाथ कविराज तथा डा० श्रीधर भास्कर वर्णेकर को मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ। इन दोनों विद्वानों ने इस शोध-कार्य में मुझे बहुमूल्य सुझाव दिये। त्रिवेन्द्रम्, तञ्जौर, मद्रास, मैसूर, पटना, कलकत्ता, दरभंगा और भुवनेश्वर के हस्तलिखित ग्रन्थागारों के उन अनेक पण्डितों को जिनके नामों का पृथक्-पृथक् उल्लेख करना मेरे लिये यहाँ सम्भव नहीं है, मैं साधुवाद देता हूँ जिन्होंने इस शोध-कार्य में मेरी सहायता की। अपने साथी डॉ० शिवदर्शन तिवारी तथा डॉ० शङ्करलाल स्वर्णकार को भी मैं इस कार्य में सहयोग के लिए धन्यवाद देता हूँ।

मैं भारतीय शासन के पुरातत्त्व-विभाग के भूतपूर्व महानिर्देशक श्री अमलानन्द घोष का विशेष रूप से आभारी हूँ जो समय समय पर मुझे इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए प्रोत्साहित करते रहे। इसी विभाग के अन्य अधिकारियों—श्रीमती देवला मित्र, डॉ० सुनीलचन्द्र राय, श्री महेश्वरी दयाल खरे, सरदार रघुवीर सिंह तथा श्री चन्द्रभूषण त्रिवेदी आदि को जो मेरे इस कार्य में रुचि लेते रहे और मुझे प्रोत्साहित करते रहे, मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

यद्यपि अट्ठारहवीं शताब्दी के रूपकों के दुर्लभ होने से मेरे इस कार्य में कठिनाई थी तथापि आचार्य डॉ० रामजी उपाध्याय तथा गुरुवर डा० भट्टाचार्य की सतत प्रेरणा से मैंने परिश्रम करके इन रूपकों को इकट्ठा कर उनका आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है।

यदि प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध महाप्राज्ञ विद्वानों को परितोष दे सके तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा।

निवेदक

भोपाल

बिहारीलाल नागार्च

अनुक्रमणिका

———

प्रथम अध्याय

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

अट्ठारहवी शताब्दी के सस्कृत रूपको के अनुशीलन के लिए उनका निर्माण करने वाली उस समय की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक तथा धार्मिक परिस्थितियो का परिचय अपेक्षित है।

राजनीतिक परिस्थिति

अठारहवी शताब्दी भारत मे अराजकता और अशान्ति का युग था। इस समय अनेक राजनीतिक शक्तियो का परस्पर विकराल सघर्ष चल रहा था। 1707 ई. मे औरगजेब की मृत्यु के पश्चात् मुगल साम्राज्य का विघटन प्रारम्भ हो गया, जिसके लिये स्वय औरगजेब उत्तरदायी माना जाता है। उसका स्वभाव सन्देहशील था। उसकी अन्यायपूर्ण धार्मिक नीति के कारण हिन्दू उसके विरुद्ध हो गये थे। मराठो के साथ निरन्तर युद्ध करने के कारण उसके राजकोष मे द्रव्य का अभाव रहता था। इन सतत युद्धो से सेना का मनोबल भी गिर गया था। युद्ध मे लगे रहने के कारण औरगजेब शासन-प्रबन्ध की ओर समुचित ध्यान नही दे पाता था।

औरगजेब के पश्चाद्वर्ती मुगलो मे न तो इतनी योग्यता थी और न ही इतना चरित्रबल था कि वे साम्राज्य के विघटन को रोक सकते।'[1] बहादुरशाह (शाहआलम प्रथम), जहादारशाह, फर्रुखसियर, मुहम्मदशाह, अहमदशाह, आलमगीर द्वितीय, तथा शाहआलम द्वितीय दुर्बल मुगल सम्राट् थे।[2] उनकी दुर्बलता के कारण एक-एक करके सभी प्रान्त मुगल साम्राज्य से निकल गये। मराठो ने दूर तक अपनी शक्ति का विस्तार किया। आगरा के पास जाट लोग स्वतन्त्र हो गये। उत्तरी गङ्गा के क्षेत्र मे रुहेल अफगानो ने रुहेलखण्ड की स्थापना कर ली।

---

1. डॉ० कालीकिङ्कर दत्त, सर्वे ऑफ इण्डियाज सोशल लाइफ एण्ड इकोनॉमिक कन्डीशन इन द एटीन्थ सैन्चुरी' कलकत्ता 1961, इन्ट्रोडक्शन, पृ० 5।
2. आर० सी० मजूमदार, एच० सी० राय चौधरी तथा कालीकिङ्कर दत्त, एन एडवान्स्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया, लन्दन 1946, पृ० 527-30।

पजाब मे सिखो का प्रभाव बढा। नादिरशाह के आक्रमण से मुगल साम्राज्य को महान् आघात पहुचा।

इस प्रकार औरगजेब की मृत्यु के तीस वर्ष के भीतर ही मुगल साम्राज्य अनेक स्वतन्त्र राज्यो मे छिन्न भिन्न हो गया। अहमदशाह के समय मे मुगल साम्राज्य केवल दिल्ली के आसपास तक ही रह गया। शाहआलम द्वितीय को अग्रेजो की शरण लेनी पडी। वह अपनी मृत्यु (1806 ई) तक अग्रेजो से पेन्शन पाता रहा।

मराठे शासक

अठारहवी शताब्दी मे मराठो की शक्ति बढ रही थी। यद्यपि मराठो को मुसलमानो के अत्याचारो से अपनी मातृभूमि का मुक्तिदाता कहा जाता है तथापि देश के अनेक भागो मे उनका शासन सर्वथा निर्दोष नही था।[1]

1700 ई से 1707 ई तक राजाराम की विधवा पत्नी ताराबाई ने अपने पुत्र को शिवाजी द्वितीय के नाम से सिंहासन पर बैठाकर स्वय शासन किया। ताराबाई का औरगजेब के साथ सघर्ष चलता रहा।

औरगजेब के पुत्र बहादुरशाह ने मराठो मे आपस मे फूट डालकर अपनी सफलता का प्रयत्न किया।[2] उसने सम्भाजी के पुत्र शाहूजी को कारावास से मुक्त कर दिया। ताराबाई ने शाहूजी के राजसिंहासन पर बैठने के अधिकार का विरोध किया। इससे मराठो मे दो गुट हो गये। इन दोनो गुटो मे गृह युद्ध होने के फलस्वरूप मराठा राज्य दो भागो मे बट गया—कोल्हापुर और सतारा।

शाहूजी ने 1712 ई मे सतारा से शासन करना प्रारम्भ किया। शाहूजी को यह सफलता कोकण के ब्राह्मण बालाजी विश्वनाथ के कारण मिली।[3] शाहूजी विलासप्रिय होने के कारण अपने शासन को न सभाल सके। अत 1713 ई मे बालाजी विश्वनाथ को उनका पेशवा या प्रधानमन्त्री बनाया गया। शनै शनै पेशवा ने शासन को अपने हाथ में लेकर पूना को अपना मुख्यालय बनाया। शाहूजी केवल नाममात्र के राजा रह गये।[4] 1748 ई मे उनकी मृत्यु हो गई।

---

1. ए० एल० भाराम, भवानी चरण राय की 'उड़ीसा अन्डर मराठाज' पुस्तक का फोरवर्ड, इलाहाबाद, 1960।
2. के० सी० व्यास, डॉ० आर० सरदेसाई तथा एस० आर० नायक, इण्डिया थ्रू द एजेज, बम्बई 1960 पृ० 192।
3. यदुनाथ सरकार, फाल ऑफ द मुगल एम्पायर, कलकत्ता 1932, वॉल्यूम 1, पृ० 68।
4. डॉ० एस० सी० सरकार तथा डा० के० के० दत्त माडर्न इण्डियन हिस्ट्री, इलाहाबाद, 1942, पृ० 247।

बालाजी विश्वनाथ ने 1714 ई से 1720 ई तक शासन किया। उसने पेशवा के पद की नींव डाली। प्रशासन मे सुधार करने का समय उसे न मिल सका। 1719 ई मे मुगलो के साथ सन्धि करके बालाजी विश्वनाथ ने दिल्ली में मराठो का प्रभाव बढाया।

बालाजी विश्वनाथ के पश्चात् उसका पुत्र बाजीराव प्रथम 1720 ई से 1740 ई तक पेशवा रहा। उसने अपने पिता के समान ही मुगल साम्राज्य की अवनति से लाभ उठाकर मराठा साम्राज्य स्थापित करने का प्रयास किया। वह महत्वाकांक्षी योद्धा था। मुगलो तथा हैदराबाद के निजाम की सेनायें उससे डरती थीं।

बाजीराव प्रथम कुशल राजनीतिज्ञ भी था। उसने अम्बर के राजा जयसिंह, बुन्देलखण्ड के राजा छत्रसाल, अपने मराठा सामन्त गायकवाड, सिन्धिया तथा होल्कर आदि की सहायता से मुगलो पर आक्रमण किया। मुगलो ने विवश होकर 50 लाख रुपये क्षतिपूर्ति के रूप मे देकर बाजीराव प्रथम से सन्धि कर ली। बाजीराव प्रथम ने 1738 ई मे हैदराबाद के निजाम को पराजित किया।

नादिरशाह के आक्रमण के समय बाजीराव प्रथम ने मुसलमान राजाओं से कहा था कि वे हिन्दुओ के साथ मिलकर उसका सामना करें। बाजीराव प्रथम महान् देश भक्त था।

बाजीराव प्रथम की मृत्यु के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र बालाजी बाजीराव 1740 ई से 1761 ई तक पेशवा रहा। उसने 1760 ई मे हैदराबाद के निजाम को पराजित कर उससे असीरगढ, बुरहानपुर, अहमदनगर तथा दौलताबाद के दुर्ग ले लिये।[1]

राजपूताना के अनेक राजाओ ने बालाजी बाजीराव की अधीनता स्वीकार कर ली। गङ्गा के दोआब तथा पजाब के कुछ भाग पर भी उसका अधिकार हो गया।

पजाब इस समय अफगान सरदार अहमदशाह अब्दाली के अधिकार मे था। पेशवा का पजाब के कुछ भाग पर आधिपत्य स्थापित हो जाने से उसका अहमदशाह अब्दाली से सघर्ष हुआ। 1761 ई मे पानीपत के युद्ध मे अहमदशाह अब्दाली ने मराठों को पराजित किया। अपनी इस पराजय से बालाजी बाजीराव को धक्का लगा और वह छ मास के भीतर ससार से चल बसा।

बालाजी बाजीराव की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र माधवराव प्रथम 1761 ई० से 1772 ई० तक पेशवा रहा। पेशवा बनते समय माधवराव प्रथम केवल

---

1 के० सी० व्यास, जी० आर० सरदेसाई तथा एस० आर० नायक, पूर्वोक्त, पृ० 199।

17 वर्ष का था। अतः उसकी अवयस्कता मे उसका चाचा राघोबा प्रशासन करता था।

1763 ई० मे माधवराव प्रथम ने हैदराबाद के निजाम को पराजित किया। उसने मैसूर पर अधिकार करने वाले हैदर को चार बार युद्ध मे हराया। हैदर अली ने अपने राज्य का कुछ भाग तथा बहुत सा धन देकर माधवराव प्रथम के साथ सन्धि की।

राघोबा मराठा राज्य को अपने तथा माधवराव प्रथम के बीच दो भागो मे विभाजित करना चाहता था। उसकी यह योजना असफल हो गयी और उसे बन्दी बनाकर पूना लाया गया।

माधवराव प्रथम ने होल्कर तथा सिन्धिया की सहायता से राजपूत राज्यो तथा भरतपुर के जाटो से भी चौथ ली। उसने दिल्ली पर आक्रमण कर शाह आलम द्वितीय को अपने सरक्षण मे ले लिया।

माधवराव प्रथम पराक्रमी योद्धा, कुशल राजनीतिज्ञ तथा योग्य प्रशासक था। उसने मराठो की कीर्ति को पुनरुज्जीवित किया। माधवराव प्रथम की मृत्यु से अग्रेजो को मराठा राज्य पर अपना प्रभुत्व बढाने में सहायता मिली।

माधवराव प्रथम की मृत्यु के पश्चात् उसका अनुज नारायण राव पेशवा बना। उसके चाचा राघोबा ने राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने के लिये उसका वध करवा दिया। इसके पश्चात् राघोबा ने पेशवा बनने का प्रयत्न किया, परन्तु मराठो ने उसे हत्यारा घोषित किया और उसकी अधीनता स्वीकार नही की। नाना फडनवीस के नेतृत्व मे मराठो ने एक दल बनाकर नारायणराव के पुत्र माधवराव द्वितीय अथवा सवाई माधवराव को पेशवा बनाया।

इस समय तक भारत मे अग्रेजो को एक महान् शक्ति के रूप मे माना जाने लगा था। राघोबा ने 1775 ई० मे अग्रेजो के साथ सन्धि कर पेशवा बनने का पुन प्रयास किया, परन्तु अग्रेजो द्वारा पूना शासन को पराजित न किये जा सकने के कारण राघोबा को पेशवा न बनाया जा सका।

1781 ई० के समीप मराठा सामन्तो मे पारस्परिक मतभेद बढ गया। नाना फडनवीस ने यह प्रयास किया कि मराठे एक होकर अग्रेजो को युद्ध म पराजित करें, परन्तु उनका प्रयास विफल हुआ और और 1781 ई० म सिन्धिया को अग्रेजो ने हरा दिया। 1782 ई० मे मराठो ने अग्रेजो के साथ सालबाई की सन्धि कर ली।

मराठो के पारस्परिक मतभेद बढते गये। नाना फडनवीस तथा महादजी सिन्धिया के हाथों में इस समय राजनीतिक शक्ति रही। महादजी सिन्धिया ने दिल्ली पर आक्रमण कर शाहआलम द्वितीय को अपने हाथ की कठपुतली बना लिया। सिन्धिया तथा होल्कर का उत्तर भारत में राजनीतिक सत्ता के लिये

संघर्ष हुआ। सिन्धिया ने पूना से आर्थिक सहायता मांगी। सिन्धिया तथा नाना फड़नवीस मे मनमुटाव हो गया।

मराठों के आपसी मतभेदो के कारण उनकी शक्ति क्षीण हो गई। इससे अंग्रेजों तथा हैदरअली को उन्हे पराजित करने मे सरलता हुई।

1794 ई० मे महादजी सिन्धिया की मृत्यु हो गई। 1795 ई० मे पेशवा माधवराव द्वितीय ने आत्महत्या कर ली। इसके पश्चात् राघोबा का पुत्र बाजीराव द्वितीय पेशवा बना बाजीराव द्वितीय का अनेक बातो मे नाना फड़नवीस के साथ मतभेद हो गया। उसने कुछ मास के लिए नाना फड़नवीस को कारागार मे डाल दिया। नाना फड़नवीस 1800 ई० तक मराठा शासन चलाते रहे। 1800 ई० मे उनकी मृत्यु हो गई।

भारत मे विदेशी शक्तियां

अट्ठारहवी शताब्दी मे विदेशी शक्तिया भी भारत मे अपना शासन स्थापित करने का प्रयत्न कर रही थी। अंग्रेज तथा फ्रांसीसी भारत मे अपनी अपनी राजनीतिक प्रभुता स्थापित करने के लिए संघर्ष कर रहे थे।

1720 ई० मे भारत मे फ्रांसीसी कम्पनी मे धन का अभाव रहा 1720 ई० से 1742 ई० तक उसमे व्यापारिक समृद्धि रही। 1742 ई० मे जब डूप्ले फ्रांसीसी कम्पनी का प्रशासक बनकर आया तो वह भारत मे फ्रांसीसी साम्राज्य स्थापित करने का प्रयत्न करने लगा। 1720 ई० से लेकर 1742 ई० तक फ्रांसीसीयो ने भारत मे महत्वपूर्ण स्थानो पर अधिकार कर लिया था। 1721 ई० मे मारीशस तथा 1725 ई० और 1739 ई० मे क्रमश मालवार तट के माही तथा कारीकल पर फ्रांसीसियो का अधिकार होगया था।

1744 ई० मे भारत मे अंग्रेजो के पास शक्ति के तीन केन्द्र थे—बम्बई, मद्रास तथा कलकत्ता।

अट्ठारहवी शताब्दी के मध्य मे भारत मे बढती हुई अराजकता को देखकर अंग्रेजो तथा फ्रांसीसियो ने यहा अपने प्रभाव तथा प्रभुत्व को स्थापित करने का प्रयास किया।

दिल्ली के मुगल सम्राटो के दुर्बल हो जाने से उनके कर्णाटक तथा बगाल के राज्यपालो तथा सामन्तो के पारस्परिक संघर्ष के कारण वहाँ अव्यवस्था और अशान्ति फैली हुई थी।

1736 ई० मे दोस्त अली अर्काट का नवाब था। वह हैदराबाद के निजाम के अधीन था। हैदराबाद का निजाम दिल्ली के मुगल सम्राट के अधिकार मे था, परन्तु मुगल सम्राट के दुर्बल हो जाने से हैदराबाद का निजाम प्राय स्वतंत्र हो गया था। दोस्त अली भी स्वतन्त्र होकर अपने राज्य का विस्तार करना चाहता था।

1736 ई० मे दोस्त अली के पुत्र सफदर अली तथा जामाता चन्दा साहिब ने त्रिचनापल्ली पर अधिकार कर लिया। चन्दा साहिब त्रिचनापल्ली का प्रशासक हो गया। वह फ्रांसीसियो का प्रशसक था। उसकी सहायता से 1739 ई० मे फ्रांसीसियो ने कारीकल पर अधिकार कर लिया। चन्दासाहिब ने तन्जोर पर अपना अधिकार स्थापित करने का प्रयास किया। तन्जोर इस समय मराठो के शासन मे था। अत चन्दासाहिब का मराठो से सघर्ष हुआ।

1740 ई० मे मराठो ने अर्काट के नवाब दोस्त अली का वध कर दिया। 1741 ई० मे उन्होने त्रिचनापल्ली को जीतकर चन्दा साहिब को बन्दी बना लिया। चन्दा साहिब का परिवार फ्रांसीसियो के सरक्षण मे था।

दोस्त अली के पश्चात् उसका पुत्र सफदर अली अर्काट का नवाब बना। परन्तु 1742 ई० मे उसके किसी बान्धव ने उसका वध कर दिया। इसके पश्चात् उसका पुत्र नवाब बना।

1743 ई० मे हैदराबाद के निजाम ने त्रिचनापल्ली पर आक्रमण कर उसे फिर जीत लिया। निजाम ने सफदर अली के पुत्र को अर्काट का नवाब मान लिया परन्तु उसके अवयस्क होने के कारण अपने पुराने कर्मचारी अनवरुद्दीन को अर्काट का प्रशासक नियुक्त किया। शीघ्र ही अवयस्क नवाब का वध कर दिया गया। फिर निजाम ने अनवरुद्दीन को अर्काट का नवाब नियुक्त किया।

1740 ई० तथा 1748 ई० के मध्य अग्रेजो तथा फ्रांसीसियो मे प्रथम कर्णाटक युद्ध हुआ। परन्तु सन्धि हो जाने के कारण दोनो पक्षो मे से किसी को कुछ लाभ नही हुआ।

1748 ई० के लगभग दक्षिण भारत मे जो अव्यवस्था फैल रही थी, उससे लाभ उठाने के लिये अनेक महत्वाकाक्षी राजकुमार डूप्ले को यथेच्छ देकर उससे सैनिक सहायता प्राप्त करना चाहते थे। ऐसी राजनीतिक स्थिति मे फ्रांसीसियो तथा अग्रेजो को दो गुटो मे से किसी एक का पक्ष लेना पडा। इस समय हैदराबाद तथा अर्काट राजनीतिक गतिविधि के दो केन्द्र बन गये।

1748 ई० मे हैदराबाद के निजाम की मृत्यु हो जाने से उसके पुत्र नासिर जग तथा पौत्र मुजफ्फरजग मे उत्तराधिकार के लिये युद्ध हुआ। मुजफ्फरजंग ने फ्रांसीसियो से युद्ध मे सहायता मागी तथा नासिर जग ने अग्रेजो से।

लगभग इसी समय चन्दा साहिब मराठा-कारागार से मुक्त हुए। चन्दासाहिब ने अनवरुद्दीन को हटाकर स्वयं अर्काट का नवाब बनने के लिए फ्रांसीसियो से सहायता की याचना की। अनवरुद्दीन ने अग्रेजो से सहायता मागी।

इस प्रकार उत्तराधिकार के लिये दो युद्ध एक साथ हुए। एक दक्षिण मे तथा दूसरा कर्णाटक मे।

चन्दा साहिब ने फ्रासीसियो की सहायता से 1749 ई० मे अनवरुद्दीन को युद्ध मे पराजित कर उसका वध कर दिया। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र मुहम्मद अली अर्काट का नवाब बना, परन्तु चन्दा साहिब के भय से वह त्रिचनापल्ली भाग गया। चन्दा साहिब ने अर्काट पर अधिकार कर लेने के पश्चात् मुहम्मद अली से मिलने के लिये त्रिचनापल्ली प्रस्थान किया।

1750 ई० मे हैदराबाद का निजाम नासिर जग अपने विवाद का निर्णय कराने के लिये अर्काट आया। डूप्ले ने उसके साथ विश्वासघात कर उसका वध करवा दिया। इससे मुजफ्फरजग हैदराबाद का निजाम बना। मुजफ्फरजग का भी वध कर दिया गया। 1751 ई० मे सलावत जग को निजाम बनाया गया। डूप्ले ने हैदराबाद मे निजाम के पास अपना बुसी नामक एक फ्रासीसी राजदूत (रेजीडेन्ट) रख दिया।

चन्दा साहिब की सफलता तथा फ्रासीसी प्रभाव को बढता हुआ देखकर अग्रेज मुहम्मद अली की सहायता करने के लिये त्रिचनापल्ली पहुँचे। राबर्ट क्लाइव स्वय त्रिचनापल्ली गया। अग्रेजो ने चन्दा साहिब को पराजित कर उसका वध कर दिया। इससे मुहम्मद अली फिर अर्काट का नवाब हो गया। इस प्रकार अन्तिम विजय अग्रेजो के हाथ लगी।

डूप्ले की नीति को असफल देखकर फ्रासीसी सरकार ने उसे 1753 ई० मे फ्रास वापिस बुला लिया।

1756 ई० तथा 1763 ई० के मध्य अग्रेजो और फ्रासीसियो मे तृतीय कर्णाटक युद्ध हुआ 1757 ई० मे क्लाइव ने फ्रासीसियो को हराकर उनसे चन्द्रनगर ले लिया। जून 1757 ई० मे अग्रेजो ने प्लासी के महान् युद्ध मे बगाल के नवाब सिराजुद्दौला को पराजित किया। इससे फ्रासीसियों की अपेक्षा अग्रेजो की शक्ति बढ गई।

अग्रेजो की बढती हुई शक्ति को देखकर 1756 ई० मे बगाल का नवाब अलीवर्दी खा चिन्तित हो गया था। परन्तु इस सम्बन्ध मे कुछ करने के पूर्व ही उसी वर्ष उसकी मृत्यु हो गई। उसके पश्चात् सिराजुद्दौला बगाल का नवाब बना। उसका सेनापति मीर जाफर स्वय बगाल का नवाब बनना चाहता था। उसने सिराजुद्दौला के साथ विश्वासघात कर अग्रेजो से सन्धि कर ली। इससे प्लासी के युद्ध मे सिराजुद्दौला की पराजय हुई। प्लासी के युद्ध से बगाल अग्रेजो के अधिकार मे आ गया।

क्लाइव ने बगाल मे दोहरा शासन-प्रबन्ध प्रचलित किया। मीर जाफर को बगाल का नवाब घोषित कर दिया गया। अग्रेजो ने नवाब के कोष पर अपना

अधिकार कर लिया। उन्हे चौबीस परगना पर जमीदारी के अधिकार मिल गये। क्लाइव को लगभग 25 लाख रुपये का व्यक्तिगत लाभ हुआ। वह राजसिंहासन के पीछे वास्तविक शक्ति बन गया। मीरजाफर केवल नाम मात्र का नवाब रह गया। वह गृहप्रशासन समालता था तथा अग्रेजो के हाथ मे प्रान्त का सैनिक प्रशासक था। इस दोहरे शासन प्रबध से बगाल मे अराजकता फैली। अग्रेज मीरजाफर को बहुत कष्ट देते थे।

अग्रेजो ने मीरजाफर को हटाकर मीर कासिम को बगाल का नवाब बना दिया। फिर उन्होने मीरकासिम को अपना विरोधी देखकर उसके साथ युद्ध की घोषणा कर दी। मीरकासिम मुगल सम्राट शाहआलम द्वितीय के पास भाग गया। मीरकासिम और शाहआलम द्वितीय की सेनाओ ने मिलकर अग्रेजो से युद्ध किया परन्तु वे 1764 ई० मे पराजित हुई। इसके फलस्वरूप क्लाइव को मुगल सम्राट से बगाल की दीवानी मिली। अब ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी को बगाल, बिहार तथा उडीसा प्रातो मे राजस्व लेने का अधिकार मिल गया। इस प्रकार क्लाइव ने भारत मे अग्रेजी शासन की नीव डाली।

1760 ई० मे क्लाइव इगलैंड लौट गया। उसके जाने के पश्चात् कुशासन के कारण बगाल मे अव्यवस्था फैल गई। इसलिए 1765 ई० मे शान्ति और व्यवस्था स्थापित करने के लिये क्लाइव को पुन भारत भेजा गया। इस बार क्लाइव ने बगाल तथा कम्पनी के प्रशासन मे अनेक सुधार किये। कम्पनी के कर्मचारियो को आन्तरिक व्यापार करने तथा भेंट स्वीकार करने से मना कर दिया गया। इससे वे असन्तुष्ट हो गये और क्लाइव से घृणा करने लगे। 1767 ई० मे अस्वस्थता के कारण क्लाइव इग्लैंड लौट गया।

1772 ई० मे वारेन हेस्टिंग्ज को बगाल का गवर्नर नियुक्त किया गया। 1773 ई० मे रेग्यूलेटिंग एक्ट पारित हुआ। इससे बगाल के गवर्नर को कम्पनी की समस्त भारतीय सम्पत्ति का गवर्नर जनरल बना दिया गया। वारेन हेस्टिंग्स को भारत का प्रथम गवर्नर नियुक्त किया गया। गवर्नर जनरल की सहायता के लिये चार सदस्यो की एक परिषद् नियुक्त की गई। भारत मे सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की गई जिसमे एक प्रधान न्यायाधीश तथा तीन अन्य न्यायाधीश होते थे। इसी समय ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी की आर्थिक स्थिति का परीक्षण करने के लिये एक समिति की नियुक्ती की गई।

वारेन हैस्टिंग्ज ने भारत मे अग्रेजो की शक्ति बढाने के लिए कार्य किया। उसने 1772 ई मे रुहेलखण्ड को जीतकर अग्रेजी राज्य की सीमा बढाई। उसने मराठो को युद्ध मे पराजित कर 1782 ई. मे उनके साथ सालबाई की सन्धि कर ली। इससे अग्रेजो को सालसेट की प्राप्ति हुई।

1761 ई मे मैसूर के दुर्बल हिन्दू राजा को सिंहासन से हटाकर हैदरअली मैसूर का सुल्तान हो गया था। उसने दक्षिण मे कृष्णानदी तक का प्रदेश जीत लिया था। 1763 ई मे हैदरअली ने बेदनूर के हिन्दू राज्य को जीत लिया। 1766 ई से 1769 ई तक वह कर्णाटक के नवाब से युद्ध करता रहा। 1767 ई मे उसने हैदराबाद के निजाम के साथ मिलकर कर्णाटक के नवाब मुहम्मद अली की सहायता करने वाले अंग्रेजो से युद्ध किया और उन्हे तिरुणा मलाई मे पराजित किया। 1769 ई मे हैदरअली ने मद्रास पर आक्रमण किया। अंग्रेजो को हैदर के साथ सन्धि करनी पडी। इसके द्वारा अंग्रेजो ने मराठो के आक्रमण के समय हैदरअली की सहायता करने का वचन दिया।

1780 ई मे हैदरअली का पुन अंग्रेजो से युद्ध हुआ। पहिले तो उसने अंग्रेजो को पराजित किया परन्तु बाद मे वह हार गया। 1782 ई मे उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र टीपू ने अंग्रेजो से युद्ध किया। उसने मगलौर पर आक्रमण किया और अंग्रेजो को उसके साथ सन्धि करनी पडी।

युद्धो के कारण अंग्रेजों की आर्थिक स्थिति दुर्बल हो गई वारेनहेस्टिंग्ज ने इसे सुधारने का प्रयत्न किया। 1781 ई मे उसने बनारस के राजा चेतसिंह पर आक्रमण कर उससे धन प्राप्त किया। अवध की बेगमो पर चैतसिंह की सहायता करने का आरोप लगाकर वारेनहेस्टिंग्ज ने उनसे 10 लाख रुपये लिये।

1784 ई मे वारेन हेस्टिंग्ज इग्लैंड वापिस चला गया। इसी समय पिट्स इण्डिया एक्ट पारित हुआ। इस एक्ट के अन्तर्गत 1786 ई मे लाड कार्नवालिस को भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त किया गया। कार्नवालिस को मैसूर के टीपू सुल्तान से युद्ध करना पडा। टीपू हिन्दू जनता को अनेक प्रकार के कष्ट दे रहा था। वह अंग्रेजो से घृणा करता था। हैदराबाद का निजाम तथा मराठे टीपू के विरुद्ध थे।

1789 ई मे टीपू ने अंग्रेजो के मित्र त्रावणकोर के राजा पर आक्रमण किया। इससे विवश होकर कार्नवालिस को टीपू के साथ युद्ध करना पडा। कार्नवालिस ने हैदराबाद के निजाम तथा मराठो से मैत्रीपूर्ण सन्धि कर ली।

कार्नवालिस ने टीपू को हरा दिया। 1792 ई मे टीपू ने अंग्रेजो के साथ श्रीरङ्गपत्तन की सन्धि कर ली। इससे अंग्रेजो, मराठो तथा हैदराबाद के निजाम को लाभ हुआ। अंग्रेजो को मालाबार दुर्ग डिण्डीगुल तथा दक्षिण कनरा का लाभ हुआ। निजाम को अपने दक्षिण के जिले वापिस मिल गये। मराठो को उत्तरी कनरा की प्राप्ति हुई। इससे टीपू की बहुत सी शक्ति नष्ट हो गई और अंग्रेजों की उन्नति हुई।

कार्नवालिस ने स्थायी भूमि-प्रबन्ध तथा दीवानी अदालतो की स्थापना कर अव्यवस्थित बगाल को स्थायी शासन प्रदान किया।

1773 ई मे कार्नवालिस के इग्लैड चले जाने के पश्चात् सर जॉन शोर भारत का गवर्नर जनरल बना। उसने भारतीय राजनीति मे अहस्तक्षेप की नीति का अनुसरण किया।

मई 1798 ई मे वेलेजली भारत का गवर्नर जनरल बना। उसने सहायक सन्धि के द्वारा भारत मे अग्रेजो की शक्ति को बढाने का प्रयास किया। मराठो ने अग्रेजो के साथ सहायक सन्धि नही की। मराठो के भय से हैदराबाद के निजाम ने अग्रेजो से सहायक सन्धि कर ली।

इसी समय टीपू सुल्तान अग्रेजो की शक्ति नष्ट करने के लिये फ्रांसीसी योद्धा नेपोलियन के साथ पत्र व्यवहार कर उसे भारत मे लाने का प्रयत्न कर रहा था। नेपोलियन भारत को जीतकर अग्रेजो को यहाँ से भगा देना चाहता था। टीपू की इस गतिविधि को देखकर वेलेजली ने उसकी शक्ति को सदा के लिये नष्ट कर देने का निर्णय किया।

वेलेजली ने 1799 ई० मे टीपू के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। अग्रेजो ने श्रीरङ्गपत्तन को घेर लिया। दोनो पक्षो मे भयकर युद्ध हुआ। टीपू युद्ध मे मारा गया।

1800 ई० मे नाना फडनवीस की मृत्यु हो गई।

सामाजिक परिस्थिति

अट्ठारहवी शताब्दी मे भारत मे सामाजिक असुरक्षा तथा दुराचार तीव्र गति से बढ रहे थे।

उत्तरकालीन मुगलो के समय मे हिन्दुओ और मुसलमानो के सामाजिक तथा धार्मिक जीवन मे पारस्परिक सम्पर्क चलता रहा। अट्ठारहवी शताब्दी के मध्य मे सिराजुद्दौला तथा मीरजाफर अपने मित्रो तथा बान्धवो के साथ होली मनाते थे।[1] मरते समय मीरजाफर ने मुर्शिदाबाद के पास किरीटेश्वरी देवी के अभिषेक के जल-बिन्दुओ को पिया था। मुसलमान हिन्दू-मन्दिरो मे पूजा करते थे और हिन्दू मस्जिदो मे सिरनी। दौलतराव सिन्धिया तथा उसके अधिकारी मुसलमानो के समान ही हरे रग की पोशाक मे मुहर्रम मे सम्मिलित होते थे।[2]

---

1. डॉ० कालीकिङ्कर दत्त, बगालसूबा, वाल्यूम 1 पृ० 92-106।
2. डॉ० सुरेन्द्रनाथ सेन, एडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम ऑफ द मराठाज, कलकत्ता 1925, पृ० 401।

मराठा समाज मे दहेज पर नियन्त्रण लगा दिया गया था। महाराष्ट्र की ब्राह्मणेतर जातियो मे विधवा-विवाह भी प्रचलित था।[1]

समाज मे स्त्रियो का सम्मान था। वे जीवन को सकट मे डालकर भी अपने सम्मान की रक्षा करती थी।[2] आवश्यकता पडने पर वे राजनीति मे भी भाग लेती थी। नाटोर की रानी भवानी, फर्रुखसियर की माता और नवाब अलीवर्दीखाँ की बेगम ऐसी स्त्रियो के आदर्श हैं जिन्होने राजनीति मे भाग लिया।

आर्थिक परिस्थिति

औरगजेब के समय म लोगों का आर्थिक दृष्टिकोण निराशाजनक हो गया। शान्ति और राजनीतिक व्यवस्था के अभाव मे कृषको तथा श्रमिको को बहुत कष्ट हुआ। दक्षिण मे तो युद्ध के कारण व्यापार ठप्प हो गया। औरगजेब के समय मे युद्ध के लिये धन बगाल से एकत्रित किया जाता था। इस भार के कारण बगाल के निवासियो पर आर्थिक सकट आ गया।

अट्ठारहवी शताब्दी मे समस्त भारत सक्रमण काल से निकल रहा था। औरगजब की मृत्यु के पश्चात् भारत के विभिन्न भागो मे अव्यवस्था फैल गई थी। सभासदो के विद्रोह तथा षड्यन्त्र, नादिरशाह का आक्रमण, पजाब तथा सीमावर्ती प्रदेशो की असुरक्षित अवस्था, मराठो तथा हिमालयीन जातियो द्वारा किया गया व्यापक विध्वस, पुर्तगालियों तथा मगो की समुद्री-डकैती, कष्टदायी राजस्व प्रशासन, मुद्रासकट तथा अग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियो द्वारा वैयक्तिक व्यापार की असमान्य सुविधाओ का दुरुपयोग आदि के कारण भारत मे आर्थिक सकट बढ गया।[3]

अट्ठारहवी शताब्दी मे भारतीय व्यापार मे अनेक दोष आ गये थे। इस शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे अ ग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियो ने अल्प वेतन मिलने के कारण अपने वैयक्तिक व्यापार को बढा लिया था। 1717 ई० मे फर्रुखसियर के फरमान के दुरुपयोग द्वारा ये कर्मचारी भारतीय व्यापारियो के साथ अन्यायपूर्ण स्पर्धा कर अपने लिये अधिकाधिक लाभ का उपार्जन कर रहे थे। अलीवर्दी खा, सिराजुद्दौला तथा मीर कासिम ने अग्रेजो की इस नीति का विरोध किया परन्तु वे असफल रहे। 1757 ई० तथा 1764 ई० के युद्धो मे अग्रेजो के विजयी होने के कारण राजनीतिक शक्ति के उनके हाथ मे चले जाने से भारतीय व्यापार मे ये दुर्गुण बढते गये।

1. डॉ० सुरेन्द्रनाथ सेन, वही पृ० 406।
2. विलियम इरविन, लेटरमुगल्स, वाल्यूम 1, पृ० 281।
3. डॉ० एस० सी० सरकार तथा डॉ० के० के० दत्त, माडर्न इण्डियन हिस्ट्री, इलाहाबाद, पृ० 309।

मराठो के आक्रमणो का लोगो के आर्थिक जीवन पर बुरा प्रभाव पडा इससे कृषि, उद्योग तथा व्यापार क्षीण हो गये और वस्तुओ के मूल्य बढे ।

1757 ई० मे प्लासी के युद्ध के पश्चात् का काल भारतीय आर्थिक इतिहास का सबसे अधिक अन्धकारमय युग है ।[1] अग्रेजो की आर्थिक शक्ति बढ जाने के कारण ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लाभ का अधिकाश भाग इग्लैड भेज दिया जाता था । इससे भारत मे निर्धनता बढी । देश मे विदेशी शासन स्थापित हो जाने से देशी सेनाओ, राजसभाओ तथा सचिवालयो के अनेक कर्मचारी अनियोजित हो गये । इस व्यापक अनियोजन के कारण अव्यवस्था बढती गई । सारा देश असुरक्षित हो गया और चारो ओर लूट होने लगी । इस असुरक्षा तथा अराजकता के कारण कृषि और वाणिज्य प्राय ठप्प हो गये । इसी समय 1770 ई० का विकराल दुर्भिक्ष आया जिससे जनता को अत्यन्त कष्ट हुआ ।

शैक्षणिक परिस्थिति

पूर्ववर्ती शताब्दियो की भाँति अठारहवी शताब्दी मे भी भारतीय शिक्षा मे पारम्परिक विशेषतायें रही । इस समय राज्य की ओर से किसी भी शिक्षा-पद्धति का विकास नही किया गया था । वास्तव मे इस समय शिक्षा राजाओ तथा जमीदारो के आश्रय तथा अन्य उदार और पवित्र व्यक्तियो के प्रयत्नो पर निर्भर थी ।

नाटौर की रानी भवानी तथा नदिया के राजा कृष्णचन्द्र अपने-अपने क्षेत्रो मे शिक्षा के पोषक थे । सस्कृत शिक्षा के अभ्युदय के लिये नदिया के महाराजा कृष्णचन्द्र ने नदिया के टोलो मे अध्ययन के लिए आने वाले विद्यार्थियो को 200 रु० प्रति मास देने की व्यवस्था की थी ।[2]

पेशवाओ ने भी सस्कृत शिक्षा को आश्रय दिया । वे सस्कृत के विद्वानो को पारितोषिक तथा दान देते थे ।

अट्ठारहवी शताब्दी मे भारत के विभिन्न भागो मे उच्च सस्कृत शिक्षा के लिये सस्थायें थी । ये शिक्षण सस्थायें द्रविड, काशी, तिरहुत, वङ्ग तथा उत्कल मे थी ।[3] बगाल मे नवद्वीप (नदिया) उच्च सस्कृत शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था । नदिया मे अनेक नैयायिक तथा ज्योतिषी रहते थे । एक आधुनिक लेखक ने नदिया को प्रान्त का आक्सफोर्ड कहा है ।[4]

---

1 आर० सी० दत्त, इण्डिया अण्डर अर्ली ब्रिटिश रूल ।

2 डॉ एस सी सरकार तथा डॉ के के दत्त, माडर्न इण्डियन हिस्ट्री, इलाहाबाद, वाल्यूम 1, पृ 344 ।

3 डॉ कालीकिङ्करदत्त, सर्वे ऑफ इण्डियाज सोसल लाइफ एण्ड इकोनोमिक कण्डीशन इन द एटीन्थ सेन्चुरी, कलकत्ता 1961, पृ 13 ।

4 कलकत्ता रिव्यू, 1872, वाल्यूम 4, पृ 103–4 ।

अट्टारहवी शताब्दी मे बनारस भारत में सस्कृत शिक्षा का सबसे अधिक प्रसिद्ध केन्द्र बना रहा । नक्षत्र विद्या के अध्ययन को प्रोत्साहन देने के लिये आम्बेर के राजा जयसिंह ने पाच वेधशालाओ का निर्माण कराया उनमे से एक बनारस मे थी । अन्य चार वेधशालायें जयपुर, उज्जैन, मथुरा तथा दिल्ली में थी ।[1]

समसामयिक साहित्य तथा बुचनन और एडम के विवरणो से सस्कृत-शिक्षा के पाठ्यक्रम का ज्ञान होता है । बगाल मे तीन प्रकार की सस्थायें थी—(1) वे जिनमे व्याकरण, सामान्य साहित्य, काव्यशास्त्र तथा देवशास्त्र की शिक्षा दी जाती थी (2) वे जिनमे विधि तथा देवशास्त्र की शिक्षा दी जाती थी । (3) वे जिनमे न्यायशास्त्र की शिक्षा दी जाती थी । पाठ्यक्रम के अन्तर्गत व्याकरण, शब्द-कोष, सामान्य साहित्य (काव्य-नाटक) तथा काव्यशास्त्र विषय थे । व्याकरण की शिक्षा पाणिनि, मुग्धबोध रत्नमाला तथा सक्षिप्तसार के आधार पर दी जाती थी । शब्द-कोष मे विद्यार्थियो को रघुनाथचक्रवर्ती की टीका सहित अमरसिंह का अमरकोश कण्ठस्थ करना पडता था । काव्य तथा नाटक मे भट्टिकाव्य, रघुवश, शिशुपालवध, नैषध, भारवि के किरातार्जुनीय तथा कालिदास के शाकुन्तल का अध्ययन करना पडता था । काव्यशास्त्र तथा छन्दशास्त्र मे छन्दो मनयुन, काव्य चन्द्रिका, साहित्य-दर्पण, काव्यप्रकाश तथा कतिपय अन्य ग्रन्थो का अध्ययन किया जाता था । विधि के लिये दायभाग, मिताक्षरा, शूलपाणि की प्राचीन स्मृति तथा वाचस्पति मिश्र की श्राद्धचिन्तामणि का अध्ययन आवश्यक था । समस्त पाठ्यक्रम मे न्याय शास्त्र अध्ययन की सर्वोच्च शाखा थी तथा बगाल इसके लिये विशेष रूप से प्रसिद्ध था ।

औषधिविज्ञान, दर्शनशास्त्र, देवशास्त्र, ज्योतिष तथा तन्त्र के शिक्षण के लिये पृथक शिक्षण सस्थायें थी । यह सत्य है कि इन विषयो मे से अधिकांश को ब्राह्मण ही पढते थे, परन्तु अन्य माननीय जातियो के लिये भी इनके पढने मे कोई रोक नही थी ।[2]

सस्कृत के शिक्षको तथा विद्यार्थियो का समाज मे सम्मान था ।'[3] तात्कालिक यूरोपीय लेखको को सस्कृत विद्या ने बहुत प्रभावित किया । चार्ल्स विल्किन्स, सर विलियम जोन्स, एच एच विल्सन तथा हैनरी टामस कोलब्रुक ने भारत के गौरव-पूर्ण अतीत को खोजने के लिए प्रयत्न किया ।

इस समय फारसी की शिक्षा का अधिक प्रचलन था । मुसलमान शासक तथा जमीदार इसका अनेक प्रकार से पोषण करते थे । फारसी के राजभाषा होने

1. डॉ कालीड्डिकर, दत्त, पूर्वोक्त, पृ 14–15 ।
2 मार्टिन, ईस्टर्न इण्डिया, वाल्यूम 2, पृ 716–17 तथा एडम्स रिपोर्ट्स, पृ 113 ।
3. एडम्स रिपोर्ट्स, पृ० 2/4 ।

के कारण हिन्दू भी उसे सीखते थे । मुसलमानो के लिए तो फारसी उच्चशिक्षा का माध्यम थी । अजीमाबाद (पटना) फारसी शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था ।

नगरो तथा ग्रामो मे प्राथमिक शिक्षा के लिए अनेक शालायें थी । कतिपय बालक अपने घर पर ही प्राथमिक शिक्षा पाते थे । इस समय शालाओ के लिए भव्य भवन नही थे । वे शिक्षको द्वारा स्थापित किये गये फूस के घरो मे लगती थी । *कभी कभी ग्रामीण शिक्षक अपने शिष्यो को मन्दिर मे ही पढाते थे ।*[1] *समस्त भारत* मे प्राथमिक शिक्षा का सामान्य रूप प्राय समान था । प्राथमिक शिक्षण सस्थाओ के शिक्षक तथा विद्यार्थी किसी भी जाति के हो सकते थे । शिक्षको की मासिक आय अल्प थी । *शिक्षको का समाज मे सम्मान था ।*

इस समय स्त्री शिक्षा अज्ञात नही थी । बगाल मे राजा नवकृष्ण की पत्नियाँ पढने मे प्रसिद्ध थी । कवि जयनारायण की भतीजी आनन्दमयी स्वय प्रसिद्ध कवयित्री थी ।[2] कतिपय स्त्रियाँ सस्कृत की पण्डित थी । केरल मे कालीकट के जामोरिन परिवार की मनोरमा तम्पुराट्टि ने अठारहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे शैक्षणिक तथा राजनीतिक क्षेत्र मे महत्वपूर्ण भाग लिया । अनेक पुरुषो ने उससे सस्कृत सीखी । उसने सस्कृत मे अनेक पद्यो का निर्माण किया ।'[3] उसे त्रावणकोर के राजा कार्तिक तिरुणाल रामवर्मा (1758 98 ई) का आश्रय प्राप्त था ।[4]

धार्मिक परिस्थिति

अठारहवी शताब्दी मे भारत मे सामान्य असुरक्षा तथा अराजकता के होते हुए भी विभिन्न धर्मों के लोगो मे धार्मिक सहिष्णुता के कारण जातीय कटुता नही थी ।'[5] अनेक यूरोपीय लेखक इस समय की धार्मिक सहिष्णुता की भावना से प्रभावित हुए ।'[6] वारेन हेस्टिग्ज द्वारा हिन्दू विधि पर पुस्तक सकलित करने के लिये गये ब्राह्मणो ने 'विवादार्णवसेतु' नामक उस पुस्तक की भूमिका मे धार्मिक पूजा के

---

1 डॉ० कालीकिङ्कुरदत्त, पृ० 20 ।

2 डॉ० कालीकिङ्कुरदत्त, बगाल सुबा, भाग 1 अध्याय 1 ।

3 डॉ० वैकटराघवन्, *सस्कृत लिटरेचर सी 1700, टू 1900, जर्नल ऑफ द मद्रास* यूनिवर्सिटी, सैक्शन ए, ह्यूमेनिटीज सेन्टेनरी नम्बर, वाल्यूम 28, न० 2, जनवरी 1957, पृ० 198 ।

4 डॉ० के० कुञ्जुन्नि राजा, *कन्ट्रीब्यूशन ऑफ केरल टू संस्कृत लिटरेचर, मद्रास 1958,* पृ० 180 ।

5 डॉ० कालीकिङ्कुरदत्त, सर्वे आफ इण्डियाज सोशल लाइफ एण्ड इकोनॉमिक कन्डीशन इन द एटीथ सेन्चुरी, कलकत्ता 1961, पृ० 1 ।

6 ग्रोज, वोयेज टू ईस्ट इण्डिया, वाल्यूम 1, पृ० 183 ।

सभी प्रकारो के समान पुण्य होने का उल्लेख किया है।[1] हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के साधुओ का सम्मान करते थे।

समस्त भारत मे हिन्दू जनता शिव तथा विष्णु के प्राचीन सम्प्रदायो तथा उपसम्प्रदायो का अनुगमन करती थी। बगाल तथा उडीसा मे चैतन्य के अनेक अनुगामी थे। विभिन्न क्षेत्रो मे लोग रामानुज, रामानन्द, कबीर, नानक तथा राधाबल्लभ सम्प्रदायो को मानते थे। सूर्य, गणेश तथा शक्ति की अनेक लोग उपासना करते थे। मिथिला, बगाल, उडीसा तथा असम मे अनेक लोग तान्त्रिक पूजा करते थे।'[2]

अट्ठारहवी शताब्दी में कतिपय नवीन धार्मिक सम्प्रदायो का जन्म हुआ। ये सम्प्रदाय हैं—चरणदासी, स्पष्टदायक, स्वामिनारायण, पालतूदासी, सत्यनामी तथा बलरामी।'[3] इन सम्प्रदायो के प्रवर्तका मे से अधिकाश अब्राह्मण थे। इस शताब्दी के भारतीय धार्मिक जीवन की अन्य विशेषतायें थी—कर्मकाण्ड पर बल, पुरोहितो का अनुचित प्रभाव तथा अनेक लोकप्रिय देवताओ जैसे ग्रामदेवता आदि की पूजा। इस समय इन्द्रजाल मे भी लोगो का विश्वास बढ गया था।'[4]

अट्ठारहवीं शताब्दी मे संस्कृत की स्थिति

अट्ठारहवी शताब्दी मे फारसी के राजभाषा होने के कारण सस्कृत की राजकीय प्रतिष्ठा क्षीण रही। अग्रेजो तथा अग्रेजी के अभ्युदय के दिनो मे सस्कृत के पण्डितो का सम्मान घटने लगा।

वारेन हेस्टिग्ज ने सस्कृत के विद्वानो को प्रोत्साहन दिया '[5]। चार्ल्स विल्किन्स ने 1785 ई मे भगवद्गीता का तथा 1787 ई मे हितोपदेश का अग्रेजी अनुवाद प्रकाशित कराया। उसने महाभारत के शकुन्तलोपाख्यान का भी अग्रेजी मे अनुवाद किया। इसी समय हाल हैड ने अपनी पुस्तक 'सस्कृत ग्रामर' लिखी।

सस्कृत भाषा के अनुरागी विद्वान् सर विलियम जोन्स का कार्य चिरस्मरणीय रहेगा। उन्होंने 11 वर्ष तक भारत मे रहकर सस्कृत साहित्य की सेवा की। उनका सबसे बडा योगदान 1784 ई मे बगाल एशियाटिक सोसायटी की स्थापना है।

---

1. एच एच विल्सन, एसेज एण्ड लेक्चर्स चीफली ऑन द रिलीजन ऑफ द हिन्दूज (1862) वोल्यूम 2, पृ॰ 82।
2 डॉ कालीकिङ्करदत्त सर्वे ऑफ इण्डियाज सोशल लाइफ एण्ड इकोनॉमिक कन्डीशन इन द एटिन्थ सेन्चुरी, कलकत्ता 1961, पृ॰ 3।
3 डॉ कालीकिङ्करदत्त, वही, पृ 4–5।
4 वही : पृ॰ 8–9।
5 ब्हो एन भूषण, स्कालरशिप एण्ड वारेन हेस्टिग्ज त्रिवेणी (जर्नल आफ इण्डियन रेनासा) वाल्यूम 11, नं 1–6 मद्रास 1939 पृ॰ 32–38।

इस सोसायटी का नाम बाद मे 'रायल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बगाल हो गया। इस सोसायटी ने प्राचीन भारतीय विचार धारा को यूरोपीय विद्वानो तक पहुचाकर आधुनिक भारत तथा विश्व के सास्कृतिक इतिहास मे महत्वपूर्ण योग दिया।'[1] इस सोसायटी के माध्यम से भारतीय विद्याओ के अध्ययन करने का उत्साह समस्त यूरोप तथा भारत मे फैल गया। जोन्स तथा इस सोसायटी के अन्य विद्वानो ने यह अनुसन्धान किया कि प्राचीन भारतीय सभ्यता विश्व की किसी भी प्राचीन सभ्यता के समकक्ष थी। इस अनुसन्धान ने भारतीयो मे जिस महानता तथा स्वाभिमान की भावना को भरा उससे भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को बल मिला।'[2] *इस सोसायटी ने सस्कृत के अनेक हस्तलिखित ग्रन्थो का सग्रह किया* और *उन्हे* प्रकाशित करवाया।

अट्ठारहवी शताब्दी मे सर विलियम जोन्स ने बगाल मे कृष्णनगर के बालको के लिए सस्कृत मे पद्य लिखे। 1789 ई मे जोन्स ने अभिज्ञान शाकुन्तल का अपना अग्रेजी अनुवाद प्रकाशित करवाया। फिर जोन्स ने 'मनुस्मृति का अग्रेजी अनुवाद किया। 1792 ई मे उन्होने ऋतुसहार का अग्रेजी मे अनुवाद किया। 1794 ई. मे उनका स्वर्गवास हो गया।

जोन्स की कृति को देखकर जर्मन विद्वान् जार्ज फोर्स्टर ने 1791 ई मे अभिज्ञान शाकुन्तल का जर्मन भाषा मे अनुवाद किया। हर्वर्ट और गेटे जैसे विद्वानो ने अभिज्ञान शाकुन्तल की प्रशसा की। लगभग इसी समय टामस कोलब्रुक ने अमरकोष, हितोपदेश, अष्टाध्यायी और किरातार्जुनीय का अग्रेजी मे अनुवाद किया।

वारेन हेस्टिंग्ज ने भारतीय सस्कृत पण्डितो द्वारा 'विवादार्णवसेतु' नामक जिस विधि सम्बन्धी ग्रन्थ का सकलन करवाया था वह 1785 ई. मे 'ए कोड ऑफ *गेण्टू ला' के नाम से प्रकाशित किया गया।*

वारेन हैस्टिंग्ज ने 1781 ई मे सस्कृत के अध्ययन को प्रोत्साहन देने के *लिये कलकत्ता मे सस्कृत कालेज की स्थापना की। बनारस मे अग्रेजी राजदूत* (रेजीडेन्ट) जोनाथन डकन ने 1791 ई मे वहां एक सस्कृत कालेज खोला।

अट्ठारहवी शताब्दी में भारत के विभिन्न भागो के राजाओ ने अपने अपने राज्यो मे सस्कृत के विद्वानो को आश्रय देकर सस्कृत के अध्ययन को प्रोत्साहन दिया। इन राजाश्रित विद्वानों ने सस्कृत मे अनेक ग्रन्थों की रचना कर सस्कृत साहित्य के गौरव को अक्षुण्ण रखा।

1, एन सी घोष, 'द नायन्टीथ सेन्चुरी रेनासां ऑफ बगाल' विश्वभारती क्वार्टर्ली वाल्यूम 9, भाग 1, न्यू सीरीज, मई 1943, जुलाई 1943, कलकत्ता, पृ॰ 53।

2, एस एन मुखर्जी, सर विलियम जोन्स एण्ड ब्रिटिश एटीट्यूड टूवार्डस इण्डिया, जर्नल ऑफ द रायल एशियाटिक सोसायटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आयर-लैण्ड, 1962, न॰ 1-2 पृ॰ 37-47।

— —

तमिलनाडु

तन्जोर का मराठा वश

शाहजी

अठारहवी शताब्दी मे तन्जोर के महाराजा सस्कृत विद्वानो के पोषक थे। राजा शाहजी (1684–1711) की सभा मे सस्कृत के अनेक विद्वान् थे। इन विद्वानो ने काव्य, नाटक, औषधि-विज्ञान, ज्योतिष तथा सगीत के अनेक ग्रन्थो का निर्माण किया।

तन्जोर के इतिहास मे विद्वानो के आश्रयदाता के रूप मे शाहजी चिरस्मरणीय रहेंगे। शाहजी का विद्या के प्रति इतना अधिक अनुराग था कि 1693 ई मे उन्होने तिरुविसनल्लूर नामक अग्रहार अपनी सभा के 46 पण्डितो को दान मे दे दिया था। इससे इस अग्रहार का नाम 'शाहजिराजपुरम्' हो गया था। यह मराठा काल मे सस्कृत भाषा और साहित्य, दर्शन तथा औषध का केन्द्र रहा। यहाँ के कतिपय विद्वान् आन्ध्रप्रदेशीय थे।'[1]

अट्ठारहवी शताब्दी मे शाहजिराजपुरम् मे रहने वाले विद्वानो मे कुशलव-विजयनाटक के रचयिता वेङ्कटकृष्ण दीक्षित, जीवानन्दन तथा विद्या-परिणय नाटको के रचयिता वेद कवि, शृङ्गारमञ्जरी शाहराजीय नाटक के कर्त्ता पेरिअप्पा कवि, जीवन्मुक्ति कल्याणादि नाटको के रचयिता नल्लाध्वरी तथा कान्तिमती परिणयादि नाटको के कर्त्ता चोक्कनाथ प्रमुख थे।

शरभोजी (1711 ई०–1728)

शाहजी के पश्चात् उनके अनुज शरभोजी तन्जोर के सिंहासन पर बैठे। उन्होंने विद्वानो को आश्रय देने की परम्परा अक्षुण्ण रखी। शरभोजी के दलवाय आनन्दराय मखी अनेक सस्कृत विद्वानो के आश्रयदाता थे। शरभोजी के समय मे आनन्दराय के आश्रय मे वेदकवि ने विद्यापरिणय नाटक की रचना की।'[2] शरभोजी पवित्र तथा दानी थे। उनके आश्रय मे सभापतिविलास, नीला-परिणय तथा उन्मत्त-कविकलशप्रहसन के रचयिता नेम्रूव वेङ्कटेश्वर रहते थे।

शरभोजी के धर्माधिकारी ने विद्वानो को दो अग्रहार दान मे दिये थे। इनमे से एक तिरुवेंकाडु का मगमतम् था तथा दूसरा तिरुक्कादैयूर का शरभोजिरा-जपुरम्।'[3]

आनन्दराय मखी ने शाहजी, शरभोजी तथा तुक्कोजी के शासन मे धर्माधिकारी दलवाय तथा मन्त्री के पद सभाले थे। उन्हें पेशवा कहा जाता था। वे कुशल

---

1. के आर, सुब्रमेनियम, द मराठा राजाज ऑफ टैन्जोर, मद्रास 1928, पृ० 31
2. विद्या परिणय नाटक, प्रस्तावना।
3. के आर, सुब्रमेनियम, द मराठा राजाज ऑफ टैंजोर' मद्रास 1928, पृ० 38–39

योद्धा थे। उन्होंने रामनन्द के उत्तराधिकार-युद्ध मे भवानीशकर की ओर से मधुरा तथा पुदुकोट्टइ के विरूद्ध तञ्जोर की सेना का नेतृत्व किया था।'[1]

तुक्कोजी (1729–35 ई)

तुक्कोजी ने अनेक सस्कृत विद्वानो को आश्रय दिया। उनके मन्त्री घनश्याम स्वय कवि थे। घनश्याम के मदनसञ्जीवन भाण चण्डानुरञ्जन प्रहसन, आनन्द-सुन्दरी सट्टक तथा प्रचण्डराहूदय नाटक प्रसिद्ध हैं। तुक्कोजी अनेक भाषायें जानते थे। उनके द्वारा रचित सङ्गीतसारामृत उनके सङ्गीतज्ञान का परिचायक है।

तुक्कोजी के शासन के अन्तिम दिनो मे जनता उनसे असन्तुष्ट हो गई। इसका कारण एक चेटीमन्त्री था जो उन्हे अनुचित परामर्श देता था।'[2] तुक्कोजी के पश्चात् उत्तराधिकारी की समस्या गम्भीर हो गई। उनका पुत्र तथा उत्तराधिकारी एकोजी द्वितीय सिंहासन पर बैठते समय 40 वर्ष का था।

एकोजी द्वितीय (1735–36 ई)

एकोजी द्वितीय का शासन काल केवल एक वर्ष रहा। उन्हें बावा साहिब भी कहा जाता था। उन्होने अपने मन्त्री बालकृष्ण के पुत्र जगन्नाथ कवि को आश्रय दिया। जगन्नाथ ने उनके आश्रय मे सस्कृत मे रतिमन्मथ नाटक की रचना की।

एकोजी द्वितीय को अपने विरूद्ध षड्यन्त्र किये जाने का सन्देह रहता था। इस समय तञ्जोर का किलेदार सैयद बहुत शक्तिशाली हो गया तथा उसने चार वर्ष तक राजनिर्माता का कार्य किया।[3] एकोजी द्वितीय को किसी षड्यन्त्र मे फँसा कर मार डाला गया। मृत्यु के समय उनकी आयु 41 वर्ष थी।

एकोजी द्वितीय ने 1736 ई मे तञ्जोर पर आक्रमण करने वाले चन्दा साहिब को पराजित कर भगा दिया।

1736 ई से 1739 ई तक का समय तञ्जोर के मराठो के इतिहास मे अन्धकार का युग है। इस समय तञ्जोर मे उत्तराधिकारी के लिए युद्ध होता रहा और अराजकता रही।

सूजन बाई (1737–1738 ई०)

एकोजी द्वितीय के पश्चात् उनकी पत्नी सूजन बाई तञ्जोर के राजसिंहासन पर बैठी। उसने दो वर्ष शासन किया। उसके पश्चात् काट्टु राजा (1738-39 ई०) शासक हुआ।

1. टैंजोर डिस्ट्रिक्ट मैनुवल, पृ० 771 तथा आगे
2. के आर. सुब्रमेनियम्, पूर्वोक्त, पृ० 42।
3. के आर सुब्रमेनियम, पूर्वोक्त, पृ० 43।

प्रतापसिंह (1739–63 ई०)

प्रतापसिंह तुक्कोजी और अन्नपूर्णा के पुत्र थे। वे तंजोर के अन्तिम महान् राजा थे। प्रारम्भ मे उनका स्थान विशेष ऊँचा था। उस समय अंग्रेज, फ्रांसीसी तथा उनके प्रतिद्वन्द्वी प्रत्याशियो ने उनसे सहायता माँगी थी। अन्तिम दिनो मे अंग्रेजो तथा मुहम्मद अली के कर्णाटक मे दृढता से जम जाने के कारण प्रतापसिंह की प्रतिष्ठा क्षीण हो गई।

चन्दा साहिब के तन्जोर पर बार-बार आक्रमण करने के कारण प्रतापसिंह को उसके प्रति सहानुभूति न रही। त्रिचनापल्ली के घेरे के पश्चात् मुहम्मद अली ने प्रतापसिंह के प्रति कृतज्ञता प्रकट की थी और उनसे चन्दा साहिब को मागा था।

क्लाइव तथा अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी प्रतापसिंह को 'हिज मेजेस्टी' कहकर सम्बोधित करते थे और उनको स्वतन्त्र शासक का सम्मान देते थे।[1] प्रतापसिंह कुशल योद्धा थे। उन्होने अनेक युद्धो मे भाग लिया था।

प्रतापसिंह की 1763 ई० मे मृत्यु हो गई। कतिपय विद्वानो ने प्रतापसिंह का समय 1741 से 1764 ई० लिखा है।

प्रतापसिंह संस्कृत विद्वानो के आश्रयदाता थे। वसुमतीपरिणय नाटक के रचयिता जगन्नाथ कवि को प्रतापसिंह का आश्रय प्राप्त था।

तुलजाजी (1763–83 ई०)

तुलजाजी प्रतापसिंह के पुत्र थे। वे अनेक भाषायें जानते थे और संस्कृत मे लिखते भी थे। उन्होने संस्कृत, तेलुगु तथा मराठी के लेखको को आश्रय दिया। उन्होने कस्तूरी रङ्गयन के शिष्य अलुरि कुप्पन को 'अभिनव कालिदास' की पदवी प्रदान की। तुलजाजी के आश्रय मे रामचन्द्र शेखर ने संस्कृत मे कलानन्दक नाटक लिखा।

तुलजाजी के धार्मिक दृष्टिकोण मे सहिष्णुता थी। वे ईसाई धर्म प्रचारक श्वार्ट्ज से प्रभावित थे। श्वार्ट्ज को यह आशा थी कि वह उन्हे ईसाई बना लेगा।

तुलजाजी अपने मित्रो तथा शत्रुओ के प्रति उदार थे। वे विलासप्रिय थे। शासन की ओर उनकी अभिरुचि कम होती चली गई। उन्होंने दबीर पण्डित तथा अपने पिता के अन्य विश्वासपात्र अधिकारियो को पद से हटाकर कारागार मे डाल दिया।

तुलजाजी के समय मे 1771 ई॰ में पहली बार तथा 1773–6 ई॰ मे दूसरी बार कर्णाटक के नवाब ने तन्जोर पर आक्रमण किये। पराजित तुलजाजी को भारी मूल्य देकर नवाब के साथ सन्धि करनी पडी।

---

1 के आर सुब्रमेनियम, पूर्वोक्त, पृ० 47।

2 वही · पृ० 58।

49 वर्ष की आयु मे तुलजाजी की मृत्यु हो गई। उनके पुत्र पहिले ही मर चुके थे। अत उन्होने मराठो की दूसरी शाखा से शरभोजी द्वितीय को अपना दत्तक पुत्र बनाया। तुलजाजी की यह इच्छा थी कि शरभोजी द्वितीय की अवयस्कता मे उनका भाई अमरसिंह प्रशासन समाले। अत 1787 ई से 1798 ई तक अमरसिंह ने तञ्जोर का शासन समाला।

अमरसिंह (1787–98 ई.)

अमरसिंह ने ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ की गई अपनी सन्धियो का पालन किया।

शरभोजी द्वितीय (1798–1833 ई)

शरभोजी द्वितीय अग्रेजी तथा कतिपय अन्य यूरोपीय भाषाओ के ज्ञाता थे। इनके समय मे सस्कृत के अनेक दुर्लभ ग्रन्थ एकत्रित किये गये और तञ्जोर के सरस्वती महल पुस्तकालय मे रखे गये। शरभोजी द्वितीय ने सस्कृत मे कुमारसम्भव चम्पू, मुद्राराक्षसच्छाया, स्मृतिसग्रह तथा स्मृतिरत्न समुच्चय का निर्माण किया।

शरभोजी द्वितीय के पश्चात् शिवाजी द्वितीय (1833-1855 ई) तञ्जोर के राजा हुए। उनके कोई पुत्र न होने के कारण तञ्जोर को अग्रेजी राज्य मे मिला दिया गया।

आनन्दरङ्ग पिल्ल

पाण्डुचेरी (तमिलनाडू) मे फ्रासीसी गवर्नर डूप्ले (1742–53 ई) के भाषण-सहायक (दुभाषिया) आनन्दरङ्ग पिल्ल ने सस्कृत के अनेक विद्वानो को आश्रय दिया। इनके आश्रय मे गङ्गाधराध्वरी तथा पार्वती के पुत्र श्रीनिवास कवि ने 1752 ई मे आनन्दरङ्ग चम्पू[1] की रचना की। इसमे आनन्दरङ्ग के जीवन का वर्णन है। इस चम्पू मे तात्कालिक दक्षिण तथा कर्णाटक की राजनीतिक बातो तथा अग्रेजो और फ्रासीसियों के युद्ध का भी वर्णन है। इसमे विजयनगर के राजवश तथा उसकी चन्द्रगिरी आदि शाखाओ का वर्णन है।

केरल

त्रावणकोर का राजवंश

मार्त्तण्डवर्मा (1729–58 ई)

आधुनिक त्रावणकोर का इतिहास मार्त्तण्डवर्मा से प्रारम्भ होता है। मार्त्तण्ड वर्मा 1729 ई मे राजसिंहासन पर बैठे। उस समय समस्त त्रावणकोर सामन्तों

1. डा वेङ्कटराघवन द्वारा सम्पादित तथा 1948 ई में मद्रास से प्रकाशित।

के षडयन्त्रों से कष्ट का अनुभव कर रहा था। राजसिंहासन प्राप्त करने के लिये भी मार्त्तण्डवर्मा को एक एक प्रतिद्वन्द्वी से युद्ध करना पड़ा था।

अपने मन्त्री रामायण दलवाय की सहायता से मार्त्तण्डवर्मा ने अपने पड़ोसी राज्य क्विलो, कायङ्कुलम्, कोचारक्कर अम्मलप्पुल, तेकुङ्कुर तथा वटक्कुङ्कूर को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया।

1741 ई मे मार्त्तण्डवर्मा ने कोलाचेल में डचों को पराजित किया। 1748 ई मे मार्त्तण्डवर्मा तथा डचो मे मैत्रीपूर्ण सन्धि हो गई। 1750 ई. मे मार्त्तण्डवर्मा ने अपना समस्त राज्य त्रिवेन्द्रम् मन्दिर के प्रमुख देवता श्री पदमनाभस्वामी को समर्पित कर दिया, और उनके प्रतिनिधि के रूप म शासन किया। उन्होंने मुरजप नामक एक उत्सव का भी प्रारम्भ किया जिसमे केरल के सभी भागो से विद्वान् लोग आकर वेदपाठ किया करते थे। 1758 ई मे मार्त्तण्डवर्मा का स्वर्गवास हो गया।

मार्त्तण्डवर्मा को महान् विद्वान् कहा जाता है, परन्तु अब तक उनके द्वारा रचित कोई ग्रन्थ नही मिला है। श्रीमार्त्तण्डवर्मा–किलिप्पाट्टु[1] के अनुसार मातण्ड वर्मा ने मदुरा की एक शास्त्रसभा मे अपने तर्कों द्वारा समस्त पण्डितो को पराजित किया था। इसी पुस्तक के अनुसार राजा मार्त्तण्डवर्मा ने क्विलो के राजा के सन्देशवाहक ब्राह्मण के साथ संस्कृत मे वार्तालाप किया था।

मार्त्तण्डवर्मा संस्कृत तथा मलयाली साहित्य के पोषक थे।[2] उनकी सभा में केरल के अनेक कवि थे। रामपाणिवाद तथा देवराज उनकी सभा मे संस्कृत के कवि थे। उनके आश्रय मे रामपाणिवाद ने सीता–राघव नाटक की तथा देवराज ने बालमार्त्तण्ड विजय नाटक की रचना की। कुञ्चन नम्बियार तथा रामपुरत्तु वारियार मार्त्तण्डवर्मा की सभा के मलयाली भाषा के प्रमुख कवि थे।

कार्त्तिकतिरुणाल रामवर्मा (1758–1798)

मार्त्तण्डवर्मा के पश्चात् उनके भागिनेय कार्त्तिकतिरुणाल रामवर्मा राजसिंहासन पर बैठे। कृत्तिका नक्षत्र मे उत्पन्न होने के कारण उन्हे कार्त्तिक तिरुणाल कहा जाता है। उनका जन्म 1724 ई० मे हुआ था। उनके पिता किलिमानूर के केरलवर्मा कोयिल तम्पुरान् थे। कार्त्तिक तिरुणाल की माता का नाम पार्वती बाई था।

कार्त्तिक तिरुणाल संस्कृत तथा मलयाली के विद्वान् थे। फारसी, हिन्दी, अंग्रेजी तथा पुर्तगाली भाषाओं का उन्हे विशेष ज्ञान था। उन्होने युद्धो मे अपने

1. एस राजराजवर्मा द्वारा सम्पादित।
2. डा के कुञ्जुन्निराजा, कन्ट्रीब्यूशन आफ केरल टू संस्कृत लिटरेचर मद्रास 1958, पृ० 168।

मातुल मार्त्तण्डवर्मा की सहायता की थी। उन्होने 40 वर्ष तक राज्य किया। 1798 ई० मे उनकी मृत्यु हो गई।

अपने शासन के प्रारभ मे कार्त्तिक तिरुणाल ने कालीकट के जामोरिन राजा को कोचीन से भगा दिया और उसे शाति से रहने के लिये बाध्य किया। इस प्रकार उन्होने कोचीन और कालीकट की शतियो पुरानी शत्रुता को समाप्त कर दिया। *कार्त्तिक तिरुणाल ने अर्काट के नवाब तथा अग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी से सदैव* मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित रखे।[1]

कार्त्तिक तिरुणाल धार्मिक थे। उन्होने *तुलापुरुषदानादि सोलह महादान* किये। 1766 ई० मे उन्होने कोचीन द्वारा त्रावणकोर को दिये गये कुनचुनाड, आलङ्गाड परूर तथा वेरत्तलाय जिलो को त्रिवेन्द्रम् मन्दिर के *पद्मनाभस्वामी* को समर्पित किया। 1782 ई० मे अपनी माता के देहावसान के पश्चात् कार्त्तिक तिरुणाल रामेश्वर गये। 1788 ई० मे उन्होने पेरियार नदी के तट पर अलवाये मे वैदिक यज्ञ करवाया।

कार्त्तिक तिरुणाल के शासन काल की सबसे महत्वपूर्ण घटना मैसूर के टीपू सुल्तान द्वारा केरल पर आक्रमण है। इस आक्रमण से सत्रस्त मालाबार के सहस्रो हिन्दू वहां से भागकर आश्रय के लिये त्रावणकोर आये। कार्त्तिक तिरुणाल ने उन सबको सरक्षण दिया। 1789 ई० मे टीपू पराजित हुआ और अपनी प्राणरक्षा के लिये भाग गया। जब प्रतिशोध की भावना से टीपू ने पुन केरल पर आक्रमण किया तब पेरियर नदी मे बाढ के कारण वह आगे न बढ सका। इसी समय कार्नवालिस द्वारा श्रीरङ्गपत्तन पर आक्रमण किये जाने की सूचना पाकर टीपू केरल छोडकर श्रीरङ्गपत्तन भागा और फिर वह कभी केरल नही गया। टीपू के आक्रमणो से हिन्दू-धर्म की रक्षा करने के कारण कार्त्तिक तिरुणाल को धर्मराज कहा जाता है।[2]

कार्त्तिक तिरुणाल स्वय कवि तथा कलाविद् थे। उन्होने सस्कृत मे बाल रामभरत[3] नामक नाट्यशास्त्रीयग्रन्थ लिखा। यह ग्रन्थ भरत के नाट्यशास्त्र पर आधारित है तथा इसमे नृत्यकला के विकास का परिचय मिलता है। कार्त्तिक तिरुणाल ने मलयाली भाषा मे महाभारत पर आधारित बकवधम पाञ्चाली स्वयवरम् आदि अनेक कथाकलि ग्रन्थ लिखे।

कार्त्तिक तिरुणाल सस्कृत पण्डितो के आश्रयदाता भी थे। उनकी सभा के प्रमुख सस्कृत विद्वान् उनके भागिनेय अश्वति तिरुणाल रामवर्मा, सदाशिव दीक्षित,

1. डॉ के कुञ्जुन्निराजा, कन्ट्रीब्यूशन ऑफ केरल टू संस्कृत लिटरेचर, मद्रास 1958, पृ 170।
2. डॉ के कुञ्जुन्नि राजा, पूर्वोक्त पृ 171।
3. त्रिवेन्द्रम् सस्कृत सीरीज में ग्रन्थ क्रमांक 118 के रूप में प्रकाशित।

कल्याणसुब्रह्मण्य सुब्रह्मण्य, पन्तल सुब्रह्मण्य शास्त्री तथा जामोरिनवंशीय राजकुमारी मनोरमा आदि थे।[1] अश्वति तिरुणाल रामवर्मा ने रुक्मिणीपरिणय नाटक तथा शृंगारसुधाकर भाण की रचना की। सदाशिव दीक्षित ने रामवर्मयशोभूषण नामक अलङ्कारग्रन्थ तथा लक्ष्मीकल्याण नाटक लिखे।

कार्तिक तिरुणाल की सभा में मलयाली के अनेक विद्वान् थे। इनमें कुञ्चन नम्बियार तथा इट्टिरारिश मेनन प्रमुख थे।

आन्ध्र-प्रदेश

अठारहवीं शताब्दी में आन्ध्र के सामन्तों तथा जमींदारों ने संस्कृत-विद्वानों को आश्रय दिया। संस्कृत-विद्वानों ने अपने आश्रयदाताओं के लिये रूपकों तथा अलङ्कार ग्रन्थों का निर्माण किया।

अट्ठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में नारायण तीर्थ ने कृष्णलीलातरङ्गिणी नामक गेयरूपक का निर्माण किया। अन्विण्डिरामेश्वर ने अट्ठारहवीं शताब्दी में साहित्यकल्पद्रुमादि अलङ्कार ग्रन्थों की रचना की।

बोब्बिलि के राजा रङ्गराय के पुरोहित कोटिकलपुडि कोण्डरामार्य ज्योतिषी थे। उन्होंने देवज्ञकल्पलता तथा आर्यभटतन्त्र नामक दो ज्योतिष ग्रंथों की रचना की।[2]

पाकनाडु के वेङ्कट रेड्डी द्वारा पोषित रायलूरि कन्दलार्य ने अलङ्कार-शिरोमणिभूषण नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया। काकर्लपूडि के जमींदार की प्रशंसा में अलङ्कारमञ्जरी की रचना की गई।

नूजविड के जमींदार शोभनाद्रि अप्पाराव के आश्रय में राम ने सिद्धान्त-सग्रह नामक शैव ग्रन्थ लिखा तथा कृष्णदास गांगेयसूरि ने सत्राजिती परिणय लिखा। पूसपाडि परिवार के जमींदार विजयराम की प्रशंसा में विभक्तिविलास नामक व्याकरणग्रन्थ लिखा गया।[3]

विजयनगरम् के गजपति संस्कृत-विद्वानों के आश्रयदाता थे। रामचन्द्र गजपति के आश्रय में योगिग्रहराज ने स्मृतिदर्पण लिखा। विजयराम गजपति तथा आनन्द गजपति के संरक्षण में हरिशर्मा ने व्याकरणग्रन्थ शब्दरत्न तथा परिभाषेन्दु-शेखर पर टीकायें लिखीं।

अट्ठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आन्ध्र में लगभग 30 शब्दकोष लिखे गये।[4]

---

1. डॉ के कुञ्जुन्निराजा, पूर्वोक्त, पृ 171–72।
2. डॉ वेंकट राघवन, संस्कृत लिटरेचर सी 1700 टू 1900 जर्नल ऑफ मद्रास यूनिवर्सिटी, सेक्शन ए-ह्यूमनिटीज, सैन्टेनरी नं० वाल्यूम 28, नं० 2, जनवरी 1957 पृ 186-87
3. डॉ वेङ्कट राघवन, वही पृ 186।
4. वही–पूर्वोक्त, पृ 186।

सुरपुरम् के वैष्णव विद्वान् पहिले 1760–66 ई० मे हैदराबाद के गुलबर्ग जिले मे ग्राये। उन्होने साहित्य की ग्रनेक विधाग्रो मे ग्रन्थो की रचना की।[1] उन्होने दार्शनिक ग्रन्थ, काव्य तथा रूपक लिखे। सुरपुरम् के इन विद्वानो मे से वेङ्कटाचार्य तृतीय ने शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक लिखा।

महाराष्ट्र

महाराष्ट्र के पेशवा

महाराष्ट्र के पेशवा सस्कृत साहित्य के उदार पोषक थे। उनके दक्षिणा के धन से ही ग्रट्ठारहवी शताब्दी मे पूना मे डेक्कन कालेज की स्थापना हुई थी। 1746 ई० मे शिव दीक्षित ने शाहूजी (1712–48 ई०) के ग्राश्रय मे धर्मतत्वप्रकाश तथा त्रयम्बक मट्ट ने परिशिष्टेन्दु की रचना की। तञ्जोर के राजा प्रतापसिंह के ग्राश्रित कवि जगन्नाथ ने नाना साहब पेशवा के ग्रादेश से 1760 ई० के लगभग शङ्करविलास चम्पू लिखा।

1765 ई० मे रघुनाथराव पेशवा (राघोवा) के ग्रादेश से रङ्गज्योतिर्विद् ने विचारसुधाकर नामक ग्रौषधि-ग्रन्थ लिखा। देवशकर की ग्रलकारमजूषा मे पेशवा माधवराव (1761–72 ई०) तथा उसके चाचा रघुनाथराव के यश का वर्णन है।[2] विहार म धर्मसमा के प्रमुख सचल मिश्र को मी माधवराव का ग्राश्रय प्राप्त था।

मैसूर

वोडेयार वंश

मैसूर के वोडेयार राजा सस्कृत के पोषक थे। वे पडौसी तथा दूरस्थ राज्यो से कूटनीतिक सम्बन्ध रखते थे ग्रौर उनमे ग्रपने राजदूत भेजते थे। इक्केरी, जिन्जी, मदुरा तथा तञ्जोर ग्रादि पडौसी राज्यो तथा मुगल-राजधानी दिल्ली के साथ इनके कूटनीतिक सम्बन्ध थे। इन सम्बन्धो के द्वारा वोडेयार राजा ग्रन्य राज्यो के साथ ग्रपने विवाद समाप्त कर मैत्री को सुदृढ रखते थे। इम्मडि कृष्णराज वोडेयार (1734–66 ई०) के शासन काल मे मैसूर के ग्रग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी,

1 डॉ वेङ्कट राघवन, द सुरपुरम् चीपस एण्ड सम सस्कृत रायटर्स पेट्रोनाइज्ड बाय देम जर्नल ऑफ द आन्ध्र हिस्टोरिकल रिसर्च सोसायटी, वाल्यूम 13, भाग 1, अप्रैल 1940 पृ 18।

2 डॉ वेङ्कट राघवन, सस्कृत लिटरेचर सी 1700 टू 1900, जर्नल ऑफ मद्रास यूनिवर्सिटी, सेक्शन ए–ह्यूमिनिटीज, सेन्टेनरी नम्बर, वाल्यूम 28, नं. 2, जनवरी 1957 पृ. 187–88।

अर्काट के नवाब मुहम्मद अली, गूटी के मोरारीराव तथा पाडुचेरी के फ्रासीसियो के साथ कूटनीतिक सम्बन्ध थे।[1]

मैसूर के राजा कृष्णराज द्वितीय के मन्त्री प्रधान वेङ्कण्प (वेङ्कामात्य) स्वय सस्कृत के कवि तथा नाटककार थे।[2] उन्होने चन्देल राजा परमर्दी के मन्त्री वत्सराज के समान डिम, वीथी, अङ्क ईहामृगादि रूपको के दुर्लभ भेदो के उदाहरण के रूप मे अपनी कृतियो की रचना की।

नञ्जराज

मैसूर के राजा इम्मडि कृष्णराज वोडेयार के मन्त्री नञ्जराज भी स्वय कवि थे। उन्होने सस्कृत मे सगतीगगाघर नामक ग्रन्थ लिखा। यह ग्रन्थ गीतगोविन्द का शैव अनुकरण है। नञ्जराज अनेक सस्कृत विद्वानो के आश्रयदाता भी थे।[3] चन्द्रकला-परिणय नाटक के रचयिता नरसिंह कवि तथा मुकुन्दानन्दभाण के कर्त्ता काशीपति नञ्जराज के आश्रित कवियो मे प्रमुख थे।

केलडि का नायकवंश

मैसूर मे केलडि के नायक राजाओ ने अठारहवी शताब्दी मे सस्कृत भाषा के अभ्युत्थान मे बडा योग दिया।'[4] राजा वसवप्पा नायक अथवा वसवराज प्रथम (1679–1714 ई) अनेक सस्कृत विद्वानो के पोषक होने के कारण इन्हे 'सूरि-निकरकल्पद्रुम' कहा जाता था। इनके समय मे (1) शिवतत्त्वरत्नाकर तथा (2) सुरद्रुम आदि सस्कृतविश्वकोषो की रचना हुई।

केलडि के राजा वसवराज द्वितीय अथवा वसवेश्वर द्वितीय (1739–54 ई) महान् योद्धा थे।'[5] उन्होने एलूर तथा काण्डवल्लयादि राज्यो को जीतकर अपने राज्य मे मिला लिया था[6]।

---

1. डॉ० एस० अच्युत राउ, सीक्रेट सर्विस एण्ड डिप्लोमेसी इन मैसूर (1600–1761 ई०) जर्नल ऑफ मिथिक सोसायटी, बॅगलोर, वाल्यूम 48, (1957–58), पृ० 61–65।
2. एस० पी० एल० शास्त्री, प्रधानी वेङ्कप्पैह पोइट एण्ड प्लेराइट, जर्नल ऑफ मिथिक सोसायटी, बॅगलोर वाल्यूम 31, 1940-41 पृ० 36–52।
3. डॉ० वेङ्कट राघवन, सस्कृत लिटरेचर सी० 1700 टू 1900 जर्नल ऑफ द मद्रास यूनिवर्सिटी, सेक्शन ए-ह्यूमेनिटीज, सेन्टेनरी नम्बर वाल्यूम 28, न० 2, पृ० 183-84।
4. ए० एन० नरहराय्य केलडि डायनेस्टी क्वार्टरली जर्नल ऑफ मिथिक सोसायटी, बॅगलोर, वाल्यूम 22, 1931–32 पृ० 72–87।
5. मुनगल एस० पट्टाभिरमैह, अपने द्वारा सम्पादित चोक्कनाथ के सेवन्तिका परिणयनाटक की भूमिका–पृ० 4–5।
6. मल्लारि आराध्य के शिवलिङ्ग, सूर्योदय नाटक की प्रस्तावना—

वसवेश्वर द्वितीय ने भी वसवेश्वर प्रथम की भाँति अपनी सभा मे अनेक सस्कृत पण्डितो को आश्रय दिया। इनके आश्रित कवियो मे से मल्लारि आराध्य ने शिवलिङ्गसूर्योदय नामक प्रतीकात्मक नाटक लिखा।

राजस्थान

जयपुर का राजवंश

अट्ठारहवी शताब्दी मे जयपुर के राजाओ ने सस्कृत के अनेक विद्वानो को आश्रय दिया। सवाई जयसिंह (1699–1743 ई) के समय मे जयपुर सभी विद्याओ का केन्द्र बन गया था। सवाई जयसिंह ने 1713 ई तथा 1742 ई के मध्य कभी अश्वमेघ यज्ञ किया था। वे अनेक सस्कृत विद्वानो के पोषक थे। उनके आश्रय मे 1713 ई मे रत्नाकार पौण्डरीक ने जयसिह–कल्पद्रुम नामक धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ लिखा। सदाशिव दशपुत्र ने उनके आश्रय मे आचारस्मृतिचन्द्रिका लिखी।'[1]

जयसिंह तथा उनके पुत्र माधोसिंह के आश्रय मे प्रभाकर के पुत्र ब्रजनाथ ने पद्यतरङ्गिणी नामक एक सुभाषित ग्रन्थ लिखा। श्यामलट्टू ने 1755 ई मे माधोसिंह की प्रशसा माधवसिंहार्यशतक लिखा[2]। इसमे माधवसिंह की सभा के अनेक सस्कृत विद्वानो का उल्लेख है।

जयसिंह के दूसरे पुत्र ईश्वरीसिंह की आज्ञा से श्रीकृष्ण कवि ने ईश्वर विलास-काव्य लिखा। श्रीकृष्ण कवि को जयपुर के राजा जयसिंह तथा भरतपुर और बूदी के राजाओ का आश्रय प्राप्त था। श्रीकृष्ण कवि ने पद्यमुक्तावली, सुन्दरीस्तवराज तथा वेदान्तपञ्चविंशति की भी रचना की।

ईश्वरीसिंह ने 1751 ई मे आत्महत्या कर ली। माधवसिंह के पुत्र प्रतापसिंह के आश्रय मे महाकवि भोलानाथ ने सस्कृत मे कर्णकुतूहलनाटक लिखा।'[3]

प्रतापसिंह वीर योद्धा थे। इन्होने मराठो के साथ युद्ध मे अपना पराक्रम प्रदर्शित किया था। योद्धा होते हुए भी प्रतापसिंह सहृदय भक्त कवि भी थे। इन्होने हिन्दी मे 23 ग्रन्थो की रचना की। ये ग्रन्थ ब्रजनिधि ग्रन्थावली' के रूप मे नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित हो चुके हैं।

रूपचन्द्र ने सुजानसिंह जी (1690–1735 ई) के आश्रय मे रूपक जैसी एक विचित्र रचना की जिसका नाम 'षड्मापामय प्रपत्र' है।

---

1 डॉ० वेङ्कट राघवन् सस्कृत लिटरेचर सी० 1700 टू 1900 जर्नल ऑफ मद्रास यूनिवर्सिटी, सेक्शन ए ह्यूमनिटीज सेन्टेनरी नम्बर, वाल्यूम 28 नं० 2, जनवरी 1957 न० 189।

2 डॉ० वेंकट राघवन, वही–पृ० 189।

3 गोपाल नारायण बहुरा द्वारा सम्पादित कर्णकुतूहल नाटक, प्रास्ताविक परिचय, पृ० 14।

उत्तरप्रदेश

बनारस

अट्ठारहवी शताब्दी मे बनारस मे अनेक सस्कृत-पण्डित रहते थे। इन पण्डितो का उल्लेख उन दो प्रमाणपत्रो मे मिलता है जो इन्होने वारेन हैस्टिंग्ज को दिये थे।'[1]

बनारस के राजा चेतसिंह (1770–81 ई) की सभा मे अनेक सस्कृत विद्वान् थे। उनके आश्रय में शङ्कर दीक्षित ने शङ्करचेतोविलास चम्पू लिखा। शङ्कर दीक्षित ने प्रद्युम्नविजयनाटक तथा गङ्गावरतणचम्पू की भी रचना की।

1791 ई मे बनारस मे शासकीय सस्कृत कालेज की स्थापना हुई।

अल्मोडा

अल्मोडा जिले मे पटिया ग्राम के निवासी विश्वेश्वर पाण्डेय ने अट्ठारहवी शताब्दी म नवमालिका शृङ्गारमञ्जरीसट्टक तथा अनेक काव्य–शास्त्रीय ग्रन्थो की रचना की।'[2]

बिहार

मिथिला

अट्ठारहवी शताब्दी मे मिथिला के कृष्णदत्त ने पुरञ्जन–चरित्र तथा कुवलयाश्वीय नाटक लिखे।'[3] इस समय मिथिला म कीर्तनिया नाटको का बहुत प्रचलन था। रमापति उपाध्याय ने 'रुक्मिणी परिणय' तथा लाल कवि ने 'गौरी स्वयवर' नामक कीर्तनिया नाटक लिखे। मिथिला के हरिहरोपाध्याय ने प्रभावती-परिणय नाटक लिखा।

इस समय मिथिला न्यायशास्त्र का प्रमुख केन्द्र था। अचल, मचल तथा सचल मिथिला के तीन प्रसिद्ध नैयायिक थे। मिथिला के राजा राघवसिंह के आश्रय मे कल्याण ने धर्मशास्त्र पर एक ग्रन्थ लिखा। 1764–5 ई मे कृपाराम तर्कवागीश ने तत्व धर्म प्रदीप नामक ग्रन्थ लिखा। राघवसिंह के आश्रय मे मगरोनी के गोकुलनाथ उपाध्याय ने न्यायदर्शन के सिद्धान्तो को समझाने के लिये अमृतोदय नामक प्रतीकात्मक नाटक लिखा। अट्ठारहवी शताब्दी के अन्त म चित्रदास ने मिथिला मे अनेक ग्रन्थ लिखे।'[4]

---

1 जर्नल ऑफ गगानाथ झा रिसर्च इन्स्टीटयूट, नम्बर 1943, पृ० 32।

2 म० म० डॉ० गोपीनाथ कविराज, काशी की सारस्वत साधना, पटना 1965, पृ० 73।

3 सदाशिव लक्ष्मीधर कात्रे, पुरजनचरित नाटक के नागपुर सस्करण की भूमिका।

4 डॉ० उमेश मिश्र द्वारा सम्पादित विद्याकरसहस्रक की भूमिका।

बगाल

नवद्वीप (नदिया)

चैतन्य के समय से नदिया बगाल का एक प्रमुख सास्कृतिक केन्द्र हो गया था। 1728 ई म महाराज कृष्णचन्द्रराय नदिया के राजसिंहासन पर बैठे। उनके समय (1728–82 ई) मे नदिया मे अनेक सस्कृत पण्डित थे। उनके आश्रय मे भारतचन्द्र ने चण्डी नाटक लिखा तथा रामानन्द ने सस्कृत मे अद्वैत, धर्म, साख्य, सङ्गीत तथा वास्तु विषयक ग्रन्थ, लिखे।'[1] माधवचन्द्र ने शब्द कोषो की रचना की।

कृष्णचन्द्र के पिता राजा रघुरामराय भी सस्कृत विद्वानो के पोषक थे। उनके आश्रय मे कृष्णनाथ सार्वभौम ने पदाङ्कदूत नामक खण्डकाव्य रचना की'[2]। कृष्णनाथ ने आनन्दलतिका नामक रूपक की भी रचना की।

कृष्णचन्द्र के आश्रय मे बाणेश्वर शर्मा नामक एक सस्कृत कवि भी रहते थे। वे आशुकवित्व के द्वारा कृष्णचन्द्र को प्रसन्न करते थे।[3]

नदिया के राजा गिरीशचन्द्र के आश्रय मे कृष्णकान्त रामनारायण, रामनाथ तथा शङ्कर नामक सस्कृत विद्वान् रहते थे।'[4]

नदिया के राजा ईश्वरचन्द्र राय (1780-1802 ई) सस्कृत के पोषक थे। इनकी सभा म सस्कृत के अनेक विद्वान थे। इन विद्वानो मे से वैद्यनाथ वाचस्पति भट्टाचार्य ने चित्रयज्ञ नाटक की रचना की।'[5]

नवाब अलीवर्दी खाँ

बगाल के नवाब अलीवर्दी खा (1740–56 ई) भी सस्कृत विद्वानो के पोषक थे। बाणेश्वर शर्मा, भारतचन्द्र के साथ कलह हो जाने के कारण राजा कृष्णचन्द्र की सभा को छोडकर कुछ समय तक अलीवर्दी खा के आश्रय मे रहे थे।'[6]

---

1 चिन्ताहरण चक्रवर्ती, बगालस कन्ट्रीब्यूशन टू सस्कृत लिटरेचर, एनल्स ऑफ भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना, वाल्यूम 11, भाग 3, पृ० 250।

2 जितेन्द्र विमल चौधुरी द्वारा सम्पादित तथा कलकत्ता से 1955 में प्रकाशित।

3 रामचरण चक्रवर्ती द्वारा सम्पादित चित्रचम्पू की भूमिका।

4 डॉ० वेंकट राघवन् संस्कृत लिटरेचर सी० 1700 टू 1900 जर्नल ऑफ मद्रास यूनिवर्सिटी, सेक्शन ए, ह्यूमेनिटीज, सेन्टेनरी नम्बर, वाल्यूम 28, नं० 2, जनवरी 1957 पृ० 193।

5 चित्रयज्ञनाटक की प्रस्तावना।

6 रामचरण चक्रवर्ती द्वारा सम्पादित चित्रचम्पू की भूमिका।

वर्धमान

अट्ठारहवी शताब्दी मे बगाल मे वर्धमान के राजा चित्रसेन ने अपनी सभा मे सस्कृत के अनेक विद्वानो को आश्रय दिया था।'[1] चित्रसेन का वश औरगजेब के समय से प्रसिद्ध था।

अपने पिता कीर्त्तिचन्द्र की मृत्यु के पश्चात चित्रसेन वर्धमान के राजसिहासन पर बैठे। उन्होने अनेक जमीदारो की सम्पत्ति छीनकर वर्धमान राज्य की सम्पत्ति मे मिला दी। 1740 ई मे मुगल सम्राट मुहम्मद शाह ने उन्हे 'राजा' की पदवी से विभूषित किया था। चित्रसेन स्वय भी विद्वान् थे।

चित्रसेन पराक्रमी योद्धा थे। उन्होंने अपने राज्य पर आक्रमण करने वाले मराठो को अनेक बार भगा दिया। अपनी प्रजा के जीवन तथा सम्पत्ति की रक्षा के लिए चित्रसेन त्रिवेणी तथा गङ्गासागर के मध्य मे स्थित विशाला मे रहने लगे। उन्होने वर्धमान के शासक का कार्य अपने मन्त्री माणिक्यचन्द्र को सौंप दिया।

चित्रसेन के आश्रय मे वाणेश्वर ने चित्रचम्पू तथा चन्द्राभिषेक नाटक लिखे। चित्रचम्पू मे चित्रसेन के जीवन का सक्षिप्त वर्णन है। मराठो द्वारा 1742 ई मे बगाल पर किए गये आक्रमण का भी चित्रम्पू मे सजीव वर्णन है। इस आक्रमण से उत्पन्न पश्चिम बगाल के निवासियो की विपत्ति का इस चम्पू मे सजीव वर्णन है। मराठो के इस आक्रमण के पूर्वकालीन तथा समसामयिक महाराष्ट्र का भी चित्रचम्पू मे वर्णन मिलता है। अलीवर्दी खा ने मराठो के आक्रमण का पराक्रम से सामना किया था। 1744 ई मे चित्रसेन की मृत्यु हो गई।

शोभाबाजार, कलकत्ता

अट्ठारहवी शताब्दी मे कलकत्ता मे शोभाबाजार के महाराज नवकृष्णदेव सस्कृत विद्वानो के पोषक थे। नवकृष्णदेव ने शोभा बाजार के राजवश की नीव डाली। उनका जन्म 1732 ई के लगभग हुआ था। वे फारसी के बडे विद्वान् थे। 1750 ई मे उन्होने वारेन हेस्टिग्स को फारसी पढाई थी। क्लाइव ने उन्हे ईस्ट इण्डिया कम्पनी का मुशी बना दिया था।

नवकृष्ण देव अग्रेजो के मित्र थे। ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने मीर जाफर, मुगल सम्राट शाह आलम, अवध के नवाब वजीर, बनारस के राजा बलवन्तसिह तथा बिहार के सिताबराय के साथ जो वार्ता की थी उसमे नवकृष्णदेव ने महत्वपूर्ण भाग लिया था। मुगल सम्राट ने 1767 ई मे नवकृष्णदेव को 'महाराज बहादुर' की पदवी दी थी।

---

1. वही

महाराज नवकृष्णदेव संस्कृत कवि वाणेश्वर शर्मा का सम्मान करते थे। उन्होने वाणेश्वर के लिये शोभा बाजार मे एक घर बनवा दिया था।'[1]

राजनगर, ढाका

राजनगर के राजा राजवल्लभ संस्कृत पण्डितो के आश्रयदाता थे। उनके आश्रय मे लिखे गये राजविजय नाटक से ज्ञात होता है कि उस समय राजनगर मे संस्कृत की स्थिति बहुत ऊंची थी।'[2] राजवल्लभ का संस्कृत के प्रति अनुराग था। उन्होने अनेक विद्वान् ब्राह्मणो को कर मुक्त भूमि दान की थी। उनके धार्मिक दृष्टिकोण मे सहिष्णुता थी।

राजवल्लभ समाजसुधारक थे। उन्होने बंगाल मे विधवाओ के पुनर्विवाह का प्रचलन कराने का प्रयास किया।'[3] उन्होने पूर्व बंगाल मे वैद्यो के एक वर्ग मे उपनयन के सम्बन्ध मे की गई धार्मिक क्रियाओ का वर्णन है।

राजवल्लभ ने अनेक वैदिक यज्ञ किये। उन्होने अपनी जन्मभूमि अपनी बील दाओनिआ का नाम राजनगर रखा और उसे अनेक प्रासादो तथा मन्दिरो से अलंकृत किया। राजनगर वर्तमान स्टीमर स्टेशन तारपाशा के पास स्थित था। यह नगर पद्मानदी की बाढ मे बह गया।

अट्ठारहवी शताब्दी के मध्य मे राजवल्लभ बंगाल के प्रमुख राजनीतिज्ञो मे से थे। उन्होने बंगाल मे अंग्रेजी राज्य स्थापित करने मे अंग्रेजो की सहायता की थी।[4]

राजवल्लभ का जन्म 1707 ई मे हुआ था। अपनी योग्यता और परिश्रम से वे पटना के उपराज्यपाल बने उनकी मृत्यु 1763 ई मे हुई।

यशवन्तसिंह

यशवन्तसिंह 1731 ई के लगभग बंगाल के नवाब सुजाउद्दौला के ढाका के नायब दीवान थे। यशवन्तसिंह संस्कृत प्रेमी थे। उन्होने अनेक संस्कृत विद्वानो को आश्रय दिया। विद्वन्मोदतरङ्गिणी के रचयिता चिरजीव भट्टाचार्य को यशवन्तसिंह का आश्रय प्राप्त था। चिरजीव ने अपनी वृत्तरत्नावली मे यशवन्तसिंह का गुणगान किया है।

---

1 रामचरण चक्रवर्ती द्वारा सम्पादित चित्रचम्पू की भूमिका, पृ० 9 पादटिप्पणी 11।

2. रमेशचन्द्र मजूमदार तथा कुञ्जगोविन्द गोस्वामी द्वारा सम्पादित राजविजयनाटक की भूमिका।

3. डॉ० कालीकिंकरदत्त, सर्वे ऑफ इण्डियाज सोशल लाइफ एण्ड इकोनॉमिक कन्डीशन इन द एटीन्थ सेन्चुरी, कलकत्ता 1961, पृ० 36।

4. रमेशचन्द्र मजूमदार तथा कुञ्जगोविन्द गोस्वामी द्वारा सम्पादित राजविजय नाटक की भूमिका।

बुन्देलण्ड

अट्ठारहवी शताब्दी मे बुन्देलखण्ड मे पन्ना के राजाओ ने संस्कृत के विद्वानो को आश्रय दिया। छत्रसाल (1671–1732 ई०) हृदयशाह (1732–39 ई०) सभासिह (1739–52 ई०) और अमानसिह ये सभी राजा हिन्दू-संस्कृति के रक्षक थे।

राजा सभासिह के राज्याभिषेक के समय उनके पुत्र अमानसिह के आदेश से शङ्कर दीक्षित द्वारा रचित प्रद्युम्न विजय नाटक का अभिनय किया गया था।[1] शङ्कर दीक्षित को सभासिह तथा अमानसिह राजाओ का आश्रय प्राप्त था।

सभासिह के पुत्र 'हिन्दूपति' के आश्रय मे उमापति उपाध्याय के पारिजातहरण नाटक की रचना की।[2] पारिजातहरण नाटक मिथिला के कीर्तनिया नाटको की परम्परा मे लिखा गया है।

उड़ीसा

अट्ठारहवी शताब्दी मे उडीसा के अनेक राजाओ तथा जमीदारो ने संस्कृत पण्डितो को आश्रय दिया।

खण्डपारा (जिला पुरी) के जमीदार नारायण मङ्गराज ने संस्कृत के अनेक विद्वानो को आश्रय दिया था। उनके आश्रय मे अनादि मिश्र ने मणिमाला नाटिका की रचना की।[3] उनकी सभा के कवि दीनबन्धु मिश्र ने हरिभक्तिसुधाकर नामक काव्य लिखा।

खण्डपारा के एक अन्य राजा बनमालि जगदेव भी संस्कृत विद्वानो के पोषक थे। वे चन्द्रमण्डिलाचन्द्रिकावशीय ब्राह्मण राजा थे। उनके आदेश से अनादि मिश्र ने राससगोष्ठी रूपक की रचना की थी।[4]

खुर्द के राजा गणपति वीरकेशरीदेव प्रथम (1736–1773 ई०) ने अनेक संस्कृत विद्वानो को आश्रय दिया। उनके आश्रय मे चयनी चन्द्रशेखर राजगुरु ने मधुरानिरुद्ध नाटक की रचना की।[5]

केओझर राज्य के भञ्ज राजाओ ने अट्ठारहवी शताब्दी मे अनेक संस्कृत पण्डितो को आश्रय दिया। राजा बलभद्र भञ्ज (1764–92 ई०) तथा उनके

---

1 प्रद्युम्नविजयनाटक, प्रस्तावना।

2 डॉ० जयकान्त मिश्र हिस्ट्री ऑफ मैथिली लिटरेचर, इलाहाबाद, 1949, पृ० 301-2।

3 मणिमालानाटिका, प्रस्तावना।

4 राससगोष्ठिरूपक, प्रस्तावना

5 मधुरानिरुद्धनाटक, प्रस्तावना।

पुत्र जनार्दन भञ्ज (1792–1831 ई०) सस्कृत के प्रेमी थे। नीलकण्ठ मिश्र ने जनार्दन भञ्ज के आश्रय मे भञ्जमहोदय नाटक का प्रणयन किया।[1]

गुजरात

अट्ठारहवी शताब्दी मे गुजरात पर अनेक शक्तियों द्वारा किये गये आक्रमणो के कारण वहा अशान्ति रही। ऐसे वातावरण मे वहा सस्कृत पनप न सकी।

काठियावाड मे भावनगर के राजा बखतसिह (1745–1816 ई०) विद्या प्रेमी थे। उनकी सभा मे अनेक विद्वान् और कवि थे। सस्कृत के विद्वान् जगन्नाथ ने राजा बखतसिह के आश्रय मे भाग्यमहोदय नाटक की रचना की।[2] इस नाटक मे बखतसिह को भाग्यसिह कहा गया है और उनकी प्रशसा की गई है।

बखतसिह का जन्म 1745 ई० मे हुआ था। अपने पिता अक्षयराज की मृत्यु के पश्चात् बखतसिह 27 वर्ष की आयु मे राजसिहासन पर बैठे। वे अधिक लोकप्रिय थे। उन्होने अनेक विजयो के द्वारा अपना राज्य बढाया। उन्होने काठी जाति के लुटेरो पर नियन्त्रण पा लिया।[3]

1785 ई० मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने बखतसिह को समुद्री लुटेरो को समाप्त कर देने के लिये एक आभार पत्र दिया था।

बखतसिह बलशाली राजा थे। उन्होने 1785 ई० मे पेशवा के प्रतिनिधि शिवराम गादी को चौथ देने से मनाकर दिया। बडौदा के गायकवाड राजा के प्रतिनिधि को भी बखतसिह ने चौथ नही दी।

1808 ई० से बखतसिह स्वय चौथ लेकर अग्रेजो को देते थे। इससे अग्रेज उनका सम्मान करते थे। बखतसिह ने 44 वर्ष शासन किया। 1816 ई० म उनका देहावसान हो गया।

असम

अट्ठारहवी शताब्दी मे असम मे शिवसागर जिले के आहोम राजाओ ने सस्कृत के अनेक विद्वानो को आश्रय दिया। इन सस्कृत विद्वानो ने अनेक सस्कृत ग्रन्थो का असमिया भाषा मे अनुवाद किया तथा सस्कृत मे काव्यरचना की।[4]

---

1 भञ्जमहोदय नाटक, अष्टमांक, पृ० 10।

2 भाग्यमहोदय नाटक, प्रस्तावना।

3 देवशकर वैकुण्ठजी भट्ट द्वारा सम्पादित भाग्यमहोदय नाटक की प्रस्तावना, पृ० 7।

4 डॉ० नगेन्द्र द्वारा सम्पादित भारतीय वाङ्मय, चिरगांव (झांसी) 2015 विक्रमी, पृ० 376–77।

आहोम राजा रुद्रसिंह (1696–1714) ई० के आश्रय मे कविराज चक्रवर्ती ने ब्रह्मवैवर्तपुराण तथा गीतगोविन्द का असमिया भाषा मे पद्यानुवाद किया।

राजा शिवसिंह (1714–44 ई०) के आश्रय मे कवि चन्द्र द्विज ने धर्म-पुराण का असमिया भाषा मे अनुवाद किया और संस्कृत में कामकुमारहरण नाटक की रचना की।[1]

राजा लक्ष्मीसिंह (1769–80 ई०) के आश्रय मे धर्मदेव गोस्वामी ने संस्कृत मे धर्मोदय नाटक का प्रणयन किया।

राजा प्रमत्तसिंह (1745–51 ई०) के आश्रय मे विद्यापञ्चानन ने संस्कृत मे श्रीकृष्णप्रयाण नाटक की रचना की।

राजा कमलेश्वर सिंह (1795–1811 ई) के शासन काल मे 1799 ई मे गौरीकान्त द्विज ने संस्कृत मे विघ्नेशजन्मोदय नाटक लिखा।

नेपाल

अट्ठारहवीं शताब्दी मे नेपाल के राजा रणबहादुरशाह (1777–99 ई०) के आश्रय मे शक्तिवल्लभ भट्टाचार्य ने संस्कृत मे जयरत्नाकर नाटक की रचना की।[2]

---

1. डॉ० सत्येन्द्र नाथ शर्मा द्वारा सम्पादित 'रूपकत्रयम्' मे माहेश्वर नियोग का प्राक्कथन, पृ० 1–2।
2. धनवज्राचार्य तथा ज्ञानमणि नेपाल द्वारा सम्पादित तथा नेपाली भाषा में अनूदित शक्तिवल्लभ भट्टाचार्य के जयरत्नाकर नाटक का उपोद्घात–पृ० 4–9।

द्वितीय अध्याय

शाहजी

शाहजी तञ्जोर के भोसलवशीय राजा एकोजी के पुत्र थे । इनकी माता का नाम दीपाम्बिका था । शाहजी का जन्म 1672 ई मे हुआ था । इनका शासन काल 1684 ई से 1710 ई तक रहा । विद्याव्यसनी होने के कारण इन्हें 'अभिनवभोज' कहा जाता था । इन्होने 46 उच्चकोटि विद्वानो को आश्रय देने के लिए शाहजिराजपुरम् प्रदान किया था । 1710 ई. मे 40 वर्ष की आयु मे इनका देहावसान हो गया था ।

शाहजी द्वारा विरचित ग्रन्थो मे 'चन्द्रशेखरविलास नाटक','शब्द-रत्न-समन्वय-कोष' 'शब्दार्थ-सग्रह' तथा 'पचभाषाविलास नाटक' प्रमुख हैं । इनके अतिरिक्त तेलुगु तथा मराठी भाषाओ मे भी इन्होने अनेक कृतियो का निर्माण किया है।

'चन्द्रशेखरविलास नाटक'[1] का प्रणयन 1705 ई मे किया गया । इसमे शिव के कालकूटपान की कथा वर्णित है । क्षीरसागर मन्थन से उत्पन्न कालकूट से भीत देवगण इन्द्र के पास जाते हैं । किन्तु इन्द्र को उससे रक्षा करने मे असमर्थ देख देवता इन्द्र सहित ब्रह्मा के समीप पहुँचते हैं । ब्रह्मा भी उससे रक्षा न कर सकने के कारण देवताओ सहित नारायण के पास जाते हैं । नारायण द्वारा भी कालकूट से रक्षा न हो सकने पर देवगण नारायण सहित शिव की शरण मे जाते हैं । शकर उनकी प्रार्थना सुन कालकूट का पान करते हैं । देवगण सहर्ष सुमन-वृष्टि करते हैं । शिव के इस पराक्रम से विस्मित भवानी उनके उदर मे स्थित जगत् के नष्ट हो जाने की आशका से कालकूट को शिव के कण्ठ तक ही रोक देती हैं । सुप्रसन्न देवो की प्रार्थना मान कर शिव चन्द्रमा को अपने ललाट पर धारण कर नाट्य करते हैं । नारदादि के मगलगान सहित नाटक की समाप्ति हो जाती है ।

'पञ्चभाषा-विलास'[2] शाहजी की एक अन्य कृति है । तमिल, तेलुगु, हिन्दी मराठी तथा सस्कृत पाँच भाषाओ मे निबद्ध इस एकाङ्की की विषयवस्तु है श्रीकृष्ण

1. इस नाटक की दो हस्तलिखित प्रतियाँ सरस्वती महल पुस्तकालय तञ्जोर में उपलब्ध हैं । 1963 ई० मे यह नाटक डा० सुन्दरशर्मा के द्वारा सम्पादित किया जाकर सरस्वती महल पुस्तकालय, तञ्जोर से प्रकाशित कराया गया है ।
2. यह सरस्वती महल पुस्तकालय, तञ्जोर से 1965 ई० में प्रकाशित हुआ है।

का चार राजकन्याओं से विवाह । ये राजकुमारियाँ हैं—द्रविड देश की कान्तिमती, आन्ध्र देश की कलानिधि, महाराष्ट्र की कोकिलवाणी तथा उत्तरदेश की सरस शिखामणि । युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ मे ये राजकुमारियाँ श्रीकृष्ण पर मोहित हो जाती हैं । श्रीकृष्ण की अनुपस्थिति मे इन राजकुमारियो की विरहव्यथा तथा अन्त मे श्रीकृष्ण के साथ इनके विवाह का वर्णन इस कृति मे प्राप्त है । श्रीकृष्ण संस्कृत मे प्रश्न करते हैं तथा राजकुमारियाँ अपनी-अपनी भाषा तमिल, तेलुगु, मराठी तथा हिन्दी मे उत्तर देती हैं ।

पञ्चभाषा-विलास की रचना अष्टादश शती के आरम्भ मे हुई है ।

शाहजीकृत दो यक्षगान हिन्दी भाषा मे भी उपलब्ध हुए हैं । ये हैं–विश्वातीत-विलास नाटक तथा राधावंशीधर–विलास नाटक ।'[1]

नल्लाध्वरी

नल्लाध्वरी राममद्र दीक्षित के सम्बन्धी तथा शिष्य और धर्मविजय चम्पू के रचयिता नल्ला दीक्षित से भिन्न हैं ।'[2] यह कौशिकगोत्रीय ब्राह्मण थे तथा कण्डरमाणिक्क मे रहते थे । इनके पिता का नाम बालचन्द्र मखी था । नल्लाध्वरी रामनाथ मखी तथा सदाशिव ब्रह्मेन्द्र के शिष्य थे । रामनाथ मखी तञ्जोर के राजा शाहजी (1684–1710 ई.) के सभापण्डित राममद्र दीक्षित के समकालीन थे । अतः नल्लाध्वरी का समय सत्रहवीं शती का अन्त और अट्ठारहवीं शती का प्रारम्भ है ।

नल्लाध्वरी की निम्नलिखित कृतियाँ प्राप्त होती हैं–

1. शृङ्गारसर्वस्व भाण —

शृङ्गारसर्वस्व भाण'[3] की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि इसकी रचना नल्लाध्वरी ने अपनी बाल्यकाल मे की थी । इस भाण मे विट अनङ्गशेखर का गणिका कनकलता के साथ समागम का वर्णन है ।

2. सुभद्रापरिणय नाटक —

सुभद्रापरिणय नाटक'[4] मे पाँच अङ्क हैं । इसमे सुभद्रा और अर्जुन के विवाह का वर्णन है ।

---

1. सम्पादित, एस० गणपति राव, तंजोर 1961 ।
2. डॉ० वे० राघवन् शाहेन्द्रविलास की प्रस्तावना, पृ० 53 ।
3. यह काव्यमाला ग्रन्थावली संख्या 78 में प्रकाशित हो चुका है ।
4. यह अभी अप्रकाशित है । इसकी हस्तलिखित प्रति, गवर्नमेण्ट ओरिएन्टल मैनुस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी मद्रास मे प्राप्त है । देखिये मद्रास, आर 788 ।

उपर्युक्त दोनो रूपको का प्रथम अभिनय मध्यार्जुन क्षेत्र (तिरुविडमरुदूक) मे किया था। इन दोनो रूपको का निर्माण कवि ने बीस वर्ष की आयु के पूर्व ही किया था। सम्भवत इन दोनो रूपको की रचना सप्तदश शतक मे ही हो चुकी थी।

परवर्ती आयु मे नल्लाध्वरी ने परम शिवेन्द्र तथा सदाशिवेन्द्र से वेदान्त का अध्ययन किया। सदाशिवेन्द्र के सान्निध्य मे जीवन्मुक्तो के स्वभाव का निरीक्षण कर कवि ने दो अन्य नाटको का निर्माण किया। ये नाटक हैं—

1 चित्तवृत्तिकल्याण।

2 जीवन्मुक्तिकल्याण।

नल्लाध्वरी ने इसी समय अपने वेदान्त प्रकरण, अद्वैतरसमञ्जरी तथा उसकी टीका की रचना की।

चित्तवृत्तिकल्याण नाटक का उल्लेख नल्लाध्वरी ने अपने जीवन्मुक्तिकल्याण नाटक की प्रस्तावना मे किया है। इस ने चित्तवृत्तिकल्याण नाटक का उल्लेख इस प्रकार किया है—

चित्तवृत्तिकल्याण of नल्ला दीक्षित No of granthas 1000 Written in Devanagari Script on paper. It is in the possession of Visvesvara Sastri Banglore [1]

चित्तवृत्तिकल्याण नाटक के शीर्षक से यह ज्ञात होता है कि यह एक प्रतीकात्मक नाटक है। इस नाटक मे चित्तवृत्ति के विवाह का वर्णन किया गया है।'[2]

जीवन्मुक्तिकल्याण नाटक'[3] मे पाँच अङ्क हैं। यह प्रतीकात्मक नाटक है। इसका वर्ण्य विषय हैं जीवन्मुक्ति का जीवराज के साथ विवाह।

चोक्कनाथ

चोक्कनाथ षड्दर्शनी सिद्धान्तसारादि अनेक ग्रन्थो के रचयिता राममद्र दीक्षित के श्वसुर चोक्कनाथ मखी से भिन्न हैं तथा उनसे अर्वाचीन भी हैं। यह आन्ध्रप्रदेशीय ब्राह्मण थे तथा इनका गोत्र भरद्वाज था। यह तिप्पाध्वरी तथा नरसाम्बा के पुत्र थे।

चोक्कनाथ के पाँच भाइयो के नाम थे—कुप्पाध्वरी, तिरुमल, स्वामी शास्त्री, सीताराम शास्त्री तथा यज्ञेश्वर। कवि के पिता तिप्पाध्वरी तथा ज्येष्ठ भ्राता कुप्पाध्वरी

---

1 Lewis Rice, Catalogue of Sanskrit manuscripts in Mysore and Coorg Bangalore 1884, P 256

2. इस नाटक की प्रति प्रयत्न करने पर भी लेखक को उपलब्ध नहीं हो सकी।

3 यह नाटक टी० के० बालसुब्रह्मण्य ऐयर द्वारा सम्पादित किया गया है तथा श्री शंकर गुरुकुल ग्रन्थावली संख्या 10 में श्रीरंगम् से 1944 ई० में प्रकाशित हो चुका है।

उन 46 पण्डितो मे से थे जिन्हे राजा शाहजी द्वारा शाहजिराजपुर का अग्रहार दान मे दिया गया था । चोक्कनाथ का समय सत्रहवी शती का अन्तिम भाग तथा अट्ठारहवी शती का प्रारम्भिक भाग है ।

चोक्कनाथ द्वारा विरचित केवल तीन रूपक मिलते हैं ।

1. रसविलास भाण –

रसविलास भाण का उल्लेख चोक्कनाथ ने अपने कान्तिमती शाहराजीय नाटक की प्रस्तावना में किया है ।'[1]

2. कान्तिमती-परिणय अथवा कान्तिमती शाहराजीय नाटक'[2]

यह पांच अङ्को का नाटक है । इसमे तञ्जोर के राजा शाहजी और कान्तिमती के विवाह का वर्णन है ।

3 सेवन्तिकापरिणय नाटक[3]

पांच अङ्को के इस नाटक मे केलदि वसवभूपाल तथा केरल राजकुमारी सेवन्तिका के विवाह का वर्णन है ।

वेङ्कटेश्वर

वेङ्कटेश्वर के पिता का नाम धर्मराज था । धर्मराज कावेरी के तट पर मणलूर नामक अग्रहार मे रहते थे । यह निध्रुवकाश्यपगोत्रीय थे । वेङ्कटेश्वर ने अपने रूपको की प्रस्तावना मे धर्मराज के पाण्डित्य का उल्लेख किया है । वेङ्कटेश्वर के पितामह वैद्यनाथ वैकुण्ठ योगीश्वर थे और उन्होने सन्यास ग्रहण कर ब्रह्म से तादात्म्य प्राप्त किया था । वेङ्कटेश्वर स्वय ब्रह्मयोगी थे और शिवोपासना मे निरत रहते थे । सभापतिविलास नाटक का निर्माण करने के कारण वेङ्कटेश्वर को 'चिदम्बर कवि' कहा जाता था ।

वेङ्कटेश्वर का तञ्जोर के राजा सरफोजी प्रथम (1711–1728 ई) का आश्रय प्राप्त था ।

वेङ्कटेश्वर ने निम्नलिखित कृतियो का निर्माण किया —

---

1. पारिपार्श्विक –श्लाघ्येतावद्रसविलासाख्यस्य भाणस्य कथयितेति । कान्तिमती-शाहराजीय नाटक, प्रस्तावना । इस भाण की अब तक कोई भी प्रति उपलब्ध नहीं हुई है ।
2 यह अभी तक अप्रकाशित है । इसकी तीन हस्तलिखित प्रतिया सरस्वती महल पुस्तकालय तंजोर मे मिलती हैं । देखिये, तंजोर 4339–41 ।
3 यह निम्नलिखित दो भिन्न स्थानों से प्रकाशित हो चुका है—
(अ) मुनगल एस० पट्टाभिरमय्य द्वारा सम्पादित तथा 1921 ई० में श्रीधर प्रस त्रिवेन्द्रम् से प्रकाशित ।
(ब) विद्वान् सु० नारायणस्वामिशास्त्री द्वारा सम्पादित तथा प्राच्यविद्या संशोधनालय संस्कृत ग्रन्थमाला स० 101 मे 1959 ई० में मैसूर से प्रकाशित ।

1. भोसलवशावली चंपू

इस चम्पू मे तञ्जोर के राजा सरफोजी प्रथम तथा उनके पूर्वजो का सविस्तार वर्णन किया गया है। यह ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

2 प्रतिज्ञाराधवानन्द नाटक

यह नाटक अभी तक प्राप्त नही हुआ है।

3 राघवानन्द नाटक[1]

राघवानन्द नाटक मे पाँच अङ्क है। इसमे राम के वनगमन से प्रारम्भ कर रावण का वध कर उनके अयोध्या लौटने और उनके राज्याभिषेक किये जाने तक की कथा वर्णित है।

4. सभापतिविलास नाटक[2]

पाँच अङ्को के इस नाटक मे नटराज शिव मुनि व्याघ्रपाद की तपस्या से प्रसन्न होकर उनके समक्ष अपना आनन्दताण्डव करते है।

5 नीलापरिणय नाटक[3]

इस नाटक मे गोप्रलय तथा गोभिल मुनियो पर अनुग्रह करने के लिए अवतीर्ण राजगोपाल (विष्णु) का नीला के साथ विवाह का वर्णन है। इसमे पाँच अङ्क हैं।

6 उन्मत्तकविकलशप्रहसन[4]

इस प्रहसन मे कविकलश के दौर्जन्य का वर्णन है।

आनन्दराय मखी

आनन्दराय मखी नृसिहराय के पुत्र तथा गङ्गाधर मखी के पौत्र थे। गङ्गाधर तञ्जोर के राजा एकोजी तथा नृसिहराय एकोजी और शाहजी के मत्री थे। नृसिहराय के अनुज *त्र्यम्बकराय शाहजी तथा सरफोजी के मन्त्री थे। त्र्यम्बकराय ने स्त्रीधर्म तथा धर्माकूत नामक दो ग्रन्थो की रचना की थी। नृसिहराय के विमात्रेय,*

---

1 यह अभी तक अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति सरस्वती महल पुस्तकालय तञ्जोर में मिलती है। देखिये तञ्जोर 4491।

2 महामहोपाध्याय दण्डपाणि स्वामी दीक्षितार द्वारा सम्पादित तथा अन्नमलाय सस्कृत ग्रन्थ माला सख्या 2 में अन्नमलाय से प्रकाशित।

3 यह नाटक अप्रकाशित है। इसकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ सरस्वती महल पुस्तकालय तञ्जोर म मिलती हैं। देखिये, तञ्जोर 4379–80।

4 यह प्रहसन अभी अप्रकाशित है। इसकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ सरस्वती महल पुस्तकालय तञ्जोर में प्राप्त है। देखिये तञ्जोर 4627–28।

भगवन्तराय ने मुकुन्दविलास काव्य, राघवाभ्युदय नाटक तथा उत्तरचम्पू का प्रणयन किया था।

आनन्दराय मखी शाहजी प्रथम, सरफोजी प्रथम तथा तुक्कोजी के धर्माधिकारी तथा सेनाधिकारी थे। अतः आनन्दराय मखी का जीवनकाल सत्रहवीं शती का अन्त तथा अठारहवीं शती का पूर्वार्द्ध है।

आनन्दराय का बाल्यकाल से ही शाहजी ने पालन-पोषण किया। शाहजी के अनुग्रह से आनन्दराय सरसकवि बने। आनन्दराय शाहजी को सरस्वती का अवतार मानते थे।'[1]

आनन्दराय मखी स्वयं भी विद्वानों के आश्रयदाता थे। वह धर्मात्मा, दीनानुकम्पी तथा कुशल योद्धा थे। वह देवों, द्विजों तथा गुरुजनों के प्रति आस्थावान् थे। आनन्दराय के पितृव्य त्र्यम्बकराय ने गङ्गास्नान तथा सहस्रदक्षिणयज्ञ किया था। आनन्दराय के पिता नृसिंहराय ने भी अनेक महायज्ञ किये थे। नृसिंहराय को दर्शनशास्त्र से प्रेम था और वह महान् कर्मयोगी थे।

आनन्दराय ने 1725 ई मे मदुरा के नायक राजा और पुदुकोट्टइ के तोण्डमान के सम्मिलित सैन्य को पराजित किया। आनन्दराय का देहावसान सम्भवतः राजा तुक्कोजी के शासन काल (1729-35 ई) मे हुआ। इसमे सन्देह नहीं है कि 1741 ई मे जब प्रतापसिंह तञ्जौर के राजसिंहासन पर आरूढ हुए उसके पूर्व ही आनन्दराय का देहावसान हो चुका था।

आनन्दराय की निम्नलिखित तीन रचनायें प्राप्त होती हैं—

1. जीवानन्द नाटक[2]

यह सात अङ्कों का एक प्रतीकात्मक नाटक है। इसमे आयुर्वेद के दुरूह सिद्धान्तों को अभिनय के माध्यम से सरलतापूर्वक समझाया गया है।

---

1. जीवानन्द नाटक, प्रस्तावना, पृ० 10।
2. जीवानन्द नाटक के निम्नलिखित संस्करण प्राप्त होते हैं–
   - (अ) काव्यमाला ग्रन्थावली संख्या 27 मे दुर्गाप्रसाद पाण्डुरंग परब द्वारा प्रकाशित।
   - (ब) अड्यार लाइब्रेरी ग्रन्थावली संख्या 59 में दुरैस्वामी शास्त्री द्वारा सम्पादित।
   - (स) एल्फ्रेड वेकरलिन द्वारा संस्कृत से जर्मन भाषा मे अनूदित तथा प्रकाशित।
   - (द) खुर्जा के नारायणदत्त वैद्य की रसायन टीका सहित हरिशास्त्री दाधीचि द्वारा सम्पादित तथा विक्रम संवत् 1990 मे खुर्जा से प्रकाशित।
   - (य) अत्रिदेव विद्यालङ्कार द्वारा सम्पादित तथा पुस्तकभवन बनारस द्वारा 1955 ई० में प्रकाशित।

2. विद्यापरिणय नाटक तथा उसकी टीका[1]

विद्यापरिणयनाटक मे जीवात्मा का विद्या के साथ विवाह का वर्णन है। इस प्रतीकात्मक नाटक मे सात अङ्क हैं।

विद्यापरिणय नाटक का निर्माण तञ्जोर के राजा सरफोजी प्रथम के शासन काल (1711–1728 ई) मे किया गया था।

आनन्दराय के उपर्युक्त दोनो नाटको का अभिनय उनके जीवनकाल मे किया गया था।

3. आश्वलायन गृह्यसूत्रवृत्ति[2]

आश्वलायन गृह्यसूत्रवृत्ति मे आश्वलायन गृह्य सूत्रो की व्याख्या की गई है।

अनेक विद्वानो का मत है कि उपर्युक्त तीनो ग्रन्थो की रचना वेद कवि ने की थी और अपने आश्रयदाता आनन्दराय को इनका कर्त्ता घोषित कर दिया था।

नारायण तीर्थ

नारायण तीर्थ को शिवनारायण तीर्थ, वरनारायण तीर्थ, तीर्थ नारायण स्वामी तथा तीर्थ नारायण यति भी कहा जाता है। इनके गुरु शिवरामानन्द तीर्थ थे। यह अद्वैतवादी सन्यासी थे।

नारायण तीर्थ के सन्यास ग्रहण करने के पूर्व के जीवन के सबध मे विद्वानो म मतैक्य नही है। नारायण तीर्थ ने अपने पूर्वजो के सम्बन्ध मे अपनी कृतियो मे कुछ भी नही लिखा है। इन्होने केवल अपने गुरु शिवतीर्थ का अपनी कृतियो मे उल्लेख किया।

कहा जाता है कि नारायण तीर्थ तल्लवज्झलवश के थे। यह आन्ध्र ब्राह्मण थे और सन्यास ग्रहण करने के पूर्व इनका नाम गोविन्द शास्त्री था। इनके पिता का *नाम नीलकान्त शास्त्री था। यह आन्ध्रप्रदेश मे गोदावरी जिले के अन्तर्गत कुचिमञ्चिग्राम के निवासी थे।'*[3]

नारायण तीर्थ कवि, सगीतज्ञ, दार्शनिक तथा भगवद्भक्त थे। इन्होंने भजन-सम्प्रदाय का प्रचार किया था।

---

1. विद्यापरिणय नाटक काव्यमाला-ग्रन्थावली सख्या 39 में प्रकाशित हो चुका है। इसकी टीका अभी अप्रकाशित है। यह टीका अड्यार लायब्रेरी, मद्रास में प्राप्त है।
2. Tanjor 'Descriptive Catalogue No 11764
3. बालिम्न रामास्वामी शास्त्रलू द्वारा मुद्रित कृष्णलीला-तरङ्गिणी की प्रशंसा, पृ० 8।

नारायण तीर्थ दीर्घकाल तक तञ्जोर मे रहे।'[1] यह तञ्जोर के वरहूर ग्राम में वेङ्कटेश (विष्णु) की स्तुति करते थे। वेङ्कटेश की कृपा से इनका उदरशूल नष्ट हुआ।

नारायण तीर्थ ने 'कृष्णलीलातरङ्गिणी' नामक गीति रूपक (Dance drama) की रचना की। नारायणतीर्थ का जीवनकाल सत्रहवीं शती का अन्तिम तथा अठारहवीं शती का पूर्व भाग माना जाता है।

नारायणतीर्थ 1700 ई के लगभग गोदावरी जिले के कूचिमञ्चि अग्रहार मे रहते थे।'[2] नारायण तीर्थ ने तिरुप्पुन्तुरुत्ति नामक ग्राम मे, जो वरहूर से सात मील पूर्व की ओर है, समाधि ग्रहण की थी। इस स्थान पर अब भी नारायण तीर्थ का वार्षिकोत्सव मनाया जाता है।

नारायणतीर्थ ने निम्नलिखित ग्रन्थो का प्रणयन किया—

1. कृष्णलीला-तरङ्गिणी

कृष्णलीलातरङ्गिणी एक गेय रूपक है। इसमे द्वादश तरङ्गो मे श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर रुक्मिणी—विवाह तक की भागवतपुराण की कथा वर्णित की गई है।

2. भक्तिसुधार्णव[3]

भक्तिसुधार्णव कृष्णभक्ति से पूर्ण काव्य है।

3. शाण्डिल्य की भक्तिमीमांसा की टीका[4]

चिरञ्जीव भट्टाचार्य

चिरञ्जीव भट्टाचार्य का वास्तविक नाम रामदेव अथवा वामदेव भट्टाचार्य था।'[5] यह काश्यपगोत्री ब्राह्मण थे। यह बगाल मे राढापुर मे रहते थे। इनके पितामह काशीनाथ सामुद्रिकशास्त्र के विद्वान् थे। काशीनाथ के तीन पुत्र थे–राजेन्द्र, राघवेन्द्र और महेन्द्र। यह राघवेन्द्र ही चिरञ्जीव भट्टाचार्य के पिता थे। राघवेन्द्र ने सोलह वर्ष की आयु मे समस्त शास्त्रो का अध्ययन सम्पन्न कर 'भट्टाचार्यशतावधान' पद प्राप्त किया था।

---

1. डॉ० वे० राघवन्-श्रीनारायण तीर्थ पृ० 2। यह लेख नारायणतीर्थ समारोह-समिति, तिरुप्पुन्तुरुत्तिल, तञ्जोर द्वारा प्रकाशित किया गया है।
2. एम० कृष्णमाचारियर, हिस्ट्री ऑफ क्लासीकल संस्कृत लिटरेचर, मद्रास 1927, पृ० 345।
3. यह अभी अमुद्रित है।
4. यह अभी अमुद्रित है।
5. चिरञ्जीव भट्टाचार्य के विषय मे देखिये जगन्नाथ स्वामी होरिङ्ग द्वारा लिखित 'चिरञ्जीव भट्टाचार्य' शीर्षक लेख। यह लेख नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वाराणसी के भाग 6, सं० 1991 मे पृ. 331 और आगे प्रकाशित हुआ है।

राघवेन्द्र के गुरु भवानन्द सिद्धान्तवागीश थे। राघवेन्द्र ने 'मन्त्रार्थदीप' तथा 'रामप्रकाश' नामक दो ग्रन्थो का निर्माण किया था। राघवेन्द्र का देहावसान काशी मे हुआ था।[1]

चिरञ्जीव भट्टाचार्य ने न्याय तथा अन्य शास्त्रो का अध्ययन अपने पिता से ही किया था। चिरञ्जीव रघुदेव न्यायालङ्कार के भी शिष्य थे और इन्होने उनसे कदाचित् काव्य तथा अलङ्कार की शिक्षा ग्रहण की थी।[2]

चिरञ्जीव के वैयक्तिक जीवन के सम्बन्ध मे अभी तक अधिक ज्ञान नही हो सका है। इनकी वृत्तरत्नावली मे छन्दो के उदाहरण मे दिये गये पद्य यशवन्तसिह का गुणगान करते हैं। यह यशवन्तसिह अट्ठारहवी शती के पूर्वार्द्ध मे 1731 ई के लगभग बगाल के नवाब सुजाउद्दौला के ढाका के नायब दीवान थे।

चिरञ्जीव भट्टाचार्य ने 1703 ई मे काव्यविलास की रचना की थी। अत डा सुशीलकुमार दे ने इनका समय सत्रहवी शती का अन्तिम पाद तथा अट्ठारहवी शती का पूर्वार्द्ध माना है।[3] हरप्रसाद शास्त्री का भी चिरञ्जीव के समय के विषय मे यही मत है।[4]

दिनेशचन्द्र भट्टाचार्य ने हरप्रसाद शास्त्री के मत की आलोचना करते हुए कहा है कि उन्होंने चिरञ्जीव के आश्रयदाता यशवन्तसिह का ढाका के नायब दीवान यशवन्तसिह से तादात्म्य करने की भूल की है। दिनेशचन्द्र भट्टाचार्य के मत म चिरञ्जीव का समय सत्रहवी शती है,[5] परन्तु दशरथ शर्मा ने दिनेशचन्द्र भट्टाचार्य के मत का खण्डन करते हुए कहा है कि उन्होंने चिरञ्जीव के आश्रयदाता यशवन्तसिह का गोंड राजा यशवन्तसिह से तादात्म्य करने की भूल की है।[6]

---

1 चिरञ्जीव भट्टाचार्य कृत 'विद्वन्मोदतरङ्गिणी' 1–21

2 डा० वे० राघवन ने इन रघुदेव के द्वारा 1711 ई० में लिखे गये धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ 'दिनसग्रह' का उल्लेख किया है। देखिये,
Dr V Raghavan Sanskrit literature C 1700 to 1900' Published in the Journal of the Madras University Vol XXVIII No 2, January 1957 P 190

3 डा० सुशील कुमार दे, 'हिस्ट्री आफ सस्कृत पोइटिक्स' द्वितीय संस्करण, कलकत्ता 1960, पृ० 279।

4 हरप्रसाद शास्त्री, नोटिसेज ऑफ संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स III No 283

5 Dinesh Chandra Bhattacharya Chiranjiva and his patron Vasavantasimha' Published in the Indian Historical Quarterly' Vol XVII 1941, PP 1-10

6 *Dasartha Sharma 'Was Chiranjiva's patron a Gond ?* Published in the 'Indian Historical Quarterly' Vol XIX, 1943 P. 58

दशरथ शर्मा ने कहा है कि चिरञ्जीव के आश्रयदाता गोड यशवन्तसिंह नहीं थे अपितु गौड (बंगदेशीय) यशवन्तसिंह थे। दशरथ शर्मा ने हरप्रसाद शास्त्री के मत को ही उचित बताया है। डॉ वे राघवन् ने चिरञ्जीव भट्टाचार्य की स्थिति 1700 ई. के समीप मानी है।[1] अतः चिरञ्जीव के समय के विषय में हरप्रसाद शास्त्री तथा सुशील कुमार दे के मत समीचीन प्रतीत होते हैं।

चिरञ्जीव की निम्नलिखित कृतियाँ उपलब्ध हुई हैं—

(1) विद्वन्मोदतरङ्गिणी

विद्वन्मोदतरङ्गिणी एक अत्यन्त मनोरंजक ग्रन्थ है। यह चम्पू के आदर्श पर लिखा गया है। संवाद शैली में लिखे जाने के कारण यह रूपक के समान प्रतीत होता है। इसमें आठ तरङ्ग हैं। डॉ श्रीधर भास्कर वर्णेकर ने उसे लाक्षणिक रूपक माना है।[2]

विद्वन्मोदतरङ्गिणी[3] में वैष्णव, शैव, शाक्त, मीमांसा, न्याय तथा वेदान्तादि विविध धार्मिक और दार्शनिक सम्प्रदायों के प्रतिपादकों को पात्र बनाकर धार्मिक तथा दार्शनिक समस्याओं के समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

(2) माधवचम्पू

माधवचम्पू एक लघु काव्य है।[4]

---

1 Dr. V Raghavan, 'Sanskrit literature C-1700 to 1900' Published in the Journal of Madras University, Section-A Humanities Centenary number, Vol XXVIII No 2, January 1957, P 193

2 श्रीधर भास्कर वर्णेकर, अर्वाचीन संस्कृत साहित्य, नागपुर 1963 पृ० 193।

3 विद्वन्मोदतरङ्गिणी के निम्नलिखित संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं—
(अ) वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई 1912
(ब) सत्यव्रत सामाश्रमी द्वारा सम्पादित तथा 'हिन्दू कम्मेण्टेटर' IV Nos 1-4, 1871 में प्रकाशित।
(स) कालीकृष्ण देव द्वारा सम्पादित तथा श्रीरामपुर प्रेस से 1832 ई० में प्रकाशित।
(द) इलाहाबाद से सानुवाद प्रकाशित।

4 जीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य द्वारा सम्पादित तथा 1872 ई में कलकत्ता से प्रकाशित। सत्यव्रत सामाश्रमी ने भी इस चम्पू का सम्पादन कर इसे 'हिन्दू कम्मेण्टेटर IV Nos 4-7 में कलकत्ता से सन् 1871 ई० में प्रकाशित किया है।

(3) काव्यविलास

काव्यविलास अलङ्कारविषयक ग्रन्थ है ।[1]

(4) वृत्तरत्नावली

वृत्तरत्नावली[2] छन्दशास्त्र का ग्रन्थ है। इसमे छन्दो के उदाहरणो मे यशवन्तसिंह का यशोगान किया गया है ।

उपर्युक्त ग्रन्थो के अतिरिक्त चिरञ्जीव द्वारा विरचित दो अन्य ग्रन्थो का उल्लेख उनके काव्यविलास मे प्राप्त होता है। ये हैं—

(1) कल्पलता तथा

(2) शिवस्तोत्र

आफेट ने चिरजीव की एक अन्य कृति 'शृङ्गारतटिनी' का भी उल्लेख किया है ।[3]

बटुकनाथ शर्मा के अनुसार शृङ्गारतटिनी तथा कल्पलता शृङ्गारिक काव्य प्रतीत होते हैं *तथा शिवस्तोत्र एक धार्मिक काव्य ।*[4]

सतीशचन्द्र विद्याभूषण ने चिरजीव का उल्लेख नैयायिको मे तो किया है परन्तु उनकी न्यायशास्त्रपरक किसी रचना का उल्लेख नही किया ।[5]

चिरञ्जीव ने विद्वन्मोदतरङ्गिणी मे कहा है कि उन्होंने न्यायादिविषयक ग्रन्थो का निर्माण किया था,[6] परन्तु अभी तक उनके किसी न्यायग्रन्थ की उपलब्धि नही हुई है।

उमापति उपाध्याय

उमापति उपाध्याय बिहार प्रदेश मे दरभगा जिले के अन्तर्गत भौर परगना मे कोइलख ग्राम के निवासी थे। इन्हे राजा हरिहरदेव हिन्दूपति का आश्रय प्राप्त था। उमापति उपाध्याय की केवल एक ही रचना प्राप्त होती है—पारिजात-हरण नाटक ।[7]

---

1 बटुकनाथ शर्मा साहित्योपाध्याय तथा जगन्नाथ शास्त्री होशिङ्ग द्वारा सम्पादित तथा प्रिंस आफ वेल्स सरस्वती भवन ग्रन्थमाला संख्या 16 में 1925 ई० मे बनारस से प्रकाशित।

2 यह प्रकाशित हो चुकी है।

3 आफ्रेट, केटालोगस केटालोगोरम, जिल्द 1 पृ० 660

4 सरस्वती भवन ग्रन्थमाला मे प्रकाशित काव्यविलास की भूमिका, पृ० 8

5 *सतीशचन्द्र विद्याभूषण, हिस्ट्री आफ इण्डियन लाजिक, पृ० 483*

6 विद्वन्मोदतरङ्गिणी, 1-22

7 पारिजातहरण नाटक के निम्नलिखित तीन संस्करण प्राप्त होते हैं–

(अ) डा० ग्रियर्सन द्वारा सम्पादित तथा 'जर्नल आफ बिहार एण्ड ओरीसा रिसर्च सोसायटी' जिल्द 3 पृ० 20-98 में प्रकाशित ।

(ब) चेतनाथ झा द्वारा सम्पादित तथा दरभङ्गा से 1917 ई० में प्रकाशित।

(स) नई दिल्ली से प्रकाशित ।

उमापति उपाध्याय के आश्रयदाता राजा हरिहरदेव हिन्दूपति के विषय मे विद्वानो मे मतभेद है। डॉ ग्रियर्सन ने हरिहरदेव हिन्दूपति का 14वीं शती के मिथिला के राजा हरिसिंहदेव से तादात्म्य स्थापित करने का प्रयास किया है।[1] बजरग वर्मा[2] ने ग्रियर्सन के मत की पुष्टि की है।

चेतनाथ झा[3] तथा जयकान्तमिश्र[4] ने ग्रियर्सन के उपर्युक्त मत को त्रुटिपूर्ण प्रमाणित किया है। चेतनाथ झा के अनुसार उमापति उपाध्याय के आश्रयदाता हरिहरदेव हिन्दपति नेपाल मे भपटियाही स्टेशन से उत्तर की ओर स्थित सप्तरी परगना के स्वतन्त्र राजा हरिहरदेव थे, जिन्हे मुसलमानो को पराजित करने के कारण 'हिन्दूपति' का विरुद दिया गया होगा।

जयकान्त मिश्र ने हरिहरदेव हिन्दूपति को बुन्देलखण्ड के राजा छत्रसाल के पुत्र हृदयशाह के पौत्र तथा सभासिंह के पुत्र 'हिन्दूपति' बताया है। यह हिन्दूपति बुन्देलखण्ड मे गढमण्डला के राजा थे। यह मिथिला के राजा राघवसिंह (1701-39 ई०) के समसामयिक थे। इसी आधार पर जयकान्त मिश्र ने उमापति उपाध्याय का समय सत्रहवीं शती का अन्त तथा अट्ठारहवी शती का पूर्वार्द्ध माना है। डॉ. वे. राघवन् ने भी उमापति का समय अट्ठारहवी शती स्वीकार किया है।[5]

एम. कृष्णमाचारी[6] ने जिन उमापति धर का उल्लेख किया है वह पारिजातहरण रूपक के कर्त्ता इन उमापति उपाध्याय से भिन्न हैं।

पारिजातहरण नाटक का अभिनय हिन्दपति हरिहरदेव के आदेश से उसके योद्धाओ के वीररसावेश को शमित करने के लिए किया गया था। यह कीर्तनिया नाटक है। इसकी वस्तु पारिजातहरण की प्रसिद्ध पौराणिक कथा है।

अनादि मिश्र

अनादि मिश्र औतकल ब्राह्मण थे। इनका गोत्र भरद्वाज था। यह मुकुन्द के पौत्र तथा शतञ्जीव के पुत्र थे। इनकी माता का नाम निम्बदेवी था। शतञ्जीव ने 'मुदितमाधव' नामक गीतकाव्य की रचना की थी।

---

1. डॉ ग्रियर्सन, जे०बी०ओ०आर०एस०, जिल्द 3 पृ० 25-26
2. बजरङ्ग वर्मा, साहित्य (बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन और बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् का सम्मिलित शोध समीक्षाप्रधान त्रैमासिक मुखपत्र) वर्ष 7, अङ्क 2 जुलाई 1956, पृ० 44-55
3. चेतनाथ झा द्वारा सम्पादित पारिजातहरण की भूमिका, पृ० 15-16
4. डॉ. जयकान्त मिश्र, हिस्ट्री आफ मैथिली लिटरेचर, इलाहाबाद 1949, पृ० 301-7
5. डॉ वे० राघवन्, न्यू कैटेलोगस कैटेलोगोरम् जिल्द 2, पृ० 391
6. एम० कृष्णमाचारी-'हिस्ट्री आफ क्लासीकल संस्कृत लिटरेचर' मद्रास, 1937, पृ० 347।

अनादि मिश्र के एक पूर्वज दिवाकर चन्द्रराय थे। दिवाकर चन्द्रराय ने गद्य तथा पद्य मे अनेक ग्रन्थो की रचना की थी। अपने अगाध पाण्डित्य के कारण दिवाकर चन्द्रराय का विद्यानगर (विजयनगर की राजधानी) मे सम्मान किया गया था। इन्होंने 'प्रभावती नाटक' की रचना की थी। केदारनाथ महापात्र ने इन दिवाकर चन्द्रराय का तादात्म्य भारतामृत महाकाव्य के प्रणेता दिवाकर चन्द्रराय से किया है।[1] इन्ही दिवाकर चन्द्रराय से प्रेरणा प्राप्त कर अनादि मिश्र ने 'मणिमाला' नाटिका की रचना की थी।

केदारनाथ महापात्र ने कहा है कि यह दिवाकर तथा इनके पूर्वज जगन्नाथपुरी के समीप किसी ब्राह्मण राज्य मे रहते थे।[2] अनादि कवि नम्र थे और विद्वानो का सम्मान करते थे।

अनादि कवि के आश्रयदाता नारायण मङ्गराज उत्कलेश्वर के आश्रित राजाओ मे शिरोमणि थे। केदारनाथ महापात्र के अनुसार नारायण मङ्गराज भूतपूर्व जमीदारी रियासत खण्डपारा के राजा थे। यह खण्डपारा इस समय पुरी जिले के नयागढ उपविभाग के अन्तर्गत है। नारायण मङ्गराज सत्रहवी शती के अन्तिम पाद तथा अट्ठारहवी शती के प्रथम पाद मे शासन कर रहे थे। नारायण मङ्गराज की सभा मे अनेक पण्डित थे।

मणिमाला नाटिका की प्रस्तावना मे अनादि कवि ने नारायण मङ्गराज का अपने आश्रयदाता के रूप मे उल्लेख किया है। नारायण मङ्गराज के आदेश से ही अनादि कवि ने इस नाटिका की रचना की थी।

मणिमाला नाटिका की उडिया लिपि मे ताडपत्र पर लिखी गई एक प्रति उडीसा राजकीय सग्रहालय मे विद्यमान है।[3] इस प्रति को अनादि मिश्र के शिष्य सदाशिव ने लिखा था। इस प्रति पर इसके लेखन की तिथि राजा वीरकेशरीदेव के शासन काल का 51 वाँ वर्ष, कृष्णपक्ष की पञ्चमी तिथि तथा बृहस्पतिवार दी हुई है। *केदारनाथ महापात्र ने गणित के आधार पर इस तिथि को 19 अक्टूबर 1776* ई० बताया है।[4] उन्होंने कहा है कि यदि इस ग्रन्थ की रचना तिथि तथा प्रतिलिपि करने की तिथि के मध्य 30 वर्ष का अन्तर छोड दिया जाये तो मणिमाला नाटिका की रचना तिथि 1746 ई० के समीप स्थिर की जा सकती है।[5]

---

1. Kedara Natha Mahapatra, 'Manimala Natika of Anadikavi' Published in the Orissa Historical research Journal Vol. IY Nos. 3 and 4. 1958 59, P. 64.
2. केदारनाथ महापात्र, वही, पृ० 65
3. उडीसा राजकीय सग्रहालय, भुवनेश्वर, हस्तलिखित ग्रन्थ सख्या एल 58
4. केदारनाथ महापात्र, ओरीसा हिस्टोरीकल रिसर्च जर्नल, जिल्द 4, अङ्क 3-4, पृ० 61
5. केदारनाथ महापात्र, वही, पृ० 62

अनादि कवि ने श्रीखण्डपल्लिपुरी (खण्डपारा) के चन्द्रमण्डिला चन्द्रिका-वंशीय ब्राह्मण राजा वनमालिजगद्देव के आदेश से 'रासगोष्ठि' नामक एक अन्य रूपक का निर्माण किया।[1]

अनादि मिश्र के निम्नलिखित तीन ग्रन्थ अब तक उपलब्ध हुए हैं—

(1) मणिमाला नाटिका[2]

मणिमाला नाटिका मे चार अक हैं। इसकी वस्तु कल्पित है। इसमें उज्जयिनी के राजा शृङ्गारशृङ्ग का पुष्करद्वीप की राजकुमारी मणिमाला के साथ प्रणय तथा विवाह का वर्णन है।

(2) राससंगोष्ठिरूपक

राससंगोष्ठि रूपक मे कृष्ण तथा गोपियों की रासक्रीडासंगोष्ठी का वर्णन है। इसमें केवल एक अङ्क है। इस अङ्क का नाम कवि ने रासोत्सव रखा है।

(3) केलिकल्लोलिनी काव्य[3]

केलिकल्लोलिनी काव्य में राधा तथा कृष्ण की प्रणयकेलि का वर्णन है।

अनादि मिश्र राधा, कृष्ण तथा दुर्गा के उपासक थे।

जगन्नाथ

जगन्नाथ वाधूलवंशीय श्रीनिवास पण्डित के पुत्र थे। श्रीनिवास अनेक विद्याओं मे निपुण थे। वह राजतन्त्र मे भी कुशल थे। श्रीनिवास तन्जोर के भोंसल-वंशीय राजा सरफोजी प्रथम के मन्त्री थे। जगन्नाथ की माता सोलायी साध्वी नारी थी।

जगन्नाथ के पितृव्य रघुनाथ विनीत तथा तेजस्वी थे। जगन्नाथ पितृभक्त थे। वह महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। वह तन्जोर मे रहते थे। सरस्वती और लक्ष्मी दोनों ही की कृपा जगन्नाथ पर थी।

जगन्नाथ तन्जोर के राजा सरफोजी प्रथम (1711–1728 ई०) के आश्रित कवि थे। अतः जगन्नाथ का समय अट्ठारहवीं शती का पूर्वार्द्ध है।

---

1. यह अभी अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति उड़ीसा राजकीय संग्रहालय, भुवनेश्वर में मिलती है। देखिये हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या एल 319 बी।

2. यह अभी अप्रकाशित है। देखिये, उड़ीसा राजकीय संग्रहालय, भुवनेश्वर, हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या एन–58

3. यह अभी अप्रकाशित है। इसकी हस्तलिखित प्रति उड़ीसा राजकीय संग्रहालय, भुवनेश्वर में मिलती है।

जगन्नाथ की निम्नलिखित रचनायें मिलती हैं—

(1) शरभराजविलास काव्य[1]

शरभराजविलास काव्य की रचना जगन्नाथ ने 1722 ई० में की थी। इसमें मानने वंश का इतिहास वर्णित है। इसमें सरफोजी प्रथम का गुणगान विशेष रूप से किया गया है।

(2) शृङ्गारतरङ्गिणी भाण

शृङ्गारतरङ्गिणी भाण का उल्लेख जगन्नाथ ने अपने अनंगविजय भाण की प्रस्तावना तथा पुष्पिका में किया है। जगन्नाथ ने इस भाण को 'अनंगविजय भाण' का सहोदर कहा है। यह भाण अभी तक नहीं मिला है।

(3) अनङ्गविजय भाण[2]

अनङ्गविजय भाण का प्रथम अभिनय तन्जापुर में भगवान् प्रसन्नवेङ्कट के वसन्तमहोत्सव का दर्शन के लिये आये हुए सामाजिकों के समक्ष किया गया था। इस भाण का दृश्य तन्जोर में है। इस भाण में विट रतिशेखर का गणिका चन्द्रसेना की पुत्री मदनसेना के साथ समागम का वर्णन है।

जी० व्ही० देवस्थली,[3] वे० राघवन्,[4] के० आर० सुब्रह्मण्यम,[5] सी० के० श्रीनिवासन,[6] तथा व्ही० ए० रामस्वामीशास्त्री[7] न केवल जगन्नाथ द्वारा प्रणीत शरभराज विलास काव्य का अपितु रतिमन्मथ नाटक के कर्त्ता तथा बालकृष्ण और

---

1 यह अभी अप्रकाशित है। इसकी हस्तलिखित प्रति सरस्वती महल पुस्तकालय, तन्जोर में मिलती है। देखिये, तन्जोर हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या 4241

2 यह अभी अप्रकाशित है। इसकी तीन हस्तलिखित प्रतियाँ सरस्वती महलपुस्तकालय तन्जोर में मिलती हैं। देखिए, तन्जोर हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या 4577 79।

3 G V Devasthalı 'Jagannatha Pandita alias Umanandanatha' published in Dr C *Kunnanraya presentation Volume*, Madras 1946, P 283

4 Dr V Raghavan Sahendra Vilasa (Tanjore Saraswatı Mahal series No 54) Introduction P 89

5 K R Subramaniam The Maratha Rajas of Tanjore Madras 1928 p 40

6 C K Srinivasan Maratha rule in Carnatic (Annamalai Historical series No 5) Ananamalainagar 1944 p 374

7 V A Ramaswami Sastri 'Jagannatha Pandita' (Annamalai University Sanskrit Series No.8) Annamalainagar, 1942 P.25

लक्ष्मी के पुत्र जगन्नाथ की कृति होने का उल्लेख किया है। एम० कृष्णामाचारी[1] श्रीधर भास्कर वर्णेकर[2] तथा पी० पी० एस० शास्त्री[3] ने शरभराजविलास काव्य का कर्त्ता इन कावल जगन्नाथ को ही बताया, है जो तथ्यसगत है।

जगन्नाथ

जगन्नाथ विश्वामित्र गोत्रीय ब्राह्मण थे।[4] महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज ने इन जगन्नाथ को भ्रमवश भरद्वाजगोत्रीय ब्राह्मण लिखा है।[5] इनका उपनाम श्रतपेटव' था।[6] इनके पिता बालकृष्ण तञ्जोर के भोंसलवशीय राजा एकोजी द्वितीय (1735–36 ई०) के मन्त्री थे। जगन्नाथ की माता का नाम लक्ष्मी तथा गुरु का नाम कामेश्वर था। श्रीधर भास्कर वर्णेकर ने भ्रमवश जगन्नाथ के पिता बालकृष्ण को शरभोजी प्रथम के मन्त्री लिखा है।[7]

जगन्नाथ तञ्जोर के राजा एकोजी द्वितीय (1735–36 ई०) तथा प्रतापसिंह (1741–64 ई०) के आश्रित कवि थे। प्रतापसिंह की अनुज्ञा से यह एक बार काशी गये थे। वहाँ से तञ्जोर लौटते हुए यह पूना के राजा बालाजिराय (1740-61 ई०) के समीप गये थे। बालाजिराय की कृपा प्राप्त कर जगन्नाथ ने वसुमतीपरिणय नाटक की रचना की थी।[8]

जगन्नाथ महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। परवर्ती आयु मे जगन्नाथ ने भासुरानन्दनाथ (भास्करराय दीक्षित) से नाथ-सम्प्रदाय की दीक्षा प्राप्त कर 'उमानन्दनाथ' नाम

1 M Krishnamachari History of Classical Sanskrit Literature Madras 1937, P 246

2. श्रीधर भास्कर वर्णेकर, अर्वाचीन संस्कृत साहित्य, नागपुर 1963, पृ० 97

3 P P S Sastri descriptive Catalogue of the Sanskrit manuscripts in the Tanjore Maharaja Serfoji s Saraswati Mahal Library, Vol xix History of Sanskrit literature from 1500 A D to 1850 A D P 38

4 अन्येन्द्र जगदस्यितेन्द्मपि वा कर्तुं प्रगल्भेऽन्वये।
सम्भूतो ननु बालकृष्णसचिवोत्तसस्य रूपान्तरम् ॥

—रतिमन्मथ नाटक, प्रस्तावना

5 म०म० गोपीनाथ कविराज, काशी की सारस्वत साधना (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना) 1965 पृ० 77।

6 Dr V Raghavan, New Catalogus Catalogorum, Vol II, Madras 1965

7 श्रीधर भास्कर वर्णेकर अर्वाचीन संस्कृत साहित्य, नागपुर 1963, पृ० 179

8 वसुमतीपरिणय नाटक, प्रस्तावना

ग्रहण किया था। दीक्षाप्राप्ति के पश्चात् भी इन्होने अनेक ग्रथो का प्रणयन किया था।[1]

1. रतिमन्मथ नाटक

रतिमन्मथनाटक मे पाँच अङ्क हैं। इसका प्रथम अभिनय तंजोर मे आनन्दवल्लीदेवी के वसन्तोत्सव के समय किया गया था इसकी वस्तु रति और मन्मथ के विवाह की पौराणिक कथा है।

2 वसुमतीपरिणय नाटक[2]

वसुमतीपरिणय नाटक की वस्तु राजा गुणभूषण तथा राजकुमारी वसुमती का विवाह है। इसमे अनेक राजोपादेय गुणों तथा राजहेय अवगुणो का वर्णन है। यह पाच अको का एक प्रतीकात्मक नाटक हैं।

3 हृदयामृत[3]

हृदयामृत एक तान्त्रिक ग्रन्थ है। जगन्नाथ ने इसकी रचना 1742 ई० मे की थी।

4 नित्योत्सव निबन्ध[4]

नित्योत्सव निबन्ध परशुरामकल्पसूत्र पर आधारित एक तन्त्र ग्रन्थ है। जगन्नाथ ने इसका प्रणयन 1745 ई० मे किया था।

5 भास्करविलास[5]

भास्करविलास मे कवि ने अपने गुरु भासुरानन्दनाथ का गुणगान किया है।

6 अश्वघाटी काव्य[6]

अश्वघाटी काव्य अश्वधाटी छन्द मे लिखा गया है। इसमे केवल 26 छन्द हैं। इसका निर्माण कवि ने अपने पौत्र को प्रसन्न करने के लिये किया था।

---

1 इन ग्रन्थों के लिये देखिये--G V Devasthali 'Jagannatha pandita, alias Umananda Natha published in Dr Kunhanraja presetation Volume Madras 1946 P. 283

2 यह अभी अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना में मिलती है। देखिये पूना हस्तलिखित ग्रन्थ सख्या ।

3 हृदयामृत अभी तक अप्रकाशित है। देखिये—
New Catalogus Catalogorum Vol II Madras 1965 P 390

4 महादेवशास्त्री द्वारा सम्पादित तथा गायकवाड़ ओरिएण्टल सीरीज सख्या 22-23 में परशुराम कल्पसूत्र के अन्त में बड़ोदा से 1923 ई० में प्रकाशित।

5 ललितासहस्रनाम के निर्णयसागर प्रेस सस्करण में भास्करराय की टीका सहित प्रकाशित।

6 यह अभी अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति बम्बई विश्वविद्यालय के हस्तलिखित ग्रन्थालय मे मिलती है। देखिये बम्बई हस्तलिखित ग्रन्थ सख्या 2307

विश्वेश्वर पाण्डेय

विश्वेश्वर पाण्डेय के पिता का नाम लक्ष्मीधर था। यह उत्तरप्रदेश के अल्मोडा जिले मे पाटिया ग्राम मे रहते थे।[1] लक्ष्मीधर ने वृद्धावस्था मे काशी में मणिकर्णिका तट पर कोटिपार्थिव पूजा की थी।[2] इससे प्रसन्न शिव की कृपा से लक्ष्मीधर के यहां विश्वेश्वर का जन्म हुआ। अल्मोडा के निवासी होने के कारण विश्वेश्वर को पर्वतीय भी कहा जाता है।

विश्वेश्वर का समय अट्ठारहवीं शती का प्रथम पाद माना जाता है।[3] विश्वेश्वर विलक्षण प्रतिभाशाली थे। कहा जाता है कि इन्होंने दस वर्ष की आयु मे ही ग्रन्थरचना प्रारम्भ कर दी थी।[4] विश्वेश्वर के पिता ने ही उन्हे शिक्षा दीक्षा दी। विश्वेश्वर को अपने पिता के प्रति प्रगाढ श्रद्धा थी। यही कारण है कि उन्होंने अपने ग्रन्थो मे पिता की वन्दना की है।[5]

विश्वेश्वर का देहावसान 34 वर्ष की स्वल्प आयु मे ही हो गया था।[6] विश्वेश्वर के भाई का नाम उमापति तथा पुत्र का नाम जयकृष्ण था।

विश्वेश्वर व्याकरण, साहित्यशास्त्र, न्यायशास्त्र, नाट्यशास्त्र तथा मीमासा के उद्भट विद्वान् थे। आफ्रेट[7] ने विश्वेश्वर के निम्नलिखित 22 ग्रन्थो का उल्लेख किया है—

1 अलङ्कारकौस्तुभ तथा उसकी टीका[8]

अलकारकौस्तुभ मे 61 अलकारो का वर्णन है।

---

1. म०म० डॉ गोपीनाथ कविराज 'काशी की सारस्वत साधना' पटना 1965 पृ० 73
2. गोपालदत्त पाण्डेय मन्दारमञ्जरी (सवत् 1995 बनारस सस्करण) की भूमिका पृ० 1
3. दुर्गाप्रसाद तथा काशीनाथ पाण्डुरङ्ग काव्यमाला गुच्छक 8 पृ० 51-52 पाद टिप्पण
4. Batukanatha Bhattacharya, 'A brief survey of Sahitya Sastra' published in the journal of the Department of letters, Calcutta University, Vol ix, 1923, P 173
5. जयति यथाजातानां वाग्जातकुजातपारिजातश्री ।
श्रीलक्ष्मीधरविबुधाब्जसचरणाब्जरेणुकण ॥
— मन्दारमञ्जरी
6. म०म० गोपीनाथ कविराज ने लिखा है कि 32 वर्ष की अवस्था मे विश्वेश्वर का देहावसान हो गया था। देखिये काशी की सारस्वत साधना, पृ० 73
7. Theodor Aufrecht, Catalogus Catalogorum, part II Leipzig 1896, P 139.
8. शिवदत्त तथा काशीनाथ पाण्डुरङ्ग परब द्वारा सम्पादित तथा निर्णय सागर प्रेस बम्बई द्वारा 1898 ई० मे प्रकाशित।

(2) अलङ्कार मुक्तावली[1]

अलंकारमुक्तावली अलंकारो का अध्ययन प्रारम्भ करने वालो के लिये लिखी गई थी ।

(3) आर्यासप्तशती[2]

आर्यसप्तशती शृंगारविषयक खण्डकाव्य है ।

(4) अशौचीय दशश्लोकी विवृति

(5) कवीन्द्रकर्णाभरण[3]

कवीन्द्रकर्णाभरण चार सर्गों का एक चित्रकाव्य है ।

(6) काव्यतिलक

काव्यतिलक का उल्लेखमात्र प्राप्त होता है ।

(7) काव्यरत्न

काव्यरत्न अभी तक नही मिला है ।

(8) तत्वचिन्तामणिदोधीति प्रवेश

(9) तर्ककुतूहल

(10) तारसहस्रनाम व्याख्या अभिधार्थचिन्तामणि

(11) नवमालिका नाटिका[4]

नवमालिका नाटिका मे चार अङ्क हैं । यह श्रीहर्ष की रत्नावली नाटिका के आदर्श पर लिखी गई है ।

इसकी वस्तु अवन्ती के राजा विजयसेन तथा अङ्गराज हिरण्यवर्मा की पुत्री नवमालिका का विवाह है ।

(12) नैषधीय टीका[5]

नैषधीय टीका महाकवि श्रीहर्ष के नैषधीयचरित महाकाव्य पर लिखी गई है ।

---

1. विष्णुप्रसाद भण्डारी द्वारा सम्पादित तथा चौखम्भा संस्कृत सीरीज में बनारस से 1927 ई में प्रकाशित ।
2. विष्णुप्रसाद भण्डारी द्वारा सम्पादित तथा चौखम्भा संस्कृत सीरीज में बनारस से प्रकाशित ।
3. काव्यमाला सीरीज में बम्बई से प्रकाशित ।
4. बाबूलाल शुक्ल द्वारा सम्पादित तथा मालवमयूर कार्यालय, मन्दसौर द्वारा विक्रम संवत् 2021 में प्रकाशित ।
5. यह अभी अप्रकाशित है । इसकी हस्तलिखित प्रतियां मद्रास तथा तञ्जोर के हस्तलिखित ग्रन्थालयों में मिलती हैं । देखिये मद्रास, हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या 3905 तथा तञ्जोर, हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या 2556

(13) मन्दारमञ्जरी कथा[1]

मन्दारमञ्जरी कथा गद्य में लिखी गई एक प्रणय-कथा है।

(14) रसचन्द्रिका[2]

रसचन्द्रिका शृङ्गारविषयक ग्रन्थ है।

(15) रसमञ्जरी टीका[3]

रसमञ्जरी टीका विश्वेश्वर द्वारा भानुदत्त की रसमञ्जरी पर लिखी गई है।

(16) रोमावली शतक[4]

रोमावलीशतक एक खण्डकाव्य है।

(17) लक्ष्मीविलास[5]

लक्ष्मीविलास एक खण्ड-काव्य है।

(18) वक्षोजशतक[6]

वक्षोजशतक एक खण्डकाव्य है।

(19) शृङ्गारमञ्जरी सट्टक[7]

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में चार यवनिकान्तर हैं। इसकी वस्तु राजा राजशेखर तथा अवन्तिराज जटाकेतु की पुत्री शृङ्गारमञ्जरी का विवाह है।

(20) षड्ऋतु वर्णन[8]

(21) व्याकरणसिद्धान्तसुधानिधि[9]

व्याकरणसिद्धान्तसुधानिधि व्याकरण विषयक ग्रन्थ है।

---

1. गोपालदत्त पाण्डेय द्वारा सम्पादित तथा बनारस से संवत् 1995 में प्रकाशित।
2. विष्णुप्रसाद भण्डारी द्वारा सम्पादित तथा चौखम्भा संस्कृत सीरीज में संवत् 1983 में बनारस से प्रकाशित।
3. यह अभी अप्रकाशित है। इसकी हस्तलिखित प्रति गवर्नमेंट ओरिएण्टल मैनुस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी, मद्रास में मिलती है। देखिये
   Madras, Descriptive Catalogue of Sanskrit manuscripts, Vol xxi, 8411
4. काव्यमाला संस्कृत सीरीज में बम्बई से प्रकाशित।
5. यह अप्रकाशित है।
6. वही
7. यह अप्रकाशित है। इसकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ भण्डारकर प्राच्य विद्या शोध संस्थान पूना में मिलती हैं। देखिये पूना हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या 810/1886 92 तथा हस्त-लिखित ग्रन्थ संख्या 435/1892-95
8. इसका उल्लेख काव्यमाला गुच्छक 8 में पृष्ठ 52 पर मिलता है।
9. महादेव शास्त्री भण्डारी द्वारा सम्पादित तथा चौखम्भा संस्कृत सीरीज में 1924 में बनारस से प्रकाशित।

(22) होलिका-शतक[1]

होलिकाशतक एक खण्ड-काव्य है ।

बटुकनाथ भट्टाचार्य[2] ने विश्वेश्वर द्वारा जयदेव के चन्द्रालोक पर लिखी गई राकागम अथवा सुधा नामक टीका का भी उल्लेख किया है, परन्तु एम कृष्णमाचार्य[3] के अनुसार चन्द्रालोक की सुधा टीका लिखने वाले विश्वेश्वर इन विश्वेश्वर से भिन्न है।

डा० सुशीलकुमार दे ने[4] विश्वेश्वर पाण्डेय के एक अन्य ग्रन्थ 'अलकार-कुलप्रदीप'[5] *का उल्लेख किया है।*

विश्वेश्वर ने 'रुक्मिणीपरिणय नाटक'[6] की भी रचना की थी। इस नाटक के दो पद्य उन्होने अपने 'अलकारकौस्तुभ' मे अलकारो के उदाहरणो के रूप मे दिये है।[7] एम कृष्णमाचार्य[8] ने विश्वेश्वर के 'अलकारकरणाभरण' नामक ग्रन्थ का उल्लेख किया है ।

विश्वेश्वर ने 'आर्याशतक'[9] नामक खण्डकाव्य का भी प्रणयन किया था।

हरिहरोपाध्याय

हरिहरोपाध्याय वत्सगोत्रीय मैथिल ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम राघव झा तथा माता का नाम लक्ष्मी था। हरिहरोपाध्याय के पितामह हृषीकेश तथा मातामह रामेश्वर थे। हरिहर के एक अनुज थे—नीलकण्ठ। इन नीलकण्ठ के लिये कवि हरिहर ने 'सूक्तिमुक्तावली' तथा 'प्रभावतीपरिणय नाटक' की रचना की थी।

---

1 यह अप्रकाशित है।

2 Batukanatha Bhattacarya 'A brief survey of Sahityasastra' *published in the journal of the Department of letters,* Calcutta University Vol IX 1923 P 173

3 M Krishnamachariar History of Classical Sanskrit literature, Madras, 1937 P 355 Foot note

4 Dr S K De, History of Sanskrit poetics (Second revised edition), Calcutta 1960 P 302

5 विष्णुप्रसाद भण्डारी द्वारा सम्पादित तथा चौखम्भा सस्कृत सीरीज में 1923 ई० मे बनारस से प्रकाशित।

6 इस नाटक की कोई भी प्रति अब तक नहीं मिली है।

7. देखिये, अलङ्कार कौस्तुभ (निर्णय सागर प्रेस सस्करण) पृ० 381 387

8 *M Krishnamachariar, History of Classical Sanskrit literature,* Madras 1937 P 906

9 यह अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति गवर्नमेंट ओरिएण्टल मेनुस्क्रिप्टस लायब्रेरी मद्रास मे मिलती है। देखिये—मद्रास डेस्क्रिप्टिव केटेलाग ऑफ सस्कृत मेनुस्क्रिप्ट्स, जिल्द 20, 8010

रमानाथ झा[1] हरिहर को मिथिला मे बिट्ठो ग्राम का निवासी बताते हुए उनका समय सत्रहवी शती का पूर्वार्द्ध होने का अनुमान करते हैं। ए बी. कीथ[2] ने हरिहर के भर्तृहरिनिर्वेद नाटक को 15 वी शती या उसके बाद की रचना कहा है।

बदरीनाथ झा 'कविशेखर'[3] ने हरिहरोपाध्याय का समय 18वी शताब्दी माना है। परमेश्वर झा[4] ने कहा है कि हरिहरोपाध्याय मिथिला के राजा राघवसिंह (1701–39 ई) के समय मे विद्यमान थे। श्यामनारायण सिंह[5] के अनुसार हरिहर का समय अट्ठारहवी शताब्दी माना जा सकता है। राधाकृष्ण चौधरी[6] ने हरिहरोपाध्याय का समय अट्ठारहवी शताब्दी बताया है। मुकुन्द झा[7] तथा उमेश मिश्र ने हरिहरोपाध्याय का समय अट्ठारहवी शती का पूर्वार्द्ध बताया है।

सम्भवत हरिहरोपाध्याय का समय अट्ठारहवी शती का प्रारम्भ है।

हरिहरोपाध्याय के निम्नलिखित ग्रन्थ मिलते हैं—

1. भर्तृहरिनिर्वेद नाटक[8]

भर्तृहरिनिर्वेद नाटक की वस्तु भर्तृहरि के वैराग्य की कथा है। इस नाटक मे पाँच अंक हैं।

---

1. रमानाथ झा द्वारा सम्पादित सुक्तिमुक्तावली अथवा हरिहरसुभाषित की भूमिका, पटना 1949 ई०, पृ० 16 तथा 18
2. A. B Keith Sanskrit drama, P 248
3. बदरीनाथ झा मिथिला मिहिर, मिथिलाङ्क वसन्तपञ्चमी 1936 'मिथिला के संस्कृत साहित्य महारथियों की तालिका' पृ० 57
4. म०म० परमेश्वर झा मिथिला तत्व विमर्श, दरभङ्गा 1949 ई०, पृ० 51
5. Shyam Narayan Singh, History of Tirhut from the earliest times to the end of the nineteenth Century calcutta 1922 P. 134.
6. Radha Krishna Choudhary 'Sanskrit drama in Mithila', published in the journal of Bihar Research Society, Patna, Vol XLIII, Pts I and II March-June, 1957, P 60
7. म०म० मुकुन्द झा 'बख्शी', भर्तृहरिनिर्वेदनाटक के उनके संस्करण की भूमिका।
8. काव्यमाला सीरीज सख्या 29 में बम्बई से 1936 ई० मे प्रकाशित। यह नाटक संस्कृत टीका तथा हिन्दी अनुवाद सहित बनारस से भी प्रकाशित हो चुका है।

2 प्रभावतीपरिणय नाटक[1]

प्रभावतीपरिणय नाटक मे पाँच अंक हैं। इसकी वस्तु प्रद्युम्न तथा प्रभावती के विवाह की प्रसिद्ध पौराणिक कथा है।

3 सूक्तिमुक्तावली[2]

सूक्तिमुक्तावली एक सुभाषित ग्रन्थ है।

घनश्याम

घनश्याम महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम महादेव तथा माता का नाम काशी था। इनके अग्रज का नाम ईश था। ईश बाल्यकाल से ही प्रव्रज्या ग्रहण कर चिदम्बर मे रहते थे। ईश को चिदम्बर ब्रह्म भी कहा जाता था। घनश्याम की बहिन का नाम शाकम्भरी था। घनश्याम की दो पत्नियां थी—सुन्दरी और कमला। इन दोनो ने सम्मिलित रूप से राजशेखर की विद्धशालभञ्जिका नाटिका पर चमत्कारतरङ्गिणी नामक टीका लिखी। घनश्याम के पितामह का नाम था चौण्डाजिनालाजि। घनश्याम के दो पुत्र थे—चन्द्रशेखर और गोवर्धन। चन्द्रशेखर ने घनश्याम के डमरुक पर टीका लिखी है। गोवर्धन जन्मान्ध थे। गोवर्धन ने घटकर्पर-काव्य की टीका लिखी है।

घनश्याम असामान्य मेधावी थे। उन्होने 12 वर्ष की आयु मे युद्धकाण्डचम्पू लिखा। 20 वर्ष की आयु मे उन्होने मदनसजीवन भाण की रचना की। 22 वर्ष की अवस्था मे घनश्याम ने 'नवग्रहचरित' रूपक, आनन्दसुन्दरी सट्टक, चण्डानुरञ्जन प्रहसन तथा डमरुक का प्रणयन किया।

घनश्याम ने शताधिक ग्रन्थो का निर्माण किया। नीलकण्ठचम्पू की टीका मे घनश्याम ने कहा है कि उन्होने सस्कृत मे 64, प्राकृत मे 20 तथा अन्य भाषाओ मे 25 ग्रन्थों की रचना की। घनश्याम के अधिकाश ग्रन्थ तञ्जौर के सरस्वती महल पुस्तकालय मे मिलते हैं।

अपने जीवनकाल मे ही घनश्याम को प्रभूत यश की प्राप्ति हुई थी। घनश्याम के अनेक नाम थे—सर्वज्ञ कवि, कण्ठीरव, विशेषण, चौण्डाजियन्त, सुरनीर, वश्यवचस् तथा आर्यक।

1 यह अभी अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति पटना विश्वविद्यालय पुस्तकालय के हस्तलिखित ग्रन्थ विभाग मे मिलती है। देखिये बण्डल नं० 15/15 हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या 641।

2 रमानाथ झा द्वारा सम्पादित तथा पटना से 1943 ई० में प्रकाशित।

घनश्याम शिवोपासक थे। यह अद्वैतवेदान्ती थे। इन्होंने साहित्य के प्राय समस्त अङ्गों पर अपने ग्रन्थ लिखे हैं।

घनश्याम ने निम्नलिखित काव्यों का प्रणयन किया—

1 भगवत्पादचरित[1]

2 षण्मतिमण्डन[2]

3 अन्यापदेशशतक[3]

4 प्रसङ्गलीलार्णव[4]

5 वेङ्कटेशचरित अथवा वैकुण्ठेशचरित्र[5]

6 स्थलमाहात्म्य पचक[6]

साहित्यशास्त्र के क्षेत्र मे घनश्याम ने 'रसार्णव' नामक ग्रन्थ की रचना की थी, परन्तु यह ग्रन्थ अभी तक मिला नही है।

घनश्याम ने निम्नलिखित 15 ग्रन्थो पर टीकायें लिखी—

1 उत्तररामचरित[7]

2 महावीरचरित[8]

3 शाकुन्तल[9]

4 विक्रमोर्वशीय[10]

---

1 यह अप्रकाशित है।

2 यह अप्रकाशित है।

3 यह अप्रकाशित है। इसकी हस्तलिखित प्रति तञ्जोर के सरस्वती महल पुस्तकालय मे मिलती है। देखिये तञ्जोर हस्तलिखित ग्रन्थ सख्या 8889

4 यह अभी तक नहीं मिला है।

5 यह ग्रन्थ अभी तक प्राप्त नहीं हुआ।

6 यह ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ।

7, हुल्त्ज ने लिखा है कि यह टीका जम्बुनाथ के पुस्तकालय मे विद्यमान थी। (जम्बुनाथ पुस्तकालय सख्या 1600) देखिये E Hultzsch Reports on Sanskrit manuscripts in Southern India Madras 1905 No III Introduction p XI

8 यह टीका अभी तक नहीं मिली है। विद्वत्कलमञ्जिका की चमत्कारतरङ्गिणी टीका मे इसका केवल उल्लेख प्राप्त होता है।

9 हुल्त्ज ने 'शाकुन्तल सञ्जीवन' नामक इस टीका के जम्बुनाथ के पुस्तकालय मे होने का उल्लेख किया है। जम्बुनाथ पुस्तकालय संख्या 1656, देखिये हुल्त्ज, पूर्वोक्त पृ० 11।

10 इस टीका का उल्लेख विद्वत्कलमञ्जिका की चमत्कारतरङ्गिणी टीका मे प्राप्त होता है।

5. वेणीसंहार[1]
6 चण्डकौशिक[2]
7 प्रबोधचन्द्रोदय[3]
8 दशकुमारचरित[4]
9 वासवदत्ता[5]
10 कादम्बरी[6]
11 भोजचम्पू[7]
12 भारतचम्पू[8]
13 नीलकण्ठविजय चम्पू[9]
14 हाल की गाथासप्तशती[10]
15 विद्धशालभंजिका[11]

घनश्याम ने 'कलिदूषण' नामक द्वयर्थी काव्य की रचना की थी। यह काव्य सस्कृत तथा प्राकृत दोनो भाषाओ का अर्थ व्यक्त करता है। घनश्याम के प्रबोधाकर नामक त्र्यर्थी काव्य मे श्लेष के माध्यम से नल, हरिश्चन्द्र तथा कृष्ण का चरित्र एक साथ वर्णित किया गया है।

डॉ श्रीधर भास्कर वर्णेकर[12] ने कहा है कि घनश्याम ने नाट्यशास्त्र के सिद्धान्तो के अनुसार दस प्रकार के रूपको की रचना की थी।

---

1 विद्धशालभञ्जिका की चमत्कारतरङ्गिणी टीका मे इसका उल्लेख प्राप्त हुआ है।
2 *विद्धशालभञ्जिका की चमत्कारतरङ्गिणी टीका मे उल्लिखित।*
3 वही।
4 यह अभी अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति तञ्जोर के सरस्वती महल पुस्तकालय मे मिलती है। देखिये, तञ्जौर हस्तलिखित ग्रन्थ सख्या 4006
5 विद्धशालभञ्जिका की चमत्कारतरङ्गिणी टीका में उल्लिखित।
6 वही।
7 यह टीका अभी तक नहीं मिली है।
8 डॉ हुल्त्ज ने इसे जम्बुनाथ पुस्तकालय (सख्या 1655) में विद्यमान बताया है। देखिये, E Hultzsch Reports on Sanskrit manuscripts in Southern India, Madras 1905 No III Introduction p XI
9 यह टीका सरस्वती महल पुस्तकालय में प्राप्त है। देखिये, तञ्जोर हस्तलिखित ग्रन्थ सख्या 4061
10 विद्धशालभञ्जिका की चमत्कारतरङ्गिणी टीका में इसका उल्लेखमात्र प्राप्त होता है।
11. इस टीका का नाम 'प्राणप्रतिष्ठा' है। इसकी हस्तलिखित प्रति सरस्वती महल पुस्तकालय तञ्जोर में मिलती है। देखिये तञ्जोर, हस्तलिखित ग्रन्थ सख्या 4675
12 डॉ. श्रीधर भास्कर वर्णेकर, अर्वाचीन सस्कृत साहित्य नागपुर 1968, पृ० 388

घनश्याम के निम्नलिखित रूपक प्राप्त हुए हैं—

(1) मदनसञ्जीवनभाण[1]

मदनसञ्जीवन भाण मे विट कुलभूषण का भट्टगोपाल की पुत्री चित्रलेखा के साथ समागम का वर्णन है।

(2) कुमारविजय नाटक[2]

कुमारविजय नाटक में पाँच अङ्क हैं। इसकी वस्तु कुमार कार्तिकेय की तारक पर विजय तथा देवो द्वारा उनके सेनापति पद पर अभिषेक की प्रसिद्ध पौराणिक कथा है। घनश्याम ने इस नाटक की रचना अपने गुरु ब्रह्मानन्द की कृपा से की थी। अत उन्होंने इसका नाम 'ब्रह्मानन्दविजय' भी रखा है।

(3) आनन्दसुन्दरी सट्टक[3]

आनन्दसुन्दरी सट्टक मे चार यवनिकान्तर है। इसकी वस्तु राजा शिखण्डचन्द्र का अङ्गराज की पुत्री आनन्दसुन्दरी के साथ विवाह है। इस सट्टक मे एक गर्भ नाटक भी है। यह सट्टक राजशेखर की कर्पूरमञ्जरी के आदर्श पर लिखा गया है।

(4) चण्डानुरञ्जन प्रहसन[4]

चण्डानुरञ्जन प्रहसन मे गुरु दीर्घशेफ तथा उसके शिष्यो के धूर्तचरित का वर्णन है।

---

1 Edited in Roman script by Yutaka Ojihara in the Bulletin be la Maison Franco Japonaise New Series IV 4 1956
इस सस्करण की समीक्षा के लिए देखिये,

Dr V Raghavan-Journal of Oriental Research Madras Vol XXVI 1956 57 P 193

इस भाण की दो हस्तलिखित प्रतियां तञ्जोर के सरस्वती महल पुस्तकालय मे मिलती है। देखिये, तञ्जोर हस्तलिखित ग्रन्थ सख्या 4587, 88

इस भाण की एक हस्तलिखित प्रति भण्डारकर प्राच्यविद्या शोध सस्थान पूना मे भी मिलती है।

2 यह अभी अप्रकाशित है। इसकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ सरस्वती महल पुस्तकालय तञ्जोर मे मिलती है। देखिये तञ्जोर, हस्तलिखित ग्रन्थ सख्या 4344 तथा 4345। इस नाटक की एक हस्तलिखित प्रति इण्डिया आफिस लायब्रेरी, लन्दन में प्राप्त है।

3 डॉ आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये द्वारा भट्टिनाथ की सस्कृत टीका सहित सम्पादित तथा बनारस से 1955 मे प्रकाशित।

4 यह प्रहसन अभी अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति तञ्जौर के सरस्वती महल पुस्तकालय तथा दूसरी प्रति इण्डिया आफिस लाइब्रेरी लन्दन में मिलती है। देखिये, तञ्जोर हस्तलिखित ग्रन्थ सख्या 4629

(5) डमरुकम्[1]

डमरुक एक नवीन प्रकार का रूपक है। इसमें अङ्क के स्थान पर अलकार का प्रयोग किया गया है। इसके दस अलकारों में से प्रत्येक में एक नवीन विषय का वर्णन है। इन अलकारों के नाम हैं—(1) राजानुरजन (2) कलिदूषण (3) सुकविसजीवन (4) कुकविसतापन (5) प्रबोधाकर (6) शाब्दिकभजन (7) पण्डितखण्डन (8) जातिसतर्जन (9) प्रमुत्व (10) अखण्डानन्द।

घनश्याम के पुत्र चन्द्रशेखर ने डमरुक पर एक टीका लिखी है।

(6) नवग्रहचरित[2]

नवग्रहचरित में नवग्रहों का चरित वर्णित है। इसमें राहु ग्रहाधिपत्य प्राप्त करने तथा राहुवार और केतुवार नामक दो अन्य दिन प्राप्त कर सप्ताह को नौ दिन का बनाने के लिये सूर्य के साथ सघर्ष करता है। बाद में देवगुरु बृहस्पति दोनों पक्षों में समझौता करा देते हैं। इससे विवाद की शाति होती है।

(7) प्रचण्डराहूदय[3]

प्रचण्डराहूदय एक प्रतीकात्मक नाटक है। इसमें पाँच अङ्क हैं। इसकी एक टीका तञ्जोर के सरस्वती महल पुस्तकालय में मिलती है।[4] इस टीका का रचयिता अज्ञात है।

डॉ० श्रीधर भास्कर वर्णेकर[5] ने लिखा है कि प्रचण्डराहूदय नाटक का निर्माण घनश्याम ने वेदान्तदेशिक वेङ्कटनाथ के विशिष्टाद्वैतवादी सकल्पसूर्योदय नाटक में वर्णित सिद्धान्तों का खण्डन करने के लिये किया था। डॉ० हुल्त्ज[6] का विचार है कि स्पर्धा में वेदान्तदेशिक से आगे बढ़ जाने के लिये घनश्याम ने प्रचण्ड-राहूदय नाटक का प्रणयन किया था।

---

1 सुब्रह्मण्यम शास्त्री द्वारा चन्द्रशेखर की टीका सहित सम्पादित तथा 1939 ई० में मद्रास से प्रकाशित।

2 बाबूलाल शुक्ल शास्त्री द्वारा सम्पादित तथा मन्दसौर से 1960 ई० में प्रकाशित। इस रूपक का एक अन्य संस्करण एस० जगदीशन् तथा श्री० सुन्दर शर्मा द्वारा सम्पादित किया गया है तथा तञ्जौर के सरस्वती महल पुस्तकालय से 1963 ई० में प्रकाशित हुआ है।

3 श्रीमत्सत्यध्यान विद्यापीठ, माटुगा, बम्बई द्वारा प्रकाशित।

2 यह अभी अप्रकाशित है। देखिये तञ्जोर हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या 4388।

3 डॉ० श्रीधर भास्कर वर्णेकर, अर्वाचीन संस्कृत साहित्य, नागपुर 1963 पृ० 193।

4 E Hultzsch, *Reports on Sanskrit manuscripts in Southern India* Madras 1905 No III Introduction P X

(8) अनुभूतिचिन्तामणि नाटिका[1]

अनुभूतिचिन्तामणिनाटिका का दूसरा नाम अनुभवचिन्तामणिनाटिका है ।[2] इस नाटिका की कोई प्रति अब तक नही मिली है । विद्धशालभजिका की चमत्कार-तरगिणी टीका मे इस नाटिका का उल्लेख मिलता है ।

(9) गणेशचरित

गणेशचरित नाटक का उल्लेख विद्धशालभजिका की चमत्कारतरगिणी टीका मे मिलता है[3] । यह ग्रन्थ अभी तक प्राप्त नही हुआ है ।

(10) डिम

घनश्याम के एक डिम का उल्लेख विद्धशालभजिका टीका मे मिलता है[4] । इस डिम की एक भी प्रति अब तक नही प्राप्त हुई ।

(11) व्यायोग

घनश्याम के एक व्यायोग का उल्लेख विद्धशालभजिका-टीका मे मिलता है[5] । यह व्यायोग अब तक नही मिला है ।

(12) त्रिमठी नाटक

त्रिमठी नाटक अब तक नही मिला है । चमत्कारतरगिणी टीका मे इस नाटक का उल्लेख मिलता है[6] ।

डॉ० जितेन्द्र विमल चौधरी[7] ने घनश्याम के तीन सट्टको वैकुण्ठचरित, आनन्दसुन्दरी तथा एक अज्ञातनाम का उल्लेख किया है ।

घनश्याम प्रतिभाशाली तथा परिश्रमी लेखक थे । उन्होने कतिपय टीकाएँ एक दिन, एक रात्रि अथवा इससे भी कम समय मे विरचित की थी । घनश्याम के

---

1 यह अप्रकाशित है ।

2. Dr V. Raghavan, New Catalogus Catalogorum Madras, 1949 Vol I, P. 156

3. गणेशचरितं भाण षडाननचरित्रकम् ।
युद्धकाण्डः सटीकञ्च नवग्रहचरित्रकम् ॥ विद्धशालभञ्जिका टीका (चमत्कारतरङ्गिणी पद्य 5 ।

4. एषां व्याख्या प्रहसनं कुमारविजयं डिम. । चमत्कारतरङ्गिणी, पद्य 8

5. व्यायोगोऽन्यापदेशानां सहस्र राजरञ्जनम् । — वही —

6. जातिसतर्जनं वर्णमाला शाब्दिकमोदनम् ।
त्रिमठीनटाकान्याम्बाविजय प्रेतमञ्जनम् ॥ — वही — पद्य 9

7 Dr. J B Choudhary, 'Sanskrit poet Ghanashyam' published in the journal, 'Indian Historical Quarterly' Calcutta, Vol. XIX, 1943, pp. 237-51.

ग्रथो की विस्तृत सूची डा० हुल्त्ज,[1] रामस्वामी शास्त्री,[2] डॉ० जितेन्द्र विमल चौधरी,[3] महालिंग शास्त्री[4] तथा डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये[5] ने अपने लेखो मे यथास्थान दी है।

घनश्याम मे आत्मश्लाघादोष था। उन्होने कालिदास, भवभूति तथा कृष्ण-मिश्रादि प्रतिष्ठित विद्वानों का उपहास करते हुए कहा है कि वह इन कवियो की कृतियो पर टीका लिखकर उन्हें अमर बना रहे हैं। सम्भवत इसी अहकार के कारण घनश्याम लोक मे अप्रिय हो गये थ। इस अप्रियता के कारण घनश्याम को अपने आश्रयदाता तञ्जोर के राजा तुक्कोजी (1729–35 ई०) की मृत्यु के पश्चात् अपना जीवन भार होने लगा था[6]।

डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये ने लिखा है कि घनश्याम का जन्म 1700 ई० मे हुआ था तथा वह 1750 ई० तक जीवित रहे।[7] 29 वर्ष की आयु मे वह तुक्कोजी प्रथम के मन्त्री हो गये थे। घनश्याम के परिवार की साहित्य मे अभिरुचि थी। घनश्याम तञ्जोर म रहते थे।

---

1 E Hultzsch Reports on Sanskrit manuscripts in Southern India Madras 1905 Introduction P IX XII
2 V A Ramaswamy Sastri Pandit Ghanashyam A poet minister of king Tukkoji (Tulaji I) of Tanjore (1729 35) published in the journal of Oriential Research Vol III 1929 pp 231 43
3 Dr J B Choudhary, Sanskrit poet Ghanashyam' published in the Journal Indian Historical Quarterly' Vol XIX pp 237–51
4 Y Mahaling Sastri, Journal of Oriental Research Vol IV, pp 71-77
5 Dr A N Upadhye Ghanashyam and his Anandasundari' published in the Hiriyanna Commemoration Volume, Mysore, 1952
6 आयु किं शरदां सहस्रमथ किं देवेन यद्दीयते
तन्नाशं जठरस्य हन्त गिरिजाकान्तं शिवं चिन्तय।
सत्स्वप्यन्तुलितप्रजल्पकरसिके तुक्कोजिराजे गते
ऽप्यास्वाद्यहासमन विमर्शसि पुनर्मार्ग्यं न लज्जा तव॥

मोसकष्टचम्पू टीका शतञ्जीवनी

7 डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये, आनन्दसुन्दरी सट्टक के अपने सस्करण की भूमिका, पृ० 12

घनश्याम परोपकारी थे। वह द्विजो तथा यज्ञ करनेवाले विद्वानो के प्रति श्रद्धा रखते थे। वह स्वय पौण्डरीक यज्ञ करना चाहते थे। उनका इष्टपूर्ति मे विश्वास था। घनश्याम यह कामना करते थे कि वह ग्रपनी ग्रायु के ग्रन्तिम भाग मे ग्रपने प्रसिद्ध रणकीर्ति वाले पुत्रो को राज्य-कार्य मे सलग्न करा स्वय सन्यास लेकर शिव मे ग्रपना ध्यान लगाकर ग्रपना शरीर गङ्गाजल मे ग्रर्पित कर दें। इसके लिये घनश्याम कवि शिव से सदैव याचना करते रहते थे।[1]

नृसिह कवि

नृसिह कवि ग्रठारहवी शती के प्रारम्भ मे मद्रास के ट्रिप्लीकेन सभाग मे रहते थे।[2] इनके पिता का नाम वेंकटकृष्ण था, यह भारद्वाजगोत्रीय ब्राह्मण थे। नृसिह, कवि तथा नैयायिक थे। इनके जीवन के सम्बन्ध मे ग्रभी तक ग्रधिक ज्ञान नही है। नृसिह की एक ही कृति–ग्रनुमितिपरिणय नाटक ग्रब तक ज्ञात है।

ग्रनुमितिपरिणय नाटक[3]

ग्रनुमितिपरिणय नाटक के केवल दो ही ग्रक मिलते हैं। इसमें प्रथम ग्रक पूर्ण तथा द्वितीय ग्रक ग्राशिक ही मिलता है। इसकी वस्तु न्यायशास्त्र से ली गई है। यह प्रतीकात्मक रूपक है। इसमे परामर्श की पुत्री ग्रनुमिति का राजा न्यायरसिक के साथ विवाह का वर्णन है।

बाणेश्वर शर्मा

बाणेश्वर शर्मा विष्णुसिद्धान्त भट्टाचार्य के पौत्र तथा रामदेव तर्कवागीश भट्टाचार्य के पुत्र थे। विष्णुसिद्धान्त भट्टाचार्य उच्च कोटि के कवि थे। रामदेव तर्कवागीश महान् नैयायिक थे। बाणेश्वर के एक पूर्वज शोभाकर ने चन्द्रशेखर पवत पर तपस्या कर सिद्धि प्राप्त की थी।[4] वाणेश्वर के वशवृक्ष का रामचरण चक्रवर्ती ने उल्लेख किया है।[5]

बाणेश्वर बगाल के हुगली जिले मे गुप्तपल्लि मे रहते थे। रामचरण चक्रवर्ती ने वाणेश्वर का जन्म वर्ष 1665 ई० होने का ग्रनुमान किया है।[6]

---

1 नवग्रहचरित, 114.

2 M Krishnamachariar, History of Classical Sanskrit literature, Madras 1937, p 682

3 यह नाटक ग्रभी ग्रप्रकाशित है इसकी एक हस्तलिखित प्रति गवर्मेण्ट ग्रोरिएण्टल मेनुस्क्रिप्टस लायब्रेरी, मद्रास में मिलती है। दे० मद्रास, हस्तलिखित ग्रन्थ सख्या 12463.

4 बाणेश्वरकृत चन्द्राभिषेक नाटक, प्रथमाङ्क, पद्य 39

5 रामचरण चक्रवर्ती, चित्रचम्पू के ग्रपने सस्करण की भूमिका, पृ०6

6 रामचरण चक्रवर्ती, वही पृ० 8

वाणेश्वर ने अपने पिता से ही शिक्षा प्राप्त की थी। वाणेश्वर को अनेक राजाओं का आश्रय प्राप्त हुआ। इन्हें नवद्वीप (बंगाल) के राजा कृष्णचन्द्र (1728–82 ई०), मुर्शिदाबाद के नवाब अलीवर्दी खां (1740–56 ई०), वर्दवान के राजा चित्रसेन (स्वर्गवास 1744 ई०) तथा शोभा बाजार (कलकत्ता) के राजा नवकृष्ण का आश्रय प्राप्त था।[1]

वाणेश्वर ने निम्नलिखित ग्रन्थ लिखे—

1 चित्रचम्पू[2]

चित्रचम्पू का प्रणयन वाणेश्वर ने वर्दवान के राजा चित्रसेन के आश्रय में 1744 ई० में किया था। यह अर्द्धऐतिहासिक तथा अर्द्ध भौगोलिक काव्य है। इसमें 1742 ई० में मराठों द्वारा बंगाल के आक्रमण तथा उससे उत्पन्न बंग-निवासियों की दुरवस्था का वर्णन है।

2 चन्द्राभिषेक नाटक[3]

चन्द्राभिषेक नाटक की रचना वाणेश्वर ने राजा चित्रसेन के आदेशानुसार तथा उनके संरक्षण में की थी। इसमें सात अंक हैं। इसकी वस्तु चाणक्य द्वारा नन्दवंश का विनाश और चन्द्रगुप्त मौर्य का सिंहासनारोहण है। यह ऐतिहासिक नाटक है।

3 विवादार्णवसेतु[4]

विवादार्णवसेतु धर्मशास्त्र का ग्रन्थ है। लार्ड वारेन हैस्टिंग्ज की आज्ञा से वाणेश्वर ने इस कृति का निर्माण दस अन्य पण्डितों के साहाय्य से किया था।

4. रहस्यामृत काव्य[5]

रहस्यामृत काव्य कालिदास के कुमारसम्भव के आदर्श पर लिखा गया है। इसमें 20 सर्ग हैं। इसमें पार्वती के तप तथा शिव के साथ उनके विवाह का वर्णन है।

---

1. Dr V Raghavan, 'Sanskrit literature C 1700 to 1900' published in the journal of *Madras University, Vol XXVIII,* No 2 Jan 1957 pp 192 93
2. रामचरण चक्रवर्ती द्वारा सम्पादित तथा 1940 ई० में वाराणसी से प्रकाशित है।
3. यह अभी अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति इण्डिया आफिस लायब्रेरी लन्दन में मिलती है। देखिये लन्दन, हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या LXIV.
4. इसका अंग्रेजी अनुवाद 'A Code of Gentoo laws' 1776 ई० में इंग्लैण्ड में मुद्रित हुआ था।
5. यह अप्रकाशित है।

5 काशीशतक[1]

काशीशतक मे काशी नगरी पर लिखे गये 100 पद्य मिलते हैं।

6 हनुमत्स्तोत्र[2]

हनुमत्स्तोत्र हनुमान की स्तुति मे लिखा गया है।

7 शिवशतक[3]

शिवशतक मे 100 पद्यो मे शिव की स्तुति है।

8 तारास्तोत्र[4]

तारास्तोत्र म भगवती तारा की स्तुति है। इन कृतियो के अतिरिक्त बाणेश्वर के अनेक आशु पद्य मिलते है।

बाणेश्वर दीर्घायु थे। एम० कृष्णमाचार्य[5] तथा माधवदास चक्रवर्ती[6] ने बाणेश्वर का समय अठारहवी शती का पूर्व भाग बताया है।

श्रीधर

श्रीधर के माता पिता, कुल तथा जन्म स्थान के विषय मे कुछ भी ज्ञात नही है। इनका एकमात्र ग्रन्थ लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक मिलता है। इस नाटक की प्रस्तावना मे श्रीधर ने अपने गुरु राम का उल्लेख किया है।[7] यह राम, ब्राह्मण थे। उल्लूर एस० परमेश्वर ऐयर[8] ने इन राम तथा केरल के अट्ठारहवी शती के प्रसिद्ध कवि और नाटककार रामपाणिवाद के एक ही व्यक्ति होने की सम्भावना की है। परन्तु रामपाणिवाद के चाक्यारजातीय होने के कारण श्रीधर के गुरु द्विजराज राम के साथ उनका तादात्म्य नही किया जा सकता।

---

1 यह अप्रकाशित है।

2 यह अप्रकाशित है।

3 यह अप्रकाशित है।

4 यह अप्रकाशित है।

5 M Krishnamachariar History of Classical Sanskrit literature Madras 1937, p 611

6 Madhavadas Chakravarti A short history of sanskrit literature (second edition) Calcutta 1936, p 400

7 एतत्कोविदकुमुदराजिद्विजराजरामनामगुरुपादापाङ्गप्रतिक्षणेपणलोक्षणमाम्लानितहृदन्धकारस्य करुणाकूपारकूलङ्कषविलोचनदेवनारायणमोदजलधिवीचोक्षणमोलितवपुष कस्यचिद् द्विजस्य श्रीधरनाम्नो निबन्धनम्।

लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक, प्रस्तावना

8 उल्लूर एस० परमेश्वर ऐय्यर, केरल साहित्य चरित्रम्, जिल्द 3, पृ० 301।

श्रीधर केरलीय ब्राह्मण थे। इन्हे अम्पलप्पुल (केरल प्रदेश) के राजा देवनारायण का आश्रय प्राप्त था। डॉ० के० कुञ्जिराजा[1] ने श्रीधर के आश्रयदाता देवनारायण के अम्पलप्पुल के अन्तिम राजा होने की सम्भावना प्रकट की है। इसी आधार पर उन्होने श्रीधर का समय अट्ठारहवी शती का पूर्वार्द्ध माना है।

लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक[2]

लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक मे पाँच अक है। इसकी वस्तु आनन्दपुर के राजा देवनारायण तथा नन्दनपुर के राजा दिनराज की पुत्री लक्ष्मी का विवाह है। इस नाटक के चतुर्थांक पर कालिदास के विक्रमोर्वशीय नाटक की छाया स्पष्ट दिखाई देती है। यह ऐतिहासिक नाटक है।

देवराजकवि

देवराज कवि के पितामह और पिता दोनो का नाम शेषाद्रि था। देवराज के पितामह और पिता यशस्वी विद्वान् थे। देवराज त्रावणकोर के राजा मार्तण्डवर्मा (1729–58 ई०) के प्रमुख सभापण्डित थे।[3] मार्तण्डवर्मा के भागिनेय युवराज बालरामवर्म कार्त्तिकतिरुणाल की भी देवराज पर कृपा थी।

देवराज केरल प्रदेश मे शुची द्रम के समीप आश्रम ग्राम मे रहते थे। यह ग्राम 1765 ई० मे त्रावणकोर के राजा द्वारा जिन 12 ब्राह्मणो को दान मे दिया गया था, उनमे से यह देवराज कवि भी एक थे।[4] देवराज के पूर्वज मद्रास राज्य के तिन्नवेल्लि जिले मे पट्टमडाइ ग्राम के निवासी थे। पट्टमडाइ से ही देवराज त्रावणकोर चले गये थे।[5]

देवराज कवि का एक ही ग्रन्थ–बालमार्तण्ड विजय नाटक प्राप्त होता है।

बालमार्तण्डविजय नाटक[6]

बालमार्तण्डविजय पाच अको का ऐतिहासिक नाटक है। इसमें राजा मार्तण्डवर्मा की विजय–यात्रा तथा त्रिवेन्द्रम के पद्मनाभ मन्दिर के अभिनवीकरण का वर्णन है।

---

1. Dr K K Raja, Contribution of Kerala to Sanskrit literature, Madras 1958, p 223 F N 88
2. यह नाटक अप्रकाशित है। इसकी दो हस्तलिखित प्रतियां केरल विश्वविद्यालय हस्तलिखित ग्रन्थालय, त्रिवेन्द्रम् मे प्राप्त हैं। देखिये त्रिवेन्द्रम् हस्तलिखित ग्रन्थ सख्या C. 1624 तथा T 793
3. डॉ० के० के० राजा पूर्वोक्त, पृ० 168।
4. के० साम्बशिव शास्त्री, बालमार्तण्डविजय के अपने सस्करण की भूमिका, पृ० 2।
5. M Krishnamachariar, History of Classical Sanskrit literature Madras 1937, P 663
6. के० साम्बशिव शास्त्री द्वारा सम्पादित तथा त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज सख्या 108 में त्रिवेन्द्रम् से 1930 ई० में प्रकाशित।

शङ्कर दीक्षित

शङ्कर दीक्षित महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। यह भारद्वाजकुल मे उत्पन्न हुए थे। इनके पितामह ढुण्ढिराज उच्चकोटि के विद्वान् थे। ढुण्ढिराज की पत्नी का नाम यशोदा था। शङ्कर दीक्षित के पिता बालकृष्ण का जन्म इन्ही ढुण्ढिराज तथा यशोदा से हुआ था। बालकृष्ण आनन्दवन मे रहते थे।[1] यह विद्या–विनोदो से विद्वानो को आनन्दित करते थे।

एम कृष्णमाचार्य[2] ने यह सम्भावना प्रकट की है कि शकर दीक्षित के पितामह ढण्ढिराज तथा मुद्राराक्षस के टीकाकार ढुण्ढिराज एक ही व्यक्ति हैं। मुद्राराक्षस की टीका की रचना ढुण्ढिराज ने 1713 ई मे की थी। ढण्ढिराज की अन्य कृति 'शाहविलासगीत' है।[3]

ढुण्ढिराज महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे तथा वाराणसी मे रहते थे। ढुण्ढिराज के पिता का नाम लक्ष्मण था। शाहविलासगीत की रचना करने के कारण राजा शाहजी ने ढुण्ढिराज को 'अभिनव जयदेव' की उपाधि प्रदान की थी[4]। शाहजी के समय मे ढुण्ढिराज तञ्जोर के राजकीय पौराणिक थे।

ढुण्ढिराज के पौत्र शङ्कर दीक्षित भी वाराणसी मे रहते थे। शकर दीक्षित के चार ग्रन्थ अब तक मिले हैं। ये हैं—(1) प्रद्युम्नविजय नाटक (2) शारदातिलक भाण (3) गगावतार चम्पू तथा (4) शकरचेतोविलासचम्पू।

आफ्रेट[5] ने शारदातिलक भाण के कर्त्ता शकर तथा प्रद्युम्नविजय नाटक, गगावतार चम्पू और शकरचेतोविलास ग्रन्थो के कर्त्ता का पृथक पृथक् उल्लेख किया है। एम कृष्णमाचार्य[6] ने भी शारदातिलक भाण के कर्त्ता शकर को प्रद्युम्नविजयानाटकादि के कर्त्ता शकर दीक्षित से भिन्न कहा है। परन्तु शारदातिलक भाण की

---

1 शङ्करदीक्षितकृत प्रद्युम्नविजयनाटक, प्रस्तावना

2 M Krishnamachariar History of Classical Sanskrit literature, Madras, 1937 p 661

3 शाहविलासगीत तथा मुद्राराक्षस टीका–ये दोनों हस्तलिखित ग्रन्थ तञ्जोर के सरस्वती महल पुस्तकालय में मिलते हैं। देखिये तञ्जोर हस्तलिखित ग्रन्थ सख्या 10957 तथा 4476

4 P P. S Sastri History of Sanskrit literature from 1500 A D to 1850 A D Published in A descriptive Catalogue of Sanskrit manuscripts in the Tanjor Maharaja Serfoji's Saraswati Mahal library Vol XIX Tanjor 1934 P 34

5 Theoder Aufrecht Catalogus Catalogorum, part I, Leipzig 1891, P 624

6 M Krishnamachariar History of Classical Sanskrit literature, Madras, 1937, P 516, Fn 2

प्रस्तावना से यह स्पष्ट है कि इसके कर्त्ता शकर वाराणसी के प्रतिष्ठित विद्वान् तथा सरस कवि थे। शारदातिलक भाण के हस्तलिखित ग्रन्थ इण्डिया आफिस लायब्रेरी, लन्दन[1] एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता[2] तथा ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, मैसूर[3] म मिलते हैं।

इण्डिया आफिस लायब्रेरी लन्दन मे प्राप्त शारदातिलक भाण का हस्तलिखित ग्रन्थ सबसे प्राचीन है। यह तेलुगु लिपि मे लिखा है। यह 1750 ई के समीप लिखा गया था। इस भाण का यह रचना काल शकर दीक्षित के जीवनकाल मे पडता है। शकरदीक्षित ने 1739 ई मे प्रद्युम्नविजय नाटक की रचना की थी। शकर दीक्षित की मृत्यु 1780 ई मे हुई।

शकर दीक्षित की कृतियो का परिचय नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है—

(1) प्रद्युम्नविजय नाटक[4]

प्रद्युम्नविजय नाटक का दूसरा नाम 'वज्रनाभवध नाटक है। इस नाटक मे सात अक हैं। इसकी वस्तु श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न द्वारा दैत्य वज्रनाभ का वध तथा वज्रनाभ की पुत्री प्रभावती से विवाह है। इस नाटक का वास्तविक नाम 'वज्रनाभवध' है। प्रद्युम्नविजय तो इसके सप्तम अङ्क का नाम है।[5] विल्सन[6] ने इस नाटक का नाम 'प्रद्युम्नविजय' लिखा है और अपनी पुस्तक मे इसका विवेचन किया है।

प्रद्युम्नविजय नाटक के निर्माण मे शकर दीक्षित के पिता बालकृष्ण ने उनकी सहायता की थी।[7]

---

1 इण्डिया आफिस लायब्रेरी लन्दन, हस्तलिखित ग्रन्थ सख्या 7425

2 Catalogue of printed books and manuscripts in Sanskrit belonging to the Oriental library of the Asiatic society of Bengal compiled by Pt Kunja Bihari Kavyatirtha under the supervision of M H P Sastri Calcutta 1904 P 221

3 Oriental Research Institute Mysore Ms No 615

4 यह अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति वाराणसेय सस्कृत विश्वविद्यालय के सरस्वती भवन पुस्तकालय में मिलती है। देखिये वाराणसी, हस्तलिखित ग्रन्थ सख्या 40819 प्रद्युम्नविजय नाटक की दूसरी हस्तलिखित प्रति एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता में प्राप्त है।

5 इति श्री वज्रनाभवधे प्रद्युम्नविजयाङ्क सप्तमोऽङ्क।
वज्रनाभवध नाटक के सप्तम अङ्क की पुष्पिका

6 Select specimens of theatre of Hindus' Vol II (Second edition) 1835 P 402-403

7 प्रद्युम्नविजय नाटक, अङ्क 7 52।

(2) शरदातिलक भाण[1]

शारदातिलक भाण मे विट रसिकशेखर के उपक्रमो का वर्णन है। इस भाण का दृश्य कोलाहलपुर मे है। कोलाहलपुर एक काल्पनिक नगर है।

(3) गङ्गावतार चम्पू[2]

गगावतार चम्पू मे गगा के पृथ्वी पर अवतरण की कथा का वर्णन है।

(4) शङ्करचेतोविलासचम्पू[3]

शकरचेतोविलासचम्पू मे बनारस के राजा चेतसिह (1770-1781ई) के चरित का वर्णन है।

महामहोपाध्याय कृष्णनाथ सार्वभौम भट्टाचार्य

कृष्णनाथ के पिता का नाम दुर्गादास चक्रवर्ती था। कृष्णनाथ नवद्वीप (बगाल) के राजा कृष्णचन्द्र (1728-82 ई) के पिता रघुराम राय (1715-28 ई) के आश्रित कवि थे।

रघुराम राय के आश्रय मे कृष्णनाथ ने 1723 ई में 'पदाङ्कदूत' नामक दूतकाव्य की रचना की थी। पदाङ्कदूत की कतिपय प्रतियो मे इनके आश्रयदाता का नाम राजा रामजीवन लिखा हुआ है।[4] इस आधार पर आफ्रेट[5] ने कृष्णनाथ को राजा रामजीवन के आश्रित कवि बताया है। राजा रामजीवन रघुरामराय के पिता थे तथा इनका स्वर्गवास 1715 ई मे हो गया था।[6] कतिपय विद्वान् बगाल के राजसाहि जिले मे नाटोर के निवासियो में प्रचलित जनश्रुति के आधार पर कृष्णनाथ को इन्ही राजा रामजीवन का आश्रित कवि मानते हैं। नाटोर के राजा रामजीवन 1723 ई मे नाटोर मे राज्य करते थे। इस प्रकार कृष्णनाथ के आश्रयदाता के विषय मे विद्वानो मे मतभेद हैं।[7]

---

1. यह अप्रकाशित है।
2. यह अप्रकाशित है।
3. यह अप्रकाशित है।
4. जीवानन्द विद्यासागर द्वारा सम्पादित पदाङ्कदूत का सस्करण।
5. Theoder Aufrecht 'Catalogus Catalogorum' part I, Leipzig 1891, P 116
6. डॉ रामकुमार आचार्य सस्कृत के सन्देश-काव्य, (प्रथम सस्करण) अजमेर 1963, पृ० 435।
7. कृष्णनाथ सार्वभौम के आश्रयदाता के विवाद के लिये देखिये—
   J. B Choudhary, History of Dutakavyas of Bengal (prachya Vāni Research series, Vol. 5) Calcutta-1953

डॉ रामकुमार आचार्य के अनुसार कृष्णनाथ बगाल मे शान्तिपुर नामक स्थान के निवासी थे । बाद मे वे नवद्वीप मे अपनी पाठशाला स्थापित कर वही रहने लगे थे ।[1] एम कृष्णमाचार्य[2] के अनुसार कृष्णनाथ अट्ठारहवी शती मे सम्भवत: गुजरात मे निवास करते थे ।

कृष्णनाथ के द्वारा 1723 ई मे पदाङ्कदूत की रचना किये जाने से यह स्पष्ट है कि वे अट्ठारहवी शती के पूर्वार्द्ध मे विद्यमान थे ।

कृष्णनाथ की निम्नलिखित कृतियाँ अब तक उपलब्ध हुई है—

(1) आनन्दलतिका[3]

आनन्दलतिका[5] पांच कुसुमो (खण्डो) मे नाटकीय शैली मे लिखा गया एक काव्य है । इसमे श्रीकृष्ण के पुत्र सम तथा राजा दमन की पुत्री रेवा के विवाह का वर्णन है ।

इस रूपक का निर्माण कृष्णनाथ ने अपनी पत्नी वैजयन्ती के साथ किया था ।[4]

(2) पदाङ्कदूत

पदाङ्कदूत[5] खण्ड–काव्य है । यह कालिदास के मेघदूत के आदर्श पर लिखा गया है । इसमे गोपियाँ श्री कृष्ण के पदचिन्ह को दूत बनाकर श्रीकृष्ण से अपनी विरह–व्यथा निवेदित करने के लिये उसे वृन्दावन से मथुरा भेजती है ।

(3) कृष्णपदामृत

कृष्णपदामृत'[6] मे श्रीकृष्ण की स्तुति की गई है ।

---

1 डॉ रामकुमार आचार्य, पूर्वोक्त, पृ० 435

2 M Krishnamachariar History of Classical Sanskrit literature, Madras 1937, P 663

3 यह रूपक अभी आंशिक रूप से संस्कृत साहित्य परिषद् पत्रिका, कलकत्ता (जिल्द 231 तथा आगे) से प्रकाशित हुआ है । इस रूपक की एक हस्तलिखित प्रति इण्डिया आफिस लायब्रेरी, लन्दन मे मिलती है । देखिये लन्दन हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या 4203 । इस रूपक की एक अन्य हस्तलिखित प्रति ढाका विश्वविद्यालय के पुस्तकालय मे प्राप्त है । देखिये–ढाका विश्वविद्यालय, हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या 2197 ।

4 Indian Historical Quarterly Vol XXVI, P 81

5 इसके निम्नलिखित तीन संस्करण अब तक प्रकाशित हुए हैं ।

(अ) जीवानन्द विद्यासागर द्वारा सम्पादित तथा 1888 ई० मे कलकत्ता से प्रकाशित ।

(ब) श्यामाचरण कविरत्न द्वारा सम्पादित तथा कलकत्ता से प्रकाशित ।

(स) जितेन्द्रविमल चौधरी द्वारा सम्पादित तथा कलकत्ता से 1955 ई मे प्रकाशित ।

6. यह अप्रकाशित है ।

(4) मुकुन्दपदमाधुरी

मुकुन्दपदमाधुरी[1] कारिकाओ मे है। कारिका के अनन्तर उसकी गद्य मे टीका की गई है। कृष्णनाथ विनम्र थे। यह कृष्णभक्त थे।

डा. जितेन्द्रविमल चौधरी'[2] ने लिखा है कि यह प्रतीत होता है कि श्रीकृष्णनाथ सार्वभौम दीर्घजीवी थे। राजा रघुराम राय के पितामह राजा रामकृष्ण राय ने कृष्णनाथ सार्वभौम को 1703 ई मे कुछ भूमि दान मे दी थी। कृष्णनाथ सार्वभौम ने इसी भूमि को 1716–17 ई मे अपने शिष्य रामजीवन पञ्चानन को दान मे दिया था।'[3]

चयनि चन्द्रशेखर रायगुरु

चन्द्रशेखर औत्कल ब्राह्मण थे। इनका गोत्र वत्स था। यह गोपीनाथ राजगुरु के द्वितीय पुत्र थे। गोपीनाथ सप्तसोमयाजी तथा वाजपेयी थे।

चयन–यज्ञ करने के कारण चन्द्रशेखर को चयनी की पदवी प्राप्त हुई थी। चन्द्रशेखर आन्वीक्षिकी के विद्वान् थे। चन्द्रशेखर को खुर्द (उडीसा) के राजा गजपति वीरकेशरीदेव प्रथम का आश्रय प्राप्त था।[4] यह वीरकेशरीदेव 'प्रथम' गजपति राजा रामचन्द्र द्वितीय के पुत्र थे। राजा वीरकेशरीदेव प्रथम का समय 1736–1773 ई० माना जाता है।[5] अत चन्द्रशेखर का भी समय इसके समीप है।

विल्सन[6] ने चन्द्रशेखर के आश्रयदाता वीरकेशरीदेव का तादात्म्य बुन्देलखण्ड के सत्रहवी शती के प्रारम्भ के राजा वीरसिंह से करने की सम्भावना प्रकट की थी। परन्तु अब यह निश्चित हो गया है कि चन्द्रशेखर के आश्रयदाता बुन्देलखण्ड के राजा वीरसिंह नही, अपितु उडीसा के राजा गजपति वीरकेशरीदेव प्रथम (1736–73 ई०) थे।[7]

---

1. यह अप्रकाशित है।
2. डॉ० जितेन्द्रविमल चौधरी, पदाङ्कदूत के अपने सस्करण की भूमिका, कलकत्ता 1955, पृ० 15।
3. नदिया कलेक्टरेट तायदाद न० 17633।
4. चन्द्रशेखरकृत मधुरानिरुद्ध नाटक, प्रथमाङ्क 4
5. हण्टर, ओरीसा, जिल्द 2, परिशिष्ट पृ० 190
6. एच० एच० विल्सन, सिलेक्ट स्पेसीमेन्स ऑफ द थिएटर आफ हिन्दूज' जिल्द, 2
7. केदारनाथ महापात्र, ए डेस्क्रिप्टिव केटलोग ऑफ सस्कृत मेनुस्क्रिप्ट्स ऑफ ओरीसा इन द कलेक्शन आफ द ओरीसा स्टेट म्यूजियम, जिल्द 2, पृ० 164।

चन्द्रशेखर का एक ही ग्रन्थ–मधुरानिरुद्ध रूपक मिलता है। चन्द्रशेखर ने श्रीहर्ष के नैषध महाकाव्य पर एक टीका लिखी थी।[1] यह टीका अब तक नही मिली है।

मधुरानिरुद्ध रूपक

मधुरानिरुद्ध रूपक[2] मे आठ अङ्क हैं। इसकी वस्तु श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध तथा बाणासुर की पुत्री उषा के विवाह की पौराणिक कथा है।

चन्द्रशेखर शैव थे। केदारनाथ महापात्र ने[3] चन्द्रशेखर से सम्बन्धित तथा पुरी क्षेत्र (उडीसा) मे प्रचलित एक कथा का उल्लेख किया है। उनके विचार से यह कथा ऐतिहासिक महत्त्व की है। इस कथा के अनुसार चन्द्रशेखर ने अपने पाण्डित्य से पूना के पेशवा को प्रसन्न कर नागपुर के भोसलवशीय राजा रघूजी प्रथम (1729–55 ई०) को कारावास से मुक्त कराया था।

चयनी चन्द्रशेखर खुर्द (उडीसा) मे रहते थे। इनका समय अट्ठारहवी शती का पूर्वार्द्ध है। *केदारनाथ महापात्र के मत से चन्द्रशेखर ने मधुरानिरुद्ध का निर्माण* 1736 ई० के समीप किया था। इसी समय गजपति वीरकेशरीदेव प्रथम खुर्द *(उडीसा) के सिंहासन पर बैठे तथा गजपति रामचन्द्रदेव द्वितीय का स्वर्गवास* हुआ।

द्वारकानाथ

द्वारकानाथ बगाल मे नवद्वीप के श्रीपाटमगलदेहि ग्राम मे रहते थे। द्वारकानाथ के पिता का नाम रुक्मिणीकान्त था। इनके पितामह जगदानन्द तथा प्रपितामह गोकुलचन्द्र थे। गोकुलचन्द्र के पिता श्री गोपाल, पितामह कानुराय तथा प्रपितामह पर्णगोपालक थे। पर्णगोपालक चैतन्यदेव के भक्त राजा सुन्दरानन्ददेव के *प्रीतिपात्र थे।[4] कानुराम के ज्येष्ठ भ्राता काशीनाथ थे। इस प्रकार द्वारकानाथ* पर्णगोपालक के वश मे सातवी पीढी मे उत्पन्न हुए थे। द्वारकानाथ विनम्र थे।

द्वारकानाथ बगदेशीय ब्राह्मण थे। यह कृष्णभक्त थे। इनकी एक ही कृति प्राप्त होती है—गोविन्दवल्लभ नाटक।

---

1. केदारनाथ महापात्र, वही।
2. यह अप्रकाशित है। इसकी उड़ियालिपि में दो हस्तलिखित प्रतियाँ उड़ीसा के राजकीय सग्रहालय, भुवनेश्वर मे मिलती हैं। देखिये भुवनेश्वर, हस्तलिखित ग्रन्थ सख्या एस० एम० एस० 4 तथा एल 35(ए)। इनके अतिरिक्त नागपुर, मद्रास तथा कलकत्ता के हस्तलिखित ग्रन्थालयों मे इस रूपक की प्रतियाँ प्राप्त हैं।
3. केदारनाथ महापात्र, पूर्वोक्त, पृ० 165।
4. गोविन्दवल्लभ नाटक, प्रथमाङ्क।

गोविन्दवल्लभ नाटक

गोविन्दवल्लभ नाटक[1] मे दस अङ्क हैं। इसमे श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओ का वर्णन है।

राजविजय नाटक का लेखक

राजविजय नाटक के रचयिता का नाम ज्ञात नही है। इसकी प्रस्तावना मे इसके कर्त्ता को नव्य कवि कहा गया है। राजविजय नाटक की रचना 1755 ई० के समीप की गई थी। इस नाटक का रचयिता बगाल के नवाब मीरकासिम के पटना स्थित उपराज्यपाल राजा राजवल्लभ का आश्रित कवि था।

राजा राजवल्लभ का जन्म 1707 ई० के समीप बगाल के बीलदाओनिया ग्राम मे हुआ था। इस ग्राम मे राजवल्लभ ने अनेक भव्य भवनो तथा मन्दिरादि का निर्माण कराकर इसका नाम राजनगर रख दिया था।

राजवल्लभ योग्य प्रशासक, राजनीतिज्ञ तथा सनानी थे। यह समाज–सुधारक तथा विद्वानो के आश्रयदाता थे।[2]

राजविजय नाटक के दो हस्तलिखित ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं। ये दोनो अपूर्ण हैं। इनमे से एक हस्तलिखित ग्रन्थ ढाका विश्वविद्यालय मे मिलता है।[3] दूसरा हस्तलिखित ग्रन्थ सिलहेट मे सतक ग्राम के निवासी स्वर्गीय रुक्मिणीमोहन गोस्वामी के पास था। इन दोनो हस्तलिखित ग्रन्थो के आधार पर डॉ० रमेशचन्द्र मजूमदार तथा कुजगोविन्द गोस्वामी ने राजविजय नाटक का सम्पादन किया है। यह इण्डियन रिसर्च इन्स्टीट्यूट, कलकत्ता से प्रकाशित हुआ है।[4]

राजविजय नाटक के रचयिता के माता-पिता तथा वशादि के विषय म कुछ भी ज्ञात नही है। हेमेन्द्रनाथ दास गुप्त ने इस नाटक के कर्त्ता को बगाली बताया है।[5] इस नाटक के दोनो हस्तलिखित ग्रन्थ भी बगाक्षरो मे हैं।

राजविजय नाटक

राजविजय नाटक के दो अङ्क ही मिले है। प्रथमाङ्क पूर्ण है तथा द्वितीयाङ्क अपूर्ण। इस नाटक की वस्तु राजवल्लभ द्वारा किया गया सप्तसस्था यज्ञ है। इस

---

1. हरिदास दास द्वारा सम्पादित तथा नदिया से बगाक्षरों मे प्रकाशित।
2. राजा राजवल्लभ के जीवन के विषय मे देखिये–डॉ० रमेशचन्द्र मजूमदार तथा कुजगोविन्द गोस्वामी द्वारा सम्पादित राजविजय नाटक की भूमिका, पृ० 8–11।
3. ढाका विश्वविद्यालय, हस्तलिखित ग्रन्थ सख्या 935(सी)
4. कलकत्ता,1947.
5. हेमेन्द्रनाथ दास गुप्त, द इण्डियन स्टेज, पृ० 74

नाटक में यह उल्लेख किया गया है कि राजवल्लभ के अम्बष्ठों (वैद्यों) का पुन उपनयन संस्कार कराया।

रामपाणिवाद

रामपाणिवाद केरल प्रदेश म अम्पलवासी जाति की नम्बियार नामक उपजाति में उत्पन्न हुए थे।[1] यह मङ्गलग्राम में रहते थे।[2] के० रामपिशरोटी[3] के अनुसार यह ग्राम वेट्टुनाडु में स्थित मङ्गलग्राम है। आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये[4] तथा एल ए रविवर्मा के मत मे यह मङ्गलग्राम दक्षिण मालाबार में वर्तमान रेल्वे स्टेशन लेक्किडि के समीप स्थित किल्लिकुरिसिमङ्गलम है और रामपाणिवाद इसी ग्राम के कलक्कुत्तु परिवार से सम्बन्धित थ।

कवि का नाम राम था तथा इनकी जाति पाणिवाद (नम्बियार) थी। पाणिवादों का जातीय व्यवसाय संस्कृत नाट्याभिनय में चाक्यार नटों का साहाय्य करना था। पाणिवाद अथवा पाणिध लोग मिलावु' नामक ढोलवादन द्वारा अभिनय में साहाय्य करते थे।[6]

रामपाणिवाद का जन्म किस वर्ष मे हुआ था, यह अभी तक निश्चित नहीं है। उल्लूर एस परमेश्वर ऐय्यर[7] के अनुसार रामपाणिवाद 1700 ई मे उत्पन्न हुए होंगे। आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये[8] के मत से रामपाणिवाद का जन्म 1707 ई के समीप हुआ था। के राघवन् पिल्लइ[9] ने लिखा है कि यह मानना असंगत नहीं होगा कि रामपाणिवाद का जन्म सत्रहवीं शती के अन्त अथवा अट्ठारहवीं शती के आरम्भ म हुआ था।

---

1 डॉ० के० कुञ्जुन्नि राजा, कन्ट्रीब्यूशन आफ केरल टू संस्कृत लिटरेचर, मद्रास, 1958, पृ० 184।

2. देखिये, रामपाणिवाद द्वारा विरचित चन्द्रिकावीथी, लीलावती वीथी तथा मदनकेतुचरित-प्रहसन की प्रस्तावनायें।

3 के० रामपिशरोटी, चन्द्रिकावीथी के अपने संस्करण की भूमिका।

4 आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये, कंसवहो के अपने संस्करण की भूमिका, कोल्हापुर 1940 पृ० 15।

5 एल० ए० रविवर्मा, त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज सख्या 146 में प्रकाशित राघवीय के अपने संस्करण की भूमिका, पृ० 12।

6 डॉ० के० कुञ्जुन्नि राजा, पूर्वोक्त, पृ० 184।

7 उल्लूर एस० परमेश्वर ऐय्यर, केरल साहित्य चारित्रम्, जिल्द 3, पृ० 355।

8 *आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये, कंसवहो के अपने संस्करण की भूमिका, पृ० 15।*

9 के० राघवन् पिल्लइ, त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज में प्रकाशित अपने भागवतचम्पू के संस्करण की भूमिका, पृ० 4।

कहा जाता है कि रामपाणिवाद के पिता मध्यवर्ती त्रावणकोर मे कुमार नल्लुर नामक स्थान के नम्बूदिरि ब्राह्मण थे तथा वह किल्लिक्कुरिसिमङ्गलम् ग्राम के प्रसिद्ध शिव मन्दिर के पुजारी थे।[1]

रामपाणिवाद ने प्रारम्भ मे अपने पिता से ही शिक्षा प्राप्त की थी। फिर रामपाणिवाद नारायण भट्ट के शिष्य हो गये थे। अपनी कृतियो मे रामपाणिवाद ने श्रद्धापूर्ण शब्दो मे इन नारायण भट्ट का उल्लेख किया है।[2]

कतिपय विद्वानो[3] के विचार से रामपाणिवाद के गुरु मेलपुत्तूर के निवासी तथा 'नारायणीय' काव्य के कर्त्ता नारायण भट्टतिरि हैं परन्तु मेलपुत्तूर नारायण भट्ट का देहावसान 1650 ई० के पूर्व हो जाने से यह मानना उचित नही है। कतिपय विद्वान्[4] रामपाणिवाद के गुरु नारायण भट्ट को एक दोषपूर्ण परम्परा के अनुसार किल्लिक्कुरिसिमङ्गलम् के समीप त्रिक्कारमणवश मे उत्पन्न हुए मानते हैं। अन्य विद्वान्[5] रामपाणिवाद के गुरु को तेक्केटत्तु वश के नारायण भट्ट मानते हैं जो अम्पलप्पुल के राजा देवनारायण के मन्त्री थे।

रामपाणिवाद ने अपने एक मित्र पुराणमहीसुरवरिष्ठ का उल्लेख किया है,[6] परन्तु यह निश्चित नही है कि यह पुराणमहीसुरवरिष्ठ कौन थे।[7] रामपाणिवाद ने अपने मामक राघवपाणिध का भी निर्देश किया है।[8] रामपाणिवाद के छोटे भाई कृष्ण तथा भागिनेय राम का भी उल्लेख मिलता है। इन कृष्ण की 1780 ई. मृत्यु हो गयी थी।[9]

---

1. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये, कसवहो के अपने सस्करण की भूमिका, कोल्हापुर 1940, पृ० 15।
2. रामपाणिवाद ने सीताराघव नाटक, भागवतचम्पू, विष्णुविलास, कृष्णविलासकाव्य की विलासिनी टीका, मदनकेतुचरित तथा राघवीय मे नारायण भट्ट का श्रद्धापूर्वक उल्लेख किया है।
3. के० साम्ब शिव शास्त्री, त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज सख्या 131 मे प्रकाशित वृत्तवार्त्तिक के अपने सस्करण की भूमिका, तथा डॉ० एल० ए० रविवर्मा, राघवीय के अपने सस्करण की भूमिका, पृ० 21।
4. उल्लूर एस० परमेश्वर ऐय्यर, केरल साहित्य चरित्रम्, जिल्द 3, पृ० 358।
5. डॉ० के० कुञ्जुन्नि राजा, कन्ट्रीब्यूशन आफ केरल टू सस्कृत लिटरेचर, मद्रास 1958, पृ० 186।
6. सीतावनी वीथी, प्रस्तावना।
7. डॉ० सी० कुन्हन राजा, अडयार लायब्रेरी सीरीज सख्या 42 मे 1943 ई० मे प्रकाशित अपने उसानिरुद्ध सस्करण की भूमिका, पृ० 17।
8. लीलावती वीथी, प्रस्तावना।
9. उल्लूर एस० परमेश्वर ऐय्यर, केरल साहित्य-चरित्रम्, जिल्द 3, पृ० 350।

कुछ समय पूर्व कलक्कुत्तु वश म एक ताडपत्र पर लिखे हुए बालभारत' नामक *ग्रन्थ की प्राप्ति हुई थी। इस ग्रन्थ पर लिखे हुए कतिपय पद्य रामपाणिवाद* के जीवन तथा कृतियो पर प्रकाश डालते है।[1] इन पद्यो को रामपाणिवाद के भागिनेय राम नम्बियार ने 1765 ई० मे लिखा था। इन पद्यो मे से एक मे यह वर्णित है कि राजा देवनारायण ने रामपाणिवाद का पालन अपने पुत्र के समान कर उन्हे *विधिवत् शिक्षित कराया था। देवनारायण ने* धन देकर रामपाणिवाद के वश का सरक्षण किया था।

उपर्युक्त 'बालभारत' के पद्यो से सूचित होता है कि रामपाणिवाद के बाल्यकाल से ही अम्पलप्पुल के राजा देवनारायण उनके आश्रयदाता थे। देवनारायण के *आश्रय मे रामपाणिवाद ने लीलावती वीथी की* रचना की थी।[2] 1750 ई० मे मार्त्तण्डवर्मा द्वारा अम्पलप्पुल को विजित कर अपने राज्य मे मिला लेने पर सम्भवत रामपाणिवाद त्रावणकोर चले गये थे।

मार्तण्डवर्मा के आश्रय मे रामपाणिवाद ने सीताराघव नाटक की रचना की *थी। रामपाणिवाद के पाण्डित्य से प्रभावित होकर केरल के अन्य सामन्तो ने* भी उन्हे आश्रय दिया था। सम्भवत रामपाणिवाद एक राजसभा से दूसरी राजसभा म चले जाते थे।

वेट्टत्तुनाडु के राजा वीरराय के आश्रय मे रामपाणिवाद ने चन्द्रिका वीथी *की रचना की थी। चेम्पमङ्गलम के सामन्त पालियत अत्तचन रामकुबेर के आग्रह से* रामपाणिवाद ने विष्णुविलास महाकाव्य का प्रणयन किया था। कुन्नङ्गलम् के समीप मनक्कुलम वशीय आर्य श्रीकण्ठरामवर्मा के सरक्षण मे रामपाणिवाद ने *मुकुन्दशतक की रचना की थी।*

रामपाणिवाद उच्च कोटि के कवि, नाटककार तथा टीकाकार थे। राम-पाणिवाद ने चार रूपको की रचना की। ये रूपक हैं—

1 सीताराघवनाटक
2 मदनकेतुचरित प्रहसन
3 लीलावती वीथी
4 चन्द्रिका वीथी

उपर्युक्त रूपको का परिचय नीचे दिया जा रहा है।

---

1. डॉ० के० कुञ्जन्नि राजा ने इन पद्यों को उद्धृत किया है। देखिये—डॉ० के० कुञ्जन्नि राजा पूर्वोक्त, पृ० 188 89।
2. लीलावती वीथी, प्रस्तावना।

(1) सीताराघव नाटक

सीताराघव नाटक[1] मे सात ग्रङ्क हैं । इसकी वस्तु रामायण से सगृहीत की गई है । इसमे राम ग्रौर लक्ष्मण के विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करने के लिये ग्रयोध्या से जाने से लेकर रावण–वध कर ग्रयोध्या लौटने तक की कथा का वर्णन है ।

(2) मदनकेतुचरित प्रहसन

मदनकेतुचरित प्रहसन[2] मे लाटदेशीय तान्त्रिक शिवदास तन्त्रबल से सिंहलाधिपति मदनकेतु का गणिका चन्द्रलेखा के साथ विवाह् कराता है । मार्गभ्रष्ट भिक्षु विष्णुमित्र को शिवदास तन्त्रबल के द्वारा सन्मार्ग पर प्रवर्तित करता है । भिक्षु विष्णुमित्र राजा मदनकेतु का मित्र है ।

(3) लीलावती वीथी

लीलावती वीथी[3] मे कुन्तलेश्वर वीरपाल का कर्णाटराज–पुत्री लीलावती के साथ विवाह् का वर्णन है ।

(4) चन्द्रिका वीथी

चन्द्रिका वीथी[4] की वरतु ग्रङ्गराज चित्रसेन ग्रौर विद्याधर मणिरथ की पुत्री चन्द्रिका का विवाह है ।

रामपाणिवाद ने शिवागीति नामक एक गेय रूपक का भी निर्माण किया है ।

(1) शिवागीति

शिवागीति[5] के सभी गीत पाँच चरणो के है । ग्रत इसे पञ्चपदी भी कहा है,[6] परन्तु रामपाणिवाद ने इसे 'पञ्चपदी' नाम नही दिया है । इसका निर्माण

---

1. शूरनाट कुञ्जन पिल्ल द्वारा सम्पादित तथा त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज सख्या 182 मे 1958 ई० मे त्रिवेन्द्रम् से प्रकाशित ।
2. पी० के० नारायण पिल्ल द्वारा सम्पादित तथा त्रिवेन्द्रम् सस्कृत सीरीज सख्या 151 में 1948 ई० में त्रिवेन्द्रम् से प्रकाशित ।
3. यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी, त्रिवेन्द्रम् द्वारा 1948 ई० में प्रकाशित ।
4. के० रामपिशरोटी द्वारा सम्पादित तथा रामवर्म रिसर्च इन्स्टीट्यूट त्रिचूर की शोध पत्रिका संख्या 3 मे 1934 ई० में प्रकाशित ।
5. यह अप्रकाशित है । इसकी एक हस्तलिखित प्रति मद्रास मे एल० एस० राजगोपालन् के पास मिलती है ।
6. L. S. Rajagoplan, Sivagiti of Ramapanivada, paper read in the XXXVIIIth Conference of the Music Academy Madras, 1964

जयदेव के गीतगोविन्द के आदर्श पर किया गया है। इसमे केरल प्रदेश मे मुक्कोल ग्राम की मुक्तिपुरवासिनी देवी की स्तुति है।

उपर्युक्त कृतियो के अतिरिक्त रामपाणिवाद के निम्नलिखित ग्रन्थ भी मिलते हैं—

(1) विष्णुविलास

विष्णुविलास[1] *भागवत की कथा पर आधारित महाकाव्य है। इसमे आठ सर्ग हैं।*

(2) राघवीय

राघवीय[2] रामायण की कथा पर आश्रित महाकाव्य है। रामपाणिवाद ने इसकी 'वालपाठ्या' टीका भी लिखी है।

(3) कंसवहो अथवा कंसवध[3]

कंसवहो प्राकृत भाषा का काव्य है। इसमे भागवतपुराण की कंसवध की कथा का वर्णन है।

(4) उसानिरुद्ध

उसानिरुद्ध[4] चार सर्गो का प्राकृत काव्य है। इसमे उषा और अनिरुद्ध के विवाह की प्रसिद्ध पौराणिक कथा का वर्णन है।

(5) भागवतचम्पू

भागवतचम्पू[5] भागवतपुराण पर आश्रित है।

(6) सूर्यशतक

सूर्यशतक सम्भवत रामपाणिवाद का सूर्याष्टक ही है। सूर्याष्टक प्रकाशित हो चुका है।[6]

---

1. यह काव्य विष्णुप्रिया टीका सहित प्रकाशित हो चुका है। पी० के० नारायण पिल्लइ द्वारा सम्पादित तथा त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज संख्या 165 में त्रिवेन्द्रम् से 1951 ई० में प्रकाशित।
2. डॉ० एल० ए० रविवर्मा द्वारा सम्पादित तथा त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज संख्या 146 में 1942 ई० में त्रिवेन्द्रम् से प्रकाशित।
3. डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये द्वारा सम्पादित तथा कोल्हापुर से 1940 ई० में प्रकाशित।
4. डॉ० सी० कुन्हन राजा द्वारा सम्पादित तथा अड्यार लाइब्रेरी सीरीज संख्या 42 में 1943 ई० में प्रकाशित।
5. डॉ० के० राघवन पिल्ल द्वारा सम्पादित तथा त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज में 1964 ई० मे त्रिवेन्द्रम् से प्रकाशित।
6. के० नारायण पिशरोटी द्वारा सम्पादित तथा साहित्य-परिषत् त्रैमासिक के जिल्द 7 में प्रकाशित।

(7) मुकुन्दशतक

मुकुन्दशतक[1] मे विष्णु की स्तुति की गई है ।

(8) शिवशतक

शिवशतक[2] मे शिव की स्तुति है ।

(9) विलासिनी

विलासिनी[3] सुकुमार कवि के कृष्णविलास काव्य पर रामपाणिवाद द्वारा लिखी गई टीका है ।

(10) विवरण

विवरण[4] नामक टीका रामपाणिवाद ने मेलपुत्तूर नारायण भट्टतिरि के धातुकाव्य पर लिखी है ।

(11) प्राकृत सूत्रवृत्ति

प्राकृत सूत्रवृत्ति[5] वररुचि के प्राकृत सूत्रा पर लिखी गई टाका है ।

(12) वृत्तवार्तिक

वृत्तवार्तिक[6] छन्दशास्त्र का ग्रन्थ है ।

(13) रासक्रीडा

रासक्रीडा[7] मे अनुष्टुम् छन्द का परिवर्त वर्णित है। यह छन्दशास्त्र का ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का दूसरा नाम तालप्रस्तर काव्य है ।

---

1. डॉ० ए० रामास्वामी शास्त्री द्वारा सम्पादित तथा त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज संख्या 157 मे 1946 ई० मे त्रिवेन्द्रम् से प्रकाशित ।
2. Published in the journal of the Travancore University Oriental Manuscripts library, Trivandrum, Vol II No 3, Trivandrum, 1946.
3. यह अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति यूनिवर्सिटी मेनुस्क्रिप्टस लायब्रेरी त्रिवेन्द्रम में मिलती है। देखिये त्रिवेन्द्रम् हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या एल० 1391 ।
4. यह अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति गवर्नमेण्ट ओरिएण्टल मैनुस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी मद्रास मे मिलती है। देखिये मद्रास हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या आर० 3656 ।
5. डॉ० सी० कुन्हन राजा द्वारा सम्पादित तथा अड्यार (मद्रास) से 1946 ई० मे प्रकाशित
6. के० साम्बशिव शास्त्री द्वारा सम्पादित तथा त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज संख्या 131 मे प्रकाशित ।
7. के० साम्बशिव शास्त्री द्वारा सम्पादित तथा त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज संख्या 131 मे वृत्तवार्तिक के साथ प्रकाशित ।

(14) अम्बरनदीशस्तोत्र

अम्बरनदीशस्तोत्र[1] मे अम्पलप्पुल के मन्दिर मे प्रतिष्ठित भगवान् कृष्ण की स्तुति की गई है ।

एम० कृष्णामाचार्य[2] ने रामपाणिवाद के 'ललितराघवीय' तथा 'पादुकापट्टाभिषेक' नामक दो रूपको का भी उल्लेख किया है, परन्तु डॉ० के कुञ्जुन्नि राजा[3] के विचार से ललितराघवीय सीताराघव नाटक हो सकता है तथा पादुकापट्टाभिषेक के रामपाणिवाद द्वारा लिखे जाने का कोई प्रमाण नही मिलता । ललितराघवीय तथा पादुकापट्टाभिषेक के हस्तलिखित ग्रन्थ भी अब तक नही मिले है ।

रामपाणिवाद तथा कुञ्चन नम्बियार के तादात्म्य के विषय मे विद्वानो मे मतभेद है । इस विवाद का कारण यह है कि रामपाणिवाद तथा कुञ्चन नम्बियार की एकता अथवा भिन्नता सिद्ध करने के अब तक प्राप्त प्रमाण अपर्याप्त हैं ।

कुञ्चन नम्बियार ने मलयालम मे अनेक ग्रन्थो की रचना की है ।[1]

रामपाणिवाद ने अपने ग्रन्थो द्वारा प्राकृत के अध्ययन को आगे बढाया तथा संस्कृत रूपको के अल्पसख्यक भेदो वीथी तथा प्रहसन का निर्माण किया । रामपाणिवाद के ग्रन्थ प्राचीन परम्परा पर आधारित होते हुए भी मौलिक सूझ बूझ से ओत प्रोत है ।

निस्सन्देह रामपाणिवाद केवल केरल के ही नही अपितु समस्त भारत के अट्ठारहवी शती के कवियो मे एक मौलिक तथा उत्कृष्ट कवि थे ।

डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये[5] ने लिखा है कि यह प्रतीत होता है कि रामपाणिवाद आजीवन अविवाहित रहे । एक पागल कुत्ते द्वारा काटे जाने से रामपाणिवाद की 1775 ई० मे मृत्यु हो गई ।

अश्वति तिरुणाल रामवर्मा

अश्वति तिरुणाल रामवर्मा त्रावणकोर के राजा कार्त्तिक तिरुणाल रामवर्मा (1758-98 ई०) के भागिनेय थे । अश्विनी नक्षत्र मे उत्पन्न होने के कारण इन्हे अश्वति तिरुणाल रामवर्मा कहा जाता है ।

---

1. के० नारायण पिशरोटी द्वारा सम्पादित तथा संस्कृत परिषत् त्रैमासिक, जिल्द 7 में पृ० 170-86 पर प्रकाशित ।
2. एम० कृष्णमाचार्य, हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल सस्कृत लिटरेचर, मद्रास 1937 पृ० 257
3. डॉ० के कुञ्जुन्नि राजा, कन्ट्रीब्यूशन ऑफ केरल टू संस्कृत लिटरेचर, मद्रास 1958, पृ० 194
4. कुञ्चन नम्बियार के मलयालम् ग्रन्थों के लिए देखिये, डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये द्वारा सम्पादित कंसवहो की भूमिका पृ० 20
5. डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये, कंसवहो की भूमिका, पृ० 18

अश्वति तिरुणाल के पिता रविवर्मा कोमिल तम्पुरान किल्लिमानूर ग्राम मे रहते थे। रविवर्मा कृष्णभक्त थे और उन्होने कसवध नामक अट्टकथा की रचना की थी।

रामवर्मा का जन्म 1755 ई० मे हुआ था।[1] इन्होंने राजा कार्तिक तिरुणाल रामवर्मा की अध्यक्षता मे शिक्षा प्राप्त की थी। अश्वति तिरुणाल रामवर्मा ने अपनी कृतियो मे राजा कार्तिक तिरुणाल की प्रशसा की है। अश्वति तिरुणाल के दो अन्य गुरु थे—शङ्कर नारायण तथा रघुनाथ तीर्थ।[2]

अश्वति तिरुणाल का 1770 ई० मे त्रिवेन्द्रम् के पालक्कुलङ्गर परिवार की एक कन्या के साथ विवाह हुआ था। 1785 ई० मे अश्वति तिरुणाल युवराज बने। 1795 ई० मे 38 वर्ष की आयु मे इनकी मृत्यु हुई।

अश्वति तिरुणाल, कार्तिक तिरुणाल के अत्यधिक प्रेमभाजन थे। साहित्य, सगीत तथा कला मे अश्वति तिरुणाल की अत्यन्त अभिरुचि थी।[3] यह सस्कृत तथा मलयालम दोनो भाषाओ के विद्वान् थे।

अश्वति तिरुणाल स्वभावत कवि थे। इन्होने सस्कृत तथा मलयालम में अनेक ग्रन्थो की रचना की। कार्तिक तिरुणाल की सभा के अनेक विद्वानो के साहचर्य से अश्वति तिरुणाल के वैदुष्य मे वृद्धि हुई।

अश्वति तिरुणाल ने सस्कृत मे रुक्मिणीपरिणय नाटक तथा शृङ्गारसुधाकर भाण की रचना की।

(1) रुक्मिणीपरिणय नाटक

रुक्मिणीपरिणय नाटक[4] मे पांच अङ्क है। इसमे रुक्मिणी तथा श्रीकृष्ण (वासुभद्र) के विवाह की प्रसिद्ध पौराणिक कथा का वर्णन है।

रुक्मिणीपरिणय नाटक को अश्वति की सर्वश्रेष्ठ कृति माना जाता है। गवर्नमेट ओरियण्टल मैनुस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी, मद्रास मे उपलब्ध इस नाटक की एक

---

1. डॉ० के० कुञ्जुन्निराजा, कन्ट्रीब्यूशन आफ केरल टू सस्कृत लिटरेचर, मद्रास 1958, पृ० 172
   एम० कृष्णमाचार्य के अनुसार अश्वति तिरुणाल का समय 1757-1789 ई० है। देखिये एम० कृष्णमाचार्य, हिस्ट्री आफ क्लासिकल सस्कृत लिटरेचर मद्रास 1937 पृ० 663
   ए० बी० कीथ ने अश्वति तिरुणाल का समय 1735-87 ई० होने का उल्लेख किया है। देखिये, ए० बी० कीथ सस्कृत ड्रामा, पृ० 247
2. शृङ्गारसुधाकर भाण, प्रस्तावना।
3. रुक्मिणीपरिणय नाटक, प्रस्तावना।
4. काव्यमाला सस्कृत सीरीज सख्या 40 में 1927 ई० में बम्बई से प्रकाशित।

हस्तलिखित प्रति मे इसे श्रीवत्सगोत्रीय श्रीनिवास शर्मा के पुत्र रामशर्मा की कृति बताया गया है।[1] अभी तक इन रामशर्मा के विषय मे कुछ भी ज्ञात नही है।

(2) शृङ्गारसुधाकर भाण[2]

शृङ्गारसुधाकर भाण मे प्रमुख पात्र विट अपने मित्र शृङ्गारशेखर को उसकी प्रेयसी रतिरत्नमालिका के साथ संयोजित कराता है।

उपर्युक्त रूपको के अतिरिक्त अश्वति तिरुणाल ने संस्कृत मे निम्नलिखित कृतियो का निर्माण किया।

(1) सन्तानगोपाल प्रबन्ध[3]

सन्तानगोपाल प्रबन्ध मे भागवतपुराण की सन्तानगोपाल कथा का वर्णन किया गया है। यह चम्पू काव्य है।

(2) कार्त्तवीर्यविजय प्रबन्ध[4]

कार्त्तवीर्यविजय प्रबन्ध एक चम्पू काव्य है। इसकी वस्तु रामायण के उत्तर-काण्ड मे वर्णित कार्त्तवीर्यविजय की कथा है।

(3) वञ्चिमहाराजस्तव[5]

वञ्चिमहाराजस्तव मे रामवर्मा ने अपने मातुल कार्त्तिक तिरुणाल का यशोगान किया है।

(4) दशावतारदण्डक[6]

दशावतारदण्डक मे विष्णु के दस अवतारो का वर्णन है।

अश्वति तिरुणाल ने मलयालम मे निम्नलिखित कथकलि ग्रन्थो का प्रणयन किया—

1. अम्बरीष चरित
2. रुक्मिणी-स्वयंवर
3. पौण्ड्रकवध

---

1. गवर्नमेंट ओरियेण्टल मेनुस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी मद्रास, हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या आर 3360।
2. यूनिवर्सिटी मेनुस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी त्रिवेन्द्रम् द्वारा 1945 ई० में त्रिवेन्द्रम् से प्रकाशित।
3. डा०. वेङ्कटराम शर्मा द्वारा सम्पादित तथा 1954 ई० में त्रिवेन्द्रम् से प्रकाशित।
4. यूनिवर्सिटी मेनुस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी त्रिवेन्द्रम् द्वारा 1947 ई० में त्रिवेन्द्रम् से प्रकाशित किया गया है।
5. उल्लूर एस० परमेश्वर ऐय्यर द्वारा केरल सोसायटी पेपर्स द्वितीय सीरीज 3 में प्रकाशित।
6. यह अप्रकाशित है।

4 पूतनामोक्ष
5. नरकासुरवध
6. पद्मनाभ कीर्तन

सदाशिव दीक्षित

सदाशिव दीक्षित भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम चोक्कनाथ तथा माता का नाम मीनाक्षी था। यह पदनाभ के उपासक थे।

ए० एस० रामनाथ ऐय्यर[1] ने सत्रहवी शती के ग्रन्त में विद्यमान 'चोक्कनाथ' नामक तीन विद्वानो का उल्लेख करते हुए सदाशिव के पिता चोक्कनाथ को युधिष्ठिर-विजय काव्य के विद्वान टीकाकार तथा श्रीरङ्गम् के समीप शात्तनूर ग्राम के निवासी भारद्वाजगोत्रीय सुदर्शन भट्ट के पुत्र होने के ग्रनुमान किया है।

एम० कृष्णमाचार्य[2] ने सदाशिव के पिता चोक्कनाथ को तिप्पाध्वरी तथा नरसाम्बा के पुत्र तथा कान्तिमती-परिणय, सेवन्तिकापरिणय ग्रौर रसविलास भाण के कर्ता भारद्वाजगोत्रीय चोक्कनाथ होने का उल्लेख किया है।

ग्रभी तक यह निश्चित नही हो सका है कि सदाशिव के पिता चोक्कनाथ कौन है।[3]

एम० कृष्णमाचार्य[4] ने भ्रमवश इन सदाशिव दीक्षित को ग्रौर तञ्जोर के राजा तुलज (1729–35 ई०) के सभापण्डित तथा शब्दकौमुदी ग्रादि ग्रन्थो के कर्त्ता चोक्कनाथ मखिन् के शिष्य ग्रौर गीतसुन्दर काव्य के कर्त्ता सदाशिव दीक्षित को एक ही व्यक्ति माना है। वस्तुत ये दोनो सदाशिव दीक्षित पृथक्-पृथक् व्यक्ति हैं।

प्रस्तुत सदाशिव दीक्षित त्रावणकोर के राजा कार्त्तिक तिरुणाल रामवर्मा के सभापण्डित थे। इनके जन्मस्थान, गुरु तथा शिक्षा—दीक्षा के विषय मे कुछ भी ज्ञात नहीं है।

सदाशिव के दो ग्रन्थ ग्रब तक मिले हैं—

(1) रामवर्मा यशोभूषण तथा

---

1. ए० एस० रामनाथ ऐय्यर, 'रामवर्मयशोभूषणम एण्ड वसुलक्ष्मी कल्याणम्' इण्डियन एण्टेक्वेरी, जिल्द 53 1924, पृ० 2।
2. एम० कृष्णमाचार्य, हिस्ट्री आफ क्लासीकल संस्कृत लिटरेचर, मद्रास 1937, पृ० 243।
3. डॉ० के० कुञ्जुन्नि राजा, अडयार लायब्रेरी बुलेटिन, जिल्द 10, 1946 पृ० 114 तथा आगे।
4. एम० कृष्णमाचार्य, पूर्वोक्त, पृ० 872-73।

(2) लक्ष्मीकल्याण नाटक

(1) रामवर्मयशोभूषण[1]

रामवर्मयशोभूषण एक अलङ्कारविषयक ग्रन्थ है। यह विद्यानाथ के प्रतापरुद्रयशोभूषण के आदर्श पर लिखा गया है। रामवर्मयशोभूषण मे अलङ्कारो के उदाहरण मे दिये गये पद्य त्रावणकोर के राजा कार्तिक तिरुणाल रामवर्म की प्रशंसा मे हैं।

रामवर्मयशोभूषण के तृतीय अध्याय अर्थात् नाटक प्रकरण मे सदाशिव ने आदर्श नाटक के उदाहरण के रूप में 'वसुलक्ष्मीकल्याण' नाटक को अन्तर्निविष्ट किया है।

वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक

वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक मे पाँच अङ्क हैं। इसमे त्रावणकोर के राजा कार्तिक तिरुणाल रामवर्मा का सिन्धुराजकुमारी वसुलक्ष्मी के साथ विवाह का वर्णन है।

(2) लक्ष्मीकल्याण नाटक[2]

लक्ष्मीकल्याण नाटक मे पद्मनाभ तथा लक्ष्मी के विवाह का वर्णन है। इसमे पाँच अङ्क हैं।

वेङ्कटसुब्रह्मण्याध्वरी

वेङ्कटसुब्रह्मण्याध्वरी वेङ्कटेश्वर मखी के ज्येष्ठ पुत्र थे। यह सुप्रसिद्ध वैयाकरण अप्पय दीक्षित (1554–1626 ई) के वश में उत्पन्न हुए थे। वेङ्कटसुब्रह्मण्याध्वरी ने अप्पय दीक्षित से लेकर अपनी पीढ़ी तक अपनी वशावली का उल्लेख किया है।[3]

अप्पयदीक्षित के कनिष्ठ पुत्र नीलकण्ठ दीक्षित थे। नीलकण्ठ दीक्षित ने नलचरित नाटक की रचना की थी।[4] नीलकण्ठ दीक्षित के एकादश पुत्रो मे से एक थे चिन्नमप्पाध्वरी। चिन्नमप्पाध्वरी के ज्येष्ठ पुत्र थे भवानीशङ्कर मखी। भवानीशङ्कर मखी के एक पुत्र थे वेङ्कटेश्वर मखी। इन वेङ्कटेश्वर मखी के ही ज्येष्ठ पुत्र थे—

---

1. यह अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति यूनिवर्सिटी मैनुस्किप्ट्स लायब्रेरी, त्रिवेन्द्रम् में मिलती है। देखिये, त्रिवेन्द्रम्, हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या–20386 (पैलेस हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या 1380)।
2. यह अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति यूनिवर्सिटी मैनुस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी त्रिवेन्द्रम् में प्राप्त है। देखिये, त्रिवेन्द्रम्, हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या 20577 (पैलेस हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या 1572)।
3. वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक, प्रस्तावना।
4. यह प्रकाशित हो चुका है।

प्रस्तुत वेङ्कटसुब्रह्मण्याध्वरी । वेङ्कटसुब्रह्मण्याध्वरी के अनुज तथ शिष्य वटारण्येश्वर वाजपेययाजी सुप्रसिद्ध विद्वान् थे ।

वेङ्कटसुब्रह्मण्याध्वरी के पूर्वजो ने अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया ।[1] चिन्नमप्पाध्वरी ने उमापरिणय नाटक[2] वेङ्कटेश्वर मखी ने उपाहरण नाटक[3] तथा प्रभाकर दीक्षित ने हरिश्चन्द्रानन्द नाटक[4] की रचना की । इन नाटको का अभिनय कर नट लोग अपनी जीविका अर्जित करते थे ।

वेङ्कटसुब्रह्मण्याध्वरी वैयाकरण, मीमासक तथा तर्कविज्ञ थे । यह काव्यार्थ के मर्म को जानते थे । *यह साहित्य तथा अलङ्कारो मे निष्णात थे ।* यह वेदो के भी पण्डित थे । यह सरस्वती के भक्त थे । इनके अनेक शिष्य थे ।

वेङ्कटसुब्रमण्याध्वरी की एक ही कृति मिलती है–वसुलक्ष्मी नाटक ।

वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक[5]

वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक मे पाँच अङ्क हैं। इस नाटक मे वेङ्कटसुब्रह्मण्याध्वरी ने *अपने आश्रयदाता त्रावणकोर के राजा कार्त्तिक तिरुणाल रामवर्मा का* सिन्धु-राजकुमारी वसुलक्ष्मी के साथ विवाह का वणन किया हैं । इस नाटक की वस्तु सदाशिव के 'वसुलक्ष्मीकल्याण' नाटक के ही समान है ।

वेङ्कटसुब्रह्मण्याध्वरी त्रावणकोर के राजा कार्तिक तिरुणाल रामवर्मा (1758–98 ई) के सभापण्डित थे । यह विनम्र स्वभाव के थे ।

शिव कवि

शिव कवि के माता पिता तथा वश के विषय मे कुछ भी ज्ञात नही है। शिव कवि की एक ही कृति प्राप्त हुई है–विवेकचन्द्रोदय नाटक ।

शिव कवि णाणेर (रानेर) नगर के निवासी थे । यह रानेर नगर यमुना के तट पर स्थित था । यह गङ्गा के समान पवित्र और तीर्थोपम था ।[6] अभी तक यह निश्चित नही हो सका है कि इस रानेर नगर का तादात्म्य किस वर्तमान नगर से किया जाय ।

---

1. वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक, प्रस्तावना ।
2 यह अभी तक मिला नहीं है । देखिये, डॉ० वे० राघवन्, 'न्यू केटेलोगस केटेलोगोरम्' जिन्द 2 मद्रास 1965, पृ० 393 ।
3 यह नाटक अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है । यह अट्ठारहवीं शती की रचना है ।
4 यह अब तक अप्राप्त है ।
5 यह अप्रकाशित है । इसकी एक हस्तलिखित प्रति यूनिवर्सिटी मेनुस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी, त्रिवेन्दम, में मिलती है । देखिये, त्रिवेन्दम् हस्तलिखित ग्रन्थ सख्या 20581 (पेलेस हस्तलिखित ग्रन्थ सख्या 1576) ।
6 विवेकचन्द्रोदय नाटक, प्रस्तावना, पद्य 5 ।

शिव कवि दुर्गा के भक्त थे ।[1] शिव कवि ने यह तो लिखा है कि विवेक चन्द्रोदय नाटक का अभिनय एक महाराजाधिराज की आज्ञा से किया गया था परन्तु महाराजाधिराज के नाम का उल्लेख नही किया। नाटक मे जहां जहां महाराजाधिराज के नाम का उल्लेख करने का प्रसङ्ग उपस्थित हुआ है वहां वहां स्थान रिक्त छोड दिया गया है। इससे यह सम्भावना की जाती है कि शिव कवि ने इस नाटक का निर्माण करते समय इसे किसी राजा को समर्पित नही किया था।

विवेकचन्द्रोदय नाटक की केवल एक ही हस्तलिखित प्रति मिली है।[2] इस हस्तलिखित प्रति मे इस नाटक का रचना काल सवत् 1819, शक 1685 (1763 ई) उल्लिखित है। यह स्वय शिव कवि के द्वारा लिखी गई मौलिक प्रति प्रतीत होती है। अत शिव कवि का समय अट्ठारहवी शती का मध्यभाग सिद्ध होता है। उन्होंने इस नाटक का प्रणयन 1763 ई मे किया था।

विवेकचन्द्रोदय नाटक[3]

विवेकचन्द्रोदय नाटक मे चार अङ्क हैं। इसकी वस्तु रुक्मिणीहरण की प्रसिद्ध पौराणिक कथा है। इस नाटक के कतिपय पात्र प्रतीकात्मक होने के कारण यह एक प्रतीक नाटक है।

नृसिंह कवि 'अभिनव कालिदास'

नृसिह कवि मैसूर मे सनगर नामक ब्राह्मणो के विद्वत्परिवार म उत्पन्न हुए थे।[4] इनके पिता शिवराम सुधीमणि दर्शनशास्त्र के उत्कृष्ट विद्वान् थे। नृसिह कवि शिवराम के द्वितीय पुत्र थे। नृसिह कवि के अग्रज का नाम सुब्रह्मन्य था। नृसिह कवि शिव भक्त थे।

नृसिह कवि ने अपने पिता से ही शास्त्रो की शिक्षा प्राप्त की थी।[5] नृसिह कवि के द्वितीय गुरु योगानन्द नामक एक सन्यासी थे।[6] नृसिह कवि के तृतीय गुरु का नाम पेरुमल था।[7]

---

1 विवेकचन्द्रोदय नाटक, प्रस्तावना।

2 यह भण्डारकार ओरियेण्टल रिसर्च इन्स्टीटयूट पूना मे मिलती है। देखिये, पूना, हस्तलिखित ग्रन्थ सख्या 31/1872-73।

3 के० टी० शर्मा द्वारा सम्पादित तथा विश्वेश्वरानन्द सस्थान, होशियारपुर द्वारा 1966 ई० में प्रकाशित।

4 चन्द्रकलाकल्याण नाटक, प्रस्तावना।

5 शिवदयासहस्र, अध्याय 1-1

6 नञ्जराजयशोभूषण, पृ० 1

7 शिवदयासहस्र अध्याय 1

नृसिंह के एक मित्र थे तिरुमल कवि। तिरुमल कवि को 'अभिनव भवभूति' कहा जाता था। नृसिंह कवि को नञ्जराज (1739–59 ई.) का आश्रय प्राप्त था।[1] नञ्जराज मैसूर के राजा कृष्णराय द्वितीय (1734–66 ई) के श्वसुर तथा सर्वाधिकारी (प्रधानमन्त्री) थे।

नृसिंह कवि की तीन कृतियाँ मिलती हैं—

(1) नञ्जराजयशोभूषण

(2) चन्द्रकलाकल्याण नाटक

(3) शिवदयासहस्र काव्य।

(1) नञ्जराजयशोभूषण[2]

यह अलङ्कारविषयक ग्रन्थ है। यह वैद्यनाथ के प्रतापरुद्रयशोभूषण के आधार पर लिखा गया है। इसमे नञ्जराज का यशोगान किया गया है। इस ग्रन्थ के छठे उल्लास मे चन्द्रकलाकल्याण नामक नाटक आदर्श नाटक के रूप मे अन्तर्निविष्ट किया गया है।

(2) चन्द्रकलाकल्याण नाटक[3]

चन्द्रकलाकल्याणनाटक नञ्जराजयशोभूषण के षष्ठोल्लास मे आदर्श नाटक के उदाहरण के रूप मे मिलता है।

चन्द्रकलाकल्याण नाटक मे पाँच अङ्क हैं। इस नाटक मे कुन्तलराज रत्नाकर की पुत्री चन्द्रकला का सर्वाधिकारी नञ्जराज के साथ विवाह का वर्णन है।

(3) शिवदयासहस्र काव्य[4]

शिवदयासहस्र काव्य मे दस अध्याय हैं। इसके प्रत्येक अध्याय मे 100 पद्य हैं। इन पद्यो मे शिव की स्तुति तथा उनसे दया की अभ्यर्थना की गई है।

काशीपति कविराज

काशीपति कविराज मैसूर मे रहते थे। इनके पिता का नाम रामपति था। काशीपति मैसूर के राजा कृष्णराज द्वितीय (1734–67 ई.) के सर्वाधिकारी

---

1. बलदेव उपाध्याय, 'रायल पैट्रोनेज एण्ड संस्कृत पोयटिक्स' पूना ओरियेटलिस्ट, जिल्द 1, संख्या 2, जुलाई 1936।
2. ई० कृष्णमाचार्य द्वारा सम्पादित तथा गायकवाड ओरियेण्टल सीरीज संख्या 47 मे बड़ोदा से 1930 ई० मे प्रकाशित।
3. *नञ्जराजयशोभूषण का एक भाग होने के कारण यह नाटक उसके साथ प्रकाशित हो चुका है।*
4. यह अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति ओरियेण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट मैसूर मे मिलती है। देखिये, मैसूर, हस्तलिखितग्रन्थ संख्या बी 742।

नञ्जराज (1739–59 ई) के आश्रित कवि थे ।[1] काशीपति कौण्डिन्यगोत्रीय ब्राह्मण थे । यह दर्शनशास्त्र के विद्वान् होते हुए भी उच्चकोटि के सरस कवि थे ।[2]

काशीपति की दो कृतियाँ प्राप्त हुई हैं—

(1) मुकुन्दानन्द भाण

(2) श्रवणानन्दिनी व्याख्या ।

(1) मुकुन्दानन्द भाण[3]

मुकुन्दानन्द भाण मे भुजङ्गशेखर तथा मञ्जरी के समागम का वर्णन है ।

(2) श्रवणानन्दिनी व्याख्या[4]

श्रवणानन्दिनी व्याख्या नञ्जराज के 'सङ्गीतगङ्गाधर' काव्य पर लिखी गई टीका है ।

कवि चन्द्र द्विज

कवि चन्द्र द्विज असम प्रदेश मे रहते थे । यह ब्राह्मण थे । इनके माता-पिता के विषय मे कुछ ज्ञात नहीं है । यह असम के आहोमवशीय राजा शिवसिंह (1714–44 ई) तथा उनकी पट्टमहिषियो प्रमथेश्वरी और अम्बिका के आश्रित कवि थे ।[5] यह राजा शिवसिंह के सभापण्डित थे ।[6]

कवि चन्द्र की दो कृतिया प्राप्त होती है—

1 कामकुमारहरण नाटक ।

2 धर्मपुराण का असमिया भाषा मे पद्यानुवाद ।

कामकुमारहरण नाटक

कामकुमारहरणनाटक[7] के निर्माण के समय प्रमथेश्वरी देवी 'बृहद्राज' पद

---

1. Dr V Raghavan, 'Sanskrit literature C 1700 to 1900' published in the journal of Madras University, Vol XXVIII, No 2, Jan 1957, pp 192-93
2. मुकुन्दानन्दभाण, प्रस्तावना पद्य 7 ।
3 दुर्गाप्रसाद और काशीनाथ पाण्डुरङ्ग परब द्वारा सम्पादित तथा काव्यमाला सीरीज संख्या 16 मे बम्बई से प्रकाशित । इस भाण के अन्य संस्करण मद्रास तथा पूना से प्रकाशित हुए हैं ।
4 यह अप्रकाशित है । इसकी एक हस्तलिखित प्रति मैसूर के महाराजा के सरस्वती भण्डार पुस्तकालय, मैसूर मे मिलती है ।
5 कामकुमारहरण, अथभाङ्क ।
6 डॉ० सत्येन्द्रनाथ शर्मा, ए संस्कृत प्ले आफ द एटीन्थ सेन्चुरी', जर्नल आफ द यूनिवर्सिटी आफ गौहाटी, जिल्द 4, 1953 पृ० 101—2
7. डॉ० सत्येन्द्रनाथ शर्मा द्वारा सम्पादित तथा 'रूपकत्रयम्' संस्करण में जोरहाट, असम से 1962 ई० में प्रकाशित ।

पर आसीन थी।[1] प्रमथेश्वरी देवी का देहावासन 1731 ई मध्य कामकुमारहरण नाटक का निर्माण सम्भवत 1724 ई तथा 1731 ई के मध्य हुआ।[2] कामकुमारहरण नाटक मे छह अङ्क हैं। इसकी वस्तु उषा और अनिरुद्ध के विवाह की प्रसिद्ध पौराणिक कथा है।

धर्मपुराण का असमिया भाषा मे पद्यानुवाद[3] कविचन्द्र द्विज ने 1735 ई. मे किया था। इसमे कवि चन्द्र ने अपने आश्रयदाता शिवसिंह के साथ ही उनकी पट्टमहिषी अम्बिका तथा पुत्र उग्रसिंह की प्रशसा की है।

हरियज्वा अथवा हरि दीक्षित

हरियज्वा शाण्डिल्यगोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम नृसिंह तथा माता का नाम लक्ष्मी था। इनके कुलदेवता नृसिंह थे।[4]

हरियज्वा मैसूर प्रदेश के धारवार जिले मे नरगुन्द ग्राम के निवासी थे।[5] नरगुन्द के राजा रामराव दादाजी भावे हरियज्वा के आश्रयदाता थे।[6] राजा रामराव ने कुरिगोवनकोण ग्राम हरियज्वा को पुरस्कार मे दिया था।

हरियज्वा रामराव के गुरु थे।[7] हरियज्वा ने अपनी कृतियो मे रामराव को एक पराक्रमी, दानशील तथा ब्राह्मणो के कृपापात्र के रूप मे उल्लेख किया है।

हरियज्वा का उपनाम 'नीलकण्ठ' था। हरियज्वा के गुरु का नाम वामन था। हरियज्वा के अग्रज गङ्गाधर थे।

यह हरियज्वा अथवा हरि दीक्षित भट्टोजि दीक्षित के पौत्र तथा प्रौढमनोरमा पर लघुशब्दरत्न टीका के रचयिता हरि दीक्षित से भिन्न हैं।

हरियज्वा सस्कृत तथा मराठी दोनो भाषाओ के पण्डित थे। इन्होने इन दोनो भाषाओ मे काव्यो का प्रणयन किया।

---

1. कामकुमारहरण नाटक, प्रस्तावना। प्रमथेश्वरी को 'बृहद्राज' पद की प्राप्ति के विषय मे देखिये—ई० ए० गेट, हिस्ट्री आफ आसाम, (द्वितीय सस्करण) पृ० 183।
2. डॉ० सत्येन्द्रनाथ शर्मा, रूपकत्रयम् की भूमिका, जोरहाट (आसाम) 1962, पृ० 4
3. यह अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति इण्डिया आफिस लायब्रेरी, लन्दन मे मिलती है।
4. भीष्म युद्ध, अन्तिम पद्य।
5. भावबोधिनी।
6. ओ० एच० खरे, 'हरि दीक्षित एण्ड हिज वर्क्स' पूना ओरियेण्टलिस्ट, जिल्द 9, अङ्क 1-2 पृ० 62।
7. ब्रह्मसूत्रवृत्ति, पुष्पिका।

हरियज्वा ने सस्कृत मे निम्नलिखित ग्रन्थो की रचना की—

(1) ब्रह्मसूत्रवृत्ति

ब्रह्मसूत्रवृत्ति[1] बादरायण सूत्रो की व्याख्या है।

(2) मितभाषिणी

मितभाषिणी[2] भगवद्‌गीता की टीका है।

(3) बालानन्दिनी

बालानन्दिनी[3] शिवगीता की टीका है।

(4) सारसंग्रह अथवा सत्सार-सग्रह

सारसग्रह[4] अद्वैतवेदान्त का ग्रन्थ है।

(5) विवेकमिहिर नाटक

विवेकमिहिर नाटक[5] मे पाँच अङ्क है। यह प्रतीकात्मक नाटक है। इसमे विवेक के द्वारा मोह के सपरिवार विनाश तथा गुरु के उपदेश से जीवो की मोक्ष-प्राप्ति का वर्णन है।

(6) कंसान्तक नाटक

कसान्तक नाटक[6] मे श्रीकृष्ण की कथा का वर्णन है। इसमे पाँच अङ्क हैं।

(7) नृसिंह नाटक

नृसिह नाटक[7] म हरियज्वा ने अपने कुलदेवता नृसिंह की महिमा का वर्णन किया है।

हरियज्वा ने मराठी भाषा में निम्नलिखित कृतियो का निर्माण किया—

(1) भावबोधिनी

भावबोधिनी भागवत के एकादश स्कन्ध का मराठी मे पद्यानुवाद है।

---

1. आनन्दाश्रम ग्रन्थावली मे पूना से 1917 ई० में प्रकाशित।
2. यह आंशिक रूप से पुरुषार्थ पत्रिका (नरगुन्द, धारवार) मे प्रकाशित हुई है। पुरुषार्थ अङ्क 4-14।
3. यह प्रकाशित हो चुकी है।
4. यह अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति भारत-इतिहास सशोधक मण्डल, पूना में मिलती है।
5. *यह अप्रकाशित है। इसकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ भारत-इतिहास सशोधक मण्डल, पूना में मिलती हैं।*
6. यह अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति ओरियेण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, मैसूर में मिलती है। देखिये मैसूर, हस्तलिखित ग्रन्थ सख्या सी 1987।
7. इसके प्रथम दो अङ्क नरगुन्द से प्रकाशित पुरुषार्थ पत्रिका में प्रकाशित हो चुके हैं।

(2) भीष्मयुद्ध[1]
(2) जयद्रथवध काव्य[2]
(4) भीष्मशर पञ्जर
(5) विराटपर्व
(6) उपदेशमाला
(7) शतकत्रय

कृष्णदत्त 'डालवाणीय जोशी'

कृष्णदत्त सदाराम तथा आनन्ददेवी के पुत्र थे। यह महल्लीदीच्य ब्राह्मण थे। यह 'डालवाणीयजोशी' अवटङ्क से प्रसिद्ध थे। यह वाग्जट जनपद में ग्रामठीय ग्राम में रहते थे।[3] कृष्णदत्त के पितामह का नाम अचलदास तथा प्रपितामह का नाम पीताम्बर था।[4] इनका गोत्र कृष्णात्रि था। कृष्णदत्त कृष्णभक्त थे। कृष्णदत्त के एक पुत्र का नाम गिरिधारी था।

कृष्णदत्त के दो ग्रन्थ मिलते हैं—

(1) सान्द्रकुतूहल प्रहसन।
(2) राधारहस्य काव्य।

सान्द्रकुतूहल प्रहसन

सान्द्रकुतूहल प्रहसन[5] में चार अङ्क हैं। इसके प्रत्येक अङ्क की वस्तु पृथक् है। प्रथमाङ्क में कृष्णभक्ति की महिमा का वर्णन है। द्वितीयाङ्क में अनेक प्रकार के बन्धों तथा प्रबन्धों के प्रयोग द्वारा कवि ने अपने कवित्वचमत्कार का प्रदर्शन किया है। तृतीयाङ्क में परस्त्रीगामी दिवाकर के धूर्तचरित का वर्णन है। चतुर्थाङ्क में दुराचारी राजा तथा धनलोलुप पुरोहितों के निन्द्य चरित का वर्णन है।

राधा-रहस्य काव्य

राधारहस्य काव्य[6] में राधा और कृष्ण के शृङ्गार का वर्णन है। इसमें 22 सर्ग हैं।

---

1. महाराष्ट्र सारस्वत, तृतीय संस्करण, पृ० 68।
2. महाराष्ट्र सारस्वत, तृतीय संस्करण, पृ० 68।
3. सान्द्रकुतूहल प्रहसन, प्रत्येक अङ्क का अन्तिम पद्य।
4. सान्द्रकुतूहल प्रहसन, चतुर्थाङ्क।
5. यह अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति भण्डारकर ओरियेण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना में मिलती है। देखिये पूना, हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या 365/1884-86
6. यह अभी अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति पीटर्सन को कोटा (राजस्थान) के पुस्तकालय में मिली थी। पीटर्सन ने अपने प्रतिवेदन में इस कृति के उदाहरण दिये हैं। देखिये—
पीटर्सन ए थर्ड रिपोर्ट ऑफ आपरेशन्स इन सर्च ऑफ संस्कृत मेनुस्क्रिप्ट्स इन द बोम्बे सर्किल, एप्रिल 1884 मार्च 1886, बोम्बे 1887, पृ० 362।

सान्द्रकुतूहल प्रहसन की रचना कृष्णदत्त ने 1752 ई० में की थी ।[1] इससे यह स्पष्ट है कि कृष्णदत्त का समय अट्ठारहवीं शती का मध्य भाग है ।

सान्द्रकुतूहल प्रहसन म कृष्णदत्त ने अपने आश्रयदाता राजा धर्मवर्मा का उल्लेख किया है परन्तु उनके राज्य तथा समय के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिखा है ।[2] अत धर्मवर्मा के विषय मे अभी कुछ ज्ञात नहीं हो सका है ।

कृष्णदत्त के निवास स्थान त्रामठीय ग्राम तथा वाग्जड जनपद कहाँ हैं, यह अभी तक निश्चित नहीं हो सका है ।

एम० कृष्णमाचार्य[3] ने वाग्जड को मिथिला का वज्जड जिला तथा त्रामठीय ग्राम को त्रिमातीय ग्राम बताया है ।

प्रधान वेङ्कप्प

प्रधान वेङ्कप्प हृपार्य तथा वागम्बिका के पुत्र थे । हृपार्य मैसूर के मन्त्री थे । यह भार्गववशीय ब्राह्मण थे ।

वेङ्कप्प अथवा वेङ्कयार्य मैसूर में रामपुर ग्राम के निवासी थे ।[4] यह ग्राम कटनाहल्लि मे दस मील दक्षिण-पश्चिम म है ।

वेङ्कप्प 1763 ई० से 1780 ई० तक नाममात्र के लिये मैसूर के राजा कृष्णराज वोडेयार द्वितीय, नन्जराज वोडेयार तथा बेट्टद चामराज वोडेयार के मन्त्री थे । वास्तव मे प्रधान वेन्कप्प हैदरअली की अध्यक्षता मे कार्य करते थे ।[5]

वेङ्कप्प ने मैसूर के राजा कृष्णराज द्वितीय (1734–66 ई) की कृपा से सर्वाधिकारी नन्जराज की अध्यक्षता म 'प्रधान' पद प्राप्त किया था ।[6] बाद में वेङ्कप्प ने नन्जराज को मैसूर के शासन से हटाने में कृष्णराज द्वितीय की सहायता की थी ।[7]

कृष्णराज द्वितीय ने वेङ्कप्प को सेना के अतिरिक्त शासन के समस्त विभागो का निरीक्षक बना दिया था । वेङ्कप्प ने मराठा राजा राघोबा के साथ सन्धि कर मैसूर की युद्ध से रक्षा की थी ।[8]

---

1 सान्द्रकुतूहल प्रहसन पुष्पिका ।
2 सान्द्रकुतूहल प्रहसन, प्रस्तावना ।
3 एम० कृष्णमाचार्य, ए हिस्ट्री आफ क्लासीकल सस्कृत लिटरेचर, मद्रास 1937 पृ० 661 ।
4 वीरराघवव्यायोग, पद्य 93 ।
5. एम० पी० एल० शास्त्री, 'प्रधान वेङ्कप्पे-पोइन्ट एण्ड प्लेराइट' जर्नल आफ मिथिक सोसायटी, बैंगलोर, जिल्द 31, 1940–4 पृ० 36 ।
6. मार्क विल्स, हिस्ट्री ऑफ माइसोर, जिल्द 1 अध्याय 7 ।
7 एम० पी० एल० शास्त्री, पूर्वोक्त, पृ० 37 ।
8 वही-पृ० 38 ।

वेङ्कप्प ने अनेक युद्धो मे भी भाग लिया था। अप्रैल 1771 ई मे मराठा तथा मैसूर सेनाओ के मध्य हुए भयानक युद्ध मे वेङ्कप्प ने हैदरअली के पुत्र टीपू सहित भाग लिया था।

वेङ्कप्प के सफल षड्यन्त्रकर्ता होने के कारण हैदरअली उनसे द्वेष रखता था। इसी कारण मैसूर का राजा बनते ही हैदरअली ने वेङ्कप्प को अपीलदार के रूप मे पदावनत कर राजधानी श्रीरङ्गपत्तन से सीर नामक एक दूरस्थ स्थान पर भेज दिया। अत्यधिक प्रयत्न करने पर भी वेङ्कप्प राजधानी मे अपनी पूर्व प्रतिष्ठा को प्राप्त न कर सके। उन्हे जीवन का अन्तिम समय दु ख मे ही बिताना पड़ा।

वेङ्कप्प राम तथा हनुमान के भक्त थे।[1] बाल्यकाल से ही उन्हे साहित्य के प्रति अनुराग था। वह धन देकर विद्वानो का सम्मान करते थे। उन पर लक्ष्मी तथा सरस्वती दोनो की कृपा थी। वह अनेक विद्याओ मे निष्णात थे।

वेङ्कप्प के गुरु का नाम चिदानन्द था। वेङ्कप्प अत्यन्त दानी थे। वह संस्कृत, कन्नड तथा तेलुगु भाषाओ के विद्वान् थे।[2]

कालिञ्जर के राजा परमर्दि देव (1163–1202 ई) के मन्त्री वत्सराज के समान वेङ्कप्प ने रूपको के अनेक भेदो के उदाहरण के रूप मे अनेक ग्रन्थो की रचना की।

वेङ्कप्प द्वारा प्रणीत निम्नलिखित रूपक मिलते हैं—

(1) कामकलाविलास भाण अथवा कामविलास भाण।

(2) कुक्षिमरम्भैक्षव प्रहसन।

(3) महेन्द्रविजय डिम।

(4) वीरराघव व्यायोग।

(5) लक्ष्मीस्वयवरसमवकार अथवा विबुधदानव समवकार।

(6) सीताकल्याण वीथी।

(7) रुक्मिणीमाधव अङ्क

(8) उर्वशीसार्वभौमेहामृग।

इस प्रकार वेङ्कप्प ने दस रूपको मे से नाटक तथा प्रकरण भेदो के अतिरिक्त शेष सभी रूपकभेदो की रचना की थी।

वेङ्कप्प के उपर्युक्त रूपको का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है—

---

1. कामविलास भाण, पद्य 9।
2. उर्वशीसार्वभौमेहामृग, प्रस्तावना।

(1) कामविलास भाण

कामविलास भाण[1] मे विट पल्लवशेखर तथा चम्पकलता के समागम का वर्णन है।

(2) कुक्षिम्भरभैक्षव प्रहसन

कुक्षिम्भरभैक्षव प्रहसन[2] मे बौद्ध भिक्षु कुक्षिम्भर के दुश्चरित्र का वर्णन है।

(3) महेन्द्रविजय डिम

महेन्द्रविजय डिम[3] की वस्तु समुद्रमन्थन की प्रसिद्ध पौराणिक कथा है। इसमे दुर्वासा के शाप से बलि द्वारा पराजित महेन्द्रविष्णु के साहाय्य से पुनः विजयी होते हैं।

(4) वीरराघव व्यायोग

वीरराघव व्यायोग[4] मे वनवास के समय राम द्वारा दण्डकवन मे खरदूषणादि राक्षसो के साथ किये गये युद्ध का वर्णन है। राम खर, दूषण तथा उनके सैन्य का वध कर विजय प्राप्त करते हैं।

(5) लक्ष्मीस्वयंवर समवकार

लक्ष्मीस्वयवर समवकार[5] की वस्तु लक्ष्मी और विष्णु का विवाह है।

(6) सीताकल्याण वीथी

सीताकल्याण वीथी[6] मे सीता और राम के विवाह का वर्णन है। यह रामायण पर आधारित है।

---

1. यह अप्रकाशित है। इसकी तीन हस्तलिखित प्रतियाँ ओरियेण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, मैसूर में मिलती हैं। देखिये, मैसूर, हस्तलिखित ग्रन्थ सख्या, बी॰ 192, बी॰ 341 तथा 2586।
2. यह अप्रकाशित है। इसकी तीन हस्तलिखित प्रतियाँ ओरियेण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, मैसूर मे मिलती है। देखिये, मैसूर, हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या बी॰ 192, बी॰ 342 तथा 2773।
3. यह अप्रकाशित है। इसकी तीन हस्तलिखित प्रतियाँ ओरियेण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, मैसूर मे प्राप्त हैं। देखिये, मैसूर हस्तलिखित ग्रन्थ सख्या बी॰ 192, 2773 तथा बी॰ 351।
4. यह अप्रकाशित है। इसकी तीन हस्तलिखित प्रतियाँ ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, मैसूर में मिलती हैं। देखिये, मैसूर हस्तलिखित ग्रन्थ सख्या बी॰ 192, 360 तथा 2586।
5. यह अप्रकाशित है। इसकी चार हस्तलिखित प्रतियाँ ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट मैसूर में प्राप्त है। देखिये मैसूर,हस्तलिखित ग्रन्थ सख्या बी. 192,360,2773 तथा 2586।
6. यह अप्रकाशित है। इसकी चार हस्तलिखित प्रतियाँ ओरियेण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, मैसूर में मिलती हैं। देखिये, मैसूर, हस्तलिखित ग्रंथ संख्या बी॰ 192. 2773, 2586 तथा बी॰ 360।

(7) रुक्मिणीमाधवाङ्क

रुक्मिणीमाधवाङ्क[1] की वस्तु रुक्मिणी तथा श्रीकृष्ण के विवाह की प्रसिद्ध पौराणिक कथा है।

(8) उर्वशीसार्वभौमेहामृग

उर्वशीसार्वभौमेहामृग[2] मे पुरुरवा तथा उर्वशी के विवाह का वर्णन है।

वेङ्कप्प ने अलकारो के क्षेत्र मे अलकारमणिदर्पण[3] नामक ग्रन्थ की रचना की। व्याकरण के क्षेत्र मे उन्होने जगन्नाथविजय काव्य[4] का प्रणयन किया। बाणभट्ट की कादम्बरी का अनुकरण करते हुए वेङ्कप्प ने सुधाझरी[5] नामक गद्य काव्य लिखा। चम्पू के क्षेत्र मे उन्होने कुशलवविजय चम्पू[6] की रचना की। वेङ्कप्प ने हनुमान तथा सूर्य की स्तुति मे क्रमश हनुमत्शतक[7] तथा सूर्यशतक[8] का निर्माण किया।

वेङ्कप्प ने कर्णाट (कन्नड) भाषा मे (1) कर्णाट रामायण (2) इन्दिराभ्युदय अथवा रामाभ्युदय तथा (3) हनुमद्विलास की रचना की।

वेङ्कप्प ने ब्रह्मसूत्र पर सस्कृत मे 'चिन्मयमुनिभाष्य[9] लिखा।

---

1. यह अप्रकाशित है। इसकी चार हस्तलिखित प्रतियाँ ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, मैसूर में मिलती हैं। देखिये, मैसूर, हस्तलिखित ग्रन्थ सख्या बी० 192, बी० 360, 2586 तथा 2773।
2. यह अप्रकाशित है। इसकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, मैसूर मे प्राप्त है। देखिये, मैसूर, हस्तलिखित ग्रन्थ सख्या 2586 तथा 2773।
3. यह अप्रकाशित है। राइस ने इस ग्रन्थ का अपने सूचीपत्र से उल्लेख किया है। देखिए- लेविस राइस, केटेलोग आफ संस्कृत मेनुस्क्रिप्ट्स इन माइसोर एण्ड कुर्ग, पृ० 284।
4. यह अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, मैसूर में हस्तलिखित ग्रन्थ सख्या बी० 2020।
5. यह अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति पैलेस सरस्वती भण्डार (महाराजा संस्कृत कालेज) मैसूर में मिलती है। देखिये कोश सख्या 155।
6. यह अभी अप्रकाशित है।
7. यह अप्रकाशित है। देखिये, ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट मैसूर, हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या 3080।
8. यह अप्रकाशित है।
9. यह अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति पैलेस सरस्वती भण्डार (महाराजा संस्कृत कालेज) मैसूर में मिलती है। देखिये, हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या 1207।

रामचन्द्रशेखर

रामचन्द्रशेखर तञ्जोर के राजा प्रतापसिंह (1741–64 ई०) के आश्रित कवि थे।[1] यह कवि राजा प्रतापसिंह के पुत्र राजा तुलज द्वितीय (1765–87 ई०) के समकालीन थे।[2]

रामचन्द्रशेखर ने पौण्डरीक याग किया था। अतः इन्हें पौण्डरीकयाजी कहा जाता था।[3] यह रसज्ञ तथा वैयाकरण थे।[4] इन पर राजा तुलज द्वितीय की कृपा थी।

आफ्रेट[5] ने रामचन्द्र कवि के ऐन्दवानन्द नाटक तथा कलानन्दक नाटक का उल्लेख किया है। श्यूलर[6] ने रामचन्द्र कवि का समय अठारहवीं शती का अन्तिम भाग बताया है तथा ऐन्दवानन्द नाटक और कलानन्दक नाटक को उनकी रचना बताया है।

ऐन्दवानन्द तथा कलानन्दक दोनों ही नाटक अभी अप्रकाशित हैं। इनकी हस्तलिखित प्रतियाँ तञ्जोर के सरस्वती महल पुस्तकालय में मिलती हैं।

पी० पी० एस० शास्त्री[2] ने ऐन्दवानन्द नाटक के कर्त्ता रामचन्द्र कवि तथा कलानन्दक नाटक के प्रणेता रामचन्द्रशेखर को पृथक् पृथक् व्यक्ति के रूप में उल्लिखित किया है। ऐन्दवानन्द नाटक के रचयिता रामचन्द्र कवि गौडदेश (बंगाल) के निवासी थे तथा श्रीहर्ष नामक विद्वान् के पुत्र थे।[3] इन्होंने अपने आश्रयदाता राजा रामचन्द्र का उल्लेख किया है।[4]

---

1. कलानन्दक नाटक, प्रस्तावना।
2. कलानन्दक नाटक, प्रस्तावना।
3. एम० कृष्णमाचार्य, ए हिस्ट्री आफ क्लासीकल संस्कृत लिटरेचर मद्रास 1937, पृ० 661
4. कलानन्दक नाटक, प्रस्तावना।
5. थियोडोर आफ्रेट, कैटेलोगस कैटेलोगोरम् भाग 1, लेपजिग 1891, पृ० 76, 84।
6. मोण्टगोमेरी श्यूलर, ए बिबलियोग्राफी आफ द संस्कृत ड्रामा विद एन इण्ट्रोडक्टरी स्केच ऑफ द ड्रैमेटिक लिटरेचर ऑफ इण्डिया, न्यूयार्क 1906, पृ० 79।
7. देखिये, सरस्वती महल पुस्तकालय, तञ्जोर हस्तलिखित ग्रंथ संख्या 4337 तथा 4338। ये दोनों हस्तलिखित ग्रंथ कलानन्दक तथा कलानन्दकच्छाया हैं। ऐन्दवानन्द नाटक इस पुस्तकालय की हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या 4335 है।
8. पी० पी० एस० शास्त्री, ए डेस्क्रिप्टिव कैटेलोग आफ द संस्कृत मेनुस्क्रिप्ट्स इन द तञ्जोर महाराजा सरफोजीज सरस्वती महल लायब्रेरी तञ्जोर, वाल्यूम 8, नाटक, इन्ट्रोडक्शन पृ० 31।
9. ऐन्दवानन्द नाटक, प्रस्तावना।
10. वही।

कलानन्दक नाटक के कर्त्ता रामचन्द्रशेखर ने अपने को पौण्डरीकयाजी कहा है तथा अपने आश्रयदाता तञ्जोर के राजा तुलज द्वितीय का उल्लेख किया है। रामचन्द्रशेखर ने अपने माता-पिता तथा निवासस्थान के सम्बन्ध में कलानन्दक नाटक में कुछ भी उल्लेख नहीं किया है।

यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि कलानन्दक नाटक के कर्त्ता रामचन्द्रशेखर तथा ऐन्दवानन्द नाटक के रचयिता रामचन्द्र कवि एक ही व्यक्ति हैं अथवा पृथक् पृथक् व्यक्ति।

एम० कृष्णमाचार्य[1] ने रामचन्द्रशेखर की एक ही कृति कलानन्दक नाटक का उल्लेख किया है।

पी० पी० एस० शास्त्री[2] ने यह सम्भावना प्रकट की है कि कलानन्दक नाटक का निर्माण रामचन्द्रशेखर ने उस समय किया था जब राजा प्रतापसिंह तञ्जोर पर शासन कर रहे थे तथा तुलज द्वितीय युवराज थे।

कलानन्दक नाटक

कलानन्दक नाटक मे सात अङ्क हैं। यह नाटक नन्दकचरित पर आधारित है। इसमे राजा नन्दक तथा कलावती की प्रणय कथा का वर्णन है।

कृष्णदत्त मैथिल

कृष्णदत्त मैथिल भवेश तथा भगवती के पुत्र थे।[3] यह मैथिल ब्राह्मण थे। इनका जन्म दरभगा जिले मे शारदापुर के समीप उद्यान (उझान) नामक ग्राम मे हुआ था।[4] इनके अग्रज क्रमश पुरन्दर, कुलपति तथा श्रीमालिक थे।

कृष्णदत्त मिथिला के एक श्रोत्रियब्राह्मण-परिवार मे उत्पन्न हुए थे। इन्होंने मिथिला मे अनेक शास्त्रो का अध्ययन किया था। सम्भवत समसामयिक मैथिलो के समान कृष्णदत्त ने वाराणसी मे भी शिक्षा प्राप्त की थी।[5]

---

1. एम० कृष्णमाचार्य, हिस्ट्री ऑफ क्लासीकल संस्कृत लिटरेचर, मद्रास 1937 पृ० 661.
2. पी० पी० एस० शास्त्री, ए डेस्क्रिप्टिव केटेलोग ऑफ द संस्कृत मेनुस्क्रिप्ट्स इन द टेञ्जोर महाराज सरफोजीज सरस्वती महल लायब्रेरी, टेञ्जोर, वाल्यूम 8, नाटक, इन्ट्रोडक्शन, पृ० 31, टेक्स्ट पृ० 3865।
3. गीतगोविन्द व्याख्या-गङ्गा, पद्य 2।
4. गीतगोपीपतिकाव्य, 12 28।
5. सदाशिव लक्ष्मीधर कात्रे, पुरञ्जनचरित की भूमिका, पृ० 30।

कृष्णदत्त छिन्नमस्ता देवी के उपासक थे।[1] यह अत्यन्त प्रतिभावान् तथा चमत्कारी कवि थे।

पुरञ्जनचरित नाटक की रचना-तिथि 1775 ई० के समीप है।[2] यह अनुमान किया जाता है कि कृष्णदत्त ने अपनी कृतियों का निर्माण 1740 ई० से 1780 ई० के मध्य किया।[3]

कृष्णदत्त को नागपुर के भोसले राजा जानोजी (1755-72 ई०) तथा रघूजी द्वितीय (1772-1816 ई०) और उनके मुख्यमन्त्री देवाजीपन्त चोरघोडे का आश्रय प्राप्त था। इसी आश्रय के कारण कृष्णदत्त नागपुर में रहने लगे थे। यहाँ रहते हुए इन्होंने देवाजी पन्त चोरघोडे के आश्रय में पुरञ्जनचरित नाटक की रचना की थी।

डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल[4] द्वारा कृष्णदत्त के विषय में उल्लिखित एक किम्वदन्ती यह सिद्ध करती है कि उन्होंने अपने पाण्डित्य से नेपाल के राजा द्वारा दिये गये मृत्युदण्ड से मुक्त होकर उनसे पचहत्तर ग्राम दान में प्राप्त किया था।

कृष्णदत्त के निम्नलिखित ग्रन्थ मिलते हैं—

(1) कुवलयाश्वीय नाटक (2) पुरञ्जनचरित नाटक (3) गीतगोपीपति-काव्य (4) चण्डिकाचरितचन्द्रिका काव्य (5) जयदेव के गीतगोविन्द की गङ्गा नामक टीका। इन कृतियों का परिचय नीचे दिया जा रहा है—

(1) कुवलयाश्वीय नाटक

कुवलयाश्वीय नाटक[5] *में सात अङ्क हैं।* इसकी वस्तु *कुवलयाश्व तथा* मदालसा का विवाह है।

(2) पुरञ्जनचरित नाटक

पुरञ्जनचरित नाटक[6] में पाँच अङ्क हैं। यह कृष्णदत्त की प्रौढावस्था की

---

1. बदरीनाथ झा 'कविशेखर', मिथिला के संस्कृत-साहित्य-महारथियों की तालिका (मिथिला-मिहिर के मिथिलाङ्क, वसन्तपञ्चमी, 1936 में प्रकाशित निबन्ध) पृ० 58।
2. सदाशिव लक्ष्मीधर कात्रे, पुरञ्जनचरित नाटक की भूमिका, पृ० 25-27।
3. सदाशिव लक्ष्मीधर कात्रे, वही, पृ० 30।
4. डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल, ए डेस्क्रिप्टिव कैटेलाग आफ मैनुस्क्रिप्ट्स इन मिथिला, वाल्यूम 2, पटना 1933 पृ० 47।
5. यह अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति कामेश्वर सिंह संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभङ्गा में मिलती है। देखिये दरभङ्गा, हस्तलिखित ग्रन्थ बण्डल नं० 345, पोथी न. 1
6. कुमारी मोलम सोलंकी द्वारा सम्पादित तथा चरोत्तर बुकस्टाल आनन्द, (पश्चिम रेल्वे) से 1955 ई० में प्रकाशित। पुरञ्जनचरित नाटक का आलोचनात्मक संस्करण सदाशिव लक्ष्मीधर कात्रे द्वारा सम्पादित किया गया है और विदर्भ संशोधनमण्डल-नागपुर से 1961 ई० में प्रकाशित हुआ है।

रचना है। यह प्रतीकात्मक नाटक है। इसकी कथा भागवत पुराण के पुरञ्जनोपाख्यान पर आधारित है।

(3) गीतगोपीपति काव्य

गीतगोपीपति काव्य[1] जयदेव के गीतगोविन्द काव्य के आदर्श पर लिखा गया है। इसमे श्रीकृष्ण तथा राधा के शृङ्गार का वर्णन है। इसमे 12 सर्ग हैं।

(4) चण्डिकाचरितचन्द्रिका काव्य

चण्डिकाचरितचन्द्रिका काव्य[2] मे 11 सर्ग हैं। इसकी कथा मार्कण्डेयपुराण के *सप्तशतीखण्ड से ली गई है।*

(5) गीतगोविन्द व्याख्या-गङ्गा

गीतगोविन्दव्याख्या गङ्गा[3] मे कृष्णदत्त ने यह प्रतिपादित किया है कि गीतगोविन्द के 12 सर्ग वैष्णवो तथा शैवो दोनो के ही दार्शनिक सिद्धान्तो का वर्णन करते हैं।

रमापति उपाध्याय

रमापति उपाध्याय के पिता का नाम कृष्णपति उपाध्याय था। यह पल्लीकुल मे उत्पन्न हुए थे। यह मैथिल ब्राह्मण थे। इनका गोत्र वत्स था। कृष्णपति वेदो तथा उपनिषदो के विद्वान् थे। कृष्णपति कवि भी थे।[4]

रमापति के आश्रयदाता मिथिला के राजा नरेन्द्रसिंह (1744–61 ई०) थे।[5] रमापति अध्यापन-कार्य करते थे। डॉ० जयकान्त मिश्र ने रमापति के पितृकुलवृक्ष तथा मातृकुलवृक्ष की सारणी दी है।[6] रमापति की पत्नी मिथिला के राजा नरपति ठाकुर की पौत्री थी।

---

1. गङ्गानाथ शर्मा द्वारा सम्पादित तथा निर्णय सागर प्रेस, बम्बई से 1903 ई० में प्रकाशित।
2. यह अप्रकाशित है। राजेन्द्र लाल मित्र ने इसकी एक हस्तलिखित प्रति का उल्लेख किया है। देखिये, राजेन्द्रलाल मित्र, नोटिसेज ऑफ संस्कृत मेनुस्क्रिप्ट्स, वाल्यूम 6, पृ० 30, हस्तलिखित ग्रन्थ क्रमाङ्क 2008
3. यह अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति इण्डिया आफिस लायब्रेरी, लन्दन मे मिलती है। देखिये,
   जूलियस एगलिंग, केटेलाग आफ संस्कृत मेनुस्क्रिप्ट्स इन द लायब्रेरी आफ द इण्डिया आफिस, वाल्यूम 7 (काव्य एण्ड नाटक) लन्दन 1904, पृ० 1458, सीरियल नं. 197
4. रुक्मिणीपरिणय नाटक, प्रस्तावना।
5. डॉ. जयकान्त मिश्र द्वारा सम्पादित रुक्मिणीपरिणय नाटक की भूमिका, पृ० 4।
6. डॉ. जयकान्त मिश्र, वही, पृ० 9–10।

रमापति की केवल एक ही कृति प्राप्त होती है—रुक्मिणीपरिणय नाटक।

रुक्मिणीपरिणय नाटक

रुक्मिणीपरिणय नाटक[1] मे छह ग्रङ्क हैं। इसमे श्रीकृष्ण ग्रौर रुक्मिणी के विवाह का वर्णन है।

लालकवि

लालकवि के माता-पिता तथा जाति के विषय मे कुछ भी निश्चित रूप से ज्ञात नही है। इनके निवासस्थान के विषय मे भी मतभेद है।

लालकवि ने गौरी-स्वयवर नाटक मे ग्रपने लिये 'सुकवि' 'चतुर' तथा 'गणक' शब्दो का प्रयोग किया है। इन्होने ग्रपने किसी ग्राश्रयदाता का उल्लेख नहीं किया है।

डॉ० जयकान्त मिश्र[2] का ग्रनुमान है कि गौरीस्वयवर नाटक के कर्त्ता लालकवि मिथिला के राजा नरेन्द्रसिंह (1744–61 ई०) के ग्राश्रित कवि थे ग्रौर कर्णकायस्थ थे।

लालकवि की एक ही कृति मिलती है–गौरीस्वयवर नाटक।

गौरीस्वयंवर नाटक

गौरीस्वयवर नाटक[3] मे केवल एक ग्रङ्क है। यह *मिथिला के कीर्तनिया* नाटको की परम्परा के ग्रनुसार लिखा गया है। इसकी वस्तु शिव ग्रौर पार्वती का विवाह है। यह कालिदास के कुमारसम्भव पर ग्राधारित है।

नीलकण्ठ मिश्र

नीलकण्ठ मिश्र के पिता का नाम दिव्यसिंह तथा माता का नाम सुवर्णा देवी था। यह वत्सगोत्रीय ब्राह्मण थे। यह उत्कलप्रदेश मे नरसिंहपुर ग्राम के निवासी थे।[4] नरसिंहपुर ग्राम वर्तमान नरसिंहपुर ससोन (केग्रोझरगढ) है।[5]

---

1. डॉ० जयकान्त मिश्र द्वारा सम्पादित तथा अखिल भारतीय मैथिली साहित्य समिति, इलाहाबाद द्वारा 1961 मे प्रकाशित।
2. डॉ जयकान्त मिश्र, गौरीस्वयंवर नाटक की भूमिका, पृ० 2–3।
3. डॉ जयकान्त मिश्र द्वारा सम्पादित तथा मैथिली साहित्य-समिति, तीरभुक्ति, इलाहाबाद से 1960 ई० में प्रकाशित। इस नाटक का एक अन्य संस्करण उपेन्द्र झा द्वारा 1958 ई० में दरभङ्गा से प्रकाशित किया गया है।
4. मञ्जुमहोदय नाटक, दशमाङ्क अन्तिम पद्य।
5. बाणाम्बराचार्य, मञ्जुमहोदय नाटक की भूमिका, पृ० 4।

नीलकण्ठ मिश्र ने अपने आश्रयदाता जनार्दन भञ्ज (1792–1831 ई०) का उल्लेख किया है ।[1] जनार्दन मञ्ज केम्रोझर के राजा थे । अत नीलकण्ठ मिश्र का समय अट्ठारहवी शती का अन्त और उन्नीसवी शती का आरम्भ है ।

नीलकण्ठ मिश्र की जन्मतिथि निश्चित नहीं है । बाणाम्बराचार्य का अनुमान है कि नीलकण्ठ मिश्र जनार्दन भञ्ज के पिता बलभद्र भञ्ज (1764–92 ई०) के समय मे उत्पन्न हुए होंगे ।

नीलकण्ठ मिश्र की एक ही कृति प्राप्त हुई है—भञ्जमहोदय नाटक ।

भञ्जमहोदय नाटक

भञ्जमहोदय नाटक[2] मे दस अङ्क हैं । इसमे केम्रोझर राज्य के इतिहास एव भूगोल का वर्णन है । इसीलिये विनायक मिश्र[3] ने इस नाटक को केम्रोझर राज्य का गजेटियर कहा है ।

केदारनाथ महापात्र[4] के अनुसार भञ्जमहोदय नाटक की रचना अट्ठारहवी शती के अन्तिम दशक मे की गई थी ।

भोलानाथ शुक्ल

भोलानाथ शुक्ल के पिता का नाम नन्दराम तथा माता का नाम पौष्करी देवी था । नन्दराम अनेक शास्त्रो के विद्वान् थे । यह कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे । यह देवलीपुर गङ्गा और यमुना के मध्यवर्ती भाग मे स्थित है ।

भोलानाथ सस्कृत और हिन्दी भाषाओ के विद्वान् थे । इन्होंने सस्कृत मे कर्णकुतूहलनाटक तथा कृष्णलीलामृत काव्य की रचना की थी । इनके अतिरिक्त भोलानाथ की निम्नलिखित चौदह हिन्दी कृतियां भी मिलती हैं—

(1) सुखनिवास

सुखनिवास गीतगोविन्द का ब्रजभाषा मे भावात्मक पद्यानुवाद है ।

(2) नायिका भेद

नायिका-भेद ब्रजभाषा मे लिखा अलङ्कार ग्रन्थ है ।

---

1. भञ्जमहोदय नाटक अङ्क 8.10 ।
2 बाणाम्बराचार्य द्वारा सम्पादित तथा उड़िया लिपि में कटक से 1946 ई० मे प्रकाशित ।
3 विनायक मिश्र, बाणाम्बराचार्य के भञ्जमहोदय सस्करण की भूमिका पृ० 3 ।
4. केदारनाथ महापात्र, ए डेस्क्रिप्टिव केटेलाग आफ सस्कृत मेनुस्क्रिप्टस ऑफ ओरीसा इन द कलेक्शन ऑफ ओरीसा स्टेट म्यूजियम, भुवनेश्वर, वाल्यूम 2, भुवनेश्वर. 1960, पृ० 199 ।

(3) नखशिख-भाषा

नखशिख-भाषा शृङ्गारिक ग्रन्थ है।

(4) नवलानुराग

नवलानुराग नीति तथा प्रशस्तिविषयक ग्रन्थ है।

(5) युगल-विलास

युगलविलास शृङ्गार-विषयक ग्रन्थ है।

(6) इश्कलता

इश्कलता पंजाबी भाषा मे लिखी गई है।

(7) लीलापच्चीसी

लीलापच्चीसी विविध विषयो के 177 पदो का संग्रह है।

(8) भगवद्गीता

भगवद्गीता हिन्दी मे गीता का पद्यानुवाद है।

(9) नैषध

नैषध श्रीहर्ष के नैषधीयचरित महाकाव्य के प्रथम सर्ग का हिन्दी मे पद्यानुवाद है।

(10) सुमनप्रकाश

सुमनप्रकाश अलङ्कार विषयक ग्रन्थ है।

(11) महाभारत का पद्यानुवाद

यह भीष्म पर्व का हिन्दी मे पद्यानुवाद है।

(12) भागवत दशम स्कन्ध का पद्यानुवाद

(13) लीला प्रकाश

लीलाप्रकाश विविध विषयो के पदो का संग्रह है।

(14) प्रेमपच्चीसी

प्रेमपच्चीसी शृङ्गारविषयक 25 पदो का संग्रह है।

भोलानाथ शुक्ल के आश्रयदाता राजस्थान के भट्टराजा सदाशिव[1] जयपुर के राजा सवाई माधवसिंह प्रथम तथा प्रतापसिंह के गुरु थे। माधवसिंह ने सदाशिव को 'भट्टराजा' की उपाधि तथा जागीर प्रदान की थी।[2]

भोलानाथ के कर्णकुतूहल नाटक तथा कृष्णलीलामृत काव्य का परिचय नीचे दिया जा रहा है। ये दोनो कृतियाँ संस्कृत भाषा मे हैं।

1. कर्णकुतूहल नाटक, तृतीय कुतूहल, पुष्पिका।

2 गोपालनारायण बहुरा, कर्णकुतूहल नाटक की भूमिका पृ० 9।

(1) कर्णकुतूहल नाटक

कर्णकुतूहल नाटक[1] म तीन कुतूहल हैं। ये तीन कुतूहल क्रमश राजवर्णन, सम्भोग तथा मगल है ।

(2) श्रीकृष्णलीलामृत काव्य

श्रीकृष्णलीलामृत काव्य[2] मे 104 पद्यो मे *श्रीकृष्ण की लीलाम्रो का* वर्णन है ।

वैद्यनाथ वाचस्पति भट्टाचार्य

वैद्यनाथ वाचस्पति भट्टाचार्य बङ्गदेशीय ब्राह्मण थे। इनके माता-पिता तथा जन्मस्थान के विषय मे कुछ निश्चित ज्ञान नही है।

वैद्यनाथ को बगाल मे नवद्वीप (नदिया) के राजा ईश्वरचन्द्र राय (1788-1802 ई०) का ग्राश्रय प्राप्त था ।[3] एम० कृष्णामाचार्य[4] ने बिना कोई प्रमाण दिये वैद्यनाथ का समय 19वी शती का मध्य भाग लिखा है ।

वैद्यनाथ की एक ही कृति मिलती है—चित्रयज्ञ नाटक ।

चित्रयज्ञ नाटक

चित्रयज्ञ नाटक[5] मे वीरभद्र द्वारा दक्षयज्ञ के विध्वस किये जाने की कथा का वर्णन है। इसमे पाँच ग्रङ्क हैं।

माधवदास चक्रवर्ती[6] ने चित्रयज्ञ नाटक का उल्लेख करते हुए वैद्यनाथ का समय 18 वी शती बताया है।

शीघ्रकवीश्वर जगन्नाथ

शीघ्रकवीश्वर जगन्नाथ का जन्म 1758 ई० मे गुजरात के नहानी बोरू ग्राम मे हुग्रा था ।[7] यह वत्सगोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम कुबेर था।

---

1 गोपालनारायण बहुरा द्वारा सम्पादित तथा राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला ग्रन्थाङ्क 26 मे जयपुर से प्रकाशित।

2 गोपालनारायण बहुरा द्वारा सम्पादित तथा राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला ग्रन्थाङ्क 26 मे कर्णकुतूहल नाटक के साथ जयपुर से प्रकाशित।

3 चित्रयज्ञ नाटक, प्रस्तावना, पद्य 2।

4 एम० कृष्णामाचार्य, *'ए हिस्ट्री ग्राफ क्लासीकल सस्कृत लिटरेचर' मद्रास 1937,* पृ० 666।

5 यह अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति सस्कृत कालेज कलकत्ता में मिलती है। देखिये—सस्कृत कालेज कलकत्ता हस्तलिखित ग्रन्थ न० 224।

6 माधवदास चक्रवर्ती, 'ए शोर्ट हिस्ट्री ग्राफ सस्कृत लिटरेचर' कलकत्ता 1936, पृ० 399।

7. जगन्नाथ कवि के व्यक्तिगत जीवन के विषय में यहाँ दी गई सूचनायें 'माध्यमहोदय नाटक' के सम्पादक देवशङ्कर वैकुण्ठजी भट्ट की भूमिका पर आधारित हैं।

जगन्नाथ ने अपने पिता से सस्कृत की शिक्षा प्राप्त की थी। जगन्नाथ ने 40 दिन के उपवास से बहुचरा देवी को प्रसन्न कर उनसे विद्या का वर प्राप्त किया था। इससे इन्हें आशुकवित्व की प्राप्ति हुई और यह 'शीघ्रकवीश्वर' के नाम से प्रख्यात हुए।

जगन्नाथ अपनी उन्नति के लिये भावनगर गये। वहाँ इन्होंने भाग्यमहोदय नाटक लिखा। इससे प्रसन्न होकर भावनगर के राजा बखतसिंह ने इनको वार्षिक जागीर तथा रहने के लिये घर दिया। उसी समय से यह भावनगर मे रहने लगे।

1796 ई० मे जगन्नाथ पूना गये। उस समय पेशवा बाजीराव द्वितीय पूना के राजा थे, पर राज्य का सम्पूर्ण भार नाना फडनवीस ही सँभालते थे। जगन्नाथ की कवित्व प्रतिभा से प्रसन्न होकर नाना फडनवीस ने इन्हें पेशवा राज्य की ओर से 700 रुपये प्रतिवर्ष देना निश्चित किया था, परन्तु नाना फडनवीस को कारावास हो जाने से उनका यह निर्णय कार्यान्वित न हो सका।

जगन्नाथ के बडौदा जाने पर वहाँ के राजा गोविन्दराव गायकवाड ने इनके आशुकवित्व से प्रसन्न होकर इन्हे 200 रुपये वार्षिक बाँध दिये थे।

जगन्नाथ कवि का भावनगर, पूना तथा बडौदा तीनो राज्यसभाओ मे सम्मान था।

जगन्नाथ चित्र, नृत्य तथा सगीत कलाओ मे भी प्रवीण थे। इनके द्वारा निर्मित हस की एक प्रतिमा वास्तविक हस के समान नीर-क्षीर को पृथक्-पृथक् करती थी तथा मोती-भक्षण कर पीछे से निकाल देती थी। इसका निर्माण इन्होने भावनगर के राजा बखतसिंह के पुत्र विजयसिंह के लिये किया था।

जगन्नाथ ने सुपारी पर तथा चने के आधे दाने पर हाथी का चित्र बनाया था। जगन्नाथ जिस भूमि पर नृत्य करते थे, उस पर गुलाल डाल दिया जाता था। यह इस प्रकार नृत्य करते थे कि उस भूमि पर अनेक चित्र भी बनते जाते थे। इस प्रकार जगन्नाथ एक साथ ही नृत्य, सगीत और चित्र तीनो कलाओ का प्रदर्शन करते थे।

जगन्नाथ को काव्यशास्त्र तथा तथा रसालकार से विशेष प्रेम था। जगन्नाथ की निम्नलिखित कृतियाँ मिलती हैं—

(1) भाग्यमहोदय नाटक

भाग्यमहोदय नाटक[1] मे दो अङ्क हैं। इसमे भावनगर के राजा बखतसिंह के यश का वर्णन है। बलवन्तसिंह को इस नाटक मे भाग्यसिंह कहा गया है। इस नाटक की रचना जगन्नाथ ने सवत् 1852–1795 ई० मे की थी।

---

1 वेदशङ्कर बैकुण्ठजी भट्ट द्वारा सम्पादित तथा 1912 ई० मे सरस्वती प्रेस भावनगर (गुजरात) द्वारा प्रकाशित।

(2) वृद्धवशवर्णन

वृद्धवशवर्णन मे सेनापति दोसा दवे के युद्ध का वर्णन है ।

(3) नागरमहोदय

नागरमहोदय मे नागर जाति का वर्णन है ।

(4) श्रीगोविन्दरावविजय

श्रीगोविन्दरावविजय मे गायकवाड राजा गोविन्दराव की विजय का वर्णन है ।

(5) अमृतबीजस्तवन

अमृतबीजस्तवन 200 श्लोको का सग्रह है ।

(6) रमारमणाङ्घ्रिसरोजवर्णन

रमारमणाङ्घ्रिसरोजवर्णन मे विष्णु का स्तवन है ।

(7) अमरेली के नागनाथमहादेवमन्दिर का शिलालेख ।

(8) प्रासंगिक प्रास्ताविक श्लोक और हाटकेश्वराष्टक

(9) प्रासंगिक प्राकृत सस्कृत श्लोकों की पादपूर्ति ।

वेङ्कटाचार्य (तृतीय)

वेङ्कटाचार्य तृतीय को अय्या वेङ्कटाचार्य तथा कीर्ति वेङ्कटाचार्य भी कहा जाता है । इनके पिता का नाम अण्णयाचार्य तथा पितामह का नाम श्रीनिवास तातार्य था । वेङ्कटाचार्य तृतीय के पितृव्य वेङ्कटाचार्य द्वितीय तथा श्रीनिवासाचार्य द्वितीय थे । वेङ्कटाचार्य तृतीय अपने पितृव्य श्रीनिवासाचार्य द्वितीय तथा अग्रज श्रीनिवासाचार्य तृतीय के शिष्य थे ।[1]

वेङ्कटाचार्य तृतीय को सुरपुरम् के कौशलवशीय राजा बहिरी पामिनायक के पुत्र वेङ्कट नायक (1773–1802 ई०) का आश्रय प्राप्त था । ये वेङ्कटनायक के गुरु भी थे ।[2]

वेङ्कटाचार्य तृतीय ने शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक मे अपने को 'श्रीमच्छ्रीशैलवशकलशपारावारपूर्णचन्द्र' 'प्रचण्डपण्डिताखण्डलाखण्डितमण्डलीसार्वभौम' 'अभिनवकवितार्किककण्ठीरव' तथा 'सर्वतन्त्रस्वतन्त्रशिरोमणि' कहा है ।

वेङ्कटाचार्य तृतीय की निम्नलिखित कृतियाँ मिलती है....

---

1. डा० वे. राघवन्, 'द सुरपुरम् चीफ्स एण्ड सम सस्कृत राइटर्स पेट्रोनाइज्ड बाय देम' जर्नल आफ द आन्ध्र हिस्टोरीकल रिसर्च सोसायटी, राजमुन्दरी-वाल्यूम 13, पार्ट 1, एप्रिल 1940, पृ० 18 ।

2. वेङ्कटाचार्य तृतीय कृत अलङ्कार कौस्तुभ (मद्रास ट्रायनियल केटेलाग 369)

(1) शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक

शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक[1] मे पाँच अङ्क हैं। इसकी वस्तु पारिजातहरण की प्रसिद्ध पौराणिक कथा है।

(2) गजसूत्रार्थ अथवा गजसूत्रवादार्थ

गजसूत्रार्थ[2] व्याकरण का ग्रन्थ है।

(3) कृष्णभावशतक

कृष्णभावशतक[3] मे श्रीकृष्ण की स्तुति है.

(4) अलङ्कारकौस्तुभ

अलङ्कारकौस्तुभ[4] अलङ्कार का ग्रन्थ है।

(5) अचलात्मजापरिणयमु

अचलात्मजापरिणयमु[5] तेलुगु भाषा का द्विसन्धानकाव्य है। इसमे शिव और पार्वती के विवाह का वर्णन है।

(6) शृङ्गारलहरी अथवा लक्ष्मीशतक

शृङ्गारलहरी[6] शृङ्गारविषयक गीतकाव्य है।

(7) दशावतारस्तोत्र

दशावतारस्तोत्र[7] मे विष्णु के दस अवतारो की स्तुति है।

---

1 यह अप्रकाशित है। इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ गवनमेंट ओरियण्टल मेनुस्क्रिप्टस लायब्रेरी, मद्रास, ओरियेण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट मैसूर, सरस्वती भण्डार मैसूर तथा इंडिया आफिस लायब्रेरी लन्दन मे मिलती हैं। देखिये मद्रास आर न० 5501 तथा एम० टी० 5439 बी, ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, मैसूर हस्तलिखित ग्रन्थ न० 124 590, 939, 1897, 3045 तथा 3905, सरस्वती भण्डार मसूर हस्तलिखित ग्रन्थ न० 43, इण्डिया आफिस लायब्रेरी, लन्दन केटेलाग नं० 7426।

2 यह अप्रकाशित है। इसकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ गवर्नमेंट ओरियण्टल मेनुस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी मद्रास मे मिलती हैं। देखिये एम डी 1520 तथा एम टी 4264 (बी)।

3. यह अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति गवर्नमेंट ओरियण्टल मेनुस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी मद्रास में मिलती है। देखिये एम डी 9901।

4 यह अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति गवर्नमेंट ओरियेण्टल मेनुस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी मद्रास मे मिलती है। देखिये, एम टी 369 (ए)।

5 यह अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति गवर्नमेंट ओरियेण्टल मेनुस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी मद्रास में मिलती है। देखिये, मद्रास तेलुगु ट्रायनियल केटलोग आर 41 (ए)।

6 यह अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति गवर्नमेंट ओरिएण्टल लायब्रेरी मैसूर में मिलती है। देखिये, माइसोर केटलोग 1, पृ० 259।

7 ग्रन्थ सख्या 7, 8 तथा 9 अप्रकाशित हैं। इन ग्रन्थों का उल्लेख उस अपरिचित सूची में किया गया है, जो डॉ० वे० राघवन् के समीप 'न्यू केटेलोगस केटेलोगोरम्' का निर्माण करने के सम्बन्ध में आप्तकवि विद्वन्मणि वेङ्कटाचार्य द्वारा भेजी गई थी।

(8) हयग्रीवदण्डक

हयग्रीवदण्डक में विष्णु के हयग्रीव अवतार की स्तुति है।

(9) यतिराजदण्डक

यतिराजदण्डक में यतिराज रामानुजाचार्य की स्तुति है।

(10) झंझामारुत

झंझामारुत[1] में गदाधर के मत का खण्डन किया गया है।

वेङ्कटाचार्य तृतीय को तिरुमल बुक्कपत्तनम् वेङ्कटाचार्य भी कहा जाता है। एम० कृष्णमाचार्य[2] ने शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक का उल्लेख किया है।

वीरराघव

वीरराघव को अण्णावप्पगार भी कहा जाता है।[3] इनके पिता का नाम नरसिंहसूरि था। यह ब्राह्मण थे। इनका गोत्र वाधूल था। यह दाशरथि वंश में उत्पन्न हुए थे।[4]

वीरराघव का जन्म मद्रास के चिंगिलपुट जिले में तिरुमलसाई (भूसुरपुर) ग्राम में 1770 ई० में हुआ था। ये 48 वर्ष तक जीवित रहे।[5] महावीरचरित की टीका की पुष्पिका के अनुसार वीरराघव मैसूर के निवासी थे।[6] यह मैसूर तथा अन्य प्रान्तों में अत्यन्त प्रसिद्ध थे। इनके कोई पुत्र नहीं था। इनके दौहित्र आर० नरसिंहाचार्य भूसुरपुर में इनके घर में रहते थे।[7]

बाबूलाल शुक्ल शास्त्री ने वीरराघव का स्थितिकाल 1770 ई० निर्दिष्ट किया है।[8]

वीरराघव की निम्नलिखित कृतियां मिलती हैं—

(1) मलयजाकल्याण नाटिका

मलयजा-कल्याण नाटिका[9] में तोण्डीर (तेलगाना) देश के राजा देवराज का मलयराजपुत्री मलयजा के साथ विवाह का वर्णन है। इसमें चार अङ्क हैं—

---

1. माइसौर कैटेलाग 1, पृ० 259।
2. एम० कृष्णमाचार्य, 'ए हिस्ट्री आफ क्लासीकल संस्कृत लिटरेचर, मद्रास 1937 पृ० 787
3. एम० कृष्णमाचार्य, वही, पृ० 624।
4. मलयजाकल्याण, प्रस्तावना।
5. एम० कृष्णमाचार्य पूर्वोक्त, पृ० 624।
6. महावीरचरित (निर्णय सागर संस्करण) पृ० 225।
7. बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, मलयजाकल्याणम्, आमुख, पृ० 1।
8. बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, वही, पृ० 1।
9. बाबूलाल शुक्ल शास्त्री द्वारा सम्पादित तथा जाम्बवती देवी शुक्ला, 1265, नेपियर टाउन जबलपुर द्वारा प्रकाशित।

(2) उत्तररामचरित टीका

उत्तररामचरित टीका का नाम भावतलस्पर्शिनी है। यह भवभूति के उत्तररामचरित पर लिखी गई है।

(3) महावीरचरित टीका

महावीरचरित टीका[1] का नाम भावप्रद्योतिनी है। यह भवभूति के महावीरचरित पर लिखी गई है।

(4) भक्तिसारोदय काव्य

भक्तिसारोदय[2] भक्तिविषयक काव्य है।

उपर्युक्त ग्रन्थो के अतिरिक्त वीरराघव ने कतिपय दार्शनिक ग्रन्थ भी लिखे थे।

मलयजाकल्याण नाटिका वीरराघव के नाट्यशास्त्रीय ज्ञान की परिपक्वता का ज्वलन्त उदाहरण है। वीरराघव के पाण्डित्य का गाम्भीर्य उनके द्वारा भवभूति के नाटको पर लिखी गई टीकाओ मे परिलक्षित होता है।

शक्तिवल्लभ भट्टाचार्य

शक्तिवल्लभ भट्टाचार्य के पिता का नाम लक्ष्मीनारायण था। लक्ष्मीनारायण नेपाल नरेश पृथ्वीनारायण द्वारा सम्मानित थे। शक्तिवल्लभ का उपनाम अर्ज्याल था। यह कान्यकुब्ज कुल मे उत्पन्न आत्रेयगोत्रीय ब्राह्मण थे। यह गोर्वानगर (नेपाल) के निवासी थे।[3]

शक्तिवल्लभ संगीत, राजनीति तथा शास्त्र मे निपुण थे। इन्हें नेपाल के राजा रणबहादुर शाह (1777–99 ई०, 1804–5 ई०) का आश्रय प्राप्त था।[4]

शक्तिवल्लभ शिव तथा कृष्ण के उपासक थे। यह अपनी कवित्वशक्ति को कृष्ण की कृपा से स्वयमुद्भूत मानते थे।[5]

शक्तिवल्लभ की केवल एक ही कृति मिलती है—जयरत्नाकर नाटक।

---

1. यह निर्णय सागर प्रेस बम्बई द्वारा महावीरचरित नाटक के साथ ही प्रकाशित की गई है।
2. यह अभी अप्रकाशित है।
3. जयरत्नाकर नाटक, प्रस्तावना।
4. वही।
5. वही, प्रथम कल्लोल, पद्य 10-11।

जयरत्नाकर नाटक

जयरत्नाकर नाटक[1] में नेपाल नरेश रणबहादुर की विजययात्रा का वर्णन है। इसमे 11 कल्लोल हैं। इस नाटक की रचना शक्तिवल्लभ ने शक 1714–1792 ई० मे नेपाल मे की थी।

कविरत्न पुरोहित सदाशिव उद्गाता

सदाशिव का जन्म वत्स कुल मे हुआ था। यह ब्राह्मण थे। इनका कौटुम्बिक उपनाम उद्गाता था। यह उत्कल प्रदेश मे रहते थे। धारकोटे (उत्कलप्रदेश) के राजा ने इन्हें कविरत्न-पुरोहित की पदवी दी थी।

सदाशिव का समय अट्ठारहवी शती है।[2] सदाशिव के वशज अब भी धारकोटे के तिलोत्तमपुर मे रहते हैं।

प्रमुदितगोविन्द नाटक

प्रमुदितगोविन्द नाटक[3] मे सात अङ्क हैं। इसकी वस्तु समुद्रमन्थन की प्रसिद्ध पौराणिक कथा है।

जातवेद

जातवेद केरल प्रदेश के निवासी थे। इनकी एक ही कृति मिलती है—पूर्णपुरुषार्थचन्द्रोदय नाटक। इस नाटक की एक हस्तलिखित प्रति[4] के अन्त मे लिखे कतिपय पद्यो के आधार पर कर्त्ता का नाम जातवेद बताया गया है। इन पद्यो से यह ज्ञात होता है कि इस नाटक का कर्त्ता केरल के आठ प्रसिद्ध नम्बूतिरी परिवारो मे से किसी एक मे उत्पन्न हुआ था। उसका गोत्र विश्वामित्र था। उसने सन्यास ग्रहण करने के पश्चात् इस नाटक की रचना की थी।

उपर्युक्त पद्यो के आधार पर कतिपय विद्वानो ने यह विचार प्रकट किया है कि नाटककार जातवेद केरल के विश्वामित्रगोत्रीय कुडल्लूर परिवार का एक सदस्य था।

---

1. धनवज्र वज्राचार्य तथा ज्ञानमणि नेपाल द्वारा सम्पादित और नेपाली भाषा में अनूदित। इस ग्रन्थका विस्तृत उपोद्घात नेपाली भाषा में नयराज पन्त द्वारा लिखा गया है तथा उसके पूर्व भाग में सलग्न है। यह ग्रन्थ विक्रम संवत् 2014 मे नेपाल सांस्कृतिक परिषद् द्वारा प्रकाशित किया गया है।
2. केदारनाथ महापात्र ए डिस्क्रिप्टिव केटलाग आफ सस्कृत मेनुस्क्रिप्ट्स आफ ओरीसा इन द कलेक्शन आफ द ओरीसा स्टेट म्यूजियम भुवनेश्वर, वाल्यूम 2, 1960, पृ० 197।
3. यह अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति गवर्नमेंट ओरियेण्टल मेनुस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी मद्रास (आर न० 4222) तथा दूसरी हस्तलिखित प्रति स्टेट म्यूजियम ओरीसा, भुवनेश्वर (एस एम 5) में मिलती है।
4. गवर्नमेंट ओरियेण्टल मेनुस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी, मद्रास, हस्तलिखित ग्रन्थ सख्या 12541।

एम० कृष्णमाचार्य[1] के अनुसार जातवेद 1800 ई० के समीप मालाबार मे रहते थे। डॉ० के० कुञ्जुनि राजा ने कहा है कि जातवेद के विषय मे निश्चित रूप से कुछ भी कहना असम्भव है। डॉ० राजा के अनुसार पूर्णपुरुषार्थचन्द्रोदय नाटक की उपर्युक्त हस्तलिखित प्रति के अन्तिम पद्यो मे से एक मे लिखित 'दक्षिणाशगृह' पद से यह अनुमान होता है कि जातवेद तेक्केटम् अथवा तेक्केपाट्टु परिवार के सदस्य थे।[2]

पूर्णपुरुषार्थचन्द्रोदय

पूर्णपुरुषार्थचन्द्रोदय नाटक[3] म पाँच अङ्क हैं। इसमे राजा दशाश्व (जीवात्मा) का आनन्दपक्ववल्ली (आनन्द) के साथ विवाह का वर्णन है।

मल्लारि आराध्य

मल्लारि आराध्य आन्ध्रप्रदेश म कृष्णा जिले के निवासी थे।[4] यह चागण्टि-वश मे उत्पन्न हुए थे।[5] इनके पिता का नाम शरमणाराध्य था। मल्लारि आराध्य मैसूर मे कल्याणपुर (केलडि) के सामन्त राजा वसवेश्वर के आश्रित कवि थे।[6]

एम कृष्णमाचार्य[7] ने वसवेश्वर का समय अट्ठारहवी शती बताया है। वसवेश्वर कन्दुकूरिवश मे उत्पन्न हुए थे। यह गुर्वाम्बा तथा मल्लिकार्जुन के पुत्र थे।[8] यह वीरशैव सम्प्रदाय के अनुयायी थे।

कल्याणपुर पर वसवेश्वर नामक दो राजाओ ने राज्य किया[9] प्रथम वस–वेश्वर सोमशेखर तथा चेनाम्बा के पुत्र थे तथा उनका शासनकाल 1697 ई० से 1714 ई० तक था। द्वितीय वसवेश्वर का शासन काल 1739 ई० से 1754 ई० तक था। प्रथम वसवेश्वर अपन धार्मिक कार्यों के लिये प्रसिद्ध हैं तथा द्वितीय वस-वेश्वर योद्धा और सनानी के रूप मे विख्यात हैं।

---

1 एम० कृष्णमाचार्य, ए हिस्ट्री आफ क्लासीकल सस्कृत लिटरेचर, मद्रास 1937, पृ० 681

2 डॉ के० कुञ्जुन्निराजा, कन्ट्रीब्यूशन आफ केरल टू संस्कृत लिटरेचर, मद्रास 1958, पृ 220

3. यह अप्रकाशित है। इसकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ गवर्नमेंट ओरियेण्टल मेनुस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी, मद्रास में मिलती हैं। देखिए मद्रास हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या 12540 तथा 12541।

4 डॉ श्रीधर भास्कर वर्णेकर, अर्वाचीन सस्कृत साहित्य, नागपुर 1963, पृ० 192।

5 शिवलिङ्गसूर्योदय, 5 45

6 वही 1 6।

7. एम० कृष्णमाचार्य, ए हिस्ट्री आफ क्लासीकल संस्कृत लिटरेचर, मद्रास 1937 पृ० 681

8 शिवलिङ्गसूर्योदय 5.44।

9 मुनगल एस० पट्टाभिरमैह श्रीवत्सनाथ के सेवन्तिकापरिणय नाटक की भूमिका (श्रीधर प्रेस त्रिवेन्द्रम् से 1921 ई० में प्रकाशित) पृ० 4-5।

शिवलिङ्गसूर्योदय की प्रस्तावना मे वर्णित वसवेश्वर ने एलूर तथा काण्ड-वलक्य आदि देशो के राजाओ को पराजित किया था। इससे यह स्पष्ट होता है कि मल्लारि आराध्य के आश्रयदाता राजा वसवेश्वर द्वितीय (1739–54 ई०) थे।

मल्लारि आराध्य की केवल एक ही कृति मिलती है....शिवलिङ्गसूर्योदय नाटक।

शिवलिङ्गसूर्योदय नाटक

शिवलिङ्गसूर्योदय नाटक[1] में पाँच अङ्क हैं। इसम शिवलिङ्गरूपी सूर्य के उदय से अज्ञान के विनाश तथा सुज्ञान की विजय का वर्णन है। यह प्रतीकात्मक नाटक है।

गौरीकान्त द्विज

गौरीकान्त द्विज के पिता का नाम गोविन्द था। यह भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण थे।[2] गौरीकान्त द्विज तथा उनके पिता शिवभक्त थे।

गौरीकान्त द्विज असमप्रदेश मे ब्रह्मपुत्र के समीप भस्माचल पर रहते थे। भस्माचल पर विराजमान उमानन्द शिव की कृपा से गौरीकान्त द्विज ने विघ्नेश-जन्मोदय नाटक की रचना की थी।[3]

गौरीकान्त द्विज के पिता गोविन्द काव्य, ज्योतिष तथा अन्य शास्त्रो के विद्वान् थे। गौरीकान्त द्विज को कामरूप के आहोम राजा कमलेश्वरसिंह (1795–1810 ई०) का आश्रय प्राप्त था।[4]

गौरीकान्त द्विज ने विघ्नेशजन्मोदय नाटक की रचना शक 1821-1799 ई. मे की थी।[5] एक ब्राह्मण ने गौरीकान्त द्विज को कविसूर्य की उपाधि प्रदान की थी।[6]

गौरीकान्त द्विज की एक ही कृति प्राप्त होती है... विघ्नेशजन्मोदय नाटक।

विघ्नेशजन्मोदय नाटक

विघ्नेशजन्मोदय[7] नाटक मे तीन अङ्क हैं। इसमे गणेश की उत्पत्ति, शनैश्चर के दृष्टिपात से उनका शिर पृथक् होकर गोलोक मे जाना, विष्णु द्वारा गणेश के हाथी का शिर लगाना, गणेश का पुष्टि के साथ विवाह, परशुराम द्वारा गणेश का एक दन्त भङ्ग किया जाना तथा परशुराम की स्तुति से प्रसन्न पार्वती का वर देना आदि गणेश-कथा वर्णित हैं।

---

1 यह अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति गवर्नमेंट ओरियेण्टल मेनुस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी मद्रास में मिलती है। देखिए मद्रास, हस्तलिखित ग्रन्थ सख्या आर 2282।

2. विघ्नेशजन्मोदय, 1 60।

3. विघ्नेशजन्मोदय, प्रस्तावना।

4 सत्येन्द्रनाथ शर्मा, रूपकत्रयम् की भूमिका।

5. विघ्नेशजन्मोदय, तृतीयाङ्क का अन्तिम पद्य।

6. विघ्नेशजन्मोदय, प्रथमाङ्क का अन्तिम पद्य।

7. सत्येन्द्रनाथ शर्मा द्वारा सम्पादित तथा 'रूपकत्रयम्' में असम साहित्य सभा, जोरहाट द्वारा प्रकाशित।

तृतीय अध्याय

वस्तु-अनुशीलन

रूपककार को अपने रूपक की कथावस्तु नाट्यशास्त्रीय नियमो के अनुसार प्रस्तुत करनी पडती है। उपजीव्य काव्य से सगृहीत मूलकथा मे रूपककार अपनी अभिरुचि, पात्रो के चरित्र मे उत्कर्षाधान, अभीष्ट रससिद्धि तथा अन्य नाट्य-शास्त्रीय नियमो का पालन करने के लिए अपनी कल्पनाशक्ति के द्वारा कुछ मौलिक परिवर्तन तथा परिवर्धन करता है।

अट्ठारहवी शताब्दी के कतिपय रूपककारो ने रूपको मे अप्राकृत तत्वों का सन्निवेश कर उन्हें कृत्रिम बना दिया है। कतिपय रूपककारो ने सुदीर्घ दार्शनिक सवादो द्वारा कथावस्तु की गतिशीलता मे शिथिलता उत्पन्न कर दी है, परन्तु कति-पय रूपककारों ने कथावस्तु के समुचित सघटन तथा गतिशीलता की ओर विशेष ध्यान दिया है।

कथावस्तु का स्रोत

अट्ठारहवी शती के अधिकाश रूपकों की कथावस्तु रामायण, महाभारत तथा *विभिन्न पुराणो से सगृहीत की गई है। इस शती मे विरचित भाणो तथा प्रहसनों की* कथायें लोक जीवन से ली गई हैं। कथावस्तु के आधार पर इस शती के रूपको का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

1 पारम्परिक रूपक।
2 *सामाजिक रूपक।*
3 ऐतिहासिक रूपक।
4 प्रतीक रूपक।
5 अन्य रूपक।

रूपकों की कथावस्तु

पारम्परिक रूपक

अट्ठारहवीं शती मे पारम्परिक रूपक अधिक सख्या मे प्राप्त होते हैं। ये रूपक रामायण, महाभारत तथा अन्य पुराणो पर आधारित हैं।

प्रमुदितगोविन्द नाटक

प्रमुदितगोविन्द नाटक समुद्रमन्थन की प्रसिद्ध पौराणिक कथा पर आधारित है।[1] इस नाटक की कथा मुख्यत भागवत पुराण से ली गई है। नाटककार ने मूल कथा मे परिवर्तन तथा परिवर्धन कर इस नाटक को कथावस्तु के रूप मे प्रस्तुत किया है। भागवत मे दुर्वासा के शाप देने पर इन्द्र अत्यन्त दीन होकर उनसे क्षमा याचना करते हैं। किन्तु समुद्रमन्थन नाटक मे इन्द्र इस प्रकार अनुनय-विनय नहीं करते।

केवल देवो द्वारा समुद्रमन्थन को दुष्कर समझकर विष्णु दैत्यो और नागो से चरो द्वारा सन्धि स्थापित करते हैं। समुद्रमन्थन के लिये दैत्यो और नागो से सन्धि करते समय देवो द्वारा उनके पास दूतो से सन्धिपत्र का भेजना नाटककार की अपनी सूझ है।

इसी प्रकार समुद्रमन्थन से पूर्व ही दैत्यो को विष्णु का केवल देवो मे ही अमृत वितरित करने का निश्चय ज्ञात हो जाना तथा उनके द्वारा मन्दराचल के आसुरी माया से अपहृत कर लेने पर इन्द्र का दैत्यकन्या शची से विवाह कर आसुरी माया को आसुरी माया द्वारा ही नष्ट करना भी नाटककार की अपनी मौलिक कल्पना है।

समुद्रमन्थन नाटक मे समुद्र स्वय प्रकट होकर विष्णु और लक्ष्मी का विवाह सम्पन्न कराता है। इसके अतिरिक्त नाटककार ने नाटकीय दृष्टि से मूलकथा मे अनेक सूक्ष्म परिवर्तन किये हैं। नाट्यनिर्देशो के साथ ही कवि ने अर्थोपक्षेपको द्वारा भी कथाशो की सूचना दी है। इस नाटक की वस्तु सुसगठित है।

सीतापरिणय नाटक

---

1. भागवत पुराण 8 5–12, महाभारत आदि पर्व 17–19, विष्णु-पुराण प्रथम अश अध्याय 9, पद्मपुराण ब्रह्मखण्ड, सृष्टिखण्ड, विष्णुधर्मोत्तर पुराण प्रथम खण्ड अध्याय 40–43, मत्स्यपुराण 248–250 कूर्मपुराण पूर्वार्द्ध प्रथम अध्याय, ब्रह्माण्डपुराण अनुषगपाद अध्याय 25, स्कन्द महापुराण, माहेश्वरखण्ड के अन्तर्गत केदारखण्ड ।

नीलापरिणय नाटक की कथावस्तु का स्रोत निश्चित रूप से ज्ञात नही है। सम्भवत: यह दक्षिण भारत के किसी स्थलपुराण से ली गई है। पृथ्वी के शाप से नीलादेवी मर्त्यलोक मे चम्पकमञ्जरी के रूप मे अवतीर्ण होती है। विष्णु भी गोप्रलय तथा गोमिल मुनियो पर अनुग्रह करने के लिए राजगोपाल के रूप मे अवतार लेते हैं। नीला देवी का प्रतिहार सुदामा स्थूलाक्ष राक्षस होकर पृथ्वी पर जन्म लेता है। राजगोपाल और चम्पकमञ्जरी का परस्पर अनुराग हो जाता है। स्थूलाक्ष गोप्रलयमुनि के यज्ञ तथा राजगोपाल और चम्पकमञ्जरी के परिणय मे विघ्न उपस्थित करता है। गरुड स्थूलाक्ष का वध करता है। इससे गोप्रलय का यज्ञ निर्विघ्न सम्पन्न होता है। गोप्रलय तथा नारदादि मुनि प्रसन्न होकर राजगोपाल तथा चम्पकमञ्जरी का विवाह करा देते हैं।

नीलापरिणय नाटक की कथावस्तु सुसगठित है। कथावस्तु के समुचित निर्वाह के लिये यथास्थान नाट्यनिर्देशो तथा अर्थोक्षेपको का प्रयोग किया गया है।

सभापतिविलास नाटक

सभापतिविलास नाटक की कथावस्तु दक्षिण भारतीय सूतसहितादि पर आधारित होने के कारण प्रख्यात है। इसमे चिदम्बर क्षेत्र के वैभव का प्रदर्शन किया गया है। यह नाटक शिव के स्थलमाहात्म्यचरित से सम्बन्धित है। इस नाटक मे वर्णित शिव का दारुवनचरित[2] विशेष रूप से कूर्ममहापुराण पर आधारित है।

नाटककार ने मूलकथा मे कतिपय परिवर्तन कर सभापतिविलास नाटक की वस्तु प्रस्तुत की है। मूलकथा मे शिव तथा विष्णु ही क्रमश विलासी (विट) तथा मोहिनी का रूप धारण कर मुनियो के समीप जाते हैं, परन्तु इस नाटक की कथावस्तु मे शिव तथा विष्णु के साथ नन्दिकेश्वर भी वहाँ जाते हैं, यद्यपि वह दूर ही स्थित रहकर शिव तथा विष्णु का कौतुक देखते हैं। कूर्ममहापुराण मे मुनियो के युवा पुत्र ही मोहिनी को देखकर कामपीडित होते हैं। परन्तु नाटकीय वस्तु मे मुनि स्वय काम के वशीभूत होकर मोहिनी का पीछा करते हैं।

मूलकथा मे मुनियो द्वारा शिव को प्रदत्त शाप के विफल होने पर मुनि शिव से पूछते हैं कि आप कौन हैं और यहाँ किसलिये आये हैं, परन्तु नाटकीय वस्तु मे शाप के असफल होने पर मुनि तान्त्रिक अभिचार करते हैं। इन अभिचारो से उत्पन्न शार्दूल सर्प तथा भूत शिवके समक्ष गर्वहीन हो जाते हैं। मुनि शिव पर यज्ञाग्नि फेंकते हैं। शिव शार्दूल को मारकर उसका चर्म पहिनते हैं, सर्प को कङ्कण बना लेते हैं, यज्ञाग्नि को हाथ मे धारण कर लेते हैं तथा भूत को अनुचर बना लेते हैं।

---

1. कूर्ममहापुराण उत्तरार्द्ध, अध्याय 38–39, लिगपुराण, अध्याय 29–34 तथा ब्रह्माण्ड-पुराण, पूर्वभाग अनुषङ्गपाद 2 अध्याय 27 में भी शिव का दारुवन चरित मिलता है।

फिर शिव डमरु बजाकर पार्वतीसहित नृत्य करते हैं। मुनिगण शिव को प्रणाम करते हैं। शिव मुनियो से कहते है कि वे मोक्षप्राप्ति के लिये वहाँ शिवलिङ्ग को प्रतिष्ठित कर पूजें।

उपजीव्य कथा मे शिव के नग्न और विकृत वेष को देखकर मुनि उन्हे भाग जाने के लिए कहते हैं। अरुन्धती शिव की पूजा करती है। मुनि शिव से अपना लिङ्ग पातित करने के लिये कहते हैं। शिव का वैसा करने पर लोको मे अनेक उत्पात होते हैं। भीत मुनि ब्रह्मा के पास जाते हैं। ब्रह्मा के कथनानुसार मुनि दारुवन मे शिवलिङ्ग को स्थापित कर पूजते हैं। इससे शिव प्रसन्न होते हैं।

सभापतिविलास नाटक मे मुनि व्याघ्रपाद तथा पतञ्जलि के तप से प्रसन्न शिव उन्हे देवो के समक्ष चिदम्बर क्षेत्र मे अपना आनन्दताण्डव दिखाते हैं। शिव का यह तिल्ववनचरित वेदव्यास के अठारह पुराणो मे नही मिलता है।

सभापतिविलास नाटक के द्वितीय अङ्क मे नाटककार ने एक गर्भाङ्क का प्रयोग किया है। इसमे कवि ने 'दारुकावनविलास' नामक एक नवीन रूपक का सन्निवेश किया है। सभापतिविलास नाटक मे द्वितीयाङ्क तथा पञ्चमाङ्क के प्रारम्भ मे क्रमश प्रवेशक तथा चूलिका का प्रयोग किया गया है।

कुमारविजय नाटक

कुमारविजय नाटक की वस्तु वीरभद्र द्वारा दक्ष-यज्ञ का विध्वस, सती का देहपरित्याग तथा हिमालय की पुत्री गौरी के रूप मे उनका जन्म, शिव को पति रूप मे प्राप्त करने के लिये गौरी का तप, गौरी का शिव के साथ विवाह तथा उनसे कार्त्तिकेय की उत्पत्ति, कार्त्तिकेय द्वारा तारकासुर का सहार तथा देवो द्वारा उनका सेनापतिपद पर अभिषेक की प्रसिद्ध पौराणिक कथा है। यह वस्तु प्रधानतः स्कन्दपुराण से ली गई है।[1] अपनी अभिरुचि तथा नाट्यनियमो का पालन करने के लिए कवि ने मूलकथा मे यत्र तत्र परिवर्तन किये हैं।

---

1. स्कन्दपुराण माहेश्वरखण्ड के अन्तर्गत केदारखण्ड के अध्याय 1–5 तथा 20–30, कौमारिक खण्ड अध्याय 22–34, काशीखण्ड अध्याय 87–89, अवन्तीखण्ड,अध्याय 34, *इसके अतिरिक्त यह कथा महाभारत तथा निम्नलिखित पुराणों में भी मिलती है। देखिये—* महाभारत शांतिपर्व के अन्तर्गत मोक्षधर्मपर्व के अध्याय 283–84, अनुशासन पर्व के दानधर्म पर्व के अध्याय 85–86, श्रीमद्भागवत चतुर्थ स्कन्ध अध्याय 2–7, विष्णुधर्मोत्तर पुराण प्रथम खण्ड अध्याय 110, 228, 229, 230, 234, 235 वायुपुराण पूर्वार्द्ध प्रक्रियापाद अध्याय 30, कूर्मपुराण अध्याय 14–15, ब्रह्माण्ड पुराण मध्यम भाग उपोद्घातपाद 3 अध्याय 10, पद्मपुराण सृष्टि खण्ड अध्याय 5, 40, 41, ब्रह्मपुराण अध्याय 39–40।

दक्षयज्ञ मे ब्रह्मा, सूर्य, सरस्वती, विष्णु तथा गरुड की वीरभद्र द्वारा की गई दुर्दशा के वर्णन मे नाटककार ने अपनी कल्पना का आश्रय लिया है। उपजीव्य कथा मे वीरभद्र दक्षयज्ञ मे उपस्थित सभी देवो को दण्ड देता है, परन्तु इस नाटक की कथा में वह कुबेर को शिव के मित्र होने के कारण दण्डित नहीं करता।

मूलकथा मे सनत्कुमार सतीवियोग से दुखी शिव को आश्वस्त करने के लिये नही जाते जबकि इस नाटक मे वे ऐसा करते हैं। गौरी के जन्मोत्सव में हिमालय अपने पुरोहित को ब्राह्मणों के लिए धनराशि देने का आदेश देते हैं।

मूलकथा मे नारद गौरी के लक्षणो को देखकर हिमालय से कहते हैं कि गौरी को शिव ही पति मिलेंगे परन्तु नाटकीय कथा मे एक केरलदेशीय मौहूर्त्तिक हिमालय को यही बात बताता है।

कुमारविजय नाटक की कथावस्तु मे एक यह भी नवीनता है कि नारद गौरी को शिव में अनुरक्त करने के लिए एक अभिमन्त्रित पारिजातमाला गौरी को देते हैं। इस नाटक की कथा मे गर्भिणी गौरी के विनोद के लिये कामदेव उमयानुराग चरित नामक रूपक का अभिनय कराता है। अत. इस नाटक के चतुर्थाङ्क मे एक गर्भाङ्क का प्रयोग किया गया है। इस उमयानुरागचरित रूपक मे गौरी तथा शिव की परस्पर आसक्ति का वर्णन है।

कुमारविजय नाटक मे कुबेर को शिव का मित्र दिखाया गया है। शिव कुबेर से विनय करते हैं कि वह उनके तथा गौरी के परस्पर अनुराग को किसी से न बतायें। शिव को यह भय है कि हिमालय को उनका गौरी के प्रति अनुराग ज्ञात होने पर वह गौरी को उनकी शुश्रूषा के लिए भेजना बन्द कर देंगे।

कुमारविजय नाटक मे नाटककार ने कामपीडिता गौरी की चिकित्सा के लिये वैद्य को बुलाने की कल्पना की है। गौरी के विरह से पीडित शिव को कुबेर आश्वस्त करते हैं।

नाटकीय कथा में कार्त्तिकेय के विनय को दिखाने के लिए नाटककार ने उनके तारकासुरविजयवृत्तान्त को विष्णु, ब्रह्मा तथा इन्द्र के द्वारा वर्णित कराया है। विष्णु आदि देवगण कार्त्तिकेय को सेनापति नियुक्त करते हैं। कार्त्तिकेय को सर्वप्रथम अपने नाटक में नायक बनाकर कवि ने मौलिकता दिखाई है।

कुमारविजय नाटक की वस्तु में कार्त्तिकेय से सम्बन्धित गौण घटनाओं का तो विस्तृत वर्णन है परन्तु उनकी उत्पत्ति तथा पालन से सम्बन्धित प्राथमिक घटनाओं का इसमे वर्णन नहीं है। *तृतीयाङ्क में चूलिका के पश्चात् एक मिश्रविष्कम्भक* के प्रयोग से भी नाट्यनियम का उल्लघन हो गया है।

सीताराघव नाटक

सीताराघव नाटक की कथावस्तु रामायण से ली गई है। इसमे विश्वामित्र के राम और लक्ष्मण को अपने यज्ञ की रक्षा के लिये ले जाने से लेकर रावणवध कर राम के अयोध्या लौटने तथा उनके राज्याभिषेक होने तक की कथा वर्णित है।

सीताराघव की कथावस्तु मे मूलकथा से बहुत भिन्नता है। मूलकथा मे अनेक स्थलो पर परिवर्तन कर नाटककार ने सीताराघव की वस्तु प्रस्तुत की है। इन परिवर्तनो की प्रेरणा उसे कुमारदास के 'जानकीपरिणय' शक्तिभद्र के 'आश्चर्यचूडामणि' तथा मुरारि के 'अनघराघव' नाटको से मिली है।

सीताराघव मे मायावस्तु तथा करम्बक राक्षस ताटका तथा सुबाहु के वध का प्रतिशोध लेने के लिऐ दशरथ और सुमन्त्र का वेष बनाकर मिथिला जाकर राम और लक्ष्मण को शिव का धनुष तोडने से मना करते हैं, परन्तु वास्तविक दशरथ तथा सुमन्त्र के वहाँ आने पर वे भागते हैं।

नाटकीय कथावस्तु मे मायावसु परशुराम को राम के विरुद्ध उत्तेजित कर उनके द्वारा राम तथा लक्ष्मण का वध कराने तथा सीता का रावण द्वारा अपहरण कराने की योजना बनाता है।

मन्थरा के चरित्र मे उत्कर्षाधान के लिये कवि ने सूर्पणखा की दासी अयोमुखी के मन्थरा का वेष धारण कर कैकेयी को राम के विरुद्ध उत्तेजित करने का मूल कथा मे परिवर्तन किया है। मन्त्री प्रहस्त द्वारा रावण को सीता का चित्र दिया जाना तथा उसे देखकर रावण का अत्यधिक वासनाग्रस्त होना भी कवि की मौलिक कल्पना है।

मूलकथा मे विवाह के पश्चात् अयोध्या लौटने पर राम वन जाते है परन्तु इस नाटक मे वे मिथिला से ही वन चले जाते हैं।

सीताराघव मे मायावसु इन्द्र के चारण वज्रागद का वेष बनाकर राम, लक्ष्मण तथा सुग्रीव के समीप जाकर उन्हे रावण द्वारा सीता का वध, मेघनाद द्वारा हनुमान का वध तथा स्वजनविनाश से अङ्गदादि द्वारा प्राणविसर्जन का अलीक वृत्तान्त बताकर उनके द्वारा आत्महत्या कराने का प्रयास करता है, परन्तु राम को दधिमुख से हनुमानादि के आगमन का सत्य समाचार मिल जाने से मायावसु की योजना विफल हो जाती है।

सीताराघव मे सीता को अनसूया का अङ्गराग देने के लिये लोपामुद्रा का वनदेवता मन्दारवती को लङ्का भेजना भी कवि की मौलिक सूझ है। इसी प्रकार मायावसु का अशोकवाटिका मे सीता के समीप राम और लक्ष्मण के दो कृत्रिम शिर फेंककर सीता को व्याकुल करना भी नाटककार की अपनी कल्पना है।

राघवानन्द नाटक

राघवानन्द नाटक की वस्तु रामायण से सगृहीत है। इस नाटक का प्रारम्भ राम के वनवास से होता है। राम के चित्रकूट पहुँचने पर मुनिगण उनका स्वागत करते हैं। विश्वामित्र तथा अगस्त्य राम को दिव्यास्त्र देते है। मारीच तथा उसका मित्र महाशम्बर राम से द्वेप रखते हैं। ये दोनो राम का अहित करने के लिए चित्रकूट कानन मे आते हैं।

राघवानन्द नाटक की कथावस्तु मे रामायण की कथा से अनेक भिन्नतायें है। नाटककार ने इस नाटक की कथावस्तु मे रामायण की घटनाओ के पूर्वापर क्रम मे भी परिवर्तन कर दिया है।

राघवानन्द मे अगस्त्य द्वारा प्रेषित हनुमान सुग्रीव को वाली के समीप से ऋष्यमूक पर्वत पर ले जाते हैं और उनके द्वारा राम की सहायता करना चाहते हैं, परन्तु रामायण मे सुग्रीव स्वय ही बाली के भय से ऋष्यमूक पर्वत पर रहते हैं तथा राम को उस पर्वत के समीप आता हुआ देखकर हनुमान को उनके विषय मे ज्ञान प्राप्त करने के लिये कहते हैं। राघवानन्द मे मारीच तथा महाशम्बर कपट द्वारा राम को विनष्ट करने की योजना बनाते हैं।

राघवानन्द मे राम के वनवास की अवधि मे ही शत्रुघ्न लवणासुर का वध करने तथा भरत गन्धर्वों को पराजित करने जाते हैं, परन्तु रामायण मे राम के रावण का वध कर अयोध्या लौटने और राज्याभिषक्त होने के पश्चात् शत्रुघ्न तथा भरत को इन कार्यों के लिये भेजते हैं।

राघवानन्द मे महाशम्बर मागधी तथा अपभ्रंश को विराघादि राक्षसो को प्रोत्साहित करने के लिये दण्डकवन भेजता है, परन्तु रामायण मे विराधादि राक्षस रावण की आज्ञा से मुनियो के यज्ञो को नष्ट करने के लिये दण्डकवन मे रहते थे।

राघवानन्द मे राक्षस महाशम्बर तापस का वेष धारण कर राम के समीप जाकर उन्हें बताता है कि अगस्त्य मुनि का आदेश है कि आप गोदावरी के तट पर पञ्चवटी मे वास करें, परन्तु रामायण में राम के पूछने पर स्वय अगस्त्य मुनि उन्हें पञ्चवटी मे निवास करने के लिये कहते हैं।

राघवानन्द मे लक्ष्मण अपनी पर्णशाला के समीप कनकहरिण देखकर उसे पकडने के लिये राम की आज्ञा लेने अगस्त्याश्रम जाते हैं, परन्तु रामायण मे सीता अपनी पर्णशाला के समक्ष कनकहरिण देखकर राम को उसे पकड़ने के लिये भेजती है।

राघवानन्द मे वशिष्ठ पत्र द्वारा अगस्त्य को सूचित करते हैं कि अपने पिता की आज्ञा से राम, लक्ष्मण और सीता सहित वन मे आ रहे हैं अत वह उनके दर्शन करें, परन्तु रामायण मे राम स्वय ही अगस्त्य के आश्रम जाकर उनसे मिलते हैं।

राघवानन्द मे अगस्त्य राम को रावण की दुष्टता के विषय मे बताते हैं। राम मुनियो की रक्षा करने के लिए प्रतिज्ञा करते हैं। अगस्त्य अपने यज्ञ से उद्भूत एक रत्न को सीता को देकर उन्हें इसकी पूजा करने के लिये कहते हैं। इस रत्न के द्वारा अगस्त्य सीता की रक्षा की व्यवस्था करते हैं, परन्तु रामायण मे अगस्त्य सीता को कोई रत्न नहीं देते।

राघवानन्द मे अगस्त्य सीता को आशीर्वाद देते हैं कि पृथ्वी उनकी रक्षा करे तथा जब राम और लक्ष्मण उनसे विमुक्त हो तो पृथ्वी उन्हे अपने जठर मे धारण करे, परन्तु रामायण मे अगस्त्य सीता को यह आशीर्वाद नही देते।

राघवानन्द मे राक्षस महाशम्बर अगस्त्यशिष्य हारीत का वेष बनाकर लक्ष्मण को बताता है कि उन्हे अगस्त्य बुला रहे है। तदनुसार लक्ष्मण के अगस्त्य के समीप जाने पर सीता को एकाकिनी देखकर रावण पाटच्चर का वेष बनाकर उनका हरण करता है, परन्तु रामायण मे मारीच द्वारा राम के स्वर म उदीरित 'हा सीते' 'हा लक्ष्मण' शब्दो को सुनकर सीता उन्हें राम की विपत्ति का सूचक मानकर लक्ष्मण को आग्रह पूर्वक राम की रक्षा करने के लिए भेजती है और इसी समय सीता को सूनी पाकर रावण उनका अपहरण करता है।

राघवानन्द मे महाशम्बर रावण को यह सूचित करने के लिए किष्किन्धा से लङ्का जाता है कि सुग्रीव के आदेश से सीता का अन्वेषण करने के लिये हनुमान लङ्का आ रहे हैं, परन्तु रामायण मे यह बात नही मिलती।

राघवानन्द मे अशोकवाटिका मे आसीन तथा रावण द्वारा फुसलाई जाती हुई सीता के समक्ष महाशम्बर अपनी माया द्वारा मारीच का वध करने के लिये जाते हुए राम और लक्ष्मण को प्रदर्शित करता है, परन्तु रामायण मे यह प्राप्त नही होता।

राम द्वारा अकेले ही जटायु का दाह-संस्कार किया जाना तथा अकेले ही कबन्ध का वध करना राघवानन्द नाटक की वस्तु मे नवीनता है। इसी प्रकार लक्ष्मण द्वारा राक्षसी अयोमुखी के नाक कान काटे जाना भी राघवानन्द की नवीनता है।

राघवानन्द मे राम और रावण के युद्ध मे भी कतिपय नवीनताओ का सन्निवेश किया गया है। राघवानन्द मे जाम्बवान् युद्धभूमि म मेघनाद द्वारा किये जाने वाले अहित की पहिले ही कल्पना कर हनमान् को सञ्जीवनौषधि लाने के लिए भेज देते हैं, परन्तु रामायण मे युद्ध प्रारम्भ हो जाने के पश्चात् सञ्जीवनौषधि लेने जाते हैं।

राघवानन्द मे मेघनाद महाशम्बर को अयोध्या भेजता है। अयोध्या जाकर महाशम्बर भरत तथा शत्रुघ्न-सहित समस्त इक्ष्वाकु-कुल को नष्ट करने के लिये

प्रयास करता है। इसी समय गन्धर्वों पर विजय पाकर भरत अयोध्या लौट रहे थे। महाशम्बर सिद्धपुरुष का वेष बनाकर भरत के पास जाता है। वह भरत को बताता है कि रावण तथा मेघनाद ने राम और लक्ष्मण को युद्ध मे मूर्च्छित कर दिया। शत्रुघ्न भी लवणासुर द्वारा युद्ध मे मारे गये। यह सुनकर भरत अपनी माताओं सहित दु खी होते हैं। भरत सरयू नदी मे गिरकर अपने प्राणो का परित्याग करने का निश्चय करते हैं। वे राम की पादुकाओं को अपने शिर पर रखकर उन्हें भी सरयू नदी मे प्रवाहित करने के लिये चल देते है। महाशम्बर भरतादि से कहता है कि यदि रावण विजयी होगा तो वह आप लोगो को भी जीवित नही छोडेगा।

राघवानन्द मे हनुमान महाशम्बर को सिद्धपुरुष का वेष धारण किये हुए देखकर स्वय वटु का वेष बनाकर योगविद्या सीखने के व्याज से उसे भरत के समीप से अन्यत्र ले जाकर उसका वध करने की सोचते हैं। इसी समय लवणासुर पर विजय प्राप्त कर भरत के समीप आते हुए शत्रुघ्न को देखकर महाशम्बर भरत से कहता है कि यह शत्रुघ्न का वेष धारण किये लवणासुर ही आपके समीप आया है। महाशम्बर की बात को सत्य मानकर भरत शत्रुघ्न पर प्रहार करना चाहते हैं। शत्रुघ्न यह देखकर कि भरत मुझे शत्रु समझ रहे हैं, वहाँ से चले जाते हैं।

महाशम्बर भरत के समीप अधिक देर तक स्थित रहने को सकटापन्न समझ कर वहाँ से पलायन करना चाहता है, परन्तु हनुमान उसे दृढता से पकडकर उसका वध करने के लिए उसे बाहर ले जाते हैं।

वशिष्ठ भरत को बताते हैं कि यह वटु वेष मे हनुमान हैं। हनुमान वशिष्ठ को बताते हैं कि विजयी शत्रुघ्न भी यहाँ आ गये हैं परन्तु भरत उन्हे लवणासुर समझकर उनका वध करना चाहते हैं। वशिष्ठ शत्रुघ्न को अपने समीप बुलाते हैं। भरत और शत्रुघ्न परस्पर मिलकर प्रसन्न होते हैं।

रावण का वध कर अयोध्या लौटने पर सब लोग उनका स्वागत करते है। रामायण मे यह आख्यान प्राप्त नही होता।

रुक्मिणीपरिणय नाटक

रामवर्मवंचियुवराज के रुक्मिणीपरिणय नाटक की वस्तु भागवत महापुराण से ली गई है।[1] ब्रह्मपुराण[2] तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण[3] मे भी रुक्मिणीपरिणय की कथा मिलती है। नाटककार ने अपनी रुचि तथा नाट्यशास्त्र की दृष्टि से पौराणिक कथा मे कतिपय परिवर्तन किये हैं।

---

1. भागवत महापुराण, 10 52-54।
2. ब्रह्मपुराण, अध्याय 199।
3. ब्रह्मवैवर्तपुराण, अध्याय 98–100।

रुक्मिणीपरिणय नाटक की कथा का प्रारम्भ उस स्थल से होता है जब कि वासुभद्र (श्रीकृष्ण) ने विदर्भनगर मे होने वाले रुक्मिणी के स्वयवर के विषय मे सूचना प्राप्त कर अमात्य उद्धव तथा ब्राह्मण कपिञ्जल को स्वयवर के विषय मे ज्ञात करने के लिए विदर्भनगर भेज दिया है।

उद्धव विदर्भनगर से पत्र द्वारा श्रीकृष्ण को सूचित करते हैं कि उन्होंने विदर्भनगर के समस्त प्राज्ञ मन्त्रियो विदर्भनृपति के प्रिय मित्रो तथा रुक्मिणी की सखियो को रुक्मिणी का विवाह आपके साथ किये जाने के पक्ष मे कर लिया है। शिशुपाल रुक्मिणी के साथ विवाह करना चाहता है तथा इस कार्य मे रुक्मी शिशुपाल की सहायता कर रहा है। शिशुपाल तथा रुक्मी को ठगने का उपाय भी उद्धव ने सोच लिया था। उद्धव वासुभद्र को शीघ्र ही कुण्डनपुर बुलाते हैं, परन्तु श्रीमद्भागवत मे वासुदेव उद्धव तथा कपिञ्जल को विदर्भनगर नही भेजते अपितु रुक्मिणी के सदेशवाहक ब्राह्मण के साथ स्वय ही विदर्भनगर चले जाते हैं।

रुक्मिणीपरिणय नाटक मे वासुभद्र उस *कात्यायनी* मन्दिर मे ठहर *जाते हैं* जहाँ रुक्मिणी को गौरीपूजन के लिए आना था, परन्तु श्रीमद्भागवत मे रुक्मिणी के पिता भीष्मक वासुभद्र का सम्मान कर उन्हें विदर्भनगर मे उपयुक्त स्थान मे ठहराते हैं।

रुक्मिणीपरिणय नाटक की कथावस्तु मे श्रीमद्भागवत की कथा से एक नवीनता यह है कि इसमे उद्धव तथा रुक्मिणी की परिचारिका नवमालिका वासुभद्र *और रुक्मिणी का विवाह कराने तथा शिशुपाल को ठगने की गूढ योजना बनाते हैं।* उद्धव शिशुपाल को वञ्चित करने के लिये रुक्मी के दूत के समान प्रतीत होने वाले एक दूत के द्वारा उसके पास एक गूढ लेख भेजते हैं।

रुक्मिणीपरिणय नाटक मे *कपिञ्जल तथा नवमालिका के पूर्वायोजन* के अनुसार वासुभद्र तथा रुक्मिणी कात्यायनी मन्दिर के उद्यान मे एक दूसरे को देखते हैं। वासुभद्र को यह ज्ञात होने पर कि शिशुपाल का मित्र साल्वराज रुक्मिणी का अपहरण करने आ रहा है। वे साल्व का वध करने के लिये सुदर्शन चक्र भेजते हैं। साल्व द्वारा रुक्मिणी का अपहरण किये जाने पर सुदर्शन चक्र रुक्मिणी को साल्व के बन्धन से मुक्त कराता है। श्रीमद्भागवत मे साल्व द्वारा रुक्मिणी के बलात् अपहरण किये जाने तथा वासुभद्र के सुदर्शन चक्र द्वारा उसे मुक्त कराने की कथा नही मिलती।

रुक्मिणीपरिणय नाटक मे वासुभद्र अपना मुक्ताहार रुक्मिणी के पास भेजकर उसका कामसन्ताप दूर करने का प्रयास करते हैं। रुक्मिणी चित्रफलक पर वासुभद्र का चित्र बनाकर उसके चरणो मे गिरकर विलाप करने लगती है। श्रीमद्भागवत मे वासुभद्र के रुक्मिणी के पास मुक्ताहार भेजने तथा रुक्मिणी द्वारा वासुभद्र का चित्र बनाये जाने का वृत्तान्त नही मिलता।

रुक्मिणीपरिणय नाटक मे नवमालिका गौरीविलास प्रासाद मे वासुभद्र और

नवमालिका का समागम कराती है। नवमालिका अपनी सखी अनङ्गसेना को रुक्मिणी की विवाहभूषा म स्वयवरमण्डप मे शिशुपाल के साथ विवाह कराने के लिए भेजती है, परन्तु श्रीमद्भागवत मे नवमालिका द्वारा यह कार्य किये जाने का कोई उल्लेख नही है। यह योजना कवि की मौलिक सूझ है।

रुक्मिणीपरिणय नाटक मे शिशुपाल का अनङ्गसेना के साथ विवाह होता है, परन्तु जैसे ही शिशुपाल के मित्र जरासन्धादि को इस अलीक विवाह के विषय मे ज्ञात होता है वैसे ही वे उद्धव के निवासस्थान को घेर लेते है। वासुदेव जरासन्धादि के साथ युद्ध करने को तत्पर हो जाते हैं, परन्तु जरासन्ध तथा शिशुपालादि युद्ध से भाग जाते हैं। श्रीमद्भागवत मे बलराम तथा यादवसेना का शिशुपालपक्षीय *राजाओ से भयङ्कर युद्ध होता है।*

रुक्मिणीपरिणय नाटक म रुक्मी रुक्मिणी के इस अपहरण तथा शिशुपाल का अपमान देखकर वासुभद्र को चोर आदि अपशब्द कहता है, किन्तु रुक्मिणी के अनुरोध से वासुभद्र इसकी चिन्ता नही करते। श्रीमद्भागवत मे रुक्मी तथा वासुभद्र का भयङ्कर युद्ध होता है और वासुभद्र पराजित रुक्मी के दाढी मूछ काटकर उसे कुरूप बना देते हैं। लज्जित रुक्मी कुण्डिनपुर नही जाता अपितु भोजकटनगर मे ही रहने लगता है।

रुक्मिणीपरिणय नाटक मे रुक्मिणी का अपहरण कर कुण्डिनपुर से द्वारका लौटते हुए वासुभद्र मार्ग मे मिलने वाले स्थानो जैसे पञ्चवटी, नर्मदा नदी, उज्जयिनी, वाराणसी तथा वृन्दावनादि तीर्थों का वर्णन करते हैं, परन्तु श्रीमद्भागवत मे इन स्थानो का वर्णन नही मिलता है। अत यह नाटककार की मौलिक सूझ है।

श्रीमद्भागवत मे द्वारका पहुँचकर वासुभद्र रुक्मिणी के साथ यथाविधि विवाह करते हैं और द्वारका के निवासी इस अवसर पर आनन्द मनाते हैं, परन्तु रुक्मिणीपरिणय नाटक मे इस प्रकार का वर्णन नही मिलता।

शृङ्गारतरङ्गिणीनाटक

वेङ्कटाचार्य तृतीय के शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक की कथावस्तु पारिजातहरण *की प्रसिद्ध पौराणिक कथा है। यह कथा हरिवंश*[1], *विष्णुपुराण*[2], *ब्रह्मपुराण*[3], पद्मपुराण[4], श्रीमद्भागवत[5] तथा देवी भागवत[6], मे मिलती हैं।

1. हरिवंश, विष्णुपर्व 64, 65–75।
2. विष्णुपुराण 5 30–31
3. ब्रह्मपुराण, 203–204
4. पद्मपुराण उत्तरखण्ड, 90
5. श्रीमद्भागवत 10 59, 38–40
6. देवीभागवत, 4 25 25–27

शृङ्गारतरङ्गिणी की कथावस्तु मुख्यत पद्मपुराण से ली गई है। अपनी अभिरुचि तथा नाट्य-नियमो की दृष्टि से नाटककार ने पौराणिक कथा मे कतिपय परिवर्तन किये हैं।

शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक मे किम्पुरुष दम्पत्ती द्वारा द्वारका का वर्णन नाटककार की अपनी सूझ है। इसी प्रकार *शठमर्षण का आख्यान भी कवि की* अपनी कल्पना है। पौराणिक कथा मे शठमर्षण का इन्द्र को शाप देने का उल्लेख प्राप्त नही होता।

शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक मे इन्द्र नारद को पारिजातपुष्प देते हैं। नारद द्वारका जाकर इस पुष्प को श्रीकृष्ण के लिए अर्पित करते हैं। श्रीकृष्ण इसे रुक्मिणी को दे देते हैं, परन्तु पौराणिक कथा मे इन्द्र द्वारा नारद को पारिजातपुष्प दिये जाने का उल्लेख नही है। इसी प्रकार श्रीकृष्ण का केवल रुक्मिणी को ही पारिजातपुष्प देने का उल्लेख हरिवंश के अतिरिक्त अन्य पुराणो मे नही मिलता। पद्मपुराण मे लिखा है कि नारद ने श्रीकृष्ण को अनेक पारिजातपुष्प दिये और श्रीकृष्ण ने उन्हें *सत्यभामा को छोडकर अपनी सोलह हजार पत्नियो मे विभक्त कर दिया।* इससे क्रुद्ध होकर सत्यभामा कोपागार मे प्रविष्ट हो गई।

शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक मे श्रीकृष्ण सत्यभामा को मनाने के लिए उनके प्रासाद पर जाते हैं। पारिजातपुष्प को सत्यभामा के कोप का कारण जानकर श्रीकृष्ण दो कङ्कण देकर सत्यभामा को प्रसन्न करना चाहते हैं। सत्यभामा पारिजात-पुष्प के लिये ही आग्रह करती है, परन्तु पौराणिक कथा इससे भिन्न है। पौराणिक कथा मे सत्यभामा के साथ स्वर्ग गये हुए श्रीकृष्ण सत्यभामा के अनुरोध से पारिजात वृक्ष को उखाड कर गरुड पर रख लेते हैं।

शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक मे विश्वावसु का श्रीकृष्ण से पशु-पक्षियो की वाणी *समझने का वर प्राप्त कर दो भ्रमरो की वार्ता को समझ जाना कवि की मौलिक* कल्पना है।

शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक मे इन्द्र की गर्वोक्ति से क्रुद्ध श्रीकृष्ण चतुरङ्गिणी सेना सहित इन्द्र को युद्ध मे पराजित कर पारिजातवृक्ष का अपहरण करने के लिये स्वर्ग जाते हैं। कृष्ण को पराजित करने के लिये इन्द्र लक्ष्मी से प्राप्त एक कमलदल की पूजा कर उससे प्रार्थना करते है। ऐसा करने पर उस कमलदल से सिंहो तथा हाथियो के समूह प्रकट होते हैं। पौराणिक कथा मे कमलदल तथा उससे प्रकट होने वाले सिंहो और हाथियो का उल्लेख नहीं मिलता।

शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक मे कृष्णसैन्य द्वारा नन्दन वन के आक्रान्त किये जाने पर पारिजात वृक्ष से अनेक किरात, पुलिन्द, यवनादि योद्धा उत्पन्न होकर उससे युद्ध करते हैं। कृष्णसैन्य द्वारा किरातादि योद्धाओ के नष्ट कर दिये जाने पर इन्द्र कृष्ण के साथ युद्ध करते हैं।

विष्णु तथा ब्रह्मपुराणों में यमवरुणादि देवता भी युद्ध में इन्द्र की सहायता करते हैं परन्तु ये सभी कृष्ण द्वारा पराजित होते हैं।

शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक में इन्द्र तथा गरुड में वाग्युद्ध होता है। गरुड पारिजात वृक्ष को उखाड़कर अपने पंखों पर रख लेते हैं। इन्द्र वज्र से गरुड के पंख काटने की चेष्टा करता है। कृष्ण इन्द्र के वज्र को विफल कर देते हैं। इससे दीन होकर इन्द्र कृष्ण से क्षमा माँगता है। कृष्ण इन्द्र का वज्र लौटा देते हैं।

विष्णुपुराण में इन्द्र रणक्षेत्र से पलायन करता है। इन्द्र की यह दीन दशा देखकर कृष्ण और सत्यभामा उसे वज्र तथा पारिजात वृक्ष लौटाना चाहते हैं। इन्द्र कृष्ण से वज्र तो ले लेता है परन्तु पारिजात वृक्ष को उनसे द्वारका ले जाने के लिये कहता है। तदनुसार कृष्ण पारिजातवृक्ष को द्वारका लाकर सत्यभामा के उद्यान में लगा देते हैं।

शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक में त्वष्टा की पुत्री मणिचूलिका द्वारा अर्पित रत्न-पर्यङ्क पर आसीन होकर कृष्ण पारिजात वृक्ष के नीचे सत्यभामा के साथ विहार करते हैं। परन्तु पौराणिक कथा में यह उल्लेख प्राप्त नहीं होता। हरिवंश, पद्म तथा मत्स्य पुराणों में अपने गृहोद्यान में पारिजात वृक्ष के आरोपण के अनन्तर सत्यभामा पुण्यक व्रत करती हैं परन्तु शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक में कवि ने यह बात छोड़ दी है।

शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक की कथावस्तु में अनेक स्थलों पर शिथिलता दिखाई देती है। इस नाटक में नाटककार ने अभिनव पात्रों का सन्निवेश किया है। मदनशेखर, शृङ्गारिणी, शृङ्गारकणिका तथा माधुर्यकणिका नामक दो चेटियाँ, गन्धर्व चित्राङ्गद तथा विश्वावसु, इन्द्रक तथा नवचन्द्रिका, त्वष्टा की पुत्री मणिचूलिका आदि कतिपय नवीन पात्र इस नाटक में मिलते हैं। ये पात्र पौराणिक कथा में नहीं आते। कथावस्तु के निर्वाह के लिये नाटककार ने प्रवेशक, शुद्ध तथा मिश्रविष्कम्भक और चूलिका का प्रयोग किया है।

गोविन्दवल्लभ नाटक

द्वारकानाथ के गोविन्दवल्लभ नाटक की कथावस्तु श्रीमद्भागवत[1] तथा आदिपुराण[2] से ली गई है। मूलकथा में अनेक परिवर्तन कर कवि ने इस नाटक की वस्तु बनाई है।

---

1. श्रीमद्भागवत, दशम स्कन्ध, अध्याय 11 37-40, अध्याय 12 7-9 अध्याय 13 7-11 तथा 22-27, अध्याय 15 1-21 तथा 41–46, अध्याय 18 1–16 तथा 19-24, अध्याय 19-15–16।
2. आदि पुराण, अध्याय 6.20, आदिपुराण, अध्याय 33-45।

गोविन्दवल्लभ नाटक मे श्रीकृष्ण अपने भ्राता बलदेव, मित्र श्रीदाम तथा अन्य गोपालको के साथ गोचारण के लिए गोकुल से वृन्दावन जाने के लिए पिता नन्द से अनुमति मांगते हैं।

यहाँ नाटककार ने नन्द द्वारा ज्योतिषी के बुलाये जाने तथा उससे श्रीकृष्ण के गोचारण के लिये शुभ मुहूर्त पूछने की नवीन घटना कथावस्तु मे सयोजित कर दी है। इसके द्वारा नाटककार ने यह सूचना दी है कि गोचारण के लिये जाते हुए श्रीकृष्ण को पत्नी लाभ भी होगा।

गोचारण के लिए जाते हुए श्रीकृष्ण मार्ग मे अपने मित्र श्रीदाम के आग्रह पर वृषभानुपुरी जाते हैं। श्रीदाम की माता श्रीकृष्ण तथा उनके साथियो का सम्मान करती हैं। वहाँ श्रीकृष्ण और राधा एक दूसरे को देखकर आसक्त हो जाते हैं।

वृन्दावन मे गोचारण करते हुए गोपगण बाहुयुद्ध करते हैं। बाहुयुद्ध मे श्रीदाम द्वारा पराजित श्रीकृष्ण उसे अपने कन्धो पर चढाकर भाण्डीर वृक्ष तक ले जाते हैं।

सुदाम द्वारा विदूषक मधुमङ्गल की हास्यास्पद भूषा का बनाया जाना नाटककार की अपनी कल्पना है। इसके द्वारा नाटककार ने हास्य की सृष्टि की है। श्रीकृष्ण तथा उनके साथियो की यमुना मे जलक्रीडा का भी नाटककार ने सुन्दर वर्णन किया है। मधुमङ्गल का हरिण को अश्व समझकर उस पर चढना तथा उसके उछलने से भीत होकर श्रीकृष्ण से रक्षा के लिए प्रार्थना करना भी कवि की मौलिक कल्पना है। कवि ने हास्य की सृष्टि के लिए ऐसा किया है।

गोविन्दवल्लभ नाटक मे वृन्दावन मे राधा और श्रीकृष्ण का मिलन होता है। राधा के विनय करने पर श्रीकृष्ण उसे तथा उसकी सखियो को नाव मे बिठाकर यमुना के पार पहुँचाते हैं। नाव मे श्रीकृष्ण और राधा के विहार का वर्णन भी नाटककार ने किया है। श्रीकृष्ण तथा राधा के इस नौकाविहार का वर्णन श्रीमद्भागवत तथा आदिपुराण मे नही मिलता है। यह नाटककार की अपनी कल्पना है।

गोविन्दवल्लभ नाटक मे माध्वीकपान से मत्त बलदेव अपना हल तथा मुसल लिए श्रीकृष्ण तथा अन्य गोपालको को पीटने के लिये उनके पीछे भागते हैं। यमुना के जल में गोपबालको की छाया देखकर बलदेव उन्हे वास्तविक गोपबालक समझकर यमुना मे कूदते हैं तथा उसमे देर तक विहार करते रहते हैं। बलदेव के स्वय बाहर न निकलने पर बलिष्ठ गोप यमुना मे कूदकर उन्हें बाहर निकालते हैं। प्रकृतिस्थ होने पर बलदेव लज्जित होते हैं और श्रीकृष्ण तथा अन्य गोपो से अपने दुर्व्यवहार के लिये क्षमा माँगते हैं।

बलदेव द्वारा विदूषक मधुमङ्गल का वृक्ष से बाँधा जाना भी कवि की अपनी कल्पना है। कवि ने यह कल्पना हास्य की सृष्टि के लिए की है।

गोविन्दवल्लभ नाटक की प्रस्तावना अन्य नाटकों की प्रस्तावना के समान है, परन्तु इस नाटक मे प्रस्तावना के अनन्तर किसी भी पात्र के रङ्गमञ्च पर प्रवेश करने का निर्देश नही दिया गया है। वृषभानुपुरदेवता के रङ्गमञ्च पर आने का निर्देश दिये बिना ही उसे रङ्गमञ्च पर बोलता हुआ दिखाया गया है। यह नाटकीय दृष्टि से अनुचित है। *नाटकार ने प्रथमाङ्क के प्रारम्भ मे एक विष्कम्भक का प्रयोग किया* है, परन्तु विष्कम्भक के अनन्तर किसी भी पात्र के रङ्गमञ्च पर प्रवेश करने की सूचना नही दी है। कथावस्तु के विस्तार मे विभिन्न रागो तथा तालो के गीतो की *बहुलता तथा गद्यांश की न्यूनता है।* इस नाटक के अनेक वर्णनो से नाटककार की मौलिक प्रतिभा तथा सूक्ष्मेक्षिका का परिचय प्राप्त होता है। इस नाटक की कथा-वस्तु सुसगठित है। श्रीकृष्ण तथा गोपबालको की क्रीडाओ का वर्णन कवि ने अत्यन्त विशद रूप से किया है।

प्रद्युम्नविजय नाटक

शङ्कर दीक्षित के प्रद्युम्नविजय नाटक की कथावस्तु हरिवंशपुराण से ली गई है।[1] नाटककार ने मूल कथा मे यत्र-तत्र परिवर्तन किये हैं।

मूलकथा मे वज्रनाभ द्वारा इन्द्र से त्रैलोक्य का शासन प्रदान करने अथवा युद्ध के लिए तत्पर हो जाने की बात कहे जाने पर वह बिना किसी से मन्त्रणा किये वज्रनाभ को उत्तर देते है कि अभी हमारे पिता कश्यप यज्ञ कर रहे हैं, यज्ञ के समाप्त होने पर वह हमारा न्याय करेंगे। परन्तु प्रद्युम्नविजय नाटक मे वज्रनाभ *द्वारा त्रैलोक्यशासन की याचना की जाने पर तथा उसके द्वारा देवो के पीडित किये* जाने पर इन्द्र द्वारका मे श्रीकृष्ण के समीप जाकर उनके परामर्श से अपनी माता को वज्रनाभ द्वारा किये गये इस अपमान को बताने के लिये जाते हैं।

मूलकथा में केवल वज्रनाभ ही कश्यप के पास जाकर उनसे अपने तथा इन्द्र के विवाद का उचित न्याय करने के लिए कहता है और कश्यप भी उसे यह उत्तर देते हैं कि वह यज्ञ समाप्त होने पर उसका न्याय करेंगे, परन्तु प्रद्युम्नविजय नाटक मे इन्द्र तथा वज्रनाभ दोनो ही कलह करते हुए कश्यप के समीप जाते हैं।

मूलकथा मे यज्ञ करते हुए कश्यप के साथ उनकी अदिति तथा दिति नामक *पत्नियो का उल्लेख नही किया गया है परन्तु प्रद्युम्नविजय नाटक मे कश्यप के साथ* अदिति तथा दिति के भी यज्ञ करने का उल्लेख है।

प्रद्युम्नविजय नाटक मे इन्द्र कश्यप से वज्रनाभ द्वारा किये गये अपने अपमान को *निवेदित करते हैं और कश्यप वज्रनाभ को इस प्रकार का दुराचरण करने से मना* करते हैं। वज्रनाभ कश्यप से विनय करता है कि वह त्रैलोक्य का शासन उसके

1. हरिवंशपुराण, विष्णुपर्व, अध्याय 91-97

तथा इन्द्र के बीच समान रूप से बाँट दें। कश्यप इन्द्र तथा वज्रनाम के कलह को शान्त करने के लिए उनमे समझौता करा देते हैं, परन्तु मूलकथा मे कश्यप द्वारा इन्द्र तथा वज्रनाम के बीच कराये गये किसी समझौते का उल्लेख नही हैं।

मूलकथा मे जब वज्रनाम द्वारा की गई अपनी अवमानना को श्रीकृष्ण के समक्ष निवेदित करते हैं तो वह उन्हे उत्तर देते हैं कि इस समय मेरे पिता वसुदेव अश्वमेघ यज्ञ करने वाले हैं तथा इस यज्ञ के सम्पन्न होने के पश्चात् मैं वज्रनाम का वध करूँगा, परन्तु प्रद्युम्नविजय नाटक मे न वसुदेव के अश्वमेघ यज्ञ का उल्लेख मिलता है और न श्रीकृष्ण के द्वारा वज्रनाम के वध के विषय मे इन्द्र को दिये गये वचन का।

मूलकथा मे वसुदेव के यज्ञ मे भद्रनट के अभिनय से प्रसन्न महर्षि उसे अनेक वर देते हैं जिसमे एक यह भी है कि वह सप्तदीपा पृथ्वी तथा दानवनगरियो मे स्वेच्छानुसार विचरण कर सकेगा, परन्तु प्रद्युम्नविजय नाटक मे इस प्रसङ्ग का उल्लेख भी नहीं किया गया है।

प्रद्युम्नविजय नाटक मे श्रीकृष्ण, रुक्मिणी तथा भद्रनट से प्रद्युम्न के विवाह के विषय मे विचार-विमर्श करते है। भद्रनट श्रीकृष्ण से कहता है कि दानवो ने इन्द्र की नगरी भग्न कर दी है। इन्द्र ने वज्रनाम की पुत्री प्रभावती को प्रद्युम्न के प्रति आकर्षित करने के लिये हसियो को वज्रनामनगरी भेजा है। रुक्मिणी प्रभावती के सौन्दर्य के विषय मे सुनकर श्रीकृष्ण से कहती हैं कि आप वज्रपुर जाकर प्रभावती को ले आइये। श्रीकृष्ण कहते हैं कि वज्रपुर मे प्रवेश करना दुष्कर है। परन्तु मूलकथा मे श्रीकृष्ण, रुक्मिणी तथा भद्रनट से प्रद्युम्न के विवाह के विषय मे कोई विचार-विमर्श नही करते।

प्रद्युम्नविजय नाटक मे एक हसी वज्रपुर से लौटकर श्रीकृष्ण को सूचित करती है कि महेन्द्र द्वारा भेजे गये हस तथा हसियो ने वज्रनाभ से अनेक सुविधायें प्राप्त कर ली हैं। वज्रनाम की आज्ञा से हसियो ने प्रभावती को अनेक पौराणिक कथायें सुनाकर उसे प्रद्युम्न के प्रति आकर्षित कर लिया है। प्रभावती ने उसे प्रद्युम्न को वज्रपुर लाने के लिये यहाँ भेजा है। श्रीकृष्ण हसी को सूचित करते हैं कि प्रद्युम्न, गद तथा साम्ब पहिले ही नट के वेष मे वज्रपुर भेज दिये गये हैं, परन्तु मूलकथा मे हसो से सूचना पाने के पश्चात् ही श्रीकृष्ण प्रद्युम्न को भद्रनट का, साम्ब को विदूषक का तथा गद को पारिपार्श्वक का वेष धारण कराकर वज्रपुर भेजते हैं।

प्रद्युम्नविजय नाटक मे नारद वज्रनाम के समीप जाकर उसे प्रद्युम्न के वज्रपुर मे प्रवेश करने से आरम्भ कर प्रभावती से उसके साहचर्य तथा प्रभावती के गर्भ धारण करने तक की कथा बताते हैं। क्रुद्ध वज्रनाम अपने योद्धाओ को प्रद्युम्नादि नटविटो के वध करने का आदेश देता है।

प्रद्युम्नविजय नाटक मे नारद पहिले वज्रनाभ को प्रद्युम्न तथा प्रभावती के साहचर्य की कथा बताकर फिर श्रीकृष्ण के समीप जाकर उन्हें भी यही बात बताते है, परन्तु मूलकथा मे प्रद्युम्न के साथी यादव योद्धा हसो द्वारा श्रीकृष्ण तथा महेन्द्र के समीप दानवपुत्रियो के गर्भवती होने का समाचार भेजते है ।

मूलकथा मे प्रद्युम्न के दानवो द्वारा घेर लिये जाने पर प्रभावती उससे कहती है कि दुर्वासा ने मुझे वैधव्यरहित तथा पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया था, अत आप युद्ध मे सफल होगे, परन्तु प्रद्युम्नविजय नाटक मे प्रभावती की इस उक्ति का उल्लेख ही प्राप्त नही होता ।

प्रद्युम्नविजय नाटक मे वज्रनाभवध के पश्चात् श्रीकृष्ण तथा इन्द्र प्रभावती आदि को सान्त्वना देने के लिए जब कन्यान्त पुर जाते है तब वे उन्हें अनेक रत्न उपहार मे प्रदान करती हैं तथा उनके चरणो का स्पर्श करती हैं, परन्तु मूलकथा मे इस बात का उल्लेख नही है ।

प्रद्युम्नविजय नाटक की वस्तु सुसगठित है । इसमे सात अङ्क है । प्रत्येक अङ्क के अन्त मे उसका नाम भी दिया गया है। नाटककार ने प्रवेशक तथा विष्कम्भक द्वारा कथावस्तु के सूच्याको को भी सूचित किया है । इस नाटक मे रामजन्म तथा रम्भाभिसार नामक दो रूपको के अभिनय का भी आयोजन किया गया है । प्रकृतिवर्णन मे कवि ने अपनी मौलिक प्रतिभा का भी प्रदर्शन किया है । इस नाटक से कवि ने अपने आश्रयदाता समासिह का यशोगान भी अनेक स्थलो पर किया है । इस नाटक मे प्रद्युम्न तथा प्रभावती के सुरापान तथा मैथुन का रङ्गमञ्च पर प्रदर्शित किया जाना नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से अनुचित है ।

प्रभावतीपरिणय नाटक

हरिहर के प्रभावतीपरिणय नाटक मे प्रद्युम्न तथा प्रभावती के विवाह का वर्णन है । इसकी कथावस्तु हरिवशपुराण[1] तथा श्रीमद्भागवत[2] से ली गई है । नाटककार ने मूलकथा मे अनेक परिवर्तन किये हैं ।

प्रभावतीपरिणय नाटक मे श्रीकृष्ण भद्रनट को प्रभावती का मन प्रद्युम्न मे अनुरक्त करने के लिए नियुक्त करते हैं, परन्तु मूलकथा मे महेन्द्र हसो को यह कार्य सम्पन्न करने के लिए भेजते हैं ।

प्रभावतीपरिणय नाटक मे वज्रनाभ भार्गव द्वारा इन्द्र को सूचित करता है कि त्रिलोकी के सुरो और असुरो की पैतृक सम्पत्ति होने के कारण उसका समान रूप से विभाजन किया जाना चाहिए । अत जितने युगो तक अमरावती पर देवो

1. हरिवंशपुराण, विष्णुपर्व, अध्याय 91-97
2 श्रीमद्भागवत, दशम स्कन्ध, अध्याय 55

का प्रशासन रहा, उतने ही युगो तक अब उस पर दैत्यो का प्रशासन हो। या तो देवगण अब पृथ्वी पर चले जायें अथवा दैत्यो से युद्ध के लिए तत्पर हो जायें। परन्तु मूलकथा मे वज्रनाभ स्वय इन्द्र के समीप जाकर उससे यह कहता है ।

प्रभावतीपरिणय नाटक मे बृहस्पति भार्गव से कहते हैं कि देवो और दानवो के पिता होने के कारण कश्यप को ही उन दोनो मे समान रूप से सम्पत्ति-वितरण करने का अधिकार है। अत आप कश्यप के पास आइये। परन्तु मूलकथा मे स्वय इन्द्र वज्रनाभ को यही उत्तर देते हैं। भार्गव तथा बृहस्पति का वार्तालाप मूलकथा मे नही मिलता ।

प्रभावतीपरिणय नाटक मे भार्गव तथा वज्रनाभ के कश्यप के समीप जाकर अपना मनोरथ प्रकट करने पर कश्यप उन्हें द्व्यर्थक उत्तर देते हैं कि जब चन्द्रमा को अर्द्धावशिष्ट हुए द्वादश वर्ष हो जायेंगे तब आप लोग अप्राप्त मनोरथ नही रहेंगे, परन्तु मूलकथा मे कश्यप वज्रनाभ को उत्तर देते हैं कि यज्ञ सम्पन्न करने के पश्चात् मैं आपका तथा इन्द्र का न्याय करूँगा ।

प्रभावतीपरिणय मे हसी शुचिमुखी वज्रपुर से द्वारका जाकर प्रभावती को एक चित्रपट पर चित्रित कर वह चित्रपट प्रद्युम्न को प्रदान करती है । प्रद्युम्न प्रभावती के चित्र को देखकर उसके प्रति आसक्त हो जाते हैं। भद्रनट प्रद्युम्न को बताता है कि वज्रनाभपुत्री प्रभावती आपके प्रति आसक्त है, परन्तु मूलकथा मे यह उल्लेख नही मिलता ।

प्रभावतीपरिणय मे प्रद्युम्न वज्रपुर मे प्रवेश कर प्रभावती का अपहरण करना चाहते हैं, परन्तु मूलकथा मे प्रद्युम्न प्रभावती के इस प्रकार अपहरण करने की बात नही सोचते ।

प्रभावतीपरिणय मे प्रभावती के अनुरोध करने पर हसी शुचिमुखी प्रद्युम्न को एक चित्रपट पर चित्रित कर उसे दिखाती है, परन्तु मूलकथा मे यह बात नही मिलती ।

प्रभावतीपरिणय मे शुचिमुखी प्रभावती को कामदेव का शिव के द्वारा भस्म किया जाना तथा श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के रूप मे उत्पन्न होना, प्रद्युम्न का जन्म के सातवें ही दिन शम्बरासुर द्वारा अपहरण तथा प्रद्युम्न द्वारा शम्बरासुर का वध और द्वारका को प्रत्यागमन के विषय मे बताती है। यह कथा श्रीमद्भागवत[1] से ली गई है। इस कथा का उल्लेख हरिवशपुराण[2] म दूसरे ही प्रसङ्ग मे कुछ अन्तर के साथ किया गया है।

---

1. श्रीमद्भागवत, दशमस्कन्ध, अध्याय 55
2 हरिवशपुराण, विष्णुपर्व, अध्याय 104-8

प्रभावतीपरिणय मे भद्रनट श्रीकृष्ण तथा बलदेव से परामर्श कर प्रद्युम्न को नाट्य-नायक, गद को पीठमर्द तथा साम्ब को विदूषक की भूषा ग्रहण कराकर उनके तथा अन्य द्वारकावासी शैलूषो के साथ वज्रपुर को प्रस्थान करता है, परन्तु मूलकथा मे श्रीकृष्ण अपनी दैवी माया द्वारा प्रद्युम्न को भद्रनट का वेष धारण कराकर तथा नायक बनाकर, साम्ब को विदूषक की, गद को पारिपार्श्वक की तथा अन्य यादव योद्धाओ को नटो की वेशभूषा धारण कराकर विमान द्वारा वज्रपुर भेजते हैं ।

प्रभावतीपरिणय मे प्रभावती के कामसन्ताप को दूर करने के लिए प्रद्युम्न उसके पास एक मदनलेख तथा एक मुद्रिका भेजता है, परन्तु मूलकथा मे प्रद्युम्न के इस मदनलेख तथा मुद्रिका का उल्लेख नही मिलता ।

प्रभावतीपरिणय मे प्रद्युम्न भ्रमर का रूप धारण कर प्रभावती के मुख पर बार बार प्रहार करते हैं । प्रभावती इससे कुपित होकर प्रद्युम्न के प्रति अनेक परुष वचन कहती है । प्रद्युम्न चित्रशालाद्वार की तिरस्करिणी मे अदृश्य हो जाते हैं, परन्तु मूलकथा मे यह उल्लेख प्राप्त नही होता ।

प्रभावतीपरिणय मे स्फटिक शिलावेदिका मे पडते हुए प्रद्युम्न के प्रतिबिम्ब को देखकर प्रभावती उसे शुचिमुखी द्वारा निर्मित प्रद्युम्न का चित्र समझकर शुचिमुखी के चित्रकर्मनैपुण्य की प्रशसा करती है । परन्तु मूलकथा मे यह प्रसङ्ग प्राप्त नहीं होता ।

प्रभावतीपरिणय मे प्रभावती स्वप्न मे प्रद्युम्न द्वारा वज्रनाभ को पकडा जाकर दक्षिण दिशा की ओर विसर्जित किया हुआ देखकर दु खी होती है । तरलिका के कहने से प्रभावती इस दु स्वप्न के उपशम के लिए पूजा की सामग्री मँगाती है, परन्तु इसी समय वर्षा के प्रारम्भ हो जाने से वह देवपूजन नही कर पाती । प्रभावती को विषण्ण देखकर प्रद्युम्न उसे आश्वासन देते हैं कि मैं आपके बिना कहे आपके पिता का वध नही करूँगा, परन्तु मूलकथा मे प्रभावती के इस दु स्वप्न तथा इसके उपशम का वर्णन नही मिलता ।

प्रभावतीपरिणय मे वज्रनाभ कश्यप की आज्ञा का उल्लघन कर इन्द्र के प्रति द्वेष भावना से स्वर्ग पर आक्रमण करने का निश्चय करता है । वह विजययात्रा-मुहूर्त पूछने के लिये पुरोहित को बुलाता है । पुरोहित अनेक दुर्निमित्तो को देखकर शान्तिकर्म कराना चाहता है । वज्रनाभ केलिशैलसन्निवेश मे तीन बालको को देखकर अन्त पुराधिकारियो के वध का आदेश देता है । परन्तु मूलकथा मे इस प्रकार का उल्लेख नहीं मिलता ।

प्रभावतीपरिणय मे अपनी विजय को सन्दिग्ध समझकर वज्रनाभ रणक्षेत्र से पलायन करता है, परन्तु मूलकथा मे वज्रनाभ के युद्धभूमि से पलायन करने का उल्लेख नही मिलता ।

प्रभावतीपरिणय मे वज्रनाभ प्रद्युम्न तथा श्रीकृष्ण के प्रति अनेक अपशब्द कहता है परन्तु मूलकथा मे इसका उल्लेख नही है।

प्रभावतीपरिणय मे वज्रनाभ का वध करने के पश्चात् प्रद्युम्न प्रभावती से इस अपराध के लिए क्षमा मांगते हैं, परन्तु प्रभावती रोती है। नारद प्रभावती को सान्त्वना देते हैं, परन्तु मूलकथा मे प्रद्युम्न के प्रभावती से क्षमा मांगने तथा नारद के प्रभावती को सान्त्वना देने का उल्लेख नहीं मिलता।

प्रभावतीपरिणय नाटक की कथावस्तु सुसम्बद्ध है। नाटककार ने यथास्थान विष्कम्भको तथा प्रवेशको के प्रयोग द्वारा कथांशो की सूचना दी है। प्रद्युम्न के जन्म तथा उसके द्वारा शम्बरासुर के वध की कथा इस नाटक मे श्रीमद्भागवत से ली गई है। *इस नाटक के अन्तर्गत वज्रनाभ के समक्ष शङ्करशरासन तथा गङ्गावत*-रणादि प्रबन्धो का अभिनय प्रदर्शित किया गया है। इस नाटक म सात अङ्क हैं और नाटककार ने प्रत्येक अङ्क को पृथक् नाम दिया है। अङ्क का यह नाम उसके प्रतिपाद्य विषय का सूचक है।

मधुरानिरुद्ध नाटक

चयनी चन्द्रशेखर रायगुरु के मधुरानिरुद्ध नाटक मे उषा और अनिरुद्ध के विवाह का वर्णन है। यह कथा हरिवंशपुराण[1] विष्णुपुराण[2] तथा श्रीमद्भागवत[3] मे मिलती है। नाटककार ने मूलकथा मे अनेक परिवर्तन किये हैं।

मधुरानिरुद्ध मे नारद से यह सुनकर कि शिव के वर से बलशाली बाणासुर ने देवा को पराजित कर स्वर्ग से बाहर निकाल दिया है। श्रीकृष्ण बाणासुर पर आक्रमण करने के लिए उद्यत हो जाते हैं। नारद श्रीकृष्ण से कहते हैं कि बाण के प्रति शिव का प्रेम शिथिल हुए विना उसे पराजित नही किया जा सकता। अत मैं शोणपुर जाकर बाण के प्रति शिव के प्रेम-शैथिल्य का पर्यालोचन कर पर्वत के द्वारा आपके पास पत्रिका भेजूँगा। इसके पश्चात् नारद शोणपुर चले जाते हैं और श्री कृष्ण इस वृत्त को गरुड तथा प्रद्युम्न से बताने के लिए जाते हैं। परन्तु मूलकथा मे नारद श्रीकृष्ण के पास उस समय जाते हैं, जब कि अप्सरा चित्रलेखा अनिरुद्ध का अपहरण कर बाण की पुत्री उषा के पास ले गई थी और कृष्णादि द्वारका मे अनिरुद्ध के अपहर्त्ता का पता लगाने के लिए चिन्तित थे। नारद श्रीकृष्ण को बताते हैं कि बाण ने अनिरुद्ध से युद्ध कर उसे नागमुखी बाणो द्वारा आवेष्टित कर दिया है तथा उसका वध करना चाहता है। नारद से यह जानने के पश्चात् ही श्रीकृष्ण, बलदेव

1. हरिवंशपुराण, विष्णुपर्व, अध्याय 116-28
2. विष्णुपुराण, पञ्चम अंश, अध्याय 32-33
3. श्रीमद्भागवत, दशमस्कन्ध, अध्याय 62-63

तथा प्रद्युम्न सहित गरुडारूढ होकर शोणपुर जाते है। अत मूलकथा मे श्रीकृष्ण अनिरुद्ध को बाणासुर के बन्धन से मुक्त कराने के लिए शोणपुर जाते हैं जबकि मधुरानिरुद्ध मे वह बाणासुर द्वारा की गई इन्द्रादि देवो की दुर्दशा सुनकर बाणासुर को पराजित करने के लिए शोणपुर जाते हैं।

मधुरानिरुद्ध मे शिव बाणासुर के दर्प से अप्रसन्न होकर शोणपुर मे अपने आवास का त्याग करने का निश्चय कर वीरभद्र को कैलाश पर्वत परिष्कृत करने की आज्ञा देते हैं, परन्तु पौराणिक कथाओ मे शिव द्वारा शोणपुर को त्यागकर कैलाश पर्वत पर पुन जाने का उल्लेख नही मिलता।

मधुरानिरुद्ध मे पार्वती की सहचरी जया तथा वीरभद्र के वार्तालाप से बाण का विनाश सूचित होता है परन्तु पौराणिक कथा मे इनका यह वार्तालाप नहीं मिलता।

मधुरानिरुद्ध म पार्वती से वर प्राप्त होने के पश्चात् उषा को यह चिन्ता रहती है कि उसका स्वप्नजार महाकुलोत्पन्न तथा सुन्दर होगा अथवा नही। परन्तु मूलकथा मे उषा को ऐसी कोई चिन्ता नही रहती।

मधुरानिरुद्ध मे पार्वती के वर के पश्चात् उषा के स्मरण करने पर उसे अनिरुद्ध अप्रत्यक्ष रूप से स्फुरित होते है, परन्तु मूलकथा मे वैशाखशुक्ल त्रयोदशी के पूर्व उषा को अनिरुद्ध के इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से स्फुरित होने का उल्लेख नही मिलता।

मधुरानिरुद्ध म अनिरुद्ध द्वारका मे स्वप्न मे उषा के साथ रमण करते हैं। जाग्रत होने पर उषा को न देखकर वह व्याकुल हो जाते हैं। उषा के नाम तथा कुलशीलादि के विषय मे कुछ भी ज्ञात न होने के कारण अनिरुद्ध अपने मित्र वकुलाङ्क से उसके विषय में पूछता है। वकुलाङ्क नारद से पूछकर अनिरुद्ध को बताता है कि आपने बाणासुर की पुत्री उषा को स्वप्न मे देखा है। वकुलाङ्क अनिरुद्ध को गुप्त रूप से बाणनगर मे प्रवेश कर उषा को प्राप्त करने का सुझाव देता है, परन्तु मूल-कथा मे अनिरुद्ध तथा वकुलाङ्क का यह वार्तालाप प्राप्त नही होता।

मधुरानिरुद्ध मे बाणनगर के चारो ओर से अग्नियो द्वारा आवृत होने के कारण उसमे प्रवेश करने के लिए अनिरुद्ध खेचरसिद्धि प्राप्त करने के लिये ज्वाला-मुखीपीठ जाकर ज्वालामुखी देवी की आराधना करता है। अनिरुद्ध की भक्ति से प्रसन्न देवी उसे खेचरसिद्धि तथा भक्ति का वर देती है, परन्तु मूलकथा मे अनिरुद्ध के ज्वालामुखी देवी से वर प्राप्त करने का उल्लेख नहीं मिलता।

मधुरानिरुद्ध में बाणासुर शिव की निन्दा करता है तथा उनके वचनो पर विश्वास नहीं करता। बाण केतुयष्टि के गिरने तथा भूकम्पादि उत्पातों की ब्राह्मणो द्वारा शान्ति कराने का आदेश देता है। बाण अपनी पत्नी प्रियवदा, मन्त्री कुम्भाण्ड

तथा कञ्चुकी के वचनों की अवज्ञा करता है तथा शिव की आराधना नहीं करता। मूलकथा में प्रियवदा, कुम्माण्ड तथा कञ्चुकी उत्पातशान्ति के लिए बाण से शिव की आराधना करने के लिये नहीं कहते।

मधुरानिरुद्ध में बाण की पत्नी प्रियवदा बाण के अनिष्ट की आशङ्का से शिव को प्रसन्न करने के लिए एक मास का व्रत आरम्भ करती है। परन्तु बाण उसके मना करने पर भी उसे विहारमण्डप में ले जाकर उसका व्रत भङ्ग करता है। मूलकथा में प्रियवदा के व्रताचरण तथा बाण के द्वारा उसके व्रत का भङ्ग किये जाने का उल्लेख प्राप्त नहीं होता।

मधुरानिरुद्ध में नारद चित्रलेखा द्वारा अभिलिखित चित्रफलक में उषा को अनिरुद्ध को दिखाते हैं। अनिरुद्ध को देखकर उषा हर्षित होती है और उसमें सात्त्विक भावों का आविर्भाव होता है। इससे नारद और चित्रलेखा समझ जाते हैं कि अनिरुद्ध को ही उषा ने स्वप्न में देखा था। मूलकथा में चित्रलेखा द्वारा उषा को चित्रफलक दिखाये जाते समय नारद उपस्थित नहीं रहते। नारद द्वारा उषा को चित्रफलक दिखाया जाना नाटककार की अपनी कल्पना है। उषा द्वारा स्वप्न में देखे गये पुरुष को निर्धारित करने के लिए ज्योतिषी का बुलाया जाना भी नाटककार की अपनी कल्पना है।

मधुरानिरुद्ध में चित्रलेखा शोणपुर में ही नारद के सात समुद्रों के पार ले जाने वाली विद्या सीख कर उषा तथा नारद की सहमति से अनिरुद्ध को लेने के लिए द्वारका जाती है, परन्तु मूलकथा में चित्रलेखा केवल उषा की प्रार्थना से द्वारका जाती है और द्वारका में ही नारद उसे तामसी विद्या प्रदान करते हैं।

मधुरानिरुद्ध में नारद बिना बाणासुर तथा श्रीकृष्ण की अनुमति लिए ही उषा तथा अनिरुद्ध का विवाह कराते हैं, परन्तु मूलकथा में उषा तथा अनिरुद्ध स्वयं ही एक गुप्त स्थान में जाकर विवाह करते हैं।

मधुरानिरुद्ध में बाणासुर द्वारा अनिरुद्ध का वध करने के लिए भेजे गये दानव-योद्धा अनिरुद्ध को ज्वालामुखी देवी से प्राप्त अन्तर्धान सिद्धि के कारण उसे देख नहीं पाते। परन्तु मूलकथा में इसका उल्लेख नहीं मिलता।

मधुरानिरुद्ध में जब तक बाणासुर अनिरुद्ध से युद्ध करने के लिए जाता है तब तक श्रीकृष्ण बलदेव तथा प्रद्युम्न सहित वहाँ पहुँच जाते हैं, परन्तु मूलकथा में श्रीकृष्णादि शोणपुर उस समय पहुँचते हैं जबकि बाण ने अनिरुद्ध को नागपाश में बाँध लिया था। मधुरानिरुद्ध में बाण द्वारा अनिरुद्ध के नागपाश से बाँधे जाने का उल्लेख नहीं है।

मधुरानिरुद्ध में शैवज्वर का केवल वैष्णवज्वर के साथ युद्ध होता है जबकि मूलकथा में शैवज्वर का श्रीकृष्ण तथा बलदेव के साथ भी युद्ध होता है।

मधुरानिरुद्ध मे श्रीकृष्ण अपने तीक्ष्ण शरो से बाणासुर की चार को छोड़कर शेष सभी भुजायें काट देते है, परन्तु मूलकथा मे श्रीकृष्ण चक्र द्वारा बाण की दो भुजाओ के अतिरिक्त शेष सभी भुजाओ को नष्ट कर देते हैं ।

मधुरानिरुद्ध मे पहिले श्रीकृष्ण और बाणासुर का युद्ध होता है और फिर श्रीकृष्ण और शिव का, परन्तु मूलकथा मे युद्ध-क्रम इसके विपरीत है ।

मधुरानिरुद्ध मे गणेश भी बाण की ओर से श्रीकृष्ण के साथ युद्ध करने जाते है, परन्तु मूलकथा मे गणेश युद्ध करने के लिए नही आते ।

मधुरानिरुद्ध मे नाटककार ने श्रीकृष्ण की अपेक्षा शिव की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने के लिए श्रीकृष्ण द्वारा शिव से क्षमायाचना कराई है । मूलकथा मे श्रीकृष्ण शिव से क्षमा नही माँगते ।

मधुरानिरुद्ध म पार्वती की आज्ञा से बाणासुर उषा को अनिरुद्ध के लिए समर्पित करता है । परन्तु मूलकथा मे युद्धविराम के पश्चात् बाणासुर के शिव से अनेक वर प्राप्त कर उनका महाकाल नामक पार्षद बनकर उनके साथ चले जाने के कारण श्रीकृष्ण अनिरुद्ध का उषा के साथ विवाह कराते हैं ।

मधुरानिरुद्ध मे आठ अङ्क हैं और प्रत्येक अङ्क का उसमे वर्णित कथाश के अनुसार पृथक् नाम है । इस नाटक मे कवि ने अनेक स्थलो पर ऋतुओ तथा प्रकृति का वर्णन किया है । इस नाटक की कथावस्तु से मूलकथा मे किये गये अनेक परिवर्तन नाटककार की मौलिक प्रतिभा के द्योतक हैं । नाटककार ने कथावस्तु म पौराणिक कथा मे से कतिपय प्रसङ्गो को निकाल दिया है, कतिपय नवीन प्रसङ्गो का समावेश किया है तथा अन्य प्रसङ्गो के अनुक्रम मे परिवर्तन किया है । इस नाटक म अनिरुद्ध के नागपाश द्वारा बद्ध किये जाने का उल्लेख नही मिलता । यह इस नाटक की कथावस्तु मे एक महत्वपूर्ण परिवर्तन है ।

मधुरानिरुद्ध नाटक की वस्तु सुसगठित नहीं है । मूलकथा मे श्रीकृष्ण अनिरुद्ध का विवाह सम्पन्न कर द्वारका जाने का विचार करते हैं । कुम्भाण्ड के विनय करने पर श्रीकृष्ण वरुण के साथ युद्ध कर बाणासुर की उन गायो को उन्मुक्त कराते हैं जिन्हें वरुण ने बन्दी बना लिया था । श्रीकृष्ण उन गायो का दुग्ध-पान करते हैं । तदनन्तर द्वारका जाकर श्रीकृष्ण अनिरुद्ध का विवाहोत्सव मनाते हैं । मूलकथा मे कुम्भाण्डपुत्री को विवाह मे साम्ब के लिए अर्पित किया जाता है । परन्तु नाटककार न इन प्रसङ्गो को नाटकीय कथावस्तु मे स्थान नही दिया है ।

मधुरानिरुद्ध मे नाटककार ने कतिपय नवीन पात्रों की कल्पना की है । वीरभद्र, जया, बकुलाङ्क, कञ्चुकी, मकरिका, प्रियवदा, भृङ्गी नारी, ज्वालामुखीदेवी, ज्यौतिषिक तथा पर्वत मधुरानिरुद्ध नाटक मे नवीन पात्र हैं । नाटककार ने यथास्थान

नाट्यनिर्देश दिये है। इस नाटक मे कवि ने प्रवेशक तथा विष्कम्मादि अर्थोपक्षेपको मे से किसी का भी प्रयोग नही किया है। वर्णनो के बाहुल्य के कारण इस नाटक मे नाटकीय गति मे शिथिलता आ गई है।

रतिमन्मथ नाटक

जगन्नाथ के रतिमन्मथ नाटक की कथावस्तु अनेक पुराणो से ली गई है। असुरो द्वारा पराजित इन्द्र का मन्मथ को शिव की समाधि मङ्ग करने के लिए भेजना, समाधि के भङ्ग होने पर शिव का मन्मथ के प्रति क्रुद्ध होना, शिव तथा पार्वती का विवाह, कार्तिकेय का जन्म तथा उनके द्वारा तारकादि दैत्यो का विनाश, यह कथा स्कन्दपुराण[1] से ली गई है। कथा का यह भ्रश कालिदास के कुमारसमव महाकाव्य से प्रभावित है।

रतिमन्मयनाटक म विद्यमान शम्बरवध की कथा हरिवशपुराण[2], विष्णुपुराण[3] तथा श्रीमद्भागवत[4] मे प्राप्त होती है।

रतिमन्मथ नाटक मे नाटककार ने मन्मथ से सम्बन्धित अनेक कथाओ को एक सूत्र मे सम्बद्ध किया है जिससे मन्मथ के जीवन से सम्बन्धित प्रमुख घटनाओ को प्रदर्शित किया जा सके। पौराणिक कथाओ मे नाटककार ने अनेक परिवर्तन किये हैं। इनमे से कतिपय परिवर्तन तो नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से किये गये हैं तथा कतिपय कथावस्तु को अद्भुत बनाने के लिए।

रतिमन्मथ नाटक मे भ्रमण करते हुए मन्मथ द्वारा प्रासाद के अग्रभाग पर रति का देखा जाना, दर्शनमात्र से मन्मथ तथा रति की परस्पर आसक्ति, रति के पुन दर्शन की लालसा से मन्मथ का नन्दनोद्यान मे जाना, मन्मथ द्वारा शुक को खिलाने के लिए घुटिका द्वारा आम्रफल का गिराना, सयोगवश उस आम्रफल का अपनी सखियो सहित पूर्व से ही विद्यमान रति के अङ्क मे गिरना, फल को लेने के लिए आम्रवृक्ष की ओर बढते हुए मन्मथ का रति तथा उसकी सखियो को देखकर आनन्दित होना, मन्मथ का रति की सखियो से पूछकर उसके कुलशीलादि का ज्ञान करना, मन्मथ को देखकर रति मे उसके प्रति सात्विक भावो का उदय होना, रति का अपनी माता के साथ परदेवताराधन के लिए जाना, रति को प्राप्त करने के लिए

---

1. स्कन्दपुराण, माहेश्वरखण्ड के अन्तर्गत केदारखण्ड, अध्याय 21–30
2. हरिवशपुराण, विष्णुपर्व, अध्याय 104–8
3. विष्णुपुराण, 5/26–28
4. श्रीमद्भागवत, दशमस्कन्ध, अध्याय 55

मन्मथ द्वारा परदेवता की चतुर्थवरणदेवता सर्वार्थसाधिका के समीप मन्त्री वसन्त द्वारा सन्देश भेजना, मध्याह्न मे मन्मथ का मन्दाकिनी मे स्नान तथा सन्ध्योपासन के लिये जाना आदि घटनायें नाटककार द्वारा कल्पित की गई है। पुराणो मे इन घटनाओ का उल्लेख नही मिलता।

इसी प्रकार रति के नवयौवन को देखकर उसके माता-पिता द्वारा उसका मन्मथ के साथ विवाह करने का निश्चय करना नन्दनोद्यान मे मन्मथ को देखने के पश्चात् रति का उसके वियोग म व्याकुल होना तथा सखियो द्वारा उसका शीतोपचार किया जाना, सर्वार्थसाधिका की कृपा से रति तथा उसकी सखियो को धारागृह से ही अपनी चन्द्रशाला के वातायन पर स्थित कामपीडित मन्मथ तथा विदूषक का दिखाई देना, विदूषक को दिखाने के लिए मन्मथ द्वारा चित्रफलक पर रति का चित्र बनाने के लिए कञ्चुकी को चित्रफलक लाने की आज्ञा देना सयोगवश कञ्चुकी द्वारा उसी चित्रफलक का दिया जाना जिस पर रति ने मन्मथ का चित्र बनाया था, मन्मथ का उसी चित्रफलक पर अपने चित्र के पार्श्व मे रति का चित्र बनाना, वशिनी से रति की काम-व्यथा को सुनकर मन्मथ का दु खी होना, मन्मथ द्वारा बनाये गये अपने चित्र को देखकर रति का आनन्दित होना, आदि घटनायें भी नाटककार द्वारा कल्पित की गई हैं। यह कथाश पुराणो मे उपलब्ध नही होता।

रतिमन्मथ नाटक मे बृहस्पति के कहने से रति के माता पिता उस मन्मथ के लिए अर्पित करना चाहते है, परन्तु मूलकथा मे इसका उल्लेख नही मिलता।

रतिमन्मथ मे शुक्राचार्य का शिष्य वाष्कल शम्बरासुर के लिए रति की याचना करने रति के माता-पिता के पास जाता है, परन्तु रति के माता पिता रति की अनिच्छा के कारण रति को शम्बरासुर के लिये अर्पित करने से मना कर देते हैं। यह नाटककार की कल्पनामात्र है।

रतिमन्मथ मे महेन्द्र मन्मथ को जिस समय शिव को पार्वती के प्रति अनुरक्त करने के लिए भेजता है, उस समय मन्मथ का रति के साथ विवाह होने वाला था, परन्तु पौराणिक आख्यान मे तो उस समय रति और मन्मथ के विवाह का प्रसङ्ग ही नही आता। पौराणिक आख्यान के अनुसार तो रति भी मन्मथ के साथ शिव-समाधि भङ्ग करने के समय उपस्थित थी।

रतिमन्मथ मे विजय-यात्रा के लिए प्रस्थान करते हुए मन्मथ का प्रतिक्षण का वृत्तान्त जानने के लिए महेन्द्र का जाङ्घिकादि चरो को नियुक्त करना नाटककार की मौलिक योजना है।

रतिमन्मथ मे जैसे ही शिव मन्मथ को भस्म करने के लिए अपना अग्निनेत्र खोलने हैं, वैसे ही सर्वार्थसाधिका वहाँ पहुँचकर उस अग्नि को अपने स्थान मे वापिस

पहुँचा देती है। इस प्रकार मन्मथ भस्म नहीं होने पाते। नाटककार ने नायक की मृत्यु को बचाने के लिए उपर्युक्त उपाय का प्रयोग किया है। यह नाटककार की मौलिक सूझ है।

रतिमन्मथ में शम्बर द्वारा रति का अपहरण किया जाना नाटककार की मौलिक योजना है। रति के माता-पिता तथा सखियाँ रति का अपहरण किये जाने पर विलाप करते हैं और पुरोहित उन्हें आश्वस्त करता है। यह नाटककार की अपनी सूझ है।

रतिमन्मथ में महेन्द्र का दूत चारण रति के माता-पिता को देवासुरसंग्राम तथा कार्त्तिकेय द्वारा तारकादि दानवों के विनाश किये जाने के विषय में बताता है। पौराणिक आख्यान में चारण रति के माता-पिता को उपर्युक्त वृत्तान्त नहीं बताता। नाटकीय कथाप्रवाह को अविच्छिन्न रखने के लिए नाटककार ने चारण द्वारा रति के माता-पिता को देवासुरसंग्राम के विषय में सूचित करने की कल्पना की है।

रतिमन्मथ में जब शम्बर अपहृत रति को रथ में बिठाकर जा रहा था, तब सर्वार्थसाधिका अपने योगबल से रति के सदृश एक अन्य स्त्री मायावती का निर्माण कर बिना किसी के जाने ही उसे शम्बर के रथ में रखकर वहाँ से रति को निकाल लेती है और उसे अपने पास रखती है। यह नाटककार की मौलिक सूझ है।

रतिमन्मथ में मन्मथ का रति को शम्बरासुर से वापिस लेने के लिए युद्ध करने के लिए जाना नाटककार की अपनी सूझ है। पौराणिक आख्यान में मन्मथ श्रीकृष्ण तथा रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्न के रूप में जन्म लेकर उस समय शम्बरासुर से युद्ध करने जाता है जब उसे अपने पूर्वजन्म की पत्नी रति (मायावती) से यह ज्ञात होता है कि शम्बरासुर ने उसकी सात दिन की अवस्था में ही उसका अपहरण किया था।

रतिमन्मथ में नारद तथा उनके शिष्य के द्वारा मन्मथ तथा शम्बरासुर के युद्ध का वर्णन कराना नाटककार की अपनी योजना है।

रतिमन्मथ में शम्बर का वध करने के पश्चात् मायावती को लेकर मन्मथ अमरावती जाते हैं, परन्तु पौराणिक आख्यान में प्रद्युम्न (मन्मथ) मायावती के साथ द्वारका लौटते हैं।

पौराणिक आख्यान में रति और मायावती एक ही नारी है। यह नाटककार की मौलिक प्रतिभा है, जो उसने रतिमन्मथ नाटक में रति तथा मायावती को दो पृथक् नारियों के रूप में निरूपित कर उन दोनों का एक साथ ही मन्मथ से विवाह कराया है।

रतिमन्मथ मे मन्मथ के रति तथा मायावती के विवाह के तुरन्त पूर्व इन्द्र सेना तथा देवसेना का कार्त्तिकेय के साथ विवाह सम्पन्न कराना भी नाटककार की *मौलिक योजना है। इसके द्वारा नाटककार ने महेन्द्र तथा उपेन्द्र के साधु आचरण* को प्रदर्शित किया है। साधु पुरुष पहिले अपनी कन्या का विवाह करते है तथा उसके पश्चात् पुत्र का।

रतिमन्मथ मे तत्कालीन शिष्टाचार का पालन करने के लिए नाटककार ने विवाह के पश्चात् मन्मथ के रति तथा मायावती के साथ देवी के दर्शन के लिए जाने की मौलिक योजना बनाई है।

रतिमन्मथ नाटक मे रति तथा मायावती को राग, मुदिता, रति की सखियो, सर्वार्थसाधिका तथा मन्मथ के समक्ष एक साथ ही प्रदर्शित कर नाटककार ने एक अद्भुत दृश्य उपस्थित किया है।

रतिमन्मथ नाटक की कथावस्तु सुघटित है। नाटककार ने पौराणिक कथा मे अनेक परिवर्तन कर वस्तु को अपूर्व बना दिया है। नाटकीय कथावस्तु मे अनेक अभिनव पात्रो का सन्निवेश किया गया है। ये नवीन पात्र हैं—विदूषक सारूयायन, रति की सखियाँ कीरवाणी तथा कोकिलवाणी, सर्वार्थसाधिका, वशिनी, चेटियाँ, मयूरिका तथा सारिका, शुक्राचार्य का शिष्य वाष्कल, जाङ्घिकादि चर तथा राग का पुरोहित।

रतिमन्मथ नाटक की वस्तु मे कही-कही वर्णनो का बाहुल्य हो गया है। तृतीय अङ्क मे नाटककार ने सुदीर्घकालीन घटनाओ का थोडे से समय मे हो जाना प्रदर्शित किया है। यह अस्वाभाविक प्रतीत होता है। मन्मथ द्वारा शिव और पार्वती का परस्पर प्रेम कराया जाना, शिव और पार्वती से कार्त्तिकेय का जन्म, कार्त्तिकेय को देवसेना के सेनापति बनाये जाना, शम्बरासुर द्वारा रति का अपहरण, महेन्द्र का शम्बरासुर के वध के लिए प्रतिज्ञा करना परन्तु बृहस्पति के कहने से शम्बरासुर के वध का श्रेय मन्मथ को प्रदान करने के लिए स्वय शम्बर का वध करने से विरत हो जाना, इन समस्त घटनाओ का एक ही अङ्क मे इतने थोडे समय मे प्रदर्शित करना अस्वाभाविक हो जाता है। इससे नाटकीय गतिशीलता समाप्त हो जाती है और यह वर्णनमात्र रह जाता है।

रतिमन्मथ मे नाटककार ने कथाशो को सूचित करने के लिए यथास्थान प्रवेशक, विष्कम्भक तथा चूलिका का प्रयोग किया है।

कुवलयाश्वीय नाटक

कृष्णदत्त मैथिल के कुवलयाश्वीय नाटक की कथावस्तु मार्कण्डेय पुराण से ली गई है।[1] नाटककार ने मूलकथा मे कतिपय परिवर्तन किये हैं।

1. *मार्कण्डेयपुराण, अध्याय 18–22*

कुवलयाश्वीय नाटक मे राजा शत्रुजित् अपने प्रतिहारी को आदेश देते है कि तुम महर्षि भारद्वाज के आश्रम पर किसी व्यक्ति को भेजकर वहाँ का समाचार ज्ञात करो। इस नाटक म भारद्वाज के आश्रम से सोमशर्मा नामक व्यक्ति शत्रुजित के समीप जाता है, परन्तु मूलकथा मे इसका उल्लेख नही मिलता ।

मूलकथा म गालव मुनि कुवलय नामक अश्व को लेकर शत्रुजित् के पास जाकर उनसे निवेदन करते है कि दानव पातालकेतु मेरे यज्ञ को निरन्तर ध्वस्त कर देता है। अत आप अपने पुत्र ऋतध्वज को मेरे यज्ञ म विघ्न डालने वाले राक्षसो के सहार के लिए मेरे साथ भेज दीजिये। ऋतध्वज कुवलय नामक घोडे पर चढकर राक्षसो को नष्ट करे, परन्तु नाटकीय कथावस्तु मे राजा शत्रुजित् के पास जाते हुए मुनि गालव के साथ कुवलय नामक घोडे के अतिरिक्त उनके पुण्यशील तथा सुशील नामक दो शिष्य भी हैं ।

मूलकथा मे पातालकेतु द्वारा यज्ञ के निरन्तर नष्ट कर दिये जाने से खिन्न गालव के आकाश मे दीर्घश्वास छोडने पर वहाँ से कुवलय नामक घोडा पृथ्वी पर गिरता है, परन्तु नाटकीय कथावस्तु मे जब गालव मध्याह्न सन्ध्या करते समय सूर्य की ओर देख रहे थे, तब सूर्यमण्डल से कुवलय नामक घोडा निकलकर उनके सामने उपस्थित हो जाता है। कुवलय नामक अश्व (घोडे) पर चढने के कारण राजकुमार ऋतध्वज का नाम कुवलयाश्व हो जाता है।

मूलकथा म राजकुमार कुवलयाश्व का मुनि आश्रम मे निवास जान बिना ही पातालकेतु शूकर का रूप धारण कर गालव मुनि का धर्षण करने लगता है। राजकुमार कुवलयाश्व धनुष-बाण लेकर उसकी ओर दौडकर उस पर प्रहार करता है। उसका पीछा करता हुआ राजकुमार पाताल मे प्रवेश करता है। शूकररूपी दैत्य अन्तर्धान हो जाता है। पाताल मे कुवलयाश्व मदालसा तथा उसकी सखी कुण्डला से मिलता है। मदालसा उस पर मोहित हो जाती है।

नाटकीय कथावस्तु मे मूलकथा से यहाँ कुछ भिन्नता है। नाटकीय कथावस्तु म पातालकेतु अपने अनुचर ककालक को राजकुमार कुवलयाश्व का अपहरण करन के लिए गालव मुनि के आश्रम भेजता है। पातालकेतु का दूसरा अनुचर करालक भी मुनि आश्रम जाता है। ककालक तथा करालक राजकुमार के शौर्य को देखकर डर जाते हैं। करालक तो अपने प्राणो की रक्षा के लिये वहाँ से भाग जाता है, परन्तु ककालक साधु का वेष बनाकर आश्रम के समीप विचरण करता रहता है ।

नाटकीय कथावस्तु म गालव मुनि राजकुमार कुवलयाश्व को अपने आश्रम के भागो को दिखाने के लिए अपने शिष्य को बुलाते हैं । ककालक मुनिशिष्य

शालकायन का वेष बनाकर मुनि के समीप जाता है। मुनि उसे वास्तविक शालकायन समझकर राजकुमार को आश्रम के विभिन्न भागों को दिखाने का आदेश देते हैं। कंकालक राजकुमार को आश्रम के सौन्दर्य की ओर आकृष्ट कर वन मे दूर तक ले जाता है। इसी समय पातालकेतु मुनि आश्रम पर आक्रमण करता है। आश्रमवासी राजकुमार को अपनी रक्षा के लिये अनेक बार पुकारते हैं। उनकी शोकाकुल वाणी सुनकर राजकुमार शीघ्रता से आश्रम पहुँचता है। राजकुमार के पहुँचते ही पातालकेतु पलायन करता है।

नाटकीय कथावस्तु मे राजकुमार पातालकेतु का पीछा करता हुआ पाताल के द्वार तक पहुँच जाता है, परन्तु पातालकेतु उसकी दृष्टि से अन्तर्धान हो जाता है। *राजकुमार पाताल मे प्रवेश कर पातालकेतु का अन्वेषण करता हुआ मदालसा* के प्रासाद के समीप पहुँचता है। मदालसा की सखी कुण्डला उसे राजकुमार का परिचय देती है और उसका स्वागत करने के लिए कहती है। मदालसा राजकुमार के प्रति आसक्त हो जाती है। कुण्डला से मदालसा के वृत्तान्त को जानकर राजकुमार उसे अपने लिए उपयुक्त पत्नी समझता है। विवाह के पूर्व राजकुमार अपने तथा मदालसा के माता-पिता की अनुमति ले लेना चाहता है। परन्तु मूलकथा मे राजकुमार स्वय ही मदालसा के साथ अपने विवाह की स्वीकृति दे देता है।

मूलकथा मे तुम्बुरु मदालसा तथा कुवलयाश्व का विवाह सम्पन्न कराते हैं। कुण्डला मदालसा तथा कुवलयाश्व को गृहस्थधर्म का उपदेश देकर स्वय तप करने के लिए चली जाती है। कुवलयाश्व मदालसा को घोडे पर चढाकर पाताल से बाहर निकलने का प्रयास करता है, किन्तु नाटकीय कथावस्तु मे राजकुमार के आग्रह के अनुरूप तुम्बुरु मदालसा के पिता विश्वावसु तथा गालव मुनि की अनुमति से उसका मदालसा के साथ विवाह सम्पन्न कराते हैं।

मूलकथा म विवाह के पश्चात् जब राजकुमार मदालसा सहित पाताल स बाहर निकलने का प्रयास करता है तो पातालकेतु अपने सैन्यसहित राजकुमार पर प्रहार करता है। राजकुमार पातालकेतु तथा अन्य दानवों का सहार करता है। नाटकीय कथावस्तु मे विश्वावसु पाताल जाकर राजकुमार का सम्मान कर उन्हें वहाँ से भेज देते हैं।

मूलकथा मे पातालकेतु को नष्ट करने के पश्चात् राजकुमार मदालसा सहित वाराणसी आकर अपने पिता से अपने पातालगमन, मदालसा-प्राप्ति तथा दानवो के साथ युद्ध का वृत्तान्त बताते है, परन्तु नाटकीय कथावस्तु मे गालव मुनि अपने शिष्य पुण्यशील को वाराणसी भेजकर शत्रुजित् को राजकुमार द्वारा पातालकेतु के सहार *तथा मदालसा के साथ विवाह के विषय मे सूचित करते हैं* ।

नाटकीय कथावस्तु मे राजा शत्रुजित् राजकुमार के पराक्रम से प्रसन्न होकर उसे युवराज पद पर अभिषिक्त कर देता है, परन्तु मूलकथा मे वह ऐसा नही करता ।

मूलकथा मे शत्रुजिद् राजकुमार कुवलयाश्व को प्रतिदिन प्रातः कालदानवो से ब्राह्मणो की रक्षा करने का आदेश देता है । नाटकीय कथा मे राजकुमार को यह सदेश एक कञ्चुकी द्वारा प्राप्त होता है ।

मूलकथा मे पातालकेतु का अनुज तालकेतु राजकुमार से प्रतिशोध लेने के लिए मुनिवेष धारण कर अपने यज्ञ की पूर्ति के लिए राजकुमार से उसका कण्ठाभूषण प्राप्त करता है । वह राजकुमार को आश्रम की रक्षा के लिये वहीं छोडकर स्वय वरुण देव की आराधना के ब्याज से राजकुमार के पिता शत्रुजित् के पास पहुँचता है । वह राजा को राजकुमार का कण्ठाभूषण दिखाकर उसके दानवो द्वारा मारे जाने का समाचार देता है । यह समाचार पाते ही मदालसा अपने प्राण त्याग देती है । नाटकीय कथावस्तु मे तालकेतु के स्थान पर पातालकेतु का अनुचर ककालकेतु यह कार्य करता है ।

कुवलयाश्वीय नाटक की कथावस्तु सुसगठित है । नाटककार ने विष्कम्भक तथा प्रवेशक का यथास्थान प्रयोग कर कथावस्तु के सूच्याशो को सूचित किया है ।

नाटककार ने नाटकीय कथावस्तु मे कतिपय नवीन पात्रो का सन्निवेश किया है । ये पात्र हैं–भारद्वाज मुनि का शिष्य सोमशर्मा, गालव मुनि के शिष्य पुण्यशील, सुशील, शालङ्कायन तथा वात्स्यायन, पातालकेतु के अनुचर करालक तथा कङ्कालक, बेटी मन्दारिका, कुण्डला की शिष्या वृन्दारिका, देव ब्राह्मण, कार्पटिक मैथिल ब्राह्मण, शत्रुजित् की पत्नी अवन्तिसुन्दरी तथा कञ्चुकी विनयन्धर । स्वगत तथा प्रकाशादि नाट्यनिर्देशो का प्रयोग भी नाटककार ने यथास्थान किया है। कुवलयाश्व तथा पातालकेतु के युद्धवर्णन मे भी नाटककार ने मौलिकता का प्रदर्शन किया है ।

सामाजिक रूपक

जिन रूपको मे सामाजिक प्रवृत्तियो का वर्णन प्राप्त होता है, वे सामाजिक रूपक कहे जाते हैं । प्रकरण, भाण, प्रहसनादि मे सामाजिक गतिविधियो का वर्णन प्राप्त होने के कारण ये सामाजिक रूपक की कोटि मे आते है ।

प्रकरण

अट्ठारहवी शती मे विरचित कोई भी प्रकरण अब तक प्राप्त नही हुआ है । सम्भवत. इस समय रूपक का यह प्रकार अप्रचलित हो गया था ।

भाण

अट्ठारहवी शती के भाणो की कथावस्तु प्राचीन भाणो की कथावस्तु के सदृश है। अत इस शती मे भाणो की कथावस्तु के सघटन मे कोई विशेष परिवर्तन परिलक्षित नही होता। अनङ्गविजय, मुकुन्दानन्द, मदनसञ्जीवन, कामविलास तथा शृङ्गारसुधाकर भाणो मे एक कार्यकुशल विट अपने तथा दूसरो के धूर्ततापूर्ण कार्यों को आकाशभाषित द्वारा वर्णित करता है। विट के द्वारा अनेक सामाजिक दूषणो का उद्घाटन किया गया है। अट्ठारहवी शती के समस्त भाणो मे प्रमुख रूप से वेश्याओ तथा कुलटाओ के चरित्र का वर्णन प्राप्त होता है। वेश्याओ तथा कुलटाओ की प्राप्ति के लिए धूर्त लोग परस्पर कलह करते हैं। अत इन भाणो मे शृङ्गार तथा वीररसो के आभास की प्रधानता है। समाज के गणमान्य व्यक्तियो के चारित्रिक दूषणो को निरूपित कर भाणकारो ने समाज को इन दूषणो से अपने को मुक्त करने के लिए जागृत किया है। इस प्रकार इन भाणो मे अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक सदाचार की आवश्यकता पर बल दिया गया है।

प्रहसन

अट्ठारहवी शती म अनेक प्रहसन लिखे गये। इनमे वेङ्कटेश्वर कवि का उन्मत्तकविकलश, घनश्याम का चण्डानुरञ्जन, रामपाणिवाद का मदनकेतुचरित, कृष्णदत्त का सान्द्रकुतूहल, प्रधान वेङ्कप्प का कुक्षिम्भरभैक्षव अधिक महत्वपूर्ण हैं। इनमे से कतिपय प्रहसनो की वस्तु प्राचीन प्रहसनो के समान है। इनमे पाखण्डी भिक्षुओ, ब्राह्मणो, वेश्याओं, व्यभिचारी राजाओ तथा मन्त्रियो आदि के दुराचार का वर्णन है। इन रूपको से यह लाभ है कि इनमे वर्णित दम्भी, पाखण्डी आदि दुर्गुणी पात्रो के चरित्र को जानकर सामाजिक लोग उनके चक्कर मे नहीं फँसते।

उन्मत्तकविकलश प्रहसन

वेङ्कटेश्वर के उन्मत्तकविकलश प्रहसन मे कविकलश के असत्य व्यवहार और दुर्जनता का वर्णन किया गया है। कविकलश का रूप बेडौल है। वह अन्य व्यक्तियो से ऋण लेकर लौटाता नही। वह अपने शिष्य-सहित ऋण लेने के लिए बाहर निकला है। वह अपने शिष्य के साथ अश्लील हास्य करता है। वह एक पौराणिक को देखता है जो विधवाओ को पुराण सुना रहा था। कविकलश माध्वसन्यासी तथा मठपति के कलह को देखता है।

कविकलश एक हास्यास्पद दृश्य देखता है। कुछ पालक एक विधवा तथा एक भागवत को बाँधकर ले जा रहे थे। भागवत ने मन्त्रोपदेश के व्याज से विधवा के साथ भोग किया था। प्रधान पालक भागवत तथा विधवा से उत्कोच माँगता है। उत्कोच न दे सकने के कारण पालक उन्हें मुक्त नहीं करते।

कविकलश वणिक् कृपणभक्त के पुत्र विटचक्रवर्ती को देखता है। कृपणभक्त तो अत्यन्त कृपण था तथा विटचक्रवर्ती अत्यन्त अपव्ययी। विटचक्रवर्ती वेश्यागामी भी था। फिर कविकलश चेटी के साथ भोग करने वाले एक धूर्त ब्राह्मण को देखता है। वह उस ब्राह्मण की रुद्राक्षमाला ले लेता है।

मार्ग मे कविकलश अपने ऋणदाताओ को देखता है। ऋणदाता कविकलश से अपना धन माँगते हैं। कविकलश उन्हे झूठा आश्वासन देता है कि मैं कल आपके ऋण को चुका दूँगा।

कविकलश एक व्यक्ति को रोता हुआ देखता है। वह व्यक्ति अपनी एकस्तनी पत्नी के किसी विदेशी के साथ भाग जाने के कारण रो रहा था। कविकलश उसे भी ठगने का उपाय सोचता है।

कविकलश अपने शिष्य को श्रीरङ्गपत्तन के राजा द्वारा की गई अपनी दुर्दशा के विषय मे बताता है।

कविकलश ने पठाणको से पचास दीनार उधार लिये थे। वह इस धनराशि को लौटाना नही चाहता था। अत वह पठाणको की दृष्टि से अपने को छिपाने की चेष्टा कर रहा था। वह ऋण लेने के लिये एक वणिक् के घर जाता है। वणिक् अपने पुत्र की मन्त्रणा से पठाणको को वहाँ बुलवाता है। पठाणक वहाँ आकर कविकलश से अपना धन वापिस माँगते हैं। कविकलश के धन न लौटाने पर पठाणक उसे पीटते हैं। कविकलश मूर्च्छित हो जाता है।

राजपुरुष कविकलश तथा पठाणको को राजा के पास ले जाते है। राजा आज्ञा देता है कि पठाणको का सर्वस्व छीनकर उन्हे राज्य से निकाल दिया जावे। कविकलश राजा के प्रति आभार प्रकट करता है।

उन्मत्तकविकलश मे एक अङ्क है। यह शुद्ध कोटि का प्रहसन है। इसका नायक कविकलश ब्राह्मण है। वह उन्मत्त के समान आचरण करता है। वह पूर्ण कोटि का नायक है। इस प्रहसन की नान्दी मे तीन पद्य हैं। नान्दी के अनन्तर इसमे प्रस्तावना है। इसमे मुख तथा निर्वहण दो ही सन्धियाँ हैं। प्रहसनकार के ही शब्दो मे यह प्रहसन निराला है। इस प्रहसन की रचना करने के पश्चात् लेखक को दु ख हुआ कि मैंने अपनी पवित्र वाणी का प्रयोग इन धूर्तों के चरित का वर्णन करने मे किया।[1]

चण्डानुरञ्जन प्रहसन

घनश्याम के चण्डानुरञ्जन प्रहसन मे गुरु दीर्घशेफ तथा उसके तीन शिष्य

---

1 पुण्यश्लोकसुधाकथालहरिभि सिक्ता मनीषावताम् वाणी मद्यधूर्तचरित्रकीर्तनभुवा दोषेण हा श्लिष्यते ॥

उन्मत्तकविकलश प्रहसन, पद्य 92।

बर्कर, तर्णक तथा मार्जार के घूर्तचरित का वर्णन है। दीर्घशेफ अपनी पत्नी स्थूल-योनि को अपने शिष्यों को देकर उनसे किसी पवित्र व्यक्ति की पत्नी को लाने के लिए कहता है। मार्जार परस्त्रीगामी तथा वेश्यागामी है। दीर्घशेफ के विचार में अपनी पत्नी दूसरों को देना तथा किसी पवित्र व्यक्ति की पत्नी के साथ भोग करना पाप नहीं, अपितु पुण्य है।

दीर्घशेफ के लिए किसी पवित्र व्यक्ति की पत्नी को प्राप्त करने के लिए मार्ग में जाते हुए बर्कर, तर्णक तथा मार्जार के पास स्तब्धरोमा नामक व्यक्ति अपनी पत्नी सरमा को लेकर आता है। सरमा कुलटा नारी है। वह अपने पति को प्रवञ्चित कर अन्य पुरुषों के साथ भोग करती है। तर्णक सरमा के साथ भोग करता है।

बर्करादि के पास एक दिगम्बर आता है। दिगम्बर का छोटा भाई कनकचोर अपने स्वामी के साथ कलह करता था। दिगम्बर स्वयं वेश्यागामी है। वेश्या को धन देने के लिए वह चोरी करता है। बर्कर कतिपय स्त्रियों को देखता है, जो यज्ञ के लिए घृत प्राप्त करने के लोभ से परपुरुषों के साथ भोग करती थी। दिगम्बर का मित्र वाष्कल कुलटागामी है। दिगम्बर के अनुसार यज्ञादि दुष्कर्म करने वालों को मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती। दिगम्बर कहता है कि यज्ञ करना दुष्कर्म तथा पाप है क्योंकि यज्ञ का फल प्रत्यक्ष रूप से दिखाई नहीं देता तथा यज्ञ में हिंसा की जाती है।

बर्करादि अपने समक्ष लम्बवृषण को देखते हैं। लम्बवृषण कौलसम्प्रदाय का अनुयायी है। वह सुरापायी तथा परस्त्रीगामी है। मार्जार नदी में स्नान करते हुए मध्वमतानुयायियों को देखकर माध्वों की पाखण्डता तथा विधवाप्रियता का वर्णन करता है। बर्कर रामानुजमतानुयायियों की नारियों की धूर्तता का वर्णन करता है।

दिगम्बर विधवाओं को उपदेश देते हुए दुराचारी गोस्वामियों का उपहास करता है। तर्णक कहता है कि परस्त्रीगमन में कोई दोष नहीं है। उसके अनुसार परस्त्री के प्रति अनासक्ति, अस्तेय, सत्यवादिता, अद्रोह तथा माता-पिता की सेवा करना पाप है और इनके प्रायश्चित्त के लिए चान्द्रायण व्रत करना चाहिये।

बर्कर के पूछने पर वैद्य वज्रदन्त बताता है कि निजस्त्रीसङ्गदोष से पित्तोत्पत्ति होती है तथा परस्त्रीसङ्ग से पित्तोपशमन होता है। बर्कर एक मखिव्रुव को देखता है जो अपनी अनुजवधू तथा स्वसा के साथ भी भोग करने में सकोच नहीं करता था। इस पाप का प्रक्षालन करने के लिए जब वह काशी जाता था तो वहाँ किसी नवीन विधवा के साथ भोग कर और दो तीन पशुओं को मारकर अपने ग्राम लौट आता था।

तर्णक एक आचार्य को देखता है, जो अनेक नारियों के साथ भोग करता था। ग्रन्थि-गिरन 'सर्वाधमविभु' नामक व्यक्ति को देखता है, जो दूसरों से केवल

लेता ही लेता था परन्तु उन्हे कुछ देता नही था। वह दूसरे व्यक्तियो की समृद्धि नहीं देख सकता था।

एक देशज्ञ वहाँ आकर विभिन्न प्रदेशो की नारियो तथा उनके लक्षणो का वर्णन करता है। गुरु दीर्घशेफ को किसी नारी को देने के लिए मार्जार तथा बर्कर तर्णक को नारी का वेष धारण कराते है। फिर वे दीर्घशेफ के पास जाते है और नारीवेषधारी तर्णक को दीर्घशेफ के लिये अर्पित करते है। दीर्घशेफ नारी को देखकर प्रसन्न होता है।

चण्डानुरञ्जन प्रहसन का नायक ब्राह्मण दीर्घशेफ है। अत यह शुद्ध कोटि का प्रहसन है। दीर्घ शेफ धृष्ट नायक है। इस प्रहसन मे छ पद्यो की नान्दी है। इस प्रहसन मे एक अङ्क है। इसकी वस्तु कविकल्पित है। इसमे धूर्तों का चरित वर्णित है। इस प्रहसन मे सूत्रधार के लिए प्रवर्तक शब्द का प्रयोग किया गया है। इसमे उचित स्थान पर नाट्य निर्देश दिये गए है।

चण्डानुरञ्जन प्रहसन मे कवि ने मनु, याज्ञवल्क्य, बोधायन तथा अन्य विद्वानो और प्रामाणिक धार्मिक ग्रन्थो का उल्लेख कर ऐसे उद्धरण दिये हैं जो उनमे प्राप्त नही होते। ये उद्धरण प्रहसनकार द्वारा स्वय बनाये गये हैं। इस प्रहसन मे प्रवेशक तथा विष्कम्भकादि अर्थोपक्षेपको का प्रयोग नही किया गया है। प्रहसन मे अर्थोपक्षेपको का प्रयोग न किया जाना नाट्यशास्त्रीय नियमो के अनुकूल है। कथा-वस्तु के विकास के लिए इसमे केवल मुख तथा निर्वहण सन्धियो का ही प्रयोग किया गया है। इस प्रहसन मे आकाशभाषित का उपयोग अनेक स्थलो पर दिखाई देता है।

मदनकेतुचरित प्रहसन

रामपाणिवाद के मदनकेतुचरित प्रहसन मे सिंहल के राजा मदनकेतु के चरित का वर्णन है। मदनकेतु उत्कल प्रान्त को जीतकर अपने भाई मदनवर्मा को वहाँ का प्रशासक नियुक्त करता है। मदनकेतु का एक मित्र है भिक्षु विष्णुमित्र। यह भिक्षु गणिका अनङ्गलेखा मे आसक्त है। मदनकेतु भिक्षु के इस दुराचार को प्रोत्साहन देता है। इसी कारण सिंहल देश मे अधर्म का अकुर है।

मदनवर्मा सिंहल देश से अधर्म को हटाने के लिए शिवदास नामक एक लाटदेशीय तान्त्रिक को सिंहल भेजता है। मदनवर्मा ने शिवदास को यह आदेश दिया था कि वह भिक्षु विष्णुमित्र के मन मे विरक्ति उत्पन्न कर उसे योगियो के मार्ग पर ले आये।

मदनवर्मा के दूत जम्भकर्ण के साथ शिवदास सिंहल पहुँचता है। दुर्लभ स्त्रियो मे आसक्त कामुकों को उनकी इष्टवस्तु से संघटित करने मे शिवदास की दक्षता को जानकर मदनकेतु उससे कहता है कि मैं द्रविड देश मे रहने वाली

गणिका चन्द्रलेखा में आसक्त हूँ, अतः आप मुझे उससे सघटित करा दीजिये। शिवदास मदनकेतु को ऐसा ही करने के लिये आश्वासन देता है।

भिक्षु विष्णुमित्र अनङ्गलेखा का बलपूर्वक भोग करता है। अनङ्गलेखा की माता भिक्षु को घसीटती हुई मदनकेतु के पास आती है और उससे न्याय की याचना करती है। मदनकेतु न्याय का आश्वासन देकर उसे लौटा देता है। मदनकेतु भिक्षु से कहता है कि आप शिवदास की कृपा से अनङ्गलेखा को प्राप्त कर सकते हैं।

मदनकेतु की पत्नी शृङ्गारमञ्जरी शिवदास के आश्वासन देने पर मदनकेतु और चन्द्रलेखा के विवाह की स्वीकृति दे देती है। शिवदास अपने मन्त्रबल से चन्द्रलेखा को वहा बुलाता है। वह मदनकेतु का चन्द्रलेखा के साथ विवाह करा देता है।

राजा मदनकेतु से भिक्षु विष्णुमित्र का मनोरथ जानकर शिवदास उसे सांसारिक भोगो के प्रति वैराग्य उत्पन्न कराने का उपाय सोचता है। वह जम्भकर्ण द्वारा अनङ्गलेखा को वहा बुलवाता है। अनङ्गलेखा को देखकर भिक्षु कामोन्मत्त हो जाता है, परन्तु अनङ्गलेखा भिक्षु को समझाती है कि आपका इस अयोग्य कार्य मे मन लगाना अनुचित है। भिक्षु के न मानने पर अनङ्गलेखा उसके प्रति कुवचन कहती हुई पीछे हट जाती है। इससे कुपित भिक्षु वेश्याओ की निन्दा करने लगता है। अनङ्गलेखा अपने घर चली जाती है। शिवदास भिक्षु को समझाता है।

शिवदास अनङ्गलेखा को साप से कटवा देता है। इससे अनङ्गलेखा की मृत्यु हो जाती है। वह अनङ्गलेखा के प्राणो को एक मरे हुए पक्षी के देह मे डाल देता है। भिक्षु विष्णुमित्र राजा से कहता है कि आपके दुराचार के कारण मेरी प्रिया की यह अकाल मृत्यु हुई है, अतः आप मेरी प्रिया का जीवन वापिस कीजिये। राजा भ्रान्त होकर शिवदास को शरण मे जाता है। राजा को आश्वस्त कर शिवदास वहा से चला जाता है।

शिवदास अनङ्गलेखा के मृत शरीर मे प्रविष्ट होकर राजा के पास आता है। शिवदास ने अपने शरीर को एक लताकुञ्ज मे छिपा दिया था तथा परपुरप्रवेश-विद्या से अनङ्गलेखा के शरीर मे प्रवेश किया था। अनङ्गलेखा को जीवित देखकर सब लोग प्रसन्न होते हैं। अनङ्गलेखा विष्णुमित्र के प्रति आसक्ति प्रकट करती है। वह सबके सामने ही विष्णुमित्र को अपना भोग करने के लिए आमन्त्रित करती है। वह विष्णुमित्र का हाथ पकड लेती है। सब लोग अनङ्गलेखा की इस निर्लज्जता की निन्दा करते हैं। सकोच और व्याकुलता का अनुभव करता हुआ विष्णुमित्र वेश्याओ के प्रति विमुख हो जाता है और योगियो के आचरण करने का सकल्प करता है। अनङ्गलेखा के शरीर मे प्रविष्ट शिवदास भिक्षु की भोगासक्ति समाप्त देखकर प्रसन्न होता है।

इसी समय जम्भकर्ण शिवदास के निष्प्राण शरीर को लेकर राजा के पास जाता है। सब लोग शिवदास को मृत समझकर विलाप करते हैं। लोगों का अपने प्रति विश्वास तथा सम्मान देखकर अनङ्गलेखा के शरीर में प्रविष्ट शिवदास अपने को वास्तविक रूप में प्रकट करने के लिए वहाँ से चला जाता है।

राजा जैसे ही शिवदास के मृत शरीर का आलिङ्गन करता है वैसे ही शिवदास उसमें प्रविष्ट होकर बैठ जाता है। यह देखकर सब लोग प्रसन्न और विस्मित होते हैं। शिवदास के अपने शरीर में प्रवेश करते ही अनङ्गलेखा का शरीर पुनः निष्प्राण हो जाता है। राजा के विनय करने पर शिवदास पक्षी के देह में रखे गये अनङ्गलेखा के प्राणों को उसके मृत शरीर में डाल देता है। इससे अनङ्गलेखा जीवित हो जाती है। उसे जीवित देखकर सब लोग प्रसन्न होते हैं।

शिवदास राजा को प्रारम्भ से लेकर अन्त तक सारी कथा बताता है। शिवदास कहता है कि दुर्मार्गपातोन्मुख इस भिक्षु विष्णुमित्र को संसार का तत्व समझाने के लिए मैंने यह प्रयत्न किया था। इससे सब लोग हर्षित होते हैं। भिक्षु विष्णुमित्र शिवदास के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता है। वह राजा तथा शिवदास की अनुमति लेकर वैखानसों द्वारा सेवित सरितातटों पर चला जाता है।

मदनकेतुचरित प्रहसन की वस्तु कल्पित है। राजा मदनकेतु तथा भिक्षु विष्णुमित्र का चरित इस प्रहसन में वर्णित होने के कारण यह शुद्ध कोटि का प्रहसन है। इस प्रहसन में एक अङ्क है। इसमें नाट्यनिर्देश यथास्थान दिये गये हैं। इसमें मुख तथा निर्वहण दो ही सन्धियाँ हैं। इसमें धूर्त चरित का वर्णन है। इस प्रहसन में पाखण्डी भिक्षुओं के प्रति तीव्र व्यङ्ग किया गया है।

मदनकेतुचरित प्रहसन में एक दोष यह है कि इसके प्रारम्भ में एक विष्कम्भक का प्रयोग किया गया है। यद्यपि इस प्रहसन में नाट्यशास्त्रीय नियमों का पालन किया गया है तथापि इसके कर्ता रामपाणिवाद ने विनम्रतापूर्ण शब्दों में कहा है—

प्रहसनलक्षणलेशैः स्पृष्टं चेत् प्रहसनाभिधा लभताम्।
नो चेत्पुनरस्त्विदं विनोदनं पाणिवादस्य॥

मदनकेतुचरित प्रहसन, पुष्पिका

सान्द्रकुतूहल प्रहसन

कृष्णदत्त के सान्द्रकुतूहल प्रहसन में अनेक कुतूहलों का वर्णन है। इसमें चार अङ्क हैं।

प्रथमाङ्क में सुखाकर, क्षपाकर, गुह्याकर तथा सुधाकर नामक चार ब्राह्मणों

के वाक्चातुर्य का वर्णन है। इसमे कृष्णभक्ति को मुक्तिदायनी बताया गया है। कृष्णलीला से सम्बन्धित वृन्दावन, गोवर्धन, गोकुलग्राम तथा यमुनापुलिन के सौन्दर्य और माहात्म्य का वर्णन यहा किया गया है। यहा कृष्णभक्ति को प्राप्त करने के लिये वल्लभाचार्य के मत को ही श्रेष्ठ बताया गया है।

द्वितीयाङ्क मे प्रभाकराचार्य तथा क्षपाकराचार्य नामक दो कवि अपने कवित्व-चमत्कार का प्रदर्शन करते हैं। क्षपाकराचार्य प्रभाकराचार्य का पुत्र है। ये दोनो स्मार्तमार्ग के अनुयायी हैं। ये दोनो अनेक प्रकार के काव्यबन्धो के उदाहरण प्रस्तुत कर अपने कवित्वचमत्कार का प्रदर्शन करते है।

तृतीयाङ्क मे दिवाकर तथा गुहाकर नामक पिता-पुत्र का वार्तालाप वर्णित है। दिवाकर स्मार्त, पाशुपत तथा वैष्णव सम्प्रदायो की निन्दा करता है और एक-मात्र नारी को ही ससार मे सारवस्तु निरूपित करता है। वृद्ध दिवाकर कुसुममालिका नामक युवती में अनुरक्त है। एक बार दिवाकर बसन्तकाल मे कुसुममालिका के रोकने पर भी उसे छोडकर अन्यत्र चला जाता है। कुसुममालिका किसी सहचरी को दिवाकर के पास भेजती है। सहचरी के कहने पर वह अपने घर लौट आता है।

चतुर्थाङ्क के प्रारम्भ मे दोषाकर और उसके पुत्र सुधाकर के चरित का वर्णन है। दोषाकर अपने पुत्र सुधाकर को राजद्वार से भिक्षा मागने के लिये भेजता है। सुधाकर भिक्षा लाकर दोषाकर से कहता है—यहा राजद्वार पर नटो तथा विटो का ही सम्मान किया जाता है, विद्वानो तथा महाजनो का नही। यह सुनकर दोषाकर अन्य देश जाने की बात सोचता है, परन्तु सुधाकर बताता है कि अन्य देश जाने से कोई अन्तर नही पडेगा क्योकि कलियुग मे सभी राजा मायावी हैं। जिस देश के लोग जैसा आचरण करते हो वैसा ही हम लोगो को करना चाहिये।

दोषाकर अपने उत्पुत्र सूचीवक्त्र तथा उसकी पत्नी कल्पमञ्जरी को बुलाता है। सूचीवक्त्र भाण्ड तथा नाट्यप्रसङ्गो मे चतुर है। सूचीवक्त्र कहता है कि इस कलियुग मे पाखण्ड, अनृतादि से रहित मनुष्य जीवित नही रह सकता। यह सुनकर दोषाकर भयाकुल हो जाता है।

सुधाकर सूचीवक्त्र से कहता है कि तुम राजद्वार पर जाकर अपनी विद्यादि से सिद्धान्नादि ले आओ जिससे परिवार के लोगो की जीविका चल सके। सूचीवक्त्र राजद्वार पर जाकर राजा से कहता है कि मैं होलिकापुर का निवासी हूँ। होलिकापुर के निवासी दुराचारी हैं। सूचीवक्त्र अपनी पत्नी कल्पमञ्जरी को ही अपनी माता मानता है। कल्पमञ्जरी भी सूचीवक्त्र को अपने सहस्र मातापिताओ से अधिक मानती है। इसके पश्चात् राजा दुर्मुख और उसके पुरोहित कुटुम्बकुठार तथा कुल-कलङ्क के चरित का वर्णन है।

राजा दुर्मुख का भाई अपनी पत्नी सहित दोनों पुरोहितों से कहता है कि मैं अपने पुत्र नीलपाद का राजा गोत्रघाती की पुत्री कर्कशा के साथ विवाह करना चाहता हूँ। अतः आप लोग वर तथा कन्या के वर्णवश्यादिमेलन के लिये किसी ज्योतिषी को खोजिये।

कुटुम्बकुठार कहता है कि वर्णवश्यादिमेलन के पूर्व कन्या तथा वर के कुल की शुद्धि की परीक्षा की जानी चाहिये। श्याममुख कहता है कि कन्या तथा वर की कुलशुद्धि तो दृष्टप्राय ही है। पुलिन्दी तथा नट तो नाममात्र के लिए कर्कशा के माता-पिता है। वास्तव मे कर्कशा चर्मकार से उत्पन्न हुई है तथा वेश्या द्वारा पोषित की गई है। राजा गोत्रघाती ने तो दुर्भिक्ष के समय उसका क्रय किया था।

अपने पुत्र नीलपाद की कुलशुद्धि बताता हुआ श्याममुख कहता है कि मैं षण्ड हूँ, मेरी पत्नी चाण्डालपुत्री है, यवन के साथ भोग करने से मेरी पत्नी से नीलपाद की उत्पत्ति हुई है। नीलपाद रजक के घर मे पुष्ट हुआ तथा मिल्लक द्वारा वर्धित किया गया। यह सुनकर दोनों पुरोहित कर्कशा तथा नीलपाद की कुलशुद्धि की पुष्टि करते है।

कुटुम्बकुठार श्याममुख को बताता है कि पुरोहित कुलकलङ्क स्वय ही ज्योतिषी है, अतः अन्य किसी ज्योतिषी का अन्वेषण करने की आवश्यकता नहीं। कुलकलङ्क की परीक्षा लेने के लिये नियुक्त किया गया पौराणिक दोषाकर भट्टाचार्य उसे उच्चकोटि का ज्योतिषी प्रमाणित करता है।

श्याममुख कुलकलङ्क को नीलपाद तथा कर्कशा के वर्णवश्यादिमेलन के लिये नियुक्त करता है। जन्मपत्रों का परीक्षण करने के पश्चात् कुलकलङ्क वर्णवश्यादि के मिल जाने की घोषणा करता है। कुलकलङ्क द्वारा निर्दिष्ट शुभ मुहूर्त मे श्याममुख अपने बन्धुवर्ग सहित नीलपाद के विवाह के लिए राजा गोत्रघाती के घर जाता है। राजा गोत्रघाती उन सबके समक्ष वर नीलपाद के परीक्षण का प्रस्ताव रखता है।

कर्कशा यह प्रमाणित करती है कि नीलपाद उसके उपयुक्त पति हैं। इसके पश्चात् राजा गोत्रघाती के पुरोहित शलभकेतु तथा राजा श्याममुख के पुरोहित कुटुम्बकुठार और कुलकलङ्क कर्कशा तथा नीलपाद का विवाह सम्पन्न कराते हैं।

विवाह के पश्चात् पुरोहित कुटुम्बकुठार, कुलकलङ्क तथा शलभकेतु अपने यजमान राजाओं से दक्षिणा मागते हैं परन्तु दक्षिणा न मिलने पर कन्यापक्षीय पुरोहित शलभकेतु वधू कर्कशा को तथा वरपक्षीय पुरोहित कुटुम्बकुठार और कुलकलङ्क वर नीलपाद को लेकर अपने घर चले जाते है। दोषाकर भट्टाचार्य बताता है कि पुरोहित को दक्षिणासत्कारादि के द्वारा पूजित न करने वाले पुरुष को दारिद्र्य

तथा नारी को वैधव्य की प्राप्ति होती है। परन्तु श्याममुख वैभव्य को भी सुखदायी मानता है।

सान्द्रकुतूहल प्रहसन मे चार अङ्क है, परन्तु नाट्यशास्त्र के अनुसार प्रहसन मे केवल एक या दो ही अङ्क होना चाहिये। इस प्रहसन की वस्तु सुसगठित नही है। प्रहसनकार ने विभिन्न आख्यानो को, जिनका परस्पर कोई सम्बन्ध नही है, इस प्रहसन की वस्तु बनाया है। अनेक पात्रो के वक्तव्यो मे पूर्वापर सम्बन्ध का अभाव है। इस प्रहसन मे कवियो के पाखण्ड तथा सामाजिको के दुराचार का वर्णन किया गया है।

सान्द्रकुतूहल के चतुर्थाङ्क मे दो पृथक् कथाओ का वर्णन किया गया है। प्रथम कथा है दोषाकर, सुधाकर तथा सूचीवक्त्र की तथा द्वितीय कथा है नीलपाद तथा कर्कशा के विवाह की। इन दो पृथक् कथाओ को दो पृथक्-पृथक् अङ्को मे वर्णित किया जाना चाहिये था।

सान्द्रकुतूहल के रचयिता ने कही इसे नाटक[1] तथा कही इसे प्रहसन[2] कहा है, परन्तु इसमे न तो नाट्यशास्त्र मे वर्णित नाटक और न प्रहसन के ही लक्षण मिलते हैं। इसकी कथावस्तु सम्बद्ध नही है। वास्तव मे इसमे कोई कथावस्तु ही नही है। सान्द्रकुतूहल के तृतीय तथा चतुर्थ अङ्को मे ही धूर्तचरित के वर्णन द्वारा हास्य की सृष्टि की गई है। प्रथम तथा द्वितीय अङ्को मे हास्य का अत्यन्त अभाव है। सान्द्रकुतूहल के चतुर्थाङ्क मे रङ्गमञ्च पर नीलपाद तथा कर्कशा का सम्भोग दिखाना अत्यन्त अनुचित तथा नाट्यशास्त्रानुसार वर्जित है।

कुक्षिभरभैक्षव प्रहसन

प्रधान वेङ्कप्प के कुक्षिभरभैक्षव प्रहसन मे बौद्धभिक्षु कुक्षिभर के दुराचार का वर्णन है। कुक्षिभर गणिका कामकलिका के प्रति आसक्त है। कुकुंरी नामक बालविधवा कुक्षिभर की गूढपत्नी है। कुकुंरी का पिचण्डिल नामक एक सेवक है। कुक्षिभर के तीन शिष्य है—मल्लूक, जम्बुक तथा वक्रदन्त।

---

1 विद्वन्मनोरञ्जनकृत्कवित्व चतुर्भिरङ्कै परिशोभमानम्।
सन्नाटक सान्द्रकुतूहलाख्य चकार कीर्त्यै कविकृष्णदत्त ॥

सान्द्रकुतूहल के प्रत्येक अङ्क के अन्त मे दिया गया पद्य।

2. इति श्रीमद्विद्वज्जनमनोरञ्जनसान्द्रकुतूहलनाम्नि प्रहसने
कविकृष्णदत्तकृते चतुर्थोऽङ्क पूर्तिमगात् ॥

सान्द्रकुतूहल, चतुर्थाङ्क, पुष्पिका

कुक्षिभर वक्रदन्त को आदेश देता है कि तुम मुझे गुरुदक्षिणा के रूप मे कामकलिका को अर्पित करो। तदनुसार वक्रदन्त कामकलिका को प्राप्त करने के लिये जाता है। मार्ग मे वक्रदन्त की पिचण्डिल से भेंट होती है। वक्रदन्त पिचण्डिल को कुक्षिभर की कामकलिका के प्रति आसक्ति के बारे मे बताता है। पिचण्डिल धूर्त है। वह कुक्षिभर के कामकलिकाविषयक अनुराग को कुकुंरी से निवेदित कर उसे पिटवाने की योजना बनाता है। पिचण्डिल वक्रदन्त से कहता है कि इस समय कामकलिका किलहकटक नामक दुष्ट हूण (विदेशी) के वश मे है। जा व्यक्ति इस समय कामकलिका को प्राप्त करने का प्रयत्न करेगा वह दुष्ट हूण उसकी नाक काट देगा।

कुक्षिभर अपन विरहसन्ताप को दूर करने के लिए बौद्धायतन की ओर जाता है। मार्ग मे उसका शिष्य गड्डुकाक्ष उसके पास आता है। वह गड्डुकाक्ष को बताता है कि बुद्धशासन के अनुसार परस्त्रीगमन जुगुप्सित कार्य नही।

कुक्षिभर कलह करत हुए जङ्गम तथा दास को देखकर उन्हे ऐसा करने से मना करता है। कुक्षिभर उनसे कहता है कि परस्त्रीगमन तथा मदिरापान निषिद्ध नही है। परस्त्रीगमन तथा मदिरापान से मनुष्यो का समता प्राप्त होती है जिससे उनके कर्म तथा विकर्म नष्ट होते है।

कुक्षिभर एक कापालिक को देखता है जो नरमुण्ड, रक्त तथा मासपिण्ड से अपने इष्टदेव भैरव को प्रसन्न करना चाहता है। कुक्षिभर कापालिक से कहता है कि मदिरारसपान, अन्यनारीमैथुन तथा भिक्षावृत्ति, ये तीन बातें मुझमे तथा आपमें समान हैं परन्तु आपमे हिंसा के प्रति जो प्रेम है वह मुझे अन्यत्र दिखाई नही देता। कापालिक उत्तर देता है कि भैरव के लिय की गई अपचिति हिंसा नही है।

फिर कुक्षिभर एक क्षपणक (जैन साधु) को देखता है। क्षपणक कहता है कि यह जीवलोक अर्हन्तो की चरणपरिचर्या के अतिरिक्त और कुछ नही जानता। मैं सब कुछ जानता हू। जब सभी व्यक्तियो के हाथ पैर समान होते है तो उनमे बडे और छोटे का नियम कैसा ? सब लोग सबके दास हैं। क्षपणक अर्हन्तो के तिरस्कार को उचित बताता है। क्षपणक कहता है कि किसी भी परिस्थिति म अमर्ष नही करना चाहिये।

आगे जाकर कुक्षिभर एक शाक्तेय का देखता है। शाक्तय कहता है कि मैंने समस्त योगियो को वश म किया है और उन्हे गौडीरस का पान कराया है। कञ्चुलीपूजा इस ससार मे कल्पवृक्ष के समान सुख देती है तथा मुक्ति ही मुक्ति प्रदान करती है। कुक्षिभर शाक्तेय से कहता है कि मासभोजन के अतिरिक्त मेरी और आपकी सब बाते समान हैं। मासभोजन के हिंसाबहुल होने के कारण उसके

प्रति मेरी अभिरुचि नही है, जम्बुक के यह कहने पर कि हिंसादोष मांस खान वाले का नही होता अपितु जीव को मारने वाले का होता है, कुक्षिभर तथा मल्लूक मास खाने के लिए उद्यत हो जाते है। मल्लूक कुक्षिभर से कहता है कि उस कामकलिका के साथ ही आपका मासनिषेवणादि कर्म उचित है।

कुछ दूर पर ही कुक्षिभर चार्वाक को देखता है। चार्वाक के सिद्धान्त को सुनकर कुक्षिभर उससे कहता है कि परस्त्रीगमन, मद्यसेवन तथा धनसम्पादन तो हम लोगो को भी अत्यन्त प्रिय है। हम दोनो मे अन्तर यही है कि आप नास्तिक है तथा बुद्ध के अस्तित्व को मानने के कारण मै आस्तिक।

फिर कुक्षिभर दो दिगम्बर विटो को लडते हुए देखता है। जम्बुक उन्ह समझाता है कि ससार म दो ही वस्तुयें मोक्ष का कारण है मदिरा तथा कलज। आप दोनो के मता मे अहिंसा होनी ही चाहिये।

पिचण्डिल से कुक्षिभर की कामकलिका के प्रति आसक्ति जानकर कुकुंरी उसे दण्डित करने का निश्चय करती है। वह स्वय कामकलिका के कामुक शृगालकप्रधान का वेष बनाती है तथा पिचण्डिल शृगालकप्रधान के अनुचर बिडालक का। शृगालकप्रधान की भाषा का अभ्यास कुकुंरी ने पहले ही कर लिया था। इस वेष मे कुकुंरी तथा पिचण्डिल कुक्षिभर के पास जाते है। कुक्षिभर तथा उसके शिष्य शृगालकप्रधान तथा बिडालक को अपने पास आय हुए देखकर आतङ्कित हो जात हैं। पिचण्डिल मल्लूक के बाल पकडकर उस पर कशा प्रहार करता है। कुकुंरी अनेक अपशब्द कहती हुई कुक्षिभर को लात मारती है। भय से कॉपता हुआ कुक्षिभर कुकुंरी को प्रणाम करता है। जम्बुक तथा मल्लूक पिचण्डिल के चरणो मे गिर जाते है। कुकुंरी के पादप्रहार तथा वचनो से कुक्षिभर को ज्ञात हो जाता है कि यह कुकुंरी है और वह उसका आलिङ्गन करता है।

उसी समय आखेट के लिये वास्तविक शृगालकप्रधान तथा बिडालक वहाँ आते है। वे दोनो कुकुंरी तथा पिचण्डिल को अपने वेष म देखकर उन्ह दण्डित करने के लिए रङ्गमञ्च से खीचकर ले जाते है। पिचण्डिल तथा कुकुंरी की इस दुर्गति को देखकर कुक्षिभर तथा उसके शिष्य प्रसन्न होते है।

शृगालकप्रधान को कुक्षिभर की कामकलिका के प्रति आसक्ति ज्ञात होने पर वह उसे दण्डित करता है। कुक्षिभर अपनी रक्षा के लिए अपने शिष्यो को बुलाता है परन्तु भीत शिष्य उसकी रक्षा के लिए नही जाते। शृगालकप्रधान द्वारा कदर्थित कुकुंरी अपनी रक्षा के लिए कुक्षिभर को बुलाती है। कुक्षिभर कुकुंरी को देखकर आर्तनाद करता है।

शृगालकप्रधान तथा बिडालक के वहाँ स चल जान पर वक्रदन्त कामकलिका

को लिये हुए वहाँ आता है। वह कामकलिका को कुक्षिमर के लिये अर्पित करता है।

कुक्षिम्भरभैक्षव प्रहसन म केवल एक अङ्क है। इसम मुख तथा निर्वहण दो ही सन्धियाँ है। इसकी वस्तु पाखण्डी बौद्ध भिक्षु कुक्षिमर का दुराचरण है। कुक्षिमर के शिष्यो, कुकुंरी, पिचण्डिल, शृगालकप्रधान, बिडालक तथा कामकलिकादि धूर्तों का चरित इसमे वर्णित है। इस प्रहसन की वस्तु सुसघटित है। यह वस्तु कविकल्पित है। यह शुद्ध कोटि का प्रहसन है। कुक्षिमर धृष्टकोटि का नायक है। इस प्रहसन के प्रारम्भ मे एक विष्कम्भक का प्रयोग किया गया है, यह इसका दोष है। इस प्रहसन मे यथास्थान नाट्यनिर्देश दिये हुए हैं। इम प्रहसन मे वस्तुप्रपञ्च मे नाट्यशास्त्रीय नियमो का पालन किया गया है।

ऐतिहासिक रूपक

कान्तिमतीपरिणय नाटक

कान्तिमतीपरिणय अथवा कान्तिमतीशाह राजीय नाटक तञ्जोर के मराठा राजा शाहजी (1684–1710 ई०) के जीवनचरित से सम्बन्धित है। इसमें शाहजी तथा भागानगर के राजा चित्रवर्मा की पुत्री कान्तिमती के विवाह का वर्णन है। किसी यवन राजा ने चित्रवर्मा का राज्य छीन लिया है। शाहजी उस यवन को पराजित कर चित्रवर्मा को राजा बना देते है।

कान्तिमती तञ्जोर मे शाहजी को देखकर उनके प्रति आकृष्ट हो जाती है। वह शाहजी के विरह मे सन्तप्त है। शाहजी के विदूषक कविराक्षस की बहिन सुलोचना चित्रवर्मा के पुरोहित कोषीतक की पत्नी है। कविराक्षस तथा सुलोचना शाहजी और कान्तिमती के विवाह के लिए योजना बनाते है।

चित्रवर्मा कुम्भेश्वर शिव का रथोत्सव देखने के लिए कुम्भकोणम् आता है। उससे मिलने के लिये शाहजी तञ्जोर से कुम्भकाणम् जाते है। वहाँ रथोत्सवदर्शन के लिये शाहजी प्रासाद पर विराजमान होते है। कविराक्षस और सुलोचना की योजना के अनुसार कान्तिमती भी समीप मे स्थित चित्रवर्मा के प्रासाद पर विराजमान हो है। वहा शाहजी उसे देखकर मुग्ध हा जाते है।

सयोग से देवी (शाहजी की पत्नी) चेरी शोभावती के साथ वहा आकर शाहजी की कान्तिमती के प्रति आसक्ति देखकर उन्हे उपालम्भ देती है। विदूषक देवी को शान्त करता है।

चित्रवर्मा शाहजी का अनक उपहार देता है। इन उपहारों मे एक ऐसा रत्न भी था जिसे धारण करने पर धारण करने वाला दूसरे व्यक्तियों के लिए अदृश्य हो जाता था। शाहजी इस रत्न को यथावसर प्रयोग करने का निश्चय करते है। शाहजी चित्रशाला म सुलोचना के साथ चित्र देखती हुई कान्तिमती से मिलते हैं। वे दोनों एक दूसरे को अपनी विरहवेदना बताते है। माता के बुलाने पर कान्तिमती वहाँ से चली जाती है।

चित्रवर्मा के श्यालक चित्रसेन की पुत्री प्रभावती का शाहजी के मित्र वर्धन के साथ तन्जोर मे विवाह होता है। चित्रवर्मा इस विवाह मे सपरिवार सम्मिलित होता है। शाहजी भी इस विवाह को देखने के लिय आते है। वहाँ शाहजी का कान्तिमती के साथ फिर मिलन हाता है।

चित्रवर्मा की पत्नी कान्तिमती की शाहजी के प्रति आसक्ति जानकर चित्रवर्मा से कान्तिमती का विवाह शाहजी के साथ करने के लिये कहती है। चित्रवर्मा इस विषय म शाहजी के अमात्य सुचित्त के साथ मन्त्रणा करता है। सुचित्त कहता है कि देवी की अनुमति के बिना शाहजी इस विवाह को स्वीकार न करेंगे। चित्रवर्मा के प्रार्थना करने पर सुचित्त उसकी सहायता करने का वचन देता है।

दवी को शाहजी का कान्तिमती के प्रति अनुराग ज्ञात होने पर वह शाहजी के पास आकर उन्हें अनक उपालम्भ दती हैं। इसी समय देवी की चेटी शोभावती मे कमलाम्बिका का आवेश होना है। कमलाम्बिका के समझाने पर देवी शाहजी और कान्तिमती के विवाह की अनुमति देती है। चित्रवर्मा कान्तिमती का शाहजी के साथ विवाह कर देता है।

कान्तिमतीपरिणय नाटक की कथावस्तु सुसगठित है। इसम मुख्य कथा शाहजी और कान्तिमती का विवाह है। वर्धन और प्रभावती के विवाह की कथा यहा प्रकरी के रूप म आई है। कथाशो की सूचना देने के लिए नाटककार ने यथास्थान विष्कम्भक तथा प्रवेशक का प्रयोग किया है। इस नाटक मे कथावस्तु का प्रतिपादन पारम्परिक रूपकों की शैली मे ही किया गया है। इस नाटक के नायक शाहजी ऐतिहासिक व्यक्ति हैं परन्तु इसके अन्य पात्रों की ऐतिहासिकता सन्दिग्ध है। इस नाटक की कथावस्तु पांच अङ्कों म सुविभक्त है। नाट्यनिर्देशों को भी कवि ने यथास्थान दिया है।

सेवन्तिकापरिणय नाटक

चोक्कनाथ के सेवन्तिकापरिणय नाटक म केलडि के राजा बसव (1698–1715 ई०) का केरल के राजा मित्रवर्मा की पुत्री सेवन्तिका के साथ विवाह का वर्णन है।

केरल प्रदेश के राजा मित्रवर्मा तथा गोदवर्मा में युद्ध होता है। मित्रवर्मा के बन्दी बना लिये जाने पर उसके परिवार के लोग मूकाम्बिकानगर चले जाते है। राजा वसव इन लोगों के रहने के लिए एक नवीन भवन देते है।

अपने प्रासाद पर चढकर मूकाम्बिका देवी का रथोत्सव देखते हुए राजा वसव सामने के प्रासाद पर मित्रवर्मा की पुत्री सेवन्तिका को देखकर मुग्ध हो जाते हैं।

देवी (राजा वसव की पत्नी) और उनकी सखी लीलावती छिप कर राजा वसव की सेवन्तिका के प्रति आसक्ति को देखती हैं। देवी इसके लिये शाहजी को उपालम्भ देती हैं। विदूषक देवी को समझा-बुझाकर उनका क्रोध शान्त करता है।

राजा गोदवर्मा के द्वारा भेजे गये निषाद कालिकादर्शन के लिये गई हुई सेवन्तिका का अपहरण करते है। राजा वसव निषादों को पराजित कर उनसे सेवन्तिका को छीन लेता है। एक निषाद राजा वसव को वह मूलिका देता है जिसे धारण करने वाला व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के लिये अदृश्य हो जाता था। राजा उस मूलिका का उचित अवसर पर प्रयोग करने का विचार करता है।

कालिकामन्दिर के उद्यान में सेवन्तिका और राजा वसव का पुनर्मिलन होता है। विदूषक के वृक्ष से गिरने के कारण अनेक लोग उस उद्यान में एकत्रित होते है। सेवन्तिका की लज्जा की रक्षा के लिए राजा वसव उसे मूलिका प्रदान करता है। मूलिका को अपनी वेणी में रखकर सेवन्तिका दूसरों के लिए अदृश्य हुई वहां से चली जाती है।

मित्रवर्मा का सामन्त चित्रवर्मा उसे गोदवर्मा के कारागृह से मुक्त कराकर पुन. राजा बनाता है। मित्रवर्मा पत्र के द्वारा राजा वसव के प्रति कृतज्ञता प्रकट कर उनसे अपने परिवार को शीघ्र ही केरल भेजने की विनय करता है। तदनुसार राजा वसव उसके परिवार को केरल भेज देते हैं।

प्रत्युपकार में चित्रवर्मा मित्रवर्मा से सेवन्तिका को मागता है। मित्रवर्मा अपनी पत्नी के साथ मन्त्रणा कर सेवन्तिका का विवाह चित्रवर्मा के साथ करन के लिए राजी हो जाता है। इससे सेवन्तिका दु.खी होती है। सेवन्तिका की सखी सारङ्गिका उसके इस दु ख को दूर करने के लिए एक योजना बनाती है। सेवन्तिका प्रसन्न होकर इस योजना को स्वीकार करती है।

सेवन्तिका के विवाह के उपहाररूप में मित्रवर्मा आभूषणों, वस्त्रों तथा अन्य वस्तुओं को मञ्जूषाओं में बन्द कर राजा वसव के पास भेजने का निश्चय करता

है। ये मञ्जूषायें कोशगृह मे रख दी जाती है। वैवाहिक वेषभूषा धारण करने के व्याज से सेवन्तिका अपनी सखियो सारङ्गिका तथा मन्दारिका सहित कोशगृह मे जाती है। सेवन्तिका की आज्ञा से मन्दारिका उसे तथा सारङ्गिका को दो पृथक्-पृथक् मञ्जूषाओ मे बन्द कर देती है। मित्रवर्मा की आज्ञा से उसका मन्त्री सुमति इन मञ्जूषाओ को राजा वसव के समीप पहुँचाता है।

सेवन्तिका की माता कही भी सेवन्तिका को न पाकर मन्दारिका से उसके बारे मे पूछती है। मन्दारिका उसे सेवन्तिका के मूकाम्बिकानगर जाने का वृत्तान्त बताती है। सेवन्तिका की माता यह बात मित्रवर्मा से कहती है। मित्रवर्मा राजा वसव को पत्र लिखता है। वह लिखता है कि मुझे ज्ञात नही था कि मेरी पुत्री का आपके प्रति अनुराग है। अब मुझे यह अनुराग ज्ञात हो गया है और मैं पाच छह दिन मे आपके समीप आकर सेवन्तिका को आपके लिए समर्पित कर दूगा। इस वृत्तान्त से लज्जित हुआ चित्रवर्मा अपने नगर को लौट जाता है।

देवी राजा वसव की सेवन्तिका के प्रति आसक्ति को देखकर क्रुद्ध होती है। मित्रवर्मा द्वारा भेजी गई मञ्जूषाओ के खोले जाने पर उनमे से सेवन्तिका तथा सारङ्गिका के बाहर निकलने से देवी चिन्तित हो जाती है। देवी राजा के पास जाकर उन्हे उपालम्भ देती है और सेवन्तिका को कारागार मे डाल देती है।

मित्रवर्मा सेवन्तिका का विवाह करने के लिए राजा वसव के पास आता है। कालिकादेवी देवी को स्वप्न म आज्ञा देती हैं कि तुम सेवन्तिका का अपने पति के साथ विवाह करा दो। इससे तुमको आठ पुत्र उत्पन्न होगे और तुम्हारे पति चक्रवर्ती राजा बन जायेगे। इससे प्रसन्न देवी सेवन्तिका और सारङ्गिका को कारागार से मुक्त कर देती है। वह सेवन्तिका को वैवाहिक वेषभूषा धारण कराकर राजा के पास लाती है। शुभमुहूर्त मे मित्रवर्मा सेवन्तिका का राजा वसव के लिए प्रदान करता है।

सेवन्तिकापरिणय नाटक की वस्तु सुसगठित है। यह वस्तु ऐतिहासिक है। राजा वसव ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। वह इस नाटक के नायक है। राजा वसव वेडनूर, केलडि अथवा इक्केरी आदि विविध नामो से इतिहास मे प्रसिद्ध शक्तिशाली राजवश मे उत्पन्न हुए थे। इन्होने बेडनूर राज्य पर 1697 ई० से 1714 ई० तक शासन किया। यह अत्यन्त धार्मिक तथा विद्याप्रेमी थे।

यद्यपि केरल के राजा मित्रवर्मा, गोदवर्मा तथा चित्रवर्मा ऐतिहासिक व्यक्ति हैं परन्तु अभी तक यह निश्चित नही हो सका है कि उनके राज्य कहा थे। उन दिनो केरल अनेक राज्यो मे विभक्त था तथा प्रत्येक राज्य का एक पृथक् राजा था। अट्ठारहवी शती के प्रारम्भ मे केरल मे कोलत्तुनाड, वडतुनाड, कोट्टयम्, चिरक्कल

तथा नीलेश्वर राज्य थे। नीलेश्वर का राजा वेडनूर राजाओं का सामन्त था। ये वेडनूर राजा लिङ्गायत-सम्प्रदाय के अनुयायी थे और मूकाम्बिकादेवी के भक्त थे। मित्रवर्मा, गोदवर्मा तथा चित्रवर्मा सम्भवत केरल के उपर्युक्त राज्यो मे से किन्ही के राजा थे।

सेवन्तिकापरिणय नाटक के पाच अङ्को मे से चार के दृश्य मूकाम्बिकानगर तथा उसके समीप के मार्गो और एक का दृश्य केरल म है। मूकाम्बिकानगर आधुनिक कोल्लूर है जो मैसूर की सीमा पर स्थित है। यहा मूकाम्बिकादेवी का मन्दिर अभी भी विद्यमान है।

सेवन्तिकापरिणय नाटक म कथावस्तु का क्रमिक विकास दिखाने के लिए पञ्चसन्धियो का प्रयोग किया गया है। इसकी कथावस्तु पाँच अङ्को मे विभक्त है। सम्भवतः नाटककार को सेवन्तिका तथा सारङ्गिका के मञ्जूषाओ मे बन्द कर राजा वसव के पास भेजने की योजना की प्रेरणा शिवाजी के मिठाई की टोकरी मे बन्द होकर औरङ्गजेब के कारागृह से बच निकलने वाली घटना से मिली है। कथाशा का सूचित करने के लिए नाटककार ने यथास्थान विष्कम्भक तथा प्रवेशक का प्रयोग किया है। नाट्यनिर्देश भी यथास्थान दिये गये हैं। यह नाटक तत्कालीन सामाजिक घटना पर आधारित है।

सेवन्तिकापरिणय तथा कान्तिमती परिणय नाटका की वस्तुसघटना तथा भाषा मे अत्यन्त साम्य है। इसका कारण यह है कि ये दोनो एक ही कवि चोक्कनाथ की कृतिया है।

राजा वसव द्वारा विरचित शिवतत्त्वरत्नाकर[1] नामक ग्रन्थ उनके प्रकाण्ड पाण्डित्य का परिचायक है।

चन्द्राभिषेक नाटक

बाणेश्वरशर्मा के चन्द्राभिषेक नाटक की कथावस्तु ऐतिहासिक घटनाओ पर आधारित है। इसमे चाणक्य द्वारा नन्दवश के उन्मूलन तथा चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्याभिषेक का वर्णन है।

योगीन्द्र सम्पन्नसमाधि के दान्त और विनीत नामक दो शिष्य तीर्थयात्रा से लौटकर उसे तीर्थों का पवित्र जल देते हैं। फिर वे दोनो उसके समक्ष राजा नन्द के पराक्रम और यश का वर्णन करते हैं। नन्द ने राजसूय यज्ञ करने के लिए पृथ्वी के समस्त सोने चादी को एकत्रित कर लिया है। अब उसके अतिरिक्त सोना चादी

1 ओरियेण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट मैसूर से प्रकाशित।

कही नही मिलता । नन्द नौ भाई है । इनके नाम क्रमश नन्द, उपनन्द, सुनन्द, सन्नन्द,अतिनन्द,तिनन्द,अभिनन्द,आनन्द तथा प्रनन्द है । इनमे से अग्रज नन्द ही राजा हैं । अन्य उपनन्दादि युवराजादि पदो पर प्रतिष्ठित है । शाकटारदास इन नवनन्दो का मन्त्री है ।

सम्पन्नसमाधि अपने शिष्यो से प्रसन्न होकर उन्हे सम्पत्ति प्राप्त होने का आशीर्वाद देता है । इससे दान्त और विनीत को चतुर्दशविद्यायें स्वत ही प्रस्फुरित होने लगती है । वे दोनो सम्पन्नसमाधि से दक्षिणा मागने के लिये आग्रह करते है । इससे क्रुद्ध सम्पन्नसमाधि उन दोनो को चौदह-चौदह करोड सुवर्ण गुरुदक्षिणा देने की आज्ञा देता है । इस धनराशि को एकत्रित करने के लिए सारी पृथ्वी पर भ्रमण करने पर भी उन दोनो शिष्यो को कही भी सुवर्ण नही दिखाई देता । वे दोनो शिष्य तप के द्वारा भगवती विन्ध्याचलवासिनी को प्रसन्न करते हैं । भगवती उन्हे स्वप्न मे आज्ञा देती हैं कि तुम दोनो अपने गुरु के ही पास जाओ । गुरु ही तुम्हे दक्षिणा देने का उपाय बतायेंगे । भगवती की आज्ञा शिरोधार्य कर वे दोनो शिष्य गुरु के पास आते है ।

गुरु सम्पन्नसमाधि अपने दोनो शिष्यो को अपने पास आया हुआ देखकर प्रसन्न होता है । वह उन्हे गुरुदक्षिणा देने का उपाय बताता है । वह विनीत से कहता है कि आज से पाँचवे दिन पूर्वान्ह मे राजा नन्द की मृत्यु होगी । तुम मेरे शरीर को मृर्गाजिनादि से ढक कर किसी गुहावृक्ष से बाध देना । दान्त जागकर मेरे शरीर की रक्षा करता रहे । तुम पाटलिपुत्र जाकर समूलपल्लवलता लेकर खडे रहना । फिर मृत नन्द के शरीर के वहा आने पर तुम शाकटारदास के पास जाकर कहना कि मैं मृतसञ्जीवनौषधि के प्रयोग से मृत नन्द को जीवित करूगा । शाकटारदास के अनुमोदन करने पर तुम इस लतावलय को शिला पर सचूर्णित कर कपटपूर्वक उस पर कुछ जप करते हुए उसे नन्द के दोनो कानो नेत्रो तथा मुह मे डाल देना । तब मैं स्वय परपुरप्रवेशविद्या से नन्द के शरीर मे प्रवेश कर तुम्हें चौदह करोड सुवर्ण दूँगा । तुम उसे लेकर चित्रकूट पर्वत की गुहा मे आकर मेरे शरीर की रक्षा करना। फिर तुम दान्त को मेरे पास भेजना । मैं दान्त को भी उतना ही सुवर्ण दूगा । मैं दसरे ही दिन मृगया के व्याज से चित्रकूट पर्वत पर आकर राजशरीर को त्याग कर अपने शरीर मे प्रवेश करूगा ।

गुरु की आज्ञा के अनुसार दान्त और विनीत उसके शरीर को उसी प्रकार रख देते हैं । दान्त गुरुशरीर की रक्षा करता है । विनीत पाटलिपुत्र पहुचता है । उसी समय ज्वरपीडित नन्द गङ्गातट पर अपना देह त्याग करता है । नन्द की मृत्यु से उसके सभी परिजन शोकाकुल होते हैं ।

विनीत शाकटारदास के पास सन्देश भेजता है कि मैं अपने तप के प्रभाव से नन्द को जीवित कर दूगा। शाकटारदास को यह सुनकर आश्चर्य होता है। वह आशङ्का करता है कि यह तापस पारितोषिक लेने के लिए मुझे ठगने आया है। शाकटारदास की इस शङ्का को दूर करने के लिए विनीत कहता है कि मै राजा को जीवित किये बिना किसी से कुछ भी ग्रहण नही करूगा। राजा के जीवित हो जाने पर मैं उससे कुछ भी नही मागूगा। यदि राजा अपनी इच्छा से मुझे कुछ देता है तो मैं उसे लूगा।

महादेवी तथा अन्य देवियो के आग्रह करने पर शाकटारदास उस तपस्वी को बुलाता है। तपस्वी विनीत राजा नन्द के देह, मुह, नाक, आखो तथा कानो मे औषधि डालकर जप करता है। इसी समय सम्पन्नसमाधि परपुरप्रवेशविद्या द्वारा राजा नन्द के शव मे प्रवेश करता है। राजा नन्द बैठ जाता है। लोग समझते है कि नन्द जीवित हो गया है।

नन्द को जीवित देखकर शाकटारदास के मन मे विस्मय और वितर्क उत्पन्न होते है। उसके मन मे यह विश्वास हो जाता है कि किसी अष्टाङ्गयोगसिद्धि प्राप्त महात्मा ने किसी प्रयोजनवश राजा नन्द के शरीर मे प्रवेश किया है, परन्तु वह ऊपर से पुरवासियो को राजा नन्द के जीवित हो जाने का उत्सव मनाने के लिए आज्ञा देता है।

राजा नन्द के शरीर मे प्रविष्ट सम्पन्नसमाधि अज्ञानवश उपनन्द को 'शाकटारदास' के नाम से बुलाता है। इससे शाकटारदास समझ जाता है कि अनभिज्ञता के कारण इसने ऐसा किया है। शाकटारदास स्वय उसके पास जाकर उसकी आज्ञा मागता है। राजा नन्द उससे कहता है कि मेरी स्मृति विशृङ्खलित हो गई है, अत मेरे स्खलनो को क्षमा कीजिये। आप मुझे कार्याकार्य तथा वाच्यावाच्य का उपदेश दीजिये। आज आप ही मेरे पिता के समान हैं। शाकटारदास नन्द को प्रणाम कर इसे उसकी कृपा मानता है।

राजा नन्द अपने को जीवित करने वाले तपस्वी विनीत को चौदह करोड सुवर्ण देता है। इससे शाकटारदास नन्द के शरीर मे प्रविष्ट महात्मा का प्रयोजन समझ जाता है। वह राजशरीर मे महात्मा का प्रतिरोध करने के लिए चित्रकूटाचल गुहा मे रखे हुए पुरातन देह को जलवा देता है।

चौदह करोड सुवर्ण लेकर चित्रकूटाचल लौटने पर विनीत गुरुकलेवर को भस्मीभूत देखकर विलाप करते हुए दान्त को देखता है और स्वय भी विलाप करने लगता है। विनीत को यह ज्ञात हो जाता है कि शाकटारदास ने ही उसके गुरु के शरीर को जलवाया है। विनीत शाकटारदास को शाप देता है कि उसे इस दुष्कर्म

का फल शीघ्र ही मिले और उसके पुत्र, मित्र, कलत्र तथा बान्धव नष्ट हो जायें। *दान्त भी विनीत का अनुमोदन करता है।*

राजा नन्द मृगयाविहार के लिये चित्रकूटाचल पर जाता है। वह गिरिगुहा में अपने शरीर को भस्मीभूत देखकर विषण्ण होता है। वह विनीत तथा दान्त को रोते हुए देखता है। राजा शोक को व्यर्थ समझकर राजधानी लौटने का निश्चय करता है। वह अक्षिसकोच द्वारा शिष्यों को समाश्वस्त कर यह निर्णय करता है कि मैं अपने शरीर को जलानेवाले महावैरी का पता लगाकर उसे सगोत्रबान्धव नष्ट कर दूंगा।

राजा के खेद का देखकर शाकटारदास उससे विनयपूर्वक कहता है कि अनाथ पृथ्वी को सनाथ रखने के लिये मैंने आपके पुरातन देह को युक्तिपूर्वक जलवाया है। आप मुझे इस कार्य के लिए क्षमा कीजिय। राजा कपटपूर्वक शाकटारदास से कहता *है कि आपको मैंने अपना गुरु बनाया है। साम्राज्य की धुरी अब आपके ऊपर ही* रखी हुई है। यह सुनकर शाकटारदास प्रसन्न होता है।

राजा की आज्ञा से शाकटारदास तपस्वी दान्त के लिए चौदह करोड़ सुवर्ण देता है। राजा विनीत तथा दान्त को आज्ञा देता है कि आप लोग गुरुदक्षिणा के *लिए प्रतिज्ञात धन को ब्राह्मणों के लिए अर्पित कर अपने घर जाइये। विनीत और* दान्त वैसा ही करते है। राजा और शाकटारदास राजधानी लौट जाते हैं।

राजा का प्रच्छन्न क्रोध शाकटारदास के प्रति निरन्तर बढ़ता गया। एक बार वह अर्द्धरात्रि मे परिवार बान्धवों तथा भृत्यो सहित शाकटारदास को आमन्त्रित कर उसे विषमिश्रित भोजन कराता है। वह शाकटारदास को सपरिवार भूमिविविर म डाल देता है। वह मेधावी राक्षस का शाकटारदास के स्थान पर नियुक्त करता है। राक्षस अनेक राजाओं को पराजित कर राज्यलक्ष्मी की वृद्धि करता है। राक्षस के प्रभाव से अनेक राजागण नन्द का आधिपत्य स्वीकार कर लेते है।

राजा द्वारा किये गये एक प्रश्न का उत्तर पूछने के लिये महादेवी शाकटारदास को भूमिविविर से बाहर निकलवाती हैं शाकटारदास इस समय अस्थिमात्र शेष था। महादेवी किङ्करो द्वारा उसे पावन जल से संशोधित करा तथा वस्त्र पहिनवाकर अन्न तथा पान से सन्तर्पित करती हैं। महादेवी शाकटारदास से राजा के प्रश्न का उत्तर पूछकर उस भूमिविवर को परिशुद्ध कराकर तथा वहाँ भोजनपान और शयनादि की व्यवस्था कर शाकटारदास को पुन उसमे डलवाकर तथा उस पूर्ववत् निर्मित करा राजा के पास जाती हैं। वह राजा को उसके प्रश्न का उत्तर बताती हैं।

राजा के पूछने पर महादेवी बताती हैं कि शाकटारदास इस समय अकेला ही जीवित है। वह अपने परिजनो की अस्थियो की माला कण्ठ मे धारण किये हुए है। वह कहता है कि यदि दैव अनुकूल हुआ तो मैं इन अस्थियो को गङ्गासागर के सङ्गम मे डाल दूंगा।

राजा को शाकटारदास के साथ किये गये अपने नृशस कर्म पर पश्चाताप होता है। वह शाकटारदास को पुन प्रधानामात्य के पद पर अभिषिक्त करता है और अमात्य राक्षस का स्थान अब शाकटारदास के पश्चात् गणनीय हो जाता है।

शाकटारदास नन्दवश के समूलोच्छेदन के लिए गुप्तरूप से प्रयत्न करता है। वह दर्भग्रास की शिखा को उखाडते हुए चाणक्य को देखता है। इस दर्भग्रास के कारण चाणक्य की माता की मृत्यु हुई थी। चाणक्य दर्भग्रास पर माध्वीक डाल रहा था जिससे उसके अवशिष्ट अश को पिपीलिकायें खा डालें और इस प्रकार वह पूर्ण रूप से नष्ट हो जाए। चाणक्य के इस कार्य से प्रभावित होकर शाकटारदास उसे राजा नन्द के आगामी राजसूययज्ञ मे पुरोहित बनने का आमन्त्रण देता है। चाणक्य उसे स्वीकार कर लेता है।

राजसूययज्ञ के समय भूल से चाणक्य अपनी भद्दी पोशाक मे राजसिंहासन पर बैठ जाता है। यह देखकर राजा नन्द उसका अपमान करता है। इससे क्रुद्ध चाणक्य नन्दवश को समूलोच्छिन्न करने की प्रतिज्ञा करता है। इससे शाकटारदास प्रसन्न होता है। चाणक्य एक यज्ञ प्रारम्भ करता है। इससे नवनन्दो को ज्वरदाह होता है और वे मर जाते हैं। चाणक्य चन्द्रगुप्त मौर्य को राजसिंहासन पर अभिषिक्त करता है।

चन्द्राभिषेक नाटक की वस्तु का कुछ अ श ऐतिहासिक घटनाओ पर आधारित है। इस नाटक की वस्तु सात अङ्को मे विभक्त है। शाकटारदास, राक्षस, चाणक्य तथा चन्द्रगुप्त मौर्य ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। इस नाटक मे नान्दी, प्रस्तावना तथा विष्कम्भादि नाटकीय अङ्गो का प्रयोग किया गया है। इसमे नाट्यनिर्देश यथास्थान दिये गये हैं। सम्पन्नसमाधि तथा उसके दोनों शिष्यो का वृत्तान्त नाटककार की मौलिक कल्पना हैं।

चन्द्राभिषेक नाटक मे कतिपय दोष भी हैं। इसमे वर्णनो की बहुलता के कारण वस्तु की गति मे कही-कही शिथिलता आ गई है। यद्यपि इस नाटक का नाम 'चन्द्राभिषेक' है तथापि इसमे नन्दवश की कथा अधिक है। चन्द्रगुप्त का वर्णन तो केवल अन्तिम अङ्क मे प्राप्त होता है।

लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक

श्रीधर के लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक मे केरल प्रदेश के अम्पलप्पुल राज्य के राजा देवनारायण तथा नन्दनपुर के राजा दिनराज की पुत्री लक्ष्मी के विवाह का वर्णन है।

राजा देवनारायण वारिमद्रानदी के तट पर स्थित वासुदेव के दर्शन करने के लिए जाते हैं। वहा वारिमद्रा के जल मे लक्ष्मी का प्रतिबिम्ब देखकर वह मुग्ध हो जाते हैं। फिर वह नदी के तट पर विचरण करते हुए लक्ष्मी और उसकी सखी मन्दारनन्दिनी को देखते है।

लक्ष्मी अपनी सखी बालनन्दा के द्वारा राजा देवनारायण के पास एक मदनलेख भेजती है। देवनारायण उसे पढकर प्रसन्न होता है और बालनन्दा से लक्ष्मी को भद्रनन्दन मे ले आने के लिये कहता है।

देवनारायण भद्रनन्दन मे रहने वाले दैत्य भद्रायुध को वहा से भगा देते हैं। फिर वह मन्दारनन्दिनी के साथ भद्रनन्दन मे आई हुई लक्ष्मी को देखते हैं। लक्ष्मी विरह से सन्तप्त थी। देवनारायण लक्ष्मी के पास जाकर उसे अपनी विरहवेदना बताता है। इसी समय दैत्य भद्रायुध वनहस्ती का रूप धारण कर भद्रनन्दन मे आकर वहां के वृक्षो और भवनो को नष्ट कर देता है। जैसे ही देवनारायण भद्रायुध का वध करने के लिए वहां से जाते हैं वैसे ही वह लक्ष्मी का अपहरण कर चला जाता है।

राजा देवनारायण भद्रायुध का सपरिवार वध करते है, परन्तु लक्ष्मी को न देखकर वह अपने जीवन का परित्याग करना चाहते हैं। इसी समय उन्हे वासुदेव की यह वाणी सुनाई देती है—हे राजेन्द्र ! आप सुखी होइये। मैंने आपकी प्रिया की रक्षा की है। इससे हर्षित होकर देवनारायण वासुदेव के दर्शन के लिए जाते हैं। वासुदेव देवनारायण से कहते हैं कि तुम दिनराज के नगर नन्दनपुर जाकर लक्ष्मी की प्रतीक्षा करो। म लक्ष्मी को लेकर वही आ रहा हू। तदनुसार देवनारायण नन्दनपुर चले जाते हैं।

देवनारायण दिनराज के पास जाकर उन्हें बताते है कि वासुदेव ने लक्ष्मी की रक्षा कर उसे अपने पास रख लिया है। इस समाचार से दिनराज तथा अन्य लोग प्रसन्न होते हैं। इसी समय लक्ष्मी को लेकर वासुदेव वहां आते हैं। दिनराज लक्ष्मी का विवाह देवनारायण के साथ कर देते हैं। देवनारायण वासुदेव के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता है।

लक्ष्मी देवनारायणीय नाटक के नायक राजा देवनारायण ऐतिहासिक व्यक्ति है। सम्भवत यह अम्पुलप्पुल पर शासन करने वाले राजाओ मे अन्तिम थे। इस नाटक का प्रथम अभिनय आनन्दपुर (अम्पुलप्पुल) के समीप बहती हुई वारिभद्रा नदी के तट पर स्थित भगवान् वासुदेव की यात्रा के समय किया गया था। नन्दनपुर के राजा दिनराज के विषय मे अभी कुछ भी निश्चित रूप से ज्ञात नही है।

लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक मे कथावस्तु का विकास पारम्परिक रूपको के समान ही है। इसकी वस्तु पाच अङ्को मे विभक्त है। इसमे पञ्चसन्धियो का प्रयोग किया गया है। देवनारायण लक्ष्मी को देखकर मुग्ध होते हैं। चित्रफलक और मदनलेख के माध्यम से इन दोनो के प्रणय मे वृद्धि होती है। भद्रायुध लक्ष्मी का अपहरण कर इस प्रणय मे विघ्न उपस्थित करता है। देवनारायण भद्रायुध का सपरिवार संहार करते हैं। वासुदेव की कृपा से देवनारायण और लक्ष्मी का विवाह होता है।

लक्ष्मीदेवनारायण नाटक की कथावस्तु सुसगठित है। इसमे कथाशो को सूचित करने के लिए विष्कम्भक का प्रयोग किया गया है। इसमे नाट्यनिर्देश यथा-स्थान दिये गये हैं। इस नाटक का चतुर्थ अङ्क जहाँ उन्मत्त देवनारायण कदम्बवृक्ष, हस्ती, मयूर, शुक, कोकिल तथा केसर बकुलादि वृक्षो से लक्ष्मी के विषय मे पूछता है, कालिदास के विक्रमोर्वशीय नाटक से प्रभावित है।

बालमार्त्तण्डविजय नाटक

देवराजकवि का बालमार्त्तण्डविजय नाटक ऐतिहासिक है। इसके नायक राजा बालमार्त्तण्डवर्मा 1729 ई० तक त्रावणकोर राज्य के शासक थे। इसमे मार्त्तण्डवर्मा की पद्मनाभ के प्रति भक्ति का वर्णन है। इसमे नायक के द्वारा पद्म नाभ को अपना राज्य अर्पित करने का वर्णन है।

नायक को राज्य मे विरक्ति हो जाती है, क्योकि शासनकार्य से पद्मनाभ की भक्ति मे विघ्न होता था तथा उनके मोह मे भी वृद्धि होती थी। पद्मनाभ नायक को प्रेरणा देते हैं कि आप मेरे प्रतिनिधि के रूप मे शासन करते है, अत आपको मोह नही होगा। इससे उत्साहित होकर नायक अन्य राज्यो को जीतकर वहा से धन प्राप्त कर त्रिवेन्द्रम के पद्मनाभमन्दिर का जीर्णोद्धार कराते हैं और पद्मनाभ का महाभिषेक करते हैं।

बालमार्त्तण्डविजय नाटक मे कविकल्पना के अतिरिक्त कतिपय ऐतिहासिक तथ्य भी प्राप्त होते हैं। राजा मार्त्तण्डवर्मा की सेत्वास्य अथवा कक्कुर पर विजय ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिक है। मार्त्तण्डवर्मा द्वारा केरल की कोल राज्य तक

विजय तथा आन्ध्र और महाराष्ट्रादि राज्यो की विजय कविकल्पनामात्र हैं। राजा के माघ स्नान की बात भी ऐतिहासिक तथ्य है। राजा मार्तण्डवर्मा द्वारा मण्डपियो के विरुद्ध की गई कार्यवाही, इलयटम्पी के नाम से प्रसिद्ध पुप्पुटम्पि तथा रमन टम्पि का वध, क्विलो की विजय, कोलच्चेल मे डचो के साथ युद्ध तथा डेलन्नोय का बन्दी बनाया जाना भी ऐतिहासिक तथ्य हैं। राजा मार्त्तण्डवर्मा द्वारा त्रिवेन्द्रम् के पद्मनाभ मन्दिर का जीर्णोद्धार तथा समस्त राज्य का पद्मनाभ के लिए समर्पण भी ऐतिहासिक सत्य हैं।

बालमार्त्तण्डविजय नाटक की वस्तु सुसगठित है तथा पाँच अङ्को मे सुविभक्त है। यह नाटक नाट्यशास्त्रीय नियमो के अनुकूल है। पारम्परिक नाटको के समान इसमे कथावस्तु के विकास मे पञ्चसन्धियो का प्रयोग किया गया है। इसके तृतीयाङ्क मे पाठक रङ्गरञ्जक 'दिग्विजय' नामक निबन्धन का पाठकर श्रोताओ को राजा मार्त्तण्डवर्मा की विजययात्रा के सम्बन्ध मे सूचित करता है। यह निबन्धन गर्भाङ्क के समान है।

बालमार्त्तण्डविजय नाटक मे यथास्थान प्रवेशक तथा विष्कम्भको के प्रयोग द्वारा कथांशो को सूचित किया गया है। इसमें नाट्यनिर्देश यथास्थान दिये गये हैं। इस नाटक की वस्तु की एक विशेषता यह है कि इसमे स्वय नाटककार रङ्गमञ्च पर आकर राजा मार्त्तण्डवर्मा को अपनी यह कृति समर्पित करता है और उसके द्वारा पुरस्कृत किया जाता है। इस नाटक मे प्राप्त पद्मनाभमन्दिर का वर्णन स्वाभाविक है।

राजविजय नाटक

राजविजय नाटक के रचयिता का नाम ज्ञात नही है। इसकी वस्तु बङ्गाल के नवाब मीरकासिम के पटना स्थित उपराज्यपाल राजा राजवल्लभ द्वारा सप्तसस्थायज्ञ का सम्पादन तथा वैद्यो मे उपनयन सस्कार का पुन प्रचलन कराना है। इसमे वैद्यो के यज्ञोपवीन धारण करने तथा वैदिक यज्ञ सम्पादन करने के औचित्य के विषय मे विवेचन हैं। इसमे पण्डितों ने यह स्पष्ट किया है कि वैद्यो को यज्ञसम्पादन करने तथा यज्ञोपवीत धारण करने दोनो का ही अधिकार है। राजवल्लभ द्वारा किये जाने वाले सप्तसस्थायज्ञ को सम्पन्न कराने के लिये अनेक पण्डित राजनगर जाते हैं। *यह यज्ञ अत्यधिक व्ययसाध्य है।*

इस रूपक मे राजवल्लभ का प्रभूत यशोगान किया गया है। उसकी सभा में सप्तदश रत्न (विद्वान्) थे। पुरुषोत्तम क्षेत्र से एक औत्कल पण्डित आकर राजवल्लभ को सप्तसस्थायज्ञ के विषय मे बताता है। फिर राजनगरीय भट्टाचार्यगण भी

वहा आते हैं और औत्कल पण्डित से सप्तसस्थायज्ञ के विषय में विचारविमर्श करते हैं। औत्कल पण्डित उन्हे सप्तसस्थायज्ञ के विधि-विधान बताता है। राजवल्लभ यज्ञ करना स्वीकार कर लेता है। कुरु, पुरु आदि ने प्राचीन काल में इस यज्ञ को सम्पन्न कर देवलोको मे आनन्द प्राप्त कर अन्त मे केवल्य प्राप्त किया था। राजा यज्ञारम्भ मे अरणिच्छेदन करता है। यह सत्र रामनवमी को सम्पन्न होता है।

राजवल्लभ ने शक 1677 (1755 ई०) मे वैद्यो का पुन यज्ञोपवीत करवाया। राजवल्लभ के विषय मे कहा गया है कि वह सर्वविद्य हैं।

इस रूपक की वस्तु समसामयिक सामाजिक इतिहास से सम्बन्धित एक घटना है। इसमे नान्दी, प्रस्तावना, विष्कम्भादि नाटकीय अङ्गों का प्रयोग किया गया है। राजवल्लभ से सम्बन्धित यह एकमात्र रूपक अब तक उपलब्ध हुआ है। अतः यह ऐतिहासिक तथा सामाजिक दोनो दृष्टिकोणो से महत्वपूर्ण है। दुर्भाग्य है कि अब तक इस रूपक की कोई सम्पूर्ण प्रति प्राप्त नही हुई है। इसके नायक राजवल्लभ अष्टादशशतक के मध्य मे बङ्गाल के प्रमुख राजनीतिज्ञ थे। इन्होने बङ्गाल मे अंग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित होने देने मे उनकी पर्याप्त सहायता की थी। इनका जन्म 1707 ई० के लगभग तथा मृत्यु 1763 ई० मे हुई। इस रूपक मे कथावस्तु के विकास मे अर्थप्रकृतियो तथा सन्धियों का प्रयोग नही किया गया है।

लक्ष्मीकल्याण नाटक

सदाशिव द्वारा रचित लक्ष्मीकल्याण नाटक मे त्रावणकोर के राजा बालरामवर्मा (1758–98 ई०) द्वारा लक्ष्मी का पद्मनाभ के साथ विवाह किये जाने की कथा है।

एक बार बालरामवर्मा को आकाशवाणी सुनाई दी कि सूर्योदय के समय कमलोदर से लक्ष्मी कन्या के रूप मे प्रकट होकर आपके कुल को अलङ्कृत करेंगी। विष्णु को वर रूप मे प्राप्त करने की आकाक्षा करने वाली उन कन्यारूपिणी लक्ष्मी को आप अपना कुलतारक समझिये। राजा को इस प्रकार लक्ष्मी शिशु रूप मे मिली, जिसे उन्होने पुत्री रूप मे पाला। युवती होने पर वह माकन्दोद्यान मे विष्णु को वर रूप मे पाने के लिए तपस्या करती हैं। नारदादि बालरामवर्मा को बताते हैं कि वह पद्मनाभ के साथ विवाहित होगी। राजा के साथ वे तपस्विनी लक्ष्मी को देखते है।

लक्ष्मी के भूमण्डल पर अवतार की कथा है—एक बार लक्ष्मी ने विनोद मे विष्णु के नेत्रो को मूंद दिया था। इससे विश्व को पीडित जानकर उन्होने लक्ष्मी को शाप दिया कि तुम भूमण्डल पर कहीं आविर्भूत होकर हमे प्राप्त करो। तदनुसार

लक्ष्मी बालरामवर्मा की कन्या हुई। विष्णु भी त्रिवेन्द्रम के पद्मनाममन्दिर मे विराजमान पद्मनाभ के रूप मे पृथ्वी पर अवतार लेते हैं।

नारद के विनय करने पर पद्मनाभ लक्ष्मी के साथ विवाह करना स्वीकार कर लेते हैं। *पद्मनाभ वृद्ध विप्र का वेष बनाकर लक्ष्मी के अनुराग का परीक्षण* करने के लिए अपनी परिहासोक्तियो से लक्ष्मी को कुपित करते हैं। लक्ष्मी को अपनी प्राप्ति के लिए दृढप्रतिज्ञ देखकर वे उसके समक्ष अपना विष्णुरूप प्रकट कर देते हैं। *इससे लक्ष्मी प्रसन्न होती है। लक्ष्मी की सखिया विष्णु से निवेदन करती है कि लक्ष्मी* के पिता कुलशेखर नामक राजर्षि लक्ष्मी को आपको प्रदान करने के लिए चिन्तित है। अत आप उनसे ही इसे प्राप्त कीजिये।

फिर तो प्रेमासक्त होकर लक्ष्मी और पद्मनाभ परस्पर वियोगाग्नि से सन्तप्त है। धात्री लक्ष्मी को सूचित करती है कि वह अमूल्य आभूषणो का धारण कर स्वयवरमण्डप मे प्रवेश करे।

मेनकादि अप्सरायें लक्ष्मी का स्वयवर के लिये शृङ्गार करती है। ब्रह्मा, *शिव, इन्द्र, अष्टदिक्पाल तथा नारदादि मुनिगण इस स्वयवर मे सम्मिलित होते हैं।* बालरामवर्मा सबका स्वागत करते है। वह लक्ष्मी को विष्णु के लिए अर्पित करते हैं।

यह वस्तु कालिदास के कुमारसम्भव की शिवपार्वतीविवाहकथा से प्रभावित है। कालिदास द्वारा वर्णित शिवपार्वतीविवाह के आदर्श पर वैष्णवो ने विष्णु तथा लक्ष्मी के विवाह को प्रस्तुत किया है।

लक्ष्मीकल्याण नाटक की वस्तु सुसगठित है। यह वस्तु पाँच अङ्को मे सुविभक्त है। वस्तु के क्रमिक विकास के लिये पञ्चसन्धियो का प्रयोग किया गया है। इस नाटक मे राजा बालरामवर्मा स्वय एक पात्र के रूप मे आते है। उनके उदात्त गुणो का इसम अनेक स्थलो पर उल्लेख है। इसी कारण यह नाटक ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस नाटक के प्रत्येक अङ्क के प्रारम्भ मे एक शुद्धविष्कम्भक का प्रयोग किया गया है। इसमे नाट्यनिर्देश यथास्थान दिये गये हैं। नाटक मे सर्वत्र कवि का कल्पनावैचित्र्य व्याप्त है।

वसुलक्ष्मी कल्याण नाटक

सदाशिव के अन्य नाटक वसुलक्ष्मी कल्याण मे त्रावणकोर के राजा *बालरामवर्मा (1758-98 ई) का सिन्धुराजकुमारी वसुलक्ष्मी के साथ विवाह* का वर्णन है। वसुलक्ष्मी के पिता सिन्धुराज उसका विवाह बालरामवर्मा के साथ करना चाहते हैं, परन्तु वसुलक्ष्मी की माता उसे अपने भतीजे सिहल के राजकुमार से विवाहित करना चाहती है। वह कुन्दैवतदर्शन के व्याज से वसुलक्ष्मी को सिंहलदेश भेजती है, परन्तु दैवयोग से नौका वञ्चिभूमि के तट पर आ जाती है।

इस भूमि का संरक्षक तथा बालरामवर्मा की महिषी वसुमती का भाई वसुमद्राज एक दूत सहित वसुलक्ष्मी को बालरामवर्मा के मंत्री नीतिसागर के समीप भेजता है। सिन्धुराज के द्वारा प्रेषित बोधिका से वसुलक्ष्मी के गुणों को सुनकर नीतिसागर उसे वसुमति के संरक्षण में रख देता है। वसुलक्ष्मी के सौन्दर्य को देखकर बालरामवर्मा उस पर मोहित हो जाते हैं। उनके इस आकर्षण को देखकर वसुमती वसुलक्ष्मी से ईर्ष्या करने लगती है। वह वसुलक्ष्मी का विवाह अपने चचेरे भाई पाण्ड्यराज से करने का निश्चय करती है। उसके इस निश्चय को विफल करने के लिये बालरामवर्मा तथा विदूषक वामन गूढ योजना बनाते हैं। वे दोनो क्रमशः पाण्ड्यराज तथा उसके अनुचर का कपट वेष धारण कर वसुमति से वसुलक्ष्मी को प्राप्त करते हैं। नीतिसागर से वसुलक्ष्मी का समाचार प्राप्त कर सिन्धुराज परिजनों सहित त्रिवेन्द्रम आकर वसुलक्ष्मी तथा बालरामवर्मा के विवाह को स्वीकृति प्रदान करता है।

यह नाटक ऐतिहासिक है। यह पूर्ण रूप से नाटयशास्त्रीय नियमो के अनुकूल विरचित है। यह बालरामवर्मा की प्रशंसा में प्रणीत 'बालरामवर्मयशोभूषण' नामक आलङ्कारिक ग्रन्थ के तृतीय अध्याय मे आदर्श नाटक के रूप दिया गया है।

इस नाटक की वस्तु सुघटित है। वस्तु का क्रमिक विकास पञ्चसन्धियो के प्रयोग द्वारा किया गया है। इसमे यथास्थान विष्कम्भक, चूलिका, अङ्कास्य, प्रवेशक तथा अङ्कावतरण का प्रयोग किया गया है। नाट्यनिर्देश यथास्थान दिये हुए हैं।

श्री ए. एस, रामनाथ अय्यर[1] ने कहा है कि इस नाटक मे महाराज रामवर्मा के अतिरिक्त अन्य समस्त पात्रो के नाम समसामयिक ऐतिहासिक व्यक्तियो से मिलते हैं, अत. यह प्रेमाख्यान कल्पनामात्र है। उन्होने यह सम्भावना प्रकट की है कि इस नाटक के द्वारा कवि ने अपने आश्रयदाता बालरामवर्मा तथा उसके मातुल मार्तण्डवर्मा (1729-58 ई०) द्वारा अन्य राज्यो पर प्राप्त की गई विजय का प्रतीक रूप मे यशोगान किया है। डा० के के. राजा[2] के अनुसार रामवर्मा

---

1. A S. Ramanatha Ayyar. Ramavarmayasobhushanam and Vasulakshmı Kalyanam, publıshed ın Indian Antiquary Vol. L111, 1921, P. 5
2. Dr. K. K. Raja, Contrıbutıon of Kerala to Sanskrıt Lıterature, Madras 1958, P. 175

तथा वसुलक्ष्मी का विवाह सम्भवत रामवर्मा के अत्यधिक धनवान् हो जाने को सूचित करता है।

वसुलक्ष्मी कल्याणनाटक

वेङ्कट सुब्रह्मण्याध्वरी के वसुलक्ष्मीकल्याणनाटक मे वसुनिधि की पुत्री वसुलक्ष्मी तथा त्रावणकोर के राजा कार्तिकतिरुणाल रामवर्मा के विवाह की कथा है।

वसुलक्ष्मी का चित्र देखकर रामवर्मा का मन्त्री बुद्धिसागर उत्तरभारत मे उसके प्रभाव को फैलाने तथा हूणराज के साथ उसकी मैत्री को सुदृढ करने के प्रयोजन से वसुलक्ष्मी तथा रामवर्मा के परिणय की योजना बनाता है।

वसुनिधि वसुलक्ष्मी का विवाह रामवर्मा के साथ करना चाहता है, परन्तु वसुनिधि की पत्नी उसका विवाह सिंहल के राजा के साथ कराना चाहती है। वसुलक्ष्मी की माता किसी बहाने से वसुलक्ष्मी को सिंहलराज के पास भेजती है।

बुद्धिसागर हूणराज के साहाय्य से वसुलक्ष्मी के यान को त्रावणकोर के समुद्र मे रोक देता है। समुद्रतट क' सरक्षक तथा रामवर्मा की महिषी का भाई वसुमान् वसुलक्ष्मी को राजप्रासाद मे भेजा देता है। वहा रामवर्मा और वसुलक्ष्मी एक दूसरे को देखकर आसक्त हो जाते है।

वसुमती रामवर्मा तथा वसुलक्ष्मी के इस प्रणय को सहन नही करती। वसुलक्ष्मी को कण्टक समझकर वसुमती उसका विवाह चेरदेशीय राजकुमार वसुवर्मा के साथ करना चाहती है, परन्तु रामवर्मा वसुवर्मा का तथा विदूषक उसके अनुचर का वेष धारण कर वसुमती से वसुलक्ष्मी को प्राप्त करते हैं।

बुद्धिसागर के आयोजन तथा वसुमान् के वसुमती पर प्रभाव के कारण वसुमती स्वय ही वसुलक्ष्मी का विवाह रामवर्मा के साथ करना स्वीकार करती है। बुद्धिसागर वसुनिधि को इस विवाह का समाचार भेजता है। सिन्धुराज अपने पुत्र वसुराशि को यह विवाह कराने के लिये भेजते हैं। इस विवाह द्वारा सिन्धुराज तथा रामवर्मा का हूणराज के साथ सम्बन्ध दृढ हो जाता है और रामवर्मा के प्रभाव म वृद्धि होती है।

इस वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक म सदाशिव के वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक की तुलना मे यही विशेषता है कि इसम हूणराज नामक एक तृतीय पक्ष को आविष्ट किया गया है। हूणराज का विदेशी होना तो निश्चित है परन्तु इस नाटक के अन्तर्गत कोई ऐसा सङ्केत प्राप्त नही होता जिससे यह निश्चित किया जा सके कि

यह विदेशी कौन है। ए एस. रामनाथ अय्यर[1] तथा डॉ के. कुञ्जुन्निराजा[2] ने हूणराज के ईस्ट इण्डिया कम्पनी होने की सम्भावना प्रकट की है। उन दिनो भारतवर्ष मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी का प्रभाव बढ रहा था तथा भारतीय राजागण उसके साथ मैत्री स्थापित करना चाहते थे। श्री अय्यर[3] ने कहा है कि यह नाटक सम्भवत त्रावणकोर के राजा रामवर्मा, सिन्धु तथा कच्छ के व्यापारियो और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के उन मैत्रीपूर्ण सम्बन्धो को घोषित करता है जो उनमे एल्येप्पे के बन्दरगाह बन जाने के पश्चात स्थापित हुए थे। 'वसुलक्ष्मी' का शाब्दिक अर्थ है 'सम्पत्ति की देवी' तथा यह उस व्यापारिक समृद्धि का प्रतीक है जो त्रावणकोर के बन्दरगाह पर उत्तरभारत के व्यापारियो को सुविधायें प्रदान किये जाने के कारण त्रावणकोर मे आई।

श्री अय्यर[4] ने इस नाटकीय कथा के प्रतीकात्मक होने का उल्लेख करते हुए कहा है यदि कवि ने इस घटना का स्पष्ट उल्लेख किया होता तो इससे इस नाटक के अर्द्धैतिहासिक हो जाने से इसके महत्त्व मे वृद्धि हो जाती। सदाशिव के वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक की भाति इस नाटक मे भी राजा कार्तिकतिरुणाल रामवर्मा के अतिरिक्त अन्य पात्रो की ऐतिहासिकता सन्दिग्ध है। राजा रामवर्मा से सम्बन्धित होने के कारण यह नाटक ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमे चौंसठ सन्ध्यङ्ग हैं। इसकी वस्तु सुघटित है और पाच अङ्कों मे विभक्त है। वस्तु का विकास पाँच सन्धियो द्वारा किया गया है। नाट्यनिर्देश यथास्थान दिये हुए हैं। इसमे विष्कम्भक, चूलिका, प्रवेशक, अङ्कास्य तथा अङ्कावतरण के प्रयोग द्वारा कथा से सूच्यांशो की सूचना दी गई है। सदाशिव के वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक के समान यह नाटक भी पूर्णतया नाट्यशास्त्रीय नियमो के अनुकूल विरचित किया गया है।

---

1. ए एस रामनाथ अय्यर, 'रामवर्मयशोभूषणम् एण्ड वसुलक्ष्मीकल्याणम्' इण्डियन एण्टीक्वेरी, वाल्यूम 53 (1924) पृ० 7।
2. डा० के कुञ्जुन्निराजा, कन्ट्रीब्यूशन आफ केरल टू संस्कृत लिटरेचर, मद्रास 1958, पृ० 177।
3. ए एस रामनाथ अय्यर, पूर्वोक्त, पृ० 7।
4. वही पृ० 8।

भञ्जमहोदय नाटक

नीलकण्ठ के भञ्जमहोदय नाटक मे उडीसा के केओझर राज्य के भञ्जवशीय राजाओ की पारम्परिक वशावली का वर्णन है। केओझर का भञ्ज-वश मयूरभञ्ज के भञ्जवश की एक शाखा है। इस नाटक मे कतिपय तत्कालीय घटनाओ का वर्णन है। ये घटनायें ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

भञ्जमहोदय नाटक मे प्रधान रूप से केओझर के राजा बलभद्र भञ्ज (1764-92 ई०) तथा उसके पुत्र और उत्तराधिकारी जनार्दन भञ्ज (1792-1831 ई०) के शासनकाल का वर्णन है। उडीसा के मराठा सूबेदार राजाराम पण्डित (1678-82 ई०) की बाम्रा के राजा प्रतापरुद्रदेव द्वारा पराजय का इस नाटक मे उल्लेख ऐतिहासिक सत्य है।

बलभद्रभञ्ज तथा बाम्रा के सुढलदेव के मध्य हुए युद्ध का वर्णन करते समय नाटककार ने केओझर राज्य की सैन्यशक्ति का उल्लेख किया है। इस युद्ध मे बलभद्रभञ्ज को सुकिन्दा, पश्चिमकोट, आम्रकोट, कटझरी, पलहर, दशपुर तथा बामनघाटी के सामन्तों से सहायता प्राप्त हुई थी, यह उल्लेख इस नाटक मे मिलता है।

नाटककार ने केओझर के पर्वतो, नदियो, मन्दिरो तथा आदिवासियो का वर्णन किया है। इस नाटक मे वर्णित जुआग नामक पर्वतजातीय लोगो का वर्णन कदाचित् सस्कृत साहित्य मे प्राप्त इस जाति के वर्णन का एकमात्र उदाहरण है। इस नाटक मे वर्णित वैतरणी नदी की उत्पत्ति पुराणो के विरजक्षेत्र-माहात्म्य से ली गई है।

भञ्जमहोदय नाटक की वस्तु प्रियवद तथा अनङ्गकलेवर नामक दो यक्षो के सवाद द्वारा वर्णित की गई है। इन दो यक्षो के अतिरिक्त इस नाटक मे और कोई पात्र नही है। इसकी वस्तु कोई एक कथा नही है, अपितु अनेक घटनायें हैं। इन घटनाओ मे एकसूत्रता नही है। इस नाटक मे प्रवेशक तथा विष्कम्भकादि अर्थोपक्षेपको का भी प्रयोग नही किया गया है। नाटक की वस्तु के विकास मे यहाँ पञ्चसन्धियो का प्रयोग भी नही किया गया है। इसमे वर्णनो का बाहुल्य है।

भञ्जमहोदय नाटक ऐतिहासिक तथा भौगोलिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

जयरत्नाकर नाटक

शक्तिवल्लभ भट्टाचार्य के जयरत्नाकर नाटक की वस्तु नेपाल नरेश रणबहादुरशाह का उसके पडौसी शत्रु राजाओ से युद्ध है। इसम रणबहादुरशाह की

1786 ई० तथा 1791 ई० के मध्य की विजययात्रा का वर्णन है। इसमे रणबहादुरशाह तथा उनके पितृव्य राजपुत्र बहादुरवर्मा की प्रशसा की गई है। नेपालदेश का सुन्दर वर्णन इस नाटक मे मिलता है। राजा रणबहादुर की सभा अनेक विद्वानो से मण्डित थी। रणबहादुर की वशावली का इस नाटक मे उल्लेख किया गया है। रणबहादुर के पितामह पृथ्वीनारायण तथा पिता प्रतापसिंह के पराक्रम का इस नाटक मे वर्णन प्राप्त होता है। रणबहादुर के सैनिको, योद्धाओ और भ्रातृवर्ग का भी इस नाटक मे उल्लेख है।

बहादुरवर्मा की मन्त्रणा से रणबहादुर अपने योद्धाओ को कूर्माचल तथा श्रीनगर के राजाओ को नष्ट करने का आदेश देता है। वे स्वय भी युद्ध मे जाते हैं। बलभद्रशाहादि राजबान्धव, दामोदरादि मन्त्री, गोलजादि सेनापति तथा अनेक ब्राह्मण युद्ध के लिये जाते हैं। इस स्थल पर रणबहादुर की सेना मे विद्यमान अनेक जातियो के सैनिको का भी उल्लेख किया गया है। अपनी वैजयन्ती सहित रणबहादुर चम्पावती के तट पर पहुँचते हैं।

शत्रुराजागण भी नेपालनरेश से युद्ध करने के लिये तत्पर हो जाते हैं। शत्रुराजा जुम्लेश्वर, कूर्माचलेश्वर तथा डोटीश्वर नेपालनरेश की कटु आलोचना कर नेपालवासियो को भीरु कहते हैं। अपनी पत्नियो के द्वारा मना किये जाने पर भी शत्रु राजा अपने युद्ध के निश्चय पर दृढ रहते हैं। वे अपने सैनिको को लेकर नेपालनरेश से युद्ध करने जाते हैं।

शत्रुराजाओ का गण्डकी नदी तक आगमन सुनकर नेपालनरेश तथा वीर बहादुरशाह अपनी सेना के साथ वहाँ पहुँच कर व्यूह-रचना करते हैं। कूर्माचलेश्वर इस व्यूह को पश्चिम की ओर से, डोटीश्वर उत्तर की ओर से, जुम्लेश्वर दक्षिण की ओर से तथा अन्य शत्रुराजागण पूर्व की ओर से सरुद्ध करते हैं।

कूर्माचलेश्वरादि राजा युद्ध मे पराजित होकर भाग जाते हैं। पराजित राजा उपहार लेकर नेपालनरेश की शरण मे आते हैं। नेपालनरेश अपने सैनिको को सत्प्रजासंरक्षण तथा दुष्टप्रजानिग्रहण के लिये पर्वत-राजधानियो मे भेजते हैं। वह युद्ध मे प्राप्त की हुई सम्पत्ति लेकर राजधानी कान्तिपुर लौट आते हैं।

विजयी नेपालनरेश अपने योद्धाओ को पारितोषिक प्रदान करते हैं तथा ब्राह्मणों को दान देते हैं। इसके पश्चात् इस नाटक मे नेपालनरेश रणबहादुरशाह के पितामह पृथ्वीनारायण तथा उनकी पत्नी नरेन्द्रलक्ष्मी द्वारा शिव की आराधना वाराणसीगमन तथा शिव के प्रसाद से उनके प्रतापसिंह और बहादुरवर्मा नामक दो

पुत्रो की उत्पत्ति का वर्णन है। फिर इस नाटक के अभिनय को देखकर प्रसन्न हुए राजा रणबहादुर नटो को अनेक पुरस्कार देते हैं।

जयरत्नाकर नाटक की वस्तु ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इसमे नेपाल राजवश की वशावली का वर्णन है। इसमें तत्कालीन अनेक योद्धाओ के नाम का भी उल्लेख किया गया है। नाटककार शक्तिवल्लभ स्वय राजपुरोहित थे। अत उन्होने इस नाटक मे अपने द्वारा देखे गये तथा सुने गये वृत्त का ही वर्णन किया है।

जयरत्नाकर नाटक अट्ठारहवी शताब्दी के नेपाल का इतिहास जानने म विशेष रूप से सहायक है। यह नाटक भौगोलिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है, क्योकि इसमे नेपालदेश, वहाँ के पर्वतो, नदियो तथा मन्दिरो का वर्णन प्राप्त होता है। रणबहादुरशाह की सभा का भी इसमे वर्णन मिलता है। अट्ठारहवी शताब्दी के भारतवर्ष के अनेक राज्यो का इस नाटक मे उल्लेख किया गया है।

नेपाल के वर्णन के समय नाटककार ने वहाँ के देवी-देवताओ का भी उल्लेख किया है। ये हैं—(1) गुह्यकाली (2) पशुपतिनाथ (3) चाङ्गनारायण (4) वज्रयोगिनी तथा (5) पञ्चलिङ्ग भैरव। इस नाटक मे सामुद्रिकशास्त्र का भी वर्णन मिलता है।

जयरत्नाकर नाटक मे नाट्यशास्त्रीय नियमा का पालन नही किया गया है। इसमे अङ्क के स्थान पर 'कल्लोल' शब्द का प्रयोग किया गया है। सूत्रधार तथा नटी प्रथम कल्लोल से एकादश कल्लोल तक रङ्गमञ्च पर उपस्थित रहते हैं। कथाशो को सूचित करने के लिये इसमे प्रवेशकादि अर्थोपक्षेपको का प्रयोग नही किया गया है। इस नाटक मे वर्णनो की बहुलता है। इस कारण इसकी वस्तु मे अनेक स्थलो पर शिथिलता आ गई है। वस्तु के प्रपञ्च मे नाटककार ने पञ्च-सन्धियो का प्रयोग नही किया है।

प्रतीक रूपक

प्रतीक रूपको की परम्परा मे अट्ठारहवी शताब्दी के प्रारम्भ मे नल्लाध्वरी ने 'जीवन्मुक्तिकल्याण' रूपक की रचना की।

जीवन्मुक्तिकल्याण नाटक

जीवन्मुक्तिकल्याण नाटक मे जीव का जीवन्मुक्ति के साथ विवाह का वर्णन है। इसम अद्वैत वेदान्त के अनेक तथ्यो का विवेचन है। जाग्रत स्वप्न

तथा सुषुप्ति अवस्थाओं मे अपनी पत्नी बुद्धि के साथ भ्रमण करता हुआ जीव विषयसुख से ऊब जाता है। वह मुक्ति प्राप्त करना चाहता है उसका मन्त्री रमणीयचरण अपनी पुत्रि सत्त्वशुद्धि सहित इस कार्य म उसकी सहायता करता है।

बुद्धि का पिता अज्ञानवर्मा जीव को अपने वास्तविक रूप का ज्ञान करने मे बाधायें डालता है। जीव को जीवन्मुक्ति के प्रति आसक्त देखकर अज्ञानवर्मा कामादि छह अनुचरो को उसे निवृत्तिमार्ग से हटाकर प्रवृत्ति मार्ग म पुन आसक्त करने के लिये भेजता है, परन्तु जीव का अनुचर आपातबोध दयादि मे जीव का सयोजन कर उसकी कामादि से रक्षा करता है।

भवितव्यता बुद्धि को बताती है कि जीव जीवन्मुक्ति के प्रति अनुराग कर धन्य हो गये हैं। जीवन्मुक्ति अयोनिजा तथा नित्यसिद्धा है और उसके साथ जीव का विवाह होने से आप भी धन्य हो जायेंगी। आपके साधन-सम्पत्ति तथा ब्रह्मजिज्ञासा से युक्त होने पर जीव आपके द्वारा गुहाप्रविष्ट जीवन्मुक्ति को देख सकेगा।

साधनसम्पत्ति तथा ब्रह्मजिज्ञासा बुद्धि को समझाती हैं कि आप जीव के मुक्ति पाने में बाधक न होइये। भवितव्यता बुद्धि से कहती है कि जीवन्मुक्ति से सङ्गम होने पर जीव स्वस्थ हो जायेंगे और आप भी निरन्तर सुप्ति का अनुभव करेंगी। अतः आप जीवन्मुक्ति को अपनी सखी मानकर उसे जीव के साथ सुघटित कीजिये। तदनुसार बुद्धि जीव और जीवन्मुक्ति का समागम कराने के लिये तत्पर हो जाती है।

अज्ञानवर्मा के द्वारा भेजा गया मोह जीव को पाश मे बद्ध कर द्वैतान्धकार में डाल देता है। जीव शिव की शरण में जाता है। शिव उसे दुःख से मुक्त करने तथा तादात्म्य प्रदान करने के लिये शिवप्रसाद को भेजते हैं। शिवप्रसाद से जीव की दुर्दशा को सुनकर उसका मित्र देशिकानुग्रह भी दुःखी होता है।

शिवप्रसाद अज्ञानवर्मा को पकडकर ब्रह्मज्योति मे उसका हवन करने के लिये उद्यत है। उसने द्वैतवाद को पराजित करने तथा ब्रह्मज्योति को प्रज्वलित करने के श्रवण, मनन तथा निदिध्यासनशर्मा को नियुक्त किया है।

जीव के कल्याण के लिये शिवप्रसाद ब्रह्मविद्या नामक सिद्धाञ्जनौषधि को लेने जाता है। अनुग्रह (देशिकानुग्रह) विपन्न जीव को आश्वस्त करने के लिये जाता है। श्रवणशर्मा 'तत्त्वमसि' शस्त्र के द्वारा द्वैतवाद को पराजित कर देता है।

अनुग्रह जीव का अपने ब्रह्मस्वरूप का साक्षात्कार करना है। शिवप्रसाद जीव को ब्रह्मविद्या प्रदान करता है। ब्रह्मविद्या के तेज से अज्ञानवर्मा जल जाता है। शिवप्रसाद और देशिकानुग्रह की कृपा से जीव का जीवन्मुक्ति के साथ विवाह हो जाता है।

जीवन्मुक्तिकल्याणनाटक की वस्तु सुघटित है। यह पाँच अङ्कों में सुविभक्त है। कथा के सूच्यांशों को सूचित करने के लिये इनमें विष्कम्भक तथा प्रवेशक का प्रयोग किया गया है। इसमें नाट्यनिर्देश यथास्थान दिये हुए हैं। यह नाटक नाट्यशास्त्रीय नियमों के अनुसार विरचित किया गया है।

जीवानन्दन नाटक

आनन्दराय मखी द्वारा विरचित जीवानन्दन नाटक में आयुर्वेद के सिद्धान्तों को स्पष्ट करने के लिये रोगों का पात्र के रूप में चित्रित किया गया है। आयुर्वेद के साथ ही वेदान्त, योग तथा शिवभक्ति का इसमें मञ्जुल सम्मिश्रण है।

विज्ञानशर्मा राजा जीव की आज्ञा से शत्रु यक्ष्मा की चेष्टा ज्ञात करने के लिये धारणा को नियुक्त करता है। धारणा यक्ष्मा की सेना में जाकर उसकी प्रवृत्ति जानकर विज्ञानशर्मा से निवेदित करती है। तदनुसार विज्ञानशर्मा जीवराज को सूचित करता है कि वातादि तीन प्रकृतियों तथा कामादि षड्रिपुओं की सहायता से यक्ष्मा शरीररूपी नगर पर आक्रमण करने के लिये उत्सुक है। जीवराज यक्ष्मा का संहार करने के लिये आवश्यक पारदादि सिद्धौषधियों को प्राप्त करने के लिये पुण्डरीकपुर (हृदय) में शिव और पार्वती की उपासना करने लगता है।

कास से जीवराज की प्रवृत्ति को जानकर यक्ष्मा का मन्त्री पाण्डु चिन्तित होता है। वह सन्निपातादि सैनिकों के साथ परामर्श कर जीवराज को पराजित करने का उपाय सोचता है। उसकी आज्ञानुसार जीवराज के शरीर को नष्ट करने के लिये अनेक रोग आक्रमण करते हैं।

विज्ञानशर्मा के द्वारा नियुक्त विचार नामक नगराध्यक्ष यक्ष्मा के गुप्तचर हृद्रोग को पकड़ लेता है। पाण्डु के अनुचर अनेक रोग जीवराज के नगर पर आक्रमण करते हैं। उपासना से प्रसन्न शिव से रसगन्धकादि प्राप्त कर जीव पुण्डरीकपुर से अपने नगर में वापिस आता है। विज्ञानशर्मा रस तथा गन्धक को अन्य औषधियों से समोजित करता है।

जीवराज राज्यसुख का भोग करने लगता है। उसे पश्चात्ताप होता है कि उसने विषयसुख में पड़कर चतुर्वर्गप्रदात्री शिवभक्ति का विस्मरण कर दिया। उसे

चिन्तित देखकर स्मृति पुण्डरीकपुर जाकर शिवभक्ति से उसकी उत्कण्ठा के विषय मे बताती है। शिवभक्ति श्रद्धा सहित जीवराज के समीप आकर बताती है कि इस समय आप विज्ञानशर्मा के मतानुसार यक्ष्मा को पराजित करने के लिये उत्साह-पूर्वक प्रयत्न कीजिये। फिर मैं आपको सन्तुष्ट कर दूंगी।

शिवोपासना मे लगे हुए जीवराज के मन को उससे हटाने के लिये पाण्डु कामादि षड्रिपुओ को भेजता है। नगराध्यक्ष विचार इन शत्रुओ को परास्त करता है। जीवराज के सेवक मत्सर को बन्दी बनाकर छोड देते हैं। मत्सर पाण्डु तथा कुष्ठादि को विचार तथा जीवराज के अन्य सेवको द्वारा की गई अपनी दुर्गति बताता है। पाण्डु अपथ्यता नामक रोग को जीवराज पर आक्रमण करने के लिये भेजता है। मत्सर यक्ष्मा को बताता है कि विज्ञानशर्मा ने जीवराज के शरीर मे आपका प्रवेश रोकने के लिये अनेक यन्त्र निर्मित किये हैं। यह सुनकर क्रुद्ध यक्ष्मा जीवराज को नष्ट करने के लिये तत्पर हो जाता है।

दोनों पक्षो के सैनिको मे युद्ध होता है। जीवराज को अकेला देखकर मोक्षसाधक मन्त्री ज्ञानशर्मा उसके समीप जाकर विज्ञानशर्मा की निन्दा करता है और उसके मन मे शरीर के प्रति विरक्ति उत्पन्न करता है। विज्ञानशर्मा आकर जीवराज को बताता है कि इस समय हमारे शत्रु नष्ट कर दिये गये हैं और नगर यन्त्रो द्वारा सुरक्षित है। वह अनेक युक्तियो द्वारा जीवराज को प्रकृतिस्थ करता है। इसी समय अपथ्यता के प्रभाव से जीवराज मे बहुभक्षण की इच्छा उत्पन्न होती है। विज्ञानशर्मा जीवराज का मन दूसरी ओर लगाने के लिये उसे प्रासाद पर ले जाकर उसे औषधियो तथा रोगो मे हो रहे युद्ध को दिखाता है। उचित अवसर पर विज्ञानशर्मा जीवराज को बताता है कि आपकी यह बुभुक्षा यक्ष्मा के द्वारा प्रयुक्त शस्त्र है, अत आप इसके वशीभूत न होइये। जीवराज विज्ञानशर्मा के इन वचनो को हितकारी समझकर स्वीकार करता है। यक्ष्मा और पाण्डु भी जीवराज के नगर पर आक्रमण करने के लिये आते हैं। रोगो को युद्ध मे मृत देखकर यक्ष्मा विलाप करता है। मत्सर की मन्त्रणा से वह जीवराज को नष्ट करने के लिये कूटयुद्ध के लिये तत्पर होता है।

विज्ञानशर्मा की मन्त्रणा से जीवराज शिव का ध्यान तथा स्तुति करता है। शिव पार्वती तथा प्रमथगणो सहित प्रत्यक्ष होकर जीवराज को योग का उपदेश देते हैं। उनकी कृपा से जीवराज को सङ्कल्पमात्र से योगसिद्धि की प्राप्ति होती है। वह जीवराज को ज्ञानशर्मा तथा विज्ञानशर्मा का समान रूप से सम्मान करने के लिये आदेश देते हैं। योगसिद्धि के कारण जीवराज के शत्रु यक्ष्मा, विषूची तथा

अन्य असाध्य रोग स्वय नष्ट हो जाते हैं। अपनी विजय से जीवराज तथा विज्ञान-शर्मा हर्षित होते है।

इस नाटक की वस्तु सुसघटित है और सात अङ्को मे सुविभक्त है। वस्तु का क्रमिक विकास पञ्चसन्धियो द्वारा किया गया है। यह नाट्यशास्त्र के नियमो के अनुकूल विरचित किया गया है। इसमे यथास्थान प्रवेशक तथा विष्कम्भक का प्रयोग किया गया है। नाट्यनिर्देश भी यथास्थान दिये हुए हैं। यह वस्तु कवि-कल्पित है। इस नाटक मे अपने स्वामी जीव को पराजित करने की कामना करने वाले यक्ष्मा का नाम नेपथ्य से सुनकर मन्त्री विज्ञानशर्मा वेणीसहार नाटक के भीष्म के समान रङ्गमञ्च पर उपस्थित होता है। आयुर्वेद के दुरुह सिद्धान्तो को अपने सच्चे रूप मे सरलता के साथ प्रतिपादित करने वाला यह नाटक विशेष रूप से श्लाघनीय है। इस नाटक मे पात्रो की सख्या लगभग 40 है।

विद्यापरिणय नाटक

आनन्दराय मखी के दूसरे नाटक विद्यापरिणय मे जीवराज तथा विद्या के विवाह का वर्णन है।

अपनी पत्नी अविद्या द्वारा पीडित जीवराज को देखकर पार्वती शिवभक्ति को आदेश देती हैं कि तुम निवृत्ति की सहायता से इसे अविद्या से विघटित कर विद्या से घटित करो। विवेकादि के आग्रह करने पर जीवराज का मन्त्री चित्तशर्मा उसके मन मे अविद्या के प्रति विरक्ति तथा विद्या के प्रति प्रेम उत्पन्न करने मे शिवभक्ति की सहायता करता है। निवृत्ति जीवराज के समक्ष शिवभक्ति की महिमा का वर्णन करती है। जीवराज के पूछने पर वह बताती है कि शिवभक्ति की कृपा से ही आप वेदारण्य (शिवक्षेत्र) मे प्रवेश कर सकते हैं। शिवभक्ति के प्रसाद से विद्यारूपी सुन्दरी की प्राप्ति होती है। यह सुन कर जीवराज विद्या की प्राप्ति के लिये उत्कण्ठित हो जाता है। इस स्थिति मे अविद्या व्यथित होती है।

अविद्या अपनी इस व्यथा को विषयवासना से कहती है। विषयवासना कामादि के द्वारा जीवराज को निदिध्यासनादि से हटाकर विषय-सुख मे लगाने का निश्चय करती है। प्रवृत्ति अविद्या को वेदारण्य का वृत्तान्त बताती है। प्रवृत्ति और विषयवासना अविद्या को आश्वस्त करती हैं।

जीवराज विद्या को देखने के लिये अत्यन्त उत्कण्ठित है। शमादि चित्तशर्मा को अविद्या के दोषो को निरूपित कर विद्या के गुणो को बताते हैं। वे उससे कहते हैं कि जीवराज के अमात्य तथा नर्मसचिव होने के कारण आपका यह कर्त्तव्य है

कि आप उसे विद्या के साथ घटित करें। इस कार्य में कामादि छह शत्रु ही बाधक हैं। हम लोग आपके सौहार्द से इन्हें जीत कर अभीष्ट करेंगे।

वेदारण्य में प्रवेश करने के उपाय को जानकर जीवराज प्रसन्न होता है। निवृत्ति के द्वारा प्रदत्त चित्रपट में विद्या को चित्रित देखकर जीवराज उसके सौन्दर्य की प्रशंसा करता है। इसे सुनकर अविद्या दुःखी होती है। वह जीवराज को इस नवीन प्रणय के लिये उपालम्भ देती है। जीवराज अविद्या को प्रसन्न करने का प्रयास करता है, परन्तु वह उसका अपमान कर वहाँ से चली जाती है।

अविद्या चित्तशर्मा की सहायता से जीवराज को अपने वश में करना चाहती है। जीवराज चित्तशर्मा को आदेश देता है कि आप ऐसा करिये जिससे कि अविद्या स्वयं मेरे पास आकर मेरे साथ वेदारण्य जाने की प्रार्थना करे। चित्तशर्मा कूट-नीति के द्वारा जीवराज के अविद्या से विघटन का प्रयास करता है। वह अविद्या से कहता है कि शमादि के विघटन के लिये आप अपने पास महामोहादि को रखिये। जब जीवराज आपके साथ वेदारण्य में प्रवेश करेगा तब काम्यक्रियोपासनायें उसे तरलित कर आपके वश में कर देंगी।

चित्तशर्मा को सत्सङ्ग से ज्ञात होता है कि विद्या जीवराज को प्राप्त करने के लिये अत्यन्त उत्कण्ठित है। चित्तशर्मा जीवराज को वेदारण्य में प्रवेश कराने तथा विद्या के साथ घटित करने का संकल्प करता है।

जीवराज अविद्या के साथ वेदारण्य की ओर जाता है। मार्ग में उसे *लोकायतिकादि पाखण्ड-सिद्धान्त मिलते हैं। शिवभक्ति के द्वारा भेजा गया वस्तु-*विचार जीवराज को कुमार्ग से निवर्तित कर सन्मार्ग में लगाता है। लोकायतिक, बुद्ध, जैनादि अवैदिक सिद्धान्त तथा सोम, श्रीवैष्णव और माध्वादि वैदिकसिद्धान्त जीवराज को अपनी ओर खींचने का प्रयास करते हैं परन्तु वस्तुविचार से पराजित होकर वे भाग जाते हैं।

अविद्या पाखण्डसिद्धान्तों की पराजय से दुःखी होती है। काम क्रोधादि अविद्या की सहायता करते हैं। वे जीवराज पर आक्रमण करते हैं। चित्तशर्मा इन शत्रुओं से जीवराज की रक्षा करता है। शिवभक्ति दहरविद्या तथा विद्या को भी काम्यक्रियोपासनाओं के मध्य में प्रवेश करा देती है। शिवभक्ति के प्रभाव से विद्या केवल जीवराज को ही दिखाई देती है। वह विद्या को देखकर प्रसन्न होता है। उसकी विद्या के प्रति आसक्ति देखकर अविद्या दुःखी होती है। वह क्रुद्ध होकर वहाँ से चली जाती है। विद्या भी काम्यक्रियोपसनाओं सहित तिरोहित हो जाती है।

जीवराज तथा विद्या परस्पर वियोग मे सन्तप्त है। चित्तशर्मा उनके सघटन के लिये प्रयत्न करता है। वह अविद्या को सलाह देता है कि आप कुछ समय तक कोपागार मे रहिये तथा जीवराज पर सरलता से प्रसाद न कीजिये। उसके पश्चात् मैं सब ठीक कर लूंगा। तदनुसार अविद्या कोपागारमे जाती है। वह असूया के द्वारा तामसी तथा राजसी भक्ति के पास यह सन्देश भेजती है कि वेदारण्य मे जीवराज के प्रवेश करने पर आप उसे काम्यक्रियोपासनादि से सयोजित कर दें।

जीवराज अविद्या को प्रसन्न करने के लिये उसके पास जाता है परन्तु वह पराङ्मुखी ही बनी रहती है। इस अपमान से क्रुद्ध होकर वह तपश्चरण के लिये वेदारण्य जाता है। अविद्या भी सपरिवार अनालक्षित हुई उसका अनुसरण करती है। *शिवभक्ति वेदारण्य मे प्रविष्ट जीवराज की रक्षा के लिये विवेकादि तापसो को* भेजती है। तामसी तथा राजसी शिवभक्तियाँ जीवराज को अपनी-अपनी ओर आकृष्ट करती है, परन्तु सात्त्विकी शिवभक्ति के द्वारा नियुक्त निवृत्ति तथा अष्टाङ्ग-योग उनके प्रयत्नो को विफल कर देते हैं।

विवेकादि जीवराज को वेदारण्य के परभाग मे प्रवेश कराते हैं। विषय-वासना भी चित्तशर्मा के साथ वहाँ प्रवेश करना चाहती है, परन्तु अष्टाङ्गयोग उसे भगा देता है। जीवराज और चित्तशर्मा शिवभक्ति के पास जाते हैं। यह देखकर अविद्या दुःखी होती है।

विषयवासना अविद्या को धैर्य बँधाकर कामादि सहित शमदमादि से युद्ध करने जाती है। दोनो पक्षो मे युद्ध होता है। शमदमादि कामादि को नष्ट कर विजयी होते है। अविद्या को इस बात का दुःख होता है कि चित्तशर्मा ने उसे वञ्चित किया।

शिवभक्ति निवृत्ति के साथ जीवराज पर अनुग्रह करने के लिये जाती है। जीवराज उसे प्रणाम करता है। शिवभक्ति विरक्ति के द्वारा उपनिषद्देवी के पास यह सदेश भेजती हैं कि आप विद्या को वैवाहिक भूषा धारण कराकर पुण्डरीकभूमि मे ले आइये।

जीवराज शिवभक्ति को बताता है कि मैंने योगनिद्रा द्वारा शिव तथा पार्वती का साक्षात्कार किया है। यह सुनकर शिवभक्ति प्रसन्न होती है। उपनिषद्देवी सपरिवार वहाँ आकर जीवराज पर अनुग्रह करती हैं। शिव और पार्वती भी वहाँ आते हैं। सब लोग उन्हें प्रणाम करते हैं। जीवराज शिव की स्तुति करता है। इसके पश्चात् विद्या को लेकर निदिध्यासन वहाँ आता है। वह विद्या को जीवराज के लिये अर्पित करता है।

विद्यापरिणय नाटक की वस्तु सुघटित है। यह सात अङ्को मे विभक्त है। इसमे प्राकृत भाषा का प्रयोग नही किया गया है। इस रूपक की रचना नाट्यशास्त्रीय नियमो के अनुसार की गई है। इसमे नाट्यनिर्देश यथास्थान दिये हुए हैं। इसमे कथाशो को सूचित करने के लिये प्रवेशक तथा विष्कम्भक का प्रयोग किया गया है। शिवभक्ति, निवृत्ति, अविद्या, विषयवासनादि इसके पात्र हैं। पाखण्डसिद्धान्तो तथा कामादि के स्वरूप का नाटककार ने स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है।

विद्यापरिणयनाटक का प्रधान उद्देश्य यह प्रदर्शित करना है कि शिवभक्ति के द्वारा मुक्ति की प्राप्ति होती है। इस नाटक मे अद्वैतवेदान्त तथा शिवभक्ति का मञ्जुल सामञ्जस्य है।

अनुमितिपरिणय नाटक

नृसिह के अनुमितिपरिणय रूपक मे परामर्श की पुत्री अनुमिति का राजा न्यायरसिक के साथ विवाह का वर्णन है। बुद्धिलता, तर्कसार, साक्षात्कारिणी, चार्वाकादि इसके पात्र है। इसका नायक न्यायरसिक है।

साक्षात्कारिणी अपने पति न्यायरसिक की अनुमिति के प्रति आसक्ति देखकर क्रोधागार मे चली जाती है। पति के मनाने पर भी वह प्रसन्न नही होती। साक्षात्कारिणी का पिता चार्वाक भी न्यायरसिक से क्रुद्ध हो जाता है। न्यायरसिक रघुनाथ शिरोमणी आदि तार्किको द्वारा चार्वाक को जीतने का निश्चय करता है। *न्यायरसिक अनुमिति के विरह से सन्तप्त है।*

न्यायशास्त्र के तत्त्वो को पात्र बनाकर अनुमिति की प्रक्रिया को स्पष्ट करने वाला यह अट्ठारहवी शताब्दी का एकमात्र रूपक है। इसकी वस्तु सुघटित है। इसका प्रथम अङ्क सम्पूर्ण तथा द्वितीय अङ्क का केवल कुछ अश मिलता है। इसमे नान्दी, प्रस्तावना, विष्कम्भकादि का प्रयोग नाट्यशास्त्रीय नियमो के अनुकूल है। नाट्यनिर्देश उचित स्थान पर दिये हुए है।

विवेकचन्द्रोदय नाटक

शिव कवि के विवेकचन्द्रोदय नाटक मे विवेक की अधर्मादि पर विजय का वर्णन है। रुक्मिणी के विवाह की कथा और राजनीति के उपदेशो का भी इस नाटक मे सन्निवेश किया गया है।

सिद्धिदेव चारुकण्ठ को इन्द्रजाल द्वारा रुक्मिणी का विवाह दिखाता है। दुर्विनयादि इन्द्र के दोष निकालते हैं। अधर्म का अनुचर दुर्विनय धर्म के मन्त्री विवेक को

पत्र देता है। इसमे तपव्रतादि को व्यर्थ तथा कामक्रोधादि को स्तुत्य कहा गया था। इन्द्रादिदेवो को स्वाधिकार त्यागने तथा अधर्म की सेवा करने का भी इसमे आदेश दिया गया था।

देवगण इस पत्र पर हँसते हैं। विवेक की आज्ञा से विनय दुर्विनय को राजनीति का उपदेश देता है। वह धर्म की प्रशसा तथा अधर्म की निन्दा करता है। उसके वचनो को सुनकर दुर्विनयादि भाग जाते है। वे शिशुपाल, रुक्मी आदि मे प्रवेश करते हैं।

उद्धव श्रीकृष्ण को बताते हैं कि रुक्मिणी आपके विवाह के लिये उपयुक्त है। रुक्मिणी के पिता भीम को तो रुक्मिणी का विवाह आपके साथ स्वीकार है, परन्तु भाई रुक्मी को नही। रुक्मी तथा जरासन्धादि रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल के साथ कराना चाहते हैं।

वृद्धश्रवा द्वारा लाये गये पत्र से रुक्मिणी को अपने प्रति आसक्त जानकर श्रीकृष्ण कुण्डिनपुर जाकर उसका अपहरण करते हैं। जरासन्धादि का बलभद्र तथा यादवसेना से युद्ध होता है। युद्ध में जरासन्ध मारा जाता है, शिशुपाल भाग जाता है तथा रुक्मी ध्वजस्तम्भ मे बाँध दिया जाता है। बाद मे रुक्मिणी के अनुरोध पर रुक्मी को छोड दिया जाता है। विजयी श्रीकृष्ण द्वारका लौटकर रुक्मिणी के साथ विवाह करते हैं।

विवेकचन्द्रोदय की वस्तु सुघटित नही है। वर्णनो के बाहुल्य के कारण इसमे नाटकीय गतिशीलता का अभाव है। इसकी कथा अशत. प्रख्यात और कल्पित है।

(1) श्रीकृष्ण तथा रुक्मिणी के विवाह की कथा पुराणो मे वर्णित होने के कारण प्रख्यात है।

(2) उद्धव का विन्ध्यक्षेत्र मे वह स्वप्न देखना जिसमे धर्म की अधर्म पर विजय होती है, कविकल्पित है। इस रूपक मे प्रतीकात्मकता लाने तथा राजनीति का उपदेश देने के लिये कवि ने इसका समावेश किया है।

(3) ऐन्द्रजालिक सिद्धिदेव और चारुकण्ठ का वृत्त भी कल्पित है।

वस्तु के विकास में पञ्चसन्धियों का प्रयोग नहीं किया गया हैं। अनेक स्थलो पर बिना नाट्यनिर्देश के ही पात्रों का रङ्गमञ्च पर प्रवेश होता है। इसमे मूर्त तथा अमूर्त दोनो प्रकार के पात्र हैं। इसमे प्रवेशक तथा विष्कम्भकादि अर्थोपक्षेपकों का प्रयोग नहीं किया गया है।

विवेकमिहिरनाटक

हरियज्वा के विवेकमिहिर नाटक मे राजा विवेक की प्रतिपक्षी मोह पर विजय का वर्णन है। मोह के अनुचर कामक्रोधादि उसके समक्ष अपने प्रभाव का वर्णन करते हैं। विवेक का आगमन सुनते ही मोह अपने अनुचरो सहित भाग जाता है।

विवेक मोह की निन्दा करता है। विदूषक विवेक से कहता है कि मोह आपसे अधिक बलवान है। मोह के कोपभाजन की आप रक्षा नही कर सकते। इससे विवेक विमनस्क हो जाता है। वह आचार्य को विदूषक द्वारा की गई अपनी निन्दा के विषय मे बताता है। आचार्य कहता है कि विदूषक मूर्ख है और दूसरो को दोष लगाना ही जानता है। अत तुम उसके वचन से खिन्न न हो। तुम उसको अपने समीप न आने दो।

आचार्य विवेक को आदेश देता है कि तुम अपने शमदमादि परिवार सहित मुमुक्षु के मन मे जाकर वहाँ मोह को सपरिवार नष्ट करो। विदूषक शमादि का आगमन सुनकर भाग जाता है।

शमादि आचार्य को बताते है कि हम लोगो का कामादि से निरन्तर युद्ध होता है। आचार्य उन्हें आदेश देता है कि तुम लोग विवेक सहित भक्ति की शरण मे जाओ और उससे अपना अभीष्ट प्राप्त करो।

आचार्य भक्ति और श्रद्धा को आदेश देता है कि तुम दोनो विवेक को परिपुष्ट करो जिससे वह मोहादि को नष्ट कर सके। आचार्य शमादि को आज्ञा देता है कि तुम लोग कामादि को नष्ट करो। वह दयादि से कहता है कि तुम लोग विवेकादि सहित जीवो के अन्त करण मे स्थिर होकर उन्हें सालोक्यादि मुक्ति प्रदान करो।

विदूषक विवेक को बताता है कि क्रुद्ध मोह मन को वश मे कर कामादि के द्वारा आप पर आक्रमण करने का विचार कर रहा है। वह पाशुपत तथा पाञ्चरात्रादि पाखण्डसिद्धान्तो द्वारा आपको भगाने के लिये उत्सुक है।

विवेक मोहादि को यह सन्देश भेजता है कि भगवत्कृपा से मैं आपको सपरिवार नष्ट कर दूंगा। आचार्य विवेक को आदेश देता है कि तुम जीवो को कर्मानुष्ठान तथा भगवद्भजन मे लगाओ। फिर उन्हे भगवत्कृपा से मोक्ष-लाभ होगा।

विवेक की प्रार्थना से आचार्य योगबल द्वारा जीवो को प्रथम, मध्यम तथा

उत्तम अधिकारियो मे विभक्त कर देता है। विदूषक विवेक को बताता है कि आपके सन्देश से क्रुद्ध मोह आपको ही नष्ट करने का प्रयत्न कर रहा है।

अन्त मे आचार्य जीवो को उपदेश देते हैं।

विवेकमिहिर नाटक की वस्तु सुघटित नही है। इसकी वस्तु का विकास समुचित प्रकार से नही किया गया है। इसमे पञ्चसन्धियो और प्रवेशक तथा विष्कम्भकादि अर्थोपक्षेको का प्रयोग नही किया गया है। इसमे सूत्रधार तथा पारिपार्श्वक प्रारम्भ से अन्त तक रङ्गमञ्च पर रहते हैं। इसमे भरतवाक्य नही है। सूत्रधार ही दर्शको को आशीर्वाद देता है। इसके प्रत्येक अङ्क के अन्त मे 'निष्क्रान्ताः सर्वे' यह नाट्यनिर्देश नही दिया गया है। इससे यह सूचित होता है कि अङ्क के समाप्त होने के पश्चात् भी अभिनेतागण रङ्गमञ्च पर रहते थे। यह बात नाट्यशास्त्रीय नियमो के विपरीत है। इसमे मूर्त तथा अमूर्त दोनो प्रकार के पात्रो का सम्मिलन है। मूर्त पात्र हैं जीव, आचार्य, विदूषकादि तथा अमूर्त पात्र हैं मोह, काम, भक्ति, श्रद्धा, विवेकादि।

पुरञ्जनचरित नाटक

कृष्णदत्त मैथिल का पुरञ्जनचरित श्रीमद्भागवत[1] के पुञ्जनोपाख्यान पर आधारित है।

अपने निवासयोग्य नगर को खोजता हुआ पुरञ्जन सचिव सुसाधन सहित प्रवरापुरी पहुँचता है। वहाँ उसका पुरस्वामिनी पुरञ्जनी से विवाह हो जाता है।

बिना सूचित किये ही आखेट के लिये जाने के कारण पुरञ्जनी पुरञ्जन से क्रुद्ध हो जाती है। पुरञ्जन के बहुत मनाने पर पुरञ्जनी प्रसन्न होती है। फिर वे दोनो पुरविहार के लिये जाते हैं।

चण्डवेग, कालकन्यका, भय तथा प्रज्वार एक साथ ही पुरञ्जन के नगर पर आक्रमण करते हैं। कालकन्यका पुरञ्जन के बिना जाने ही उसका भोग करती है। इससे पुरञ्जन में निद्रा, दौर्बल्यादि लक्षण प्रकट होते हैं। पुरञ्जनी पुरञ्जन को त्याग कर चली जाती है। पराजित पुरञ्जन भी नगर को छोडकर अन्यत्र चला जाता है।

विदर्भ की ओर जाता हुआ पुरञ्जन सहसा एक रूपवती नारी वैदर्भी के रूप में परिणत हो जाता है। वैदर्भी का विवाह विदर्भ के राजकुमार मलयध्वज

1. श्रीमद्भागवत, चतुर्थ स्कन्ध, अध्याय 25-29

से होता है। अविज्ञातलक्षण नवलक्षणा कामधेनु की सहायता से पुरञ्जन को अपने वास्तविक रूप का ज्ञान कराता है। पुरञ्जन अविज्ञातलक्षण के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता है।

पुरञ्जनचरित नाटक प्रतीकात्मक है। इसमे पुरञ्जन जीवात्मा का, पुरञ्जनी बुद्धि अथवा अविद्या की, अविज्ञातलक्षण ब्रह्म अथवा ईश्वर का, प्रजागर सर्प प्राणवायु का, गन्धर्व चण्डवेग एक वर्ष का, कालकन्यका वृद्धावस्था की, यवन-राज भय मृत्यु का तथा नवलक्षणा कामधेनु नवधा भक्ति की प्रतीक है। चण्डवेग के 720 अनुचर वर्ष के 360 दिन तथा 360 रात्रियाँ हैं।

पुरञ्जनचरित नाटक की वस्तु मे श्रीमद्भागवत के पुरञ्जनोपाख्यान से कतिपय नवीनतायें हैं।

1. सितपक्ष, विलक्षण, अमितलक्षणा के दो पुत्र सुरोचन तथा विरोचन इस नाटक के नवीन पात्र हैं।
2. इस नाटक मे पुरञ्जन को अज्ञात कारणो से नारीरूप की प्राप्ति होती है तथा उसे एक ही जन्म मे वास्तविक रूप का ज्ञान होता है। परन्तु श्रीमद्भागवत मे वह अपने द्वारा यज्ञ मे मारे गये पशुओ द्वारा मारा जाता है तथा अनेक वर्षो तक नरक भोगकर पुनः नारी (वैदर्भी) के रूप मे उत्पन्न होता है। अतः श्रीमद्भागवत मे पुरञ्जन को दूसरे जन्म मे तत्त्वज्ञान होता है।
3. इस नाटक मे मलयध्वज का वैदर्भी से सयोगवश वियोग होता है, परन्तु श्रीमद्भागवत मे यह मलयध्वज की मृत्यु के कारण होता है।
4. इस नाटक मे अविज्ञातलक्षण नवलक्षणा कामधेनु की सहायता से पुरञ्जन को तत्त्वज्ञान कराता है। नवलक्षणा पुरञ्जन को नदी के दूसरे पार शेषाचल के पास ले जाती है और वहाँ पुरञ्जन गोपाल (वेङ्कटेशकेशव) की स्तुति करता है, परन्तु श्रीमद्भागवत मे अविज्ञा-तलक्षण अकेला ही पुरञ्जन को तत्त्वज्ञान कराता है।

पुरञ्जनचरित नाटक की वस्तु सुघटित है। यह पाँच अङ्को मे विभक्त है। इसमे कथावस्तु के विकास मे पञ्चसन्धियो का प्रयोग किया गया है। इसमे प्रवेशक तथा विष्कम्भकादि अर्थोपक्षेपको तथा नाट्यनिर्देशो का यथास्थान प्रयोग किया गया है।

भाग्यमहोदय नाटक

जगन्नाथ के भाग्यमहोदय नाटक मे मगण, यगणादि गणो तथा उपमा,

अनन्वयादि अलङ्कारो को पात्र बनाकर उन्हे दर्शको को समझाने का प्रयास किया गया है।

मगण, यगण, भगण, नगण, रगण, सगण, तगण और जगण क्रमशः पात्ररूप मे रङ्गमञ्च पर आकर अपनी अपनी श्रेष्ठता तथा लक्षण बताकर गुजरात मे भावनगर के राजा वखतसिंह को आशीर्वाद देकर चले जाते हैं। फिर उपमा, अनन्वय, उपमानोपमेयता, प्रतीप, रूपक, परिणाम, उल्लेखादि प्रमुख अर्थालङ्कार अपने भेदो सहित क्रमश रङ्गमञ्च पर आकर अपना-अपना लक्षण तथा उदाहरण प्रस्तुत कर चले जाते है। इन उदाहरणो मे या तो राजा वखतसिंह की प्रशसा है अथवा उसके मन्त्री, सेनापति तथा सेना का वर्णन है।

भाग्यमहोदय नाटक मे कवि ने अपने आश्रयदाता वखतसिंह का नाम 'भाग्यसिंह' रखा है। इसमे केवल अर्थालङ्कारो का वर्णन है, शब्दालङ्कारो का नही। अर्थालङ्कारो का वर्णन कवि ने प्रधान रूप से अप्पय दीक्षित के कुवलयानन्द के आधार पर किया है। सरस्वतीकण्ठाभरण, काव्यप्रकाश, उद्योत, अलङ्कारचन्द्रिका तथा जयदेव के चन्द्रालोक से भी इस अलङ्कार-वर्णन मे सहायता ली गई है।

भाग्यमहोदय की वस्तु कोई इतिवृत्तात्मक नही है। इसमे नाट्यशास्त्रीय नियमो का पालन नही किया गया है। इस नान्दी तथा प्रस्तावना अन्य रूपको के समान हैं। नाट्यनिर्देश यथास्थान दिये हुए हैं। इसमे न तो पञ्चसन्धियों का प्रयोग है और न प्रवेशक, विष्कम्भकादि अर्थोपक्षेपको का। इसमे दो अङ्क हैं। गणो और अर्थालङ्कारो के लक्षणो को स्पष्ट करने तथा वखतसिंह का यशोगान करने के अतिरिक्त इस रूपक का और कोई उद्देश्य नही है।

पूर्णपुरुषार्थचन्द्रोदय नाटक

जातवेद के पूर्णपुरुषार्थचन्द्रोदय नाटक की वस्तु राजा दशाश्व (आत्मा) का सारश्रुति की पुत्री आनन्दपक्ववल्ली (आनन्द) के साथ विवाह की कथा है।

इसके पात्र है—राजा दशाश्व, विदूषक अधिकजव, चेटियाँ श्रुतिनिरूपणा और श्रुतिनिर्णीति, नायिका आनन्दपक्ववल्ली, योगिनी सुभक्ति, सुश्रद्धा, सूत, जैन, बौद्ध भिक्षु, काञ्चुकीय, कापालिक आदि।

राजा दशाश्व आनन्दपक्ववल्ली को पाने के लिये उत्कण्ठित है। आनन्दपक्ववल्ली वेदोद्यान मे रहती है। राजा सोचता है कि मेरे कामक्रोधादि छह शत्रु भी वेदोद्यान मे ही हैं। वे मेरी प्रियाप्राप्ति मे बाधा डालेंगे। वह विवेकप्रकाशखड्ग द्वारा शत्रुओ को नष्ट करने का निश्चय कर विदूषक के साथ वेदोद्यान जाता है।

नायिका आनन्दपक्ववल्ली अपने योग्य पति को खोजने के लिये अपनी दो चेटियो श्रुतिनिरूपणा तथा श्रुतिनिर्णीति को भेजती है। श्रुतिनिर्णीति दशाश्व को नायिका के उपयुक्त पति बताती है। नायिका दशाश्व को दुर्लभ पुरुष समझकर अपने प्राणो का परित्याग करने के लिये उद्यत हो जाती है, परन्तु योगिनी सुभक्ति उसे ऐसा करने से रोकती है। सुभक्ति उसे बताती है कि दशाश्व का आपके प्रति अत्यधिक अनुराग है। आप दोनो के सम्बन्ध मे बाधा डालने वाले कामक्रोधादि राक्षस है। इन्हे सपरिवार नष्ट कर दशाश्व आपकी माता की अनुमति से आपके साथ विवाह करेंगे।

वेदोद्यान जाते हुए दशाश्व को मार्ग मे चार्वाक, जैन, बौद्ध तथा कापालिक सिद्धान्त मिलते हैं। वह इन्हे स्वीकार नही करता।

सारश्रुति को अपनी पुत्री आनन्दपक्ववल्ली की दशाश्व के प्रति आसक्ति का पता चल जाता है। आनन्दपक्ववल्ली दशाश्व के विरह मे सन्तप्त है। काञ्चुकीय सारश्रुति को बताता है कि दशाश्व शत्रुओ का सहार कर आनन्दपक्ववल्ली को प्राप्त करने के लिये वेदोद्यान के पास स्थित है। काञ्चुकीय आनन्दपक्ववल्ली को दु ख का त्याग करने के लिये कहता है।

शत्रुओ को नष्ट कर दशाश्व विदूषक के साथ वेदोद्यान मे जाता है। वह न्यायवैशेषिक तथा साख्य योग दर्शन को स्वीकार नही करता। वह विदूषक के समक्ष कुमारिलमत को प्रतिपादित करता है। आनन्दपक्ववल्ली को सन्तप्त सुनकर दशाश्व सारश्रुति के पास जाता है।

सारश्रुति आनन्दपक्ववल्ली का विवाह दशाश्व के साथ करने का निश्चय कर उसे दशाश्व के समीप तिरस्करिणी द्वारा अन्तर्हित कर देती है। दशाश्व अपनी प्रिया को प्राप्त करने के लिये दुर्गा की शरण मे जाता है। दुर्गा राजा दशाश्व तथा आनन्दपक्ववल्ली को सयोजित कर देती हैं।

पूर्णपुरुषार्थचन्द्रोदय नाटक की वस्तु सुघटित है। यह पाँच अङ्को मे विभक्त है। इस नाटक की रचना नाट्यशास्त्रीय नियमो के अनुसार की गई है। वस्तु के विकास में पञ्चसन्धियो का प्रयोग किया गया है। प्रवेशक तथा विष्कम्भक के यथास्थान प्रयोग द्वारा नाटककार ने कथा के सूच्याशो को सूचित किया है। इसमे नाट्यनिर्देश यथास्थान दिये हुए हैं। भास के नाटको की भाँति नान्दी के अनन्तर सूत्रधार मङ्गलपाठ से इस नाटक का प्रारम्भ करता है और इसमे प्रस्तावना के स्थान पर 'स्थापना' का प्रयोग किया है।

शिवलिङ्गसूर्योदय नाटक

मल्लारि आराध्य के शिवलिङ्गसूर्योदय नाटक मे राजा सुज्ञान द्वारा प्रतिपक्षी अज्ञान की पराजय तथा शिवलिङ्गरूपी सूर्य के उदय का वर्णन है। काम, रति, विद्या, शान्ति, चार्वाक, क्षपणक (जैन), बौद्ध भिक्षु आदि इस नाटक के पात्र हैं।

सुज्ञान कामादि शत्रुओ द्वारा अबद्ध जीव की विमुक्ति के लिये प्रयत्नशील है। परमेश्वर की दो पत्नियाँ है—क्रियाशक्ति तथा ज्ञानशक्ति। क्रियाशक्ति अज्ञानादि की तथा ज्ञानशक्ति सुज्ञानादि की जननी है। अज्ञानादि सुज्ञानादि के शत्रु हैं। क्रियाशक्ति अन्नमयादि पञ्चकोशो से युक्त शरीरो की रचना कर परमेश्वर को अनेक भागो मे विभक्त कर अपने कामादि पुत्रो को उनमे निविष्ट कर उन्हे राजा बना देती है। इस प्रकार क्रियाशक्ति ने परमेश्वर को शरीर रूपी कारागार मे डाल रखा है।

सुज्ञान अपनी पत्नी प्रज्ञा की सहायता से अज्ञान के अनुचर कामादि को नष्ट कर ज्ञानशक्ति मे क्रियाशक्ति के विलय करने से उत्पन्न शिवभक्ति द्वारा परमेश्वर (जीव) के मोक्ष के लिये प्रयत्न करता है।

श्रीशैल पर अपने शमदमादि अमात्यो सहित शिवलिङ्गरूपी सूर्य के उदय के लिये प्रयत्नशील सुज्ञान के कार्य मे बाधा डालने के लिये अज्ञान का मन्त्री महामोह दम्भ को भेजता है। सुज्ञान ने अपने अमात्यो को सभी क्षेत्रो मे भेज दिया है। दम्भ श्रीशैल पर अधिकार कर लेता है। उसे वहाँ अहङ्कार भी मिलता है। फिर महामोह भी वहाँ आता है। चार्वाक महामोह के समक्ष अपना मत प्रदर्शित करता है। महामोह उसके मत को ही ग्रहणीय मानता है। चार्वाक उसे शिवभक्ति से सावधान रहने के लिये कहता है। महामोह कामादि को शिवभक्ति का निराकरण करने के लिये आदेश देता है।

मान और मद गोकर्णक्षेत्र से महामोह को पत्र भेजते है। इसमे लिखा था कि शिवागम और उसकी पत्नी उपनिषद्देवी से उत्पन्न विद्या अपनी पुत्री भक्ति सहित गुरु के समीप पहुँचकर सपर्या का उनके साथ समागम कराने के लिये प्रवृत्त हुई है। महामोह क्रोध तथा लोभ को विद्या का प्रतिकार करने के लिये भेजता है। वह मिथ्यादृष्टि को भक्ति का नाश करने के लिये भेजता है। वह सोचता है कि भक्ति के नष्ट होने पर उसकी माता स्वत नष्ट हो जायेगी।

विद्या अपनी पुत्री भक्ति को न देखकर व्याकुल होती है। वह मरना चहती है। शान्ति उसे धैर्य बँधाती है। वह उसके साथ पाखण्डगृहो मे विद्या को खोजती है। पहिले उन्हें दिगम्बर (जैन) सिद्धान्त मिलता है। दिगम्बर के पास उसकी

तामसिक भक्ति थी। फिर विद्या और शान्ति सौगतों (बौद्धों) में भक्ति को खोजती है। बौद्धों के पास भी तामसी भक्ति थी। इसके पश्चात् क्षपणक (जैन सिद्धान्त), बौद्ध भिक्षु (बौद्ध सिद्धान्त) तथा कापालिक (भैरव सिद्धान्त) में परस्पर विवाद होता है। वे अपने अपने मतों की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हैं।

क्षपणक के वेदविरुद्ध मत को सुनकर मूर्च्छित हुई विद्या को शान्ति समाश्वस्त करती है। फिर वे दोनों वृद्धमाध्व तथा वटु का शास्त्रार्थ सुनती हैं।

विद्या वृद्धमाध्व को बताती है कि मैं सदाशिव के सद्योजात, वामदेव, अघोर तथा तत्पुरुष नामक चार मुखों से निश्वास के रूप में उत्पन्न हुई हूँ। अत सदाशिव ने मुझे चतुर्मुख (ब्रह्मा) के लिये प्रदान किया।

विद्या को ज्ञात होता है कि काम क्रोधादि अमात्यों सहित अज्ञान भूपति को श्रीशैल पर आया हुआ सुनकर राजा सुज्ञान यम, नियमादि अमात्यों सहित उससे युद्ध करने के लिये गया है। भक्ति को खोजने के लिये विद्या श्रीशैल पर आती है। वहाँ काम का दूत ब्राह्मण का वेष धारण कर विद्या और शान्ति को तान्त्रिकसिद्धान्त बताता है। विद्या उसे स्वीकार नहीं करती।

श्रीशैल पर शिवभक्ति की सहचारिणी ईशाना से विद्या की मैत्री हो जाती है। विद्या, शान्ति और ईशाना के साथ शिवभक्ति को खोजती है। सुज्ञान की पत्नी बुद्धि उन्हें सुज्ञान के पास पहुँचाती है। विद्या सुज्ञान से कहती है कि प्रज्ञा आपको अज्ञानादि को नष्ट करने का उपाय बतायेगी।

प्रज्ञा सुज्ञान को बताती है कि शिवभक्ति के द्वारा आप अज्ञानादि को जीत सकेंगे। इसी समय शिवभक्ति विद्या के समीप आती है। हर्षित विद्या उसके साथ सुज्ञान के पास जाती है। विद्या के आदेश से सुज्ञान शान्ति द्वारा पञ्चाक्षरी को प्राप्त करता है। पञ्चाक्षरी सुज्ञान से साधन-सम्पत्ति प्राप्त करने के लिये कहती है। सुज्ञान गुरु के समीप जाता है। गुरु की पुत्री दीक्षा से शिवलिङ्गरूपी सूर्य की उत्पत्ति होती है। सुज्ञानादि उसकी स्तुति करते हैं।

शिवलिङ्गसूर्योदय की वस्तु सुघटित है। वस्तु के विकास के लिये पञ्च-सन्धियों का प्रयोग किया गया है। कथा के सूच्यांशों को सूचित करने के लिये इसमें मिश्रविष्कम्भक तथा एक शुद्धविष्कम्भक का प्रयोग किया गया है। इसमें नाट्यनिर्देश यथास्थान दिये हुए हैं।

अन्य रूपक

डिम

प्रधान वेङ्कप्प के महेन्द्रविजय डिम की वस्तु समुद्रमन्थन की पौराणिक कथा है।

देवो तथा दानवो से सम्बन्धित है। वस्तु के विकास मे मुख, प्रतिमुख, गर्भ तथा निर्वहण सन्धियो का प्रयोग किया गया है। इसमे नाट्यनिर्देश यथास्थान दिये हुए हैं। इस समवकार की रचना नाट्यनियमो के अनुरूप की गई हैं।

चन्द्रिका वीथी

रामपाणिवाद की चन्द्रिकावीथी मे अङ्गराज चन्द्रसेन तथा विद्याधर मणिरथ की पुत्री चन्द्रिका के विवाह का वर्णन है।

चन्द्रसेन रात्रि मे चन्द्रिका को देखते हैं जो उन्हे अङ्गुलिमुद्रिका देकर अदृश्य हो जाती है। चन्द्रसेन उसके विरह मे सन्तप्त होते हैं। वह उद्यान मे जा पहुचते हैं। वहा उन्हे विरहिणी चन्द्रिका का पत्र मिलता है।

चण्ड नामक राक्षस चन्द्रिका का अपहरण करता है जिसे मारकर चन्द्रसेन चन्द्रिका को प्राप्त करता है। चन्द्रिका का विवाह चन्द्रसेन से हो जाता है।

लीलावती वीथी

रामपाणिवाद की लीलावती वीथी मे कुन्तलराज वीरपाल का कर्णाटकराजपुत्री लीलावती के साथ विवाह का वर्णन है।

शत्रुओ से भय होने पर कर्णाटकराज लीलावती को वीरपाल की महिषी कलावती के सरक्षण मे रख देता है। वीरपाल लीलावती के प्रति आसक्त हो जाता है। विदूषक, केलिमाला तथा सिद्धिमती के प्रयत्नों से वीरपाल का लीलावती के साथ विवाह हो जाता है। वीरपाल लीलावती के अपहर्ता असुर ताम्राक्ष का वध करता है।

सीता कल्याण वीथी

प्रधान वेङ्कप्प की सीताकल्याण वीथी मे सीता और राम के विवाह का वर्णन है। इसकी वस्तु रामायण पर आधारित है।

उपर्युक्त वीथियो मे से चन्द्रिका तथा लीलावती की वस्तु तो कल्पित है परन्तु सीताकल्याण की वस्तु प्रख्यात है। इन तीनो वीथियो मे से प्रत्येक मे एक अङ्क है। इन तीनो की वस्तु सुघटित है। इन तीनो म ही वस्तु के विकास मे मुख और निर्वहण केवल इन दो सन्धियो का प्रयोग किया गया है।

रुक्मिणीमाधव अङ्क

प्रधान वेङ्कप्प के रुक्मिणी माधव अङ्क मे रुक्मिणी और माधव (श्रीकृष्ण) के विवाह की कथा है। कवि ने पौराणिक कथा मे निम्नलिखित परिवर्तन किये हैं—

1. रुक्मिणी माधवाङ्क मे माधव को नारद से ज्ञात होता है कि रुक्मिणी उनके प्रति अनुरक्त है परन्तु रुक्मिणी उसे शिशुपाल को देना चाहता है। श्रीमद्भागवत मे यह बात माधव को रुक्मिणी के पत्र से ज्ञात होता है।

2. रुक्मिणी माधवाङ्क मे विदर्भ जाने के पूर्व माधव गुप्तचर को विदर्भ भेजकर रुक्मिणी की मनोवृत्ति, रुक्मी के व्यवसाय तथा शिशुपाल के समारम्भ को ज्ञात करते हैं, परन्तु श्रीमद्भागवत में माधव ऐसा नही करते। वह केवल रुक्मिणी के पत्र के आधार पर विदर्भ जाते हैं।

3. रुक्मिणीमाधवाङ्क मे चण्डिकायतन मे गई हुई रुक्मिणी और सखी माधव को वहा न देखकर मूर्च्छित हो जाती हैं और मूर्च्छित दशा मे ही माधव और दारुक उन्हें रथ मे रखकर चल देते हैं। मूर्च्छा दूर होने पर रुक्मिणी और सखी यह समझकर कि शिशुपाल उन्हे वहा ले आया है मरना चाहती हैं, परन्तु दारुक के उन्हें यह बताने पर कि वे शिशुपाल नही अपितु माधव के द्वारा यहाँ लाई हैं, वे प्रसन्न होती हैं। श्रीमद्भागवत मे यह बात नही मिलती है।

4. रुक्मिणीमाधवाङ्क मे रुक्मिणी का हरण कर माधव के द्वारका पहुचने पर रुक्मिणी के पिता भीष्मक स्वय वहाँ जाकर रुक्मिणी और माधव का विवाह सम्पन्न कराते हैं। रुक्मिणी का पत्रवाहक ब्राह्मण भी द्वारका जाकर इस विवाह को देखता है और माधव उसे पुरस्कृत करते हैं, परन्तु श्रीमद्भागवत मे भीष्मक और ब्राह्मण के द्वारका जाकर रुक्मिणी के विवाह मे सम्मिलित होने की बात नही मिलती है।

5 रुक्मिणीमाधवाङ्क मे नारद और उनका शिष्य रुक्मिणी के विवाह का वर्णन करते हैं, परन्तु यह बात श्रीमद्भागवत मे नही है।

रुक्मिणीमाधवाङ्क की वस्तु प्रख्यात है। कवि ने इस प्रख्यात वृत्त मे कतिपय परिवर्तन किये हैं। इसमे एक अङ्क है। इसकी वस्तु सुघटित है। इसमे केवल मुख और निर्वहण सन्धियो का प्रयोग हुआ है। इसमे प्रवेशकादि अर्थोपक्षेपको का प्रयोग नही किया गया है। नाट्यनिर्देश उचित स्थल पर दिये हुए हैं।

उर्वशीसार्वभौम ईहामृग

प्रधान वेङ्कप्प के उर्वशीसार्वभौम नामक ईहामृग कोटि के रूपक मे उर्वशी और पुरुरवा के विवाह का वर्णन है।

नारद पुरुरवा को बताते है कि नारायण ने कामदेव के अभिमान के विनाश के लिए उर्वशी नामक अप्सरा को अपनी जङ्घा से उत्पन्न किया। फिर सब देवो के भोग के लिए उन्होने उसे स्वर्ग भेज दिया। वहा महेन्द्र उर्वशी के प्रति आसक्त हो गया है। उर्वशी का रूप भव्य है और उसमे अनेक गुण हैं। यह सुनकर पुरुखा उर्वशी मे अनुरक्त हो जाता है।

पुरुरवा और महेन्द्र मे मैत्री है। असुरो द्वारा पीडित महेन्द्र उसे युद्ध मे अपनी सहायता के लिए बुलाता है। पुरुखा स्वर्ग जाकर असुरो को पराजित करता है। वहा उर्वशी पुरुरवा के प्रति आसक्त हो जाती है। महेन्द्र पुरुरवा को अपनी राजधानी वापिस भेज देता है।

उर्वशी पुरुरवा के विरह मे सन्तप्त है। वह महेन्द्र के प्रणय को ठुकरा देती है। उर्वशी को पुरुरवा के प्रति आसक्त देखकर महेन्द्र पुरुरवा का वेष बनाकर उसके पास जाता है सयोग वश पुरुरवा भी उसी समय उर्वशी के पास पहुचता है। उर्वशी यह निर्णय नही कर पाती कि इनमे से वास्तविक पुरुरवा कौन है।

पुरुरवा महेन्द्र को अपना वेष धारण किये हुए देखकर उसे राक्षस समझता है और उसका सिर काटने के लिए उद्यत हो जाता है। महेन्द्र भी उससे युद्ध के लिये तत्पर होता है।

नारद एक तापस को वहा भेजते है। वह तापस बताता है कि इन दोनो मे से जो पहिले आया है वह महेन्द्र है तथा जो बाद मे आया है वह पुरुरवा है। फिर महेन्द्र और पुरुरवा मे उर्वशी के लिये युद्ध होता है। नारद उन दोनो को नारायण का आदेश बताकर युद्ध बन्द कराते हैं।

नारायण का यह आदेश था कि उर्वशी जिसे चाहे अपना पति वरण करे। उर्वशी पुरूरवा को अपना पति चुन लेती है। नायक उर्वशी के साथ अपने नगर लौट आता है।

उर्वशी सार्वभौमेहामृग की वस्तु मे प्रख्यात और उत्पाद्य का मिश्रण है। यह वस्तु सुघटित है और चार अङ्को मे विभक्त है। मुख, प्रतिमुख तथा निर्वहण सन्धियो के प्रयोग द्वारा वस्तु का विकास किया गया है। इसमे प्रथम तथा द्वितीय अङ्को के प्रारम्भ में एक एक विष्कम्भक का प्रयोग किया गया है। इसमे नाट्य निर्देश यथा-स्थान दिये हुए हैं।

वसुमती परिणय नाटक

जगन्नाथ का वसुमती परिणय नाटक राजनीति प्रधान है। इसमे राजनीति का उपदेश है। इसके पात्र प्रतीकात्मक हैं। इसका नायक गुण भूषण गुणो से अलङ्कृत

राजा का तथा नायिका वसुमती उसके राज्य की अथवा पृथ्वी की प्रतीक है। विवेक निधि तथा अर्थपर आदि इसके अन्य प्रतीक पात्र हैं। इस नाटक की वस्तु राजा गुण भूषण का वसुमती के साथ विवाह है।

गुणभूषण स्वप्न मे वसुमती को देखकर उसके प्रति आसक्त हो जाता है। वह विदूषक की सहायता से उसे प्राप्त करने का प्रयास करता है। राजा का सचिव अर्थपर उसे काश्मीर के राजा द्वारा प्रेषित फल देता है जिन्हें राजा विदूषक को दे देता है। फिर अर्थपर एकान्त मे राजा के साथ मन्त्रणा करता है।

अर्थपर राजा को बताता है कि राज्य का अधिकारी वर्ग अपने कर्त्तव्य की उपेक्षा कर भ्रष्टाचार मे प्रवृत्त है। अतः आप इन अधिकारियो को पद से हटाकर प्रामाणिक अधिकारियो को नियुक्त कीजिए। आपको व्याघ्र आखेट के लिए, धूर्त अक्षक्रीडा के लिए तथा नट लास्य और गीत के लिये आमन्त्रित कर रहे हैं। राजा सचिव को उत्तर देता है कि मैं समयान्तर मे सब करूँगा, आप अभी जाइये।

राजा मन्त्री विवेकनिधि के साथ इस विषय मे परामर्श करता है। विवेकनिधि कहता है कि अर्थपर ने कहीं कहीं व्यतिक्रम देखकर आपसे यह कहा है। सामान्यतः हमारे अधिकारी प्रामाणिक हैं। अत सब अधिकारियों की इस समय अधरोत्तरीकरण की आवश्यकता नही। जो अधिकारी आशङ्का के पात्र हो उन्हें ही दण्डित किया जाय। फिर विवेक निधि राजा को मृगया, द्यूत तथा वेश्यासक्ति के दुर्गुण बताता है। राजा उसके मत को स्वीकार कर लेता है।

गुणभूषण की महिषी सुनीति अपने पिता राजा पृथु के मर जाने पर अपनी बहिन वसुमती को अपने पास रख लेती है। वसुमती के विरह मे सन्तप्त राजा गुणभूषण उसे खोजता हुआ प्रमदवन मे पहुँचता है। वहाँ उसका वसुमती के साथ मिलन होता है।

वसुमती मे सार्वभौमगृहिणी के लक्षण देखकर सुनीति उसका विवाह गुण-भूषण के साथ करने का विचार करती है। गुणभूषण चाराधिकारी सर्वदर्शी के साथ प्रासाद पर चढकर अवन्तिदेश से भागकर अपने राज्य मे रहते हुए कतिपय व्यक्तियो के क्रियाकलापो को देखता है। राजा सर्वदर्शी को आदेश देता है कि वह इन व्यक्तियो को दण्डित कराये।

विवेकनिधि के समझाने पर सुनीति वसुमती का गुणभूषण के साथ विवाह करना स्वीकार करती है। विवेकनिधि राजा की सार्वभौमत्व-प्राप्ति के लिए प्रयत्न शील है। वह युद्ध मे मिथिला के राजा की सहायता करके उसे वश मे करना चाहता है। मिथिलेश्वर की सहायता से तुरुष्क राजा को पराजित कर वह समस्त भूमि को जीतने की योजना बनाता है।

वसुमती राजा का चित्र बनाती है। कात्यायनी उसके चित्रफलक को राजा को दे देती है। राजा उस पर एक विरहगीत लिखकर उसे लौटा देता है।

गुणभूषण की सहायता से मिथिला का राजा मित्रवर्मा युद्ध मे मालवराज तथा यवनराज को मारकर विजयी होता है। सचिव अर्थपर को शत्रुओ से मिलकर षड्यन्त्र करता हुआ देखकर गुणभूषण उसे अपने पद से हटा देता है। गुणभूषण युवराज विजयवर्मा को इन्द्रप्रस्थ का कार्यभार सँभालने का आदेश देता है।

राजा चित्रशाला मे वसुमती के चित्र बनाकर अपना मन बहलाता है। राजा की वसुमती के प्रति आसक्ति देखकर सुनीति उसका विवाह राजा के साथ कर देती है। सुनीति चक्रवर्तितालाभ पर राजा का अभिनन्दन करती है। विजयवर्मा युद्ध में प्राप्त हाथियो, अश्वो तथा अन्य सामग्री को राजा के पास भेजता है।

वसुमतीपरिणय नाटक की वस्तु सुघटित है। इसमे पञ्चसन्धियो के प्रयोग द्वारा वस्तु का विकास किया गया है। यह कथावस्तु कल्पित है। वसुमतीपरिणय प्रतीक नाटक है। सामान्यत प्रतीक नाटको का प्रयोग धर्म तथा सच्चरित्रता के उपदेश के लिए किया जाता था, परन्तु इसमे राजनीति का उपदेश दिया गया है।

वसुमतीपरिणय नाटक मे प्रवेशक, विष्कम्भक, अङ्कास्य तथा चूलिका के प्रयोग द्वारा कथा के सूच्याशो को सूचित किया गया है। इसमे नाट्य-निर्देश यथा-स्थान दिये हुए है।

कलानन्दक नाटक

रामचन्द्र शेखर के कलानन्दक नाटक का वस्तु का स्रोत ज्ञात नही है। सम्भवत यह वस्तु कल्पित है। इसमे नन्दक और कलावती के विवाह का वर्णन है।

भद्राचल पर एक राजदम्पति के तप से सन्तुष्ट राम के आदेश से उनका नन्दक खड्ग उनके पुत्र के रूप मे उत्पन्न होता है। उसका नाम नन्दक रखा जाता है। वयस्क होने पर वह म्लेच्छो को नष्ट करता है।

राजा नन्दक और दिल्ली के राजा इन्द्रसखा की पुत्री कलावती एक दूसरे के गुणो को सुनकर परस्पर आसक्त हो जाते हैं। कलावती की सखी चन्द्रिका और नन्दक की करङ्कवाहिनी बुद्धिमती के प्रयत्नो से कलावती को नन्दक का चित्रपट तथा नन्दक को कलावती का चित्रपट प्राप्त होता है।। कलावती की इच्छा के अनुसार नन्दक गुप्त वेष मे उससे मिलना स्वीकार करता है। मुनि त्रिकालवेदी की प्रार्थना पर नन्दक अपने सैन्यसहित तपस्या मे विघ्न डालने वाले सिंह को मारने के लिये जाना चाहता है।

चन्द्रिका तथा बुद्धिमती के आयोजन से कलावती तथा नन्दक का उद्यान मे मिलन होता है। फिर नन्दक वन मे जाकर त्रिकालदेवी द्वारा निर्दिष्ट सिंह को मारता है।

इन्द्रसखा के कलावती को नन्दक के लिए देना अस्वीकार करने पर उसका नन्दक के साथ युद्ध होता है। इसमे नन्दक की विजय होती है। इन्द्रसखा कलावती का नन्दक के साथ विवाह कर उससे सन्धि कर लेता है।

त्रिकालवेदी नन्दक और कलावती को अपने आश्रम ले जाता है। वह नन्दक को कुछ ऐसे फल देता है जिनके प्रभाव से नियुक्त युवक युवतियो का पुन सङ्गम हो जाता था। नन्दक कलावती तथा परिजनो के साथ रत्नकूट पर्वत पर वसन्त-शोभा देखने जाता है। नन्दक के रोकने पर भी कलावती उसे छोडकर अपनी सखियो से मिलने जाती है। देवयोग से वह सिद्धयोगितपोवन मे प्रविष्ट हो जाती है, जहाँ से वापिस आना कठिन था।

इस प्रकार वियोग होने पर नन्दक और कलावती दोनो सतप्त होते है। त्रिकालवेदी द्वारा प्रदत्त दिव्यफलो के प्रभाव से उन दोनो का पुर्नमिलन होता है।

कलानन्दक नाटक की वस्तु सुघटित है। यह सात अङ्को मे विभक्त है। इसमे वस्तु के विकास के लिए पञ्चसन्धियो का प्रयोग किया गया है। इसमे नाट्य-निर्देश यथास्थान दिये हुए हैं। नाटककार ने प्रवेशक, विष्कम्भक, चूलिका, अङ्कास्य तथा अङ्कावतरण का प्रयोग कथा के सूच्याशो को सूचित करने के लिए किया है। इसका पञ्चम अङ्क अन्य अङ्को की अपेक्षा छोटा है। इस नाटक पर यत्र-तत्र कालिदास के विक्रमोर्वशीय नाटक का प्रभाव है।

मणिमाला नाटिका

अनादि कवि की मणिमाला नाटिका म उज्जयिनी के राजा भृङ्गारशृङ्ग का पुष्करद्वीप के राजा विजयविक्रम की पुत्री मणिमाला के साथ विवाह का वर्णन है।

राजा भृङ्गारशृङ्ग और मणिमाला स्वप्न मे एक दूसरे को देखकर आसक्त हो जाते हैं। योगी अद्भुतमूर्ति उनके प्रणय को जानकर राजा से कहता है कि मणिमाला म त्रैलोक्यसाम्राज्ञी के लक्षण हैं और इसे प्राप्त करने के लिए आप दुर्गा की आराधना कीजिये। आप अपना चित्र मणिमाला के पास पुष्करद्वीप भेजिये। तदनुसार राजा अपने मित्र चित्रचरित को अपना चित्र देकर मणिमाला के पास भेजता है। आराधना से प्रसन्न दुर्गा द्वारा प्रदत्त पारिजातमाला को धारण कर चित्रचरित उज्जयिनी से पुष्करद्वीप जाता है।

राजा शृङ्गारशृङ्ग की महिषी पतिप्रिया उसे मणिमाला मे आसक्त सुनकर क्रुद्ध होती है। राजा उसे बताता है कि मणिमाला को मैंने स्वप्न मे देखा है। उसे प्राप्त करने से मुझे साम्राज्यलक्ष्मी प्राप्त होगी। अत मैं दुर्गा की कृपा प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील हू। इससे प्रसन्न पतिप्रिया दुर्गापूजा के लिए सामग्री सजाने चली जाती है। राजा मन्दिर जाकर पूजा से दुर्गा को प्रसन्न करता है।

दुर्गा चित्रचरित की सहायता के लिए योगिनी सुसिद्धिसाधिनी को नियुक्त करती हैं। पुष्करद्वीप पहुँचने पर सुसिद्धिसाधिनी देखती है कि शृङ्गारशृङ्ग की *प्राप्ति के लिये उत्कण्ठित मणिमाला का विवाह उसके बान्धव बलपूर्वक गन्धर्वराज के* साथ कराने के लिए उद्यत हैं। चित्रचरित ने क्रयविक्रय के व्याज से पुष्करद्वीप के राजा विजयविक्रम के मन्त्री की पुत्री तथा मणिमाला की सखी विचित्रचातुरी से परिचय कर उसे समस्तवृत्त बता दिया है। वह शिल्पिनी के वेष म अज्ञात रूप से विचित्रचातुरी के साथ मणिमाला के समीप भी जाता है।

बान्धवो के आग्रह से मणिमाला विवाह के पूर्व नगरदेवतार्चन के लिए जाती है। फिर वह नगर मे दोलाविहार करती है। अन्त:पुर लौटकर वह विचित्रचातुरी को बताती है कि मैं स्वप्न मे एक पुरुष को देखकर आसक्त हो गई हूँ। मणिमाला राजा शृङ्गारशृङ्ग का चित्र बनाकर विचित्रचातुरी को दिखाती है। विचित्रचातुरी उसे बताती है कि एक शिल्पिनी भी इस प्रकार के चित्र को आपको उपहार मे देने के लिये आई है। उसने उस पुरुष को कही देखकर वह चित्र बनाया होगा।

मणिमाला की अनुमति से विचित्रचातुरी शिल्पिनी वेषधारी चित्रचरित को वहाँ लाती है। चित्रचरित मणिमाला को राजा का चित्र देकर कहता है कि मैं जम्बूद्वीप के राजा शृङ्गारशृङ्ग की शिल्पिनी हूँ और यह चित्र भी उसी राजा का है। विचित्रचातुरी मणिमाला को बताती है कि यह राजा भी अपको स्वप्न मे देखकर आसक्त हो गया है और आपके विरह मे दुःखी है। योगी अद्भुतभूति से आपके विषय मे सुनकर उसने आपके पास अपना यह चित्र भेजा है। शिल्पिनी का वेष बनाये हुए यह राजा का मित्र चित्रचरित है। मणिमाला ,के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती है।

मणिमाला और विचित्रचातुरी यह सोचकर उद्विग्न हो जाती हैं कि कल मणिमाला का गन्धर्वराज से विवाह हो जाने पर शृङ्गारशृङ्ग से विवाह कैसे हो सकेगा। सुसिद्धिसाधिनी वहाँ आकर मणिमाला को आश्वस्त करती है। वह मणिमाला तथा उसकी सखी को एक गगनगामिनी कनकनौका देकर कहती है कि आप लोग इस पर चढकर शीघ्र ही उज्जयिनी पहुँचिये। मैं आगे जाकर राजा को आपके आगमन को बताऊँगी। तदनुसार मणिमाला विचित्रचातुरी तथा चित्रचरित्र के साथ उस नौका से उज्जयिनी जाती है।

शृङ्गारशृङ्ग के पास जाती हुई सुसिद्धिसाधिनी को मार्ग में घर्घरघण्टा नामक योगिनी मिलती है। सुसिद्धिसाधिनी उसे मणिमाला तथा शृङ्गारशृङ्ग के प्रणय का वृत्तान्त बताती है। नारद उन दोनों योगिनियों को बताते हैं कि राक्षसपति द्वन्द्वदंष्ट्र मणिमाला का अपहरण करेगा, परन्तु बाद में शृङ्गारशृङ्ग उसे मार डालेगा। फिर वे दोनों योगिनियाँ शृङ्गारशृङ्ग के पास जाती हैं। वे उसे बताती हैं कि मणिमाला चित्रचरित के साथ आपके पास आ रही है। फिर कुछ ही देर में मणिमाला, विचित्रचातुरी तथा चित्रचरित के साथ राजा के पास पहुँचती है। मणिमाला वरणमाला अर्पित कर राजा को अपना पति चुनती है।

क्रौञ्चपर्वतवासी राक्षस द्वन्द्वदंष्ट्र अपनी बहिन प्रचण्डा द्वारा अज्ञातरूप से मणिमाला का अपहरण कराता है। सुसिद्धिसाधिनी मणिमाला को उसमें मुक्त कराने जाती है। अद्भुतभूति शृङ्गारशृङ्ग द्वारा द्वन्द्वदंष्ट्र का वध कराना चाहता है। शृङ्गारशृङ्ग यह सुनकर कि मणिमाला को किसी ने तिरोहित कर दिया है, व्यथित होता है। वह उसे प्रमदवन में खोजता है। उसके न मिलने पर वह मूर्च्छित हो जाता है। प्रयत्न करने पर भी जब उसे बोध नहीं आता तो निराश होकर चित्रचरित भी मूर्च्छित हो जाता है। सुसिद्धिसाधिनी मन्त्रजल से उन दोनों को बोध प्रदान करती है।

सुसिद्धिसाधिनी राजा को बताती है कि द्वन्द्वदंष्ट्र की आज्ञा से प्रचण्डा मणिमाला को निगल कर अपने निवास पर ले गई थी। मैंने अद्भुतभूति के कहने से क्रौञ्चपर्वत पर जाकर उसके उदर को काटकर मणिमाला को बाहर निकाला। फिर मैंने मृतसञ्जीवनी विद्या द्वारा मणिमाला को जीवित किया। द्वन्द्वदंष्ट्र मुझे मारने के लिए दौड़ा। मैंने मणिमाला को घर्घरघण्टा को सौंप दिया। इसी समय अद्भुतभूति ने वहाँ जाकर द्वन्द्वदंष्ट्र को ललकारा। अपने आमन्त्रण से अनेक वेतालों के वहाँ आने पर अद्भुतभूति उस राक्षस से युद्ध करने लगा। अद्भुतभूति ने उसे सर्पपाश से बाँध दिया, परन्तु वह मरा नहीं।

अद्भुतभूति राजा को बताता है कि क्रौञ्चपर्वत पर स्वर्णवृक्ष के मध्य में एक मणिसम्पुट में एक कीटनृपति रहता है जो, रात दिन राक्षस द्वन्द्वदंष्ट्र में प्राण भरता रहता है। उस कीटनृपति का वध करने पर ही राक्षस की मृत्यु होगी। विधाता ने उस कीटनृपति की मृत्यु ऐसे व्यक्ति के हाथों रची है जिसके नाम में दो 'ङ्ग' हों। आपका नाम इसी प्रकार का होने के कारण आप उसे मार सकेंगे। अतः आप मेरे साथ क्रौञ्चपर्वत पर चलिए।

राजा विदूषक, विचित्रचातुरी, चित्रचरित, सुसिद्धिसाधिनी तथा अद्भुतभूति के साथ क्रौञ्चपर्वत पर पहुँचता है। वहाँ वह मणिमाला को देखकर प्रसन्न होता है।

अद्भुतभूति द्वारा प्रदत्त खड्ग से राजा उस कीटनृपति का वध करता है। उसके मरते ही द्वन्द्वदंष्ट्र की मृत्यु हो जाती है और वह पृथ्वी पर गिर पडता है।

देवाङ्गनायें प्रसन्न होकर राजा को मणिमाला अर्पित कर जयकार करती हैं। इन्द्र राजा को त्रिभुवनाधिपत्य पर अभिषिक्त करता है। फिर राजा इन्द्र द्वारा प्रदत्त रथ पर चढकर मणिमाला तथा अन्य लोगों के साथ उज्जयिनी लौटता है। सुसिद्धि-साधिनी के समझाने पर महिषी पतिप्रिया मणिमाला को अपनी बहिन स्वीकार करती है और राजा के साथ उसका विवाह करा देती है।

मणिमाला नाटिका मे चार अङ्क है। इसकी वस्तु कल्पित है। यह वस्तु सुघटित नही है। द्वितीयाङ्क की वस्तु के कुछ भाग की तृतीयाङ्क में पुनरावृत्ति हुई है। तृतीयाङ्क मे कवि ने मणिमाला के सौन्दर्य का बहुत लम्बा वर्णन किया है। इसी प्रकार अन्य स्थानो पर भी इस नाटिका मे वर्णनो के बाहुल्य के कारण नाटकीय गतिशीलता अनेक स्थलो पर शिथिल हो गई है। इस नाटिका के प्रत्येक अङ्क के प्रारम्भ मे एक विष्कम्भक का प्रयोग किया गया है। नाट्यनिर्देश यथास्थान दिये हुए हैं।

नवमालिका नाटिका

विश्वेश्वर की नवमालिका नाटिका मे अवन्तिराज विजयसेन तथा अङ्गराज हिरण्यवर्मा की पुत्री नवमालिका के विवाह का वर्णन है।

विजयसेन का मन्त्री नीतिनिधि दिग्विजय के लिए जाता है। वह दण्डकारण्य म नवमालिका तथा उसकी दो सखियो को देखता है। वह उन्हें अवन्ती लाता है। नवमालिका मे त्रैलोक्यसाम्राज्ञी के लक्षण देखकर वह राजा के सार्वभौमत्व की कामना से उसे सखियो सहित पट्टमहिषी चन्द्रलेखा के पास रख देता है।

चन्द्रलेखा को भय है कि नवमालिका को देखकर राजा उसके प्रति कही आसक्त न हो जाये। इसलिए वह नवमालिका को राजा से छिपाकर रखती है।

राजा और विदूषक उपवन मे परिजनो के साथ विहार करती हुई चन्द्रलेखा से मिलने जाते हैं। राजा से नवमालिका को छिपाने के लिये चन्द्रलेखा उसे अपने पीछे कर लेती है। फिर वह चन्द्रिका को आदेश देती है कि तुम नवमालिका को यहाँ से अन्यत्र ले जाओ। परन्तु देवी के नासिकारत्न मे नवमालिका का प्रतिबिम्ब देख कर राजा उसके प्रति आसक्त हो जाता है।

देवी के द्वारा चित्रफलक को खोजने के लिए उपवन मे भेजी गई नवमालिका का वहाँ राजा से मिलन होता है। देवी वहाँ आकर नवमालिका और राजा के इस प्रणय को देखकर क्रुद्ध होती हैं। राजा देवी से क्षमा मांगता है। परन्तु देवी राजा के प्रणय को ठुकरा कर वहाँ से चली जाती हैं।

देवी चन्द्रिका और नवमालिका को कारागार मे डाल देती है। अङ्गराज हिरण्यवर्मा का अमात्य सुमति राजा और देवी के पास आकर बताता है कि पहिले अङ्गराज के एक कन्या हुई थी। वह मन्दाकिनी तट पर अपनी दो सखियो के साथ विहार करती हुई अदृश्य हो गई। अब अङ्गराज को एक पुत्र हुआ है। यह जानकर राजा और देवी प्रसन्न होते हैं। देवी अङ्गराज की बहिन है।

प्रभाकर नामक तपस्वी राजा को एक दिव्य रत्न देकर उसका प्रभाव बताता है। इस रत्न मे राक्षसादि द्वारा डाले गये विघ्न प्रभावहीन हो जाते थे। तपस्वी कहता है कि एक बार जब मैं दण्डकारण्य मे तप कर रहा था तो किसी राक्षस के द्वारा अपहृत तीन कन्यायें इस रत्न के प्रभाव से उसके हाथ से छूट कर पृथ्वी पर गिरी। जो नारियाँ पति के प्रतिकूल हैं वे इस रत्न को उठा नही सकती। देवी उसे उठाने की चेष्टा मे विफल होकर लज्जित होती है। वह अपने इस दोष को दूर करने के लिए नवमालिका का विवाह राजा के साथ कराने का निश्चय करती हैं।

नवमालिका, सारसिका तथा चन्द्रिका सुमति को पहिचान जाती हैं और सुमति उनको पहिचान लेता है।। सुमति से राजा तथा देवी को ज्ञात होता है कि नवमालिका हिरण्यवर्मा की पुत्री है।

देवी नवमालिका से क्षमा मांगती हैं। नीतिनिधि उन्हे बताता है कि नव-मालिकादि तीन कन्यायें उमे दिग्विजय के समय दण्डकारण्य मे प्राप्त हुई थी। इससे यह भी निश्चित हो जाता है कि ये तीन कन्यायें वे ही थी जो राक्षस के हाथ से छूटकर दण्डकारण्य मे गिरी थी। नीतिनिधि बताता है कि मैंने राजा के सार्वभौमत्व की कामना से इन्हें देवी के पास अन्त पुर मे रख दिया था। देवी नवमालिका का विवाह राजा के साथ कर देती है।

नवमालिका नाटिका की वस्तु कल्पित है। यह वस्तु सुघटित है। इसमे चार अङ्क हैं। वस्तु के विकास के लिए इसमे पञ्चसन्धियो का प्रयोग किया गया है। इसमे कथा के सूच्याशो को सूचित करने के लिए प्रवेशक तथा विष्कम्भक का प्रयोग किया गया है। इसमे नाट्यनिर्देश यथास्थान दिये हुए हैं।

मलयजाकल्याण नाटिका

वीरराघव की मलयजाकल्याण नाटिका मे तोण्डीरदेश के राजा देवराज का मलयदेश की राजकुमारी मलयजा के साथ विवाह का वर्णन है।

देवराज अपनी महिषी के साथ मृगया के लिए मलयदेश जाता है। वहाँ मलयजा को देखकर वह आसक्त हो जाता है।

एक बार राजा और विदूषक उस उपवन मे जाते है। वहाँ विरहपीडित मलयजा को उसकी सखियाँ आश्वस्त कर रही थी। वहाँ राजा मलयजा के समीप पहुँचता है और उसका अभिनन्दन करता है। तदनन्तर देवराज की महिषी को मलयजा का वह पत्र मिलता है, जिसे उसने नायक के पास इस उद्देश्य से लिखा था कि वह उससे प्रमदवन मे मिले। महिषी मलयजा की सखी मञ्जरिका के वेष मे उसके साथ प्रमदवन पहुँचती है जहाँ उसे देवराज का मलयजा के साथ प्रणय व्यापार देखने को मिलता है। वह झट मञ्जरिका का वेष छोडकर राजमहिषी के वेष मे प्रकट होती है और क्रोध करती है।

इसी बीच जामदग्न्य मुनि उन सबके बीच मध्यस्थता करके मलयजा का देवराज से विवाह करा देते हैं।

मलयजाकल्याण नाटिका मे चार अङ्क हैं। इसकी वस्तु कल्पित है। यह वस्तु सुघटित है। इसमे वस्तु के विकास के लिये पञ्चसन्धियो का प्रयोग किया गया है। इसमे विष्कम्भको तथा प्रवेशको का यथास्थान प्रयोग किया गया है। नाट्यनिर्देश यथास्थान दिये हुए है।

पात्रोन्मीलन

अट्ठारहवी शताब्दी के अनेक रूपको मे पात्रो का बाहुल्य है। यहा उदाहरण के लिए निम्नलिखित रूपको मे पात्रो की सख्या का उल्लेख किया जा रहा है।

रूपक का नाम	पुरुष पात्र	स्त्री पात्र
जीवन्मुक्ति-कल्याण	18	12
कान्तिमती-परिणय	12	12
सेवन्तिका-परिणय	9	12
नीलापरिणय	12	9
सभापतिविलास	13	6
राघवानन्द	28	7
जीवानन्द	32	11
विद्यापरिणय	29	16
रतिमन्मथ	23	12
प्रद्युम्नविजय	20	13
शिवलिङ्गसूर्योदय	20	13

संस्कृत के पूर्ववर्ती रूपकों में भी पात्र-बाहुल्य है। यह बात निम्नलिखित रूपकों से स्पष्ट है।

रूपक का नाम	पुरुष पात्र	स्त्रीपात्र
अभिज्ञान शाकुन्तल	23	12
उत्तररामचरित	18	10
मुद्राराक्षस	25	4
वेणीसंहार	21	11

शृङ्गार प्रधान रूपकों में नायक, नायिका तथा विदूषक प्रमुख पात्र हैं। कतिपय शृङ्गारित रूपकों में प्रतिनायक भी विद्यमान हैं। इनमें से अधिकांश रूपकों के नायक राजा हैं। पारम्परिक रूपकों में सेनापति, मन्त्री, युवराज, कञ्चुकी, मुनि, ज्योतिषी, दौवारिक, चर, नायिका की सखियाँ, पट्टमहिषी तथा उसकी सखियाँ, योगिनियाँ आदि पात्र हैं।

विष्णु, लक्ष्मी, शिव, पार्वती, कार्तिकेय तथा महेन्द्रादि देवीदेवता भी कतिपय रूपकों में पात्र के रूप में आये हैं। उद्यानपालिकायें, चेटियाँ तथा प्रतिहारियाँ भी इन रूपकों के पात्र हैं। कुछ रूपकों में गन्धर्व, विद्याधर, यक्ष, नाग, पिशाच, असुर आदि अमानवीय पात्र भी आते हैं। प्रतीक नाटकों में विद्या, भक्ति, शान्ति, ज्ञान, प्रवृत्ति, निवृत्ति, विषयवासना, असूया, विरक्ति सत्सङ्ग, चार्वाक, जैन, बौद्ध, कामक्रोधादि पात्र हैं।

नीलापरिणय नाटक के नायक श्रीकृष्ण द्वारका के राजा हैं। सभापतिविलास नाटक के नायक मुनि व्याघ्रपाद हैं तथा उपनायक महाभाष्यकार पतञ्जलि। राघवानन्द नाटक के नायक अयोध्या के राजा राम हैं। रतिमन्मथ नाटक के नायक युवराज मन्मथ श्रीकृष्ण के पुत्र हैं। कुमारविजय नाटक के नेता कार्तिकेय देवकोटि के हैं। प्रद्युम्नविजय नाटक के नायक प्रद्युम्न श्रीकृष्ण के पुत्र हैं।

मधुरानिरुद्ध नाटक के नायक अनिरुद्ध श्रीकृष्ण के पौत्र हैं। सीताराघव नाटक के नायक राम अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र हैं। रुक्मिणी-परिणय नाटक के नायक श्रीकृष्ण द्वारका के राजा हैं। कुवलयाश्वीय नाटक का नायक कुवलयाश्व वाराणसी के राजा शत्रुजित् का पुत्र है। शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक के नायक श्रीकृष्ण द्वारका के राजा हैं। प्रमुदितगोविन्द नाटक के नायक स्वयं भगवान विष्णु हैं।

कान्तिमतीपरिणय नाटक के नायक शाहजी, सेवन्तिकापरिणय नाटक के नायक बसवभूपाल, लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक के नायक देवनारायण, बालमार्तण्ड-

विजय नाटक के नायक बालमार्तण्ड वर्मा, राजविजय नाटक के नायक राजवल्लभ तथा वसुलक्ष्मीकल्याणनाटक के नायक बालराम वर्मा राजा कोटि के हैं।

मदनसञ्जीवन भाण का नायक कुलभूषण नामक विट है। शृङ्गारसुधाकर भाण का नायक भी एक विट है। मुकुन्दानन्द भाण का नायक विट भुजङ्गशेखर है। कामविलास भाण का नायक विट पल्लवशेखर है।

उन्मत्तकविकलश प्रहसन का नायक कविकलश दुर्जन है, वह निम्नकोटिक पात्र है। चण्डानुरञ्जन प्रहसन का नायक दीर्घशेफ आचारभ्रष्ट गुरु है। मदनकेतु-चरित प्रहसन का नायक सिंहलराज मदनकेतु वेश्यागामी है। इसके अन्य पात्र जैसे विष्णुमित्र, कापालिक शिवदास तथा गणिकायें अनङ्गलेखा तथा चन्द्रलेखा भी निम्न कोटि के पात्र हैं। सान्द्रकुतूहल प्रहसन के पात्र आचारभ्रष्ट राजा तथा ब्राह्मण हैं। कुक्षिमर भैक्षव प्रहसन का नायक बौद्धभिक्षु कुक्षिमर विधवागामी है। जम्बुक, वक्रदन्त, पिचण्डिल, मल्लूक तथा कुकुंरी इस प्रहसन के अन्य निम्नकोटिक पात्र हैं।

महेन्द्रविजय डिम के पात्र महेन्द्रादि देवता, दैत्यराज बलि वाचस्पति तथा भार्गवादि हैं।

वीरराघव व्यायोग के नायक राम प्रख्यात है। लक्ष्मण, जटायु, गन्धर्व चित्ररथ तथा उसका चामरग्राही और मातलि इस व्यायोग के अन्य पात्र हैं।

लक्ष्मीस्वयंवर समवकार के नायक माधव उदात्त तथा दिव्य कोटि के हैं। सागर, वरुण, रमा, वैनतेय आदि इस समवकार के अन्य पात्र हैं।

चन्द्रिकावीथी में राजा चन्द्रसेन और विदूषक दो ही पात्र हैं। लीलावती वीथी में भी केवल दो पात्र हैं—राजा वीरपाल तथा उसका विदूषक। इन दोनों वीथियों की पात्र-संख्या नाट्यनियमों के अनुकूल है। सीताकल्याणवीथी के पात्र हैं—नारद और उनका शिष्य, राम, लक्ष्मण, विश्वामित्र, जनक, शतानन्द, कौसुम्भक, कौतुक, सीता तथा सीता की सखी। इस वीथी की पात्रसंख्या नाट्यनियमों के विपरीत है।

रुक्मिणीमाधव नामक अङ्क के नायक माधव (श्रीकृष्ण) द्वारका के राजा हैं। दारुक, रुक्मिणी, रुक्मिणी की सखी, शिशुपाल तथा नारदादि इसके अन्य पात्र हैं।

उर्वशीसार्वभौमेहामृग के नायक पुरुरवा हैं। इसकी नायिका उर्वशी अप्सरा है। महेन्द्र इसमें प्रतिनायक हैं। कचुकी, विदूषक, प्रतीहारी, सुन्दरक तथा कमलाकर नामक दो गन्धर्व, उर्वशी की सखी, चित्ररथ तथा नारद इस रूपक के अन्य पात्र हैं।

मणिमाला नाटिका के नायक उज्जयिनी के राजा शृङ्गारशृङ्ग धीरललित कोटि के नायक हैं। इसकी ज्येष्ठा नायिका पतिप्रिया तथा कनिष्ठा नायिका मणिमाला है। चित्रचरित, विदूषक, विशुद्धबुद्धि, पुरोहित, योगिनियाँ सिद्धिसाधिनी तथा घर्घरघण्टा, कञ्चुकी तथा योगी अद्भुतभूति आदि इस नाटिका के अन्य पात्र हैं।

नवमालिका नाटिका के नायक अवन्ती के राजा विजयसेन धीरललित है। इसकी ज्येष्ठा नायिका चन्द्रलेखा तथा कनिष्ठा नायिका नवमालिका है। नीतिनिधि, सारसिका, चन्द्रिका, मधुमाधवी, विदूषक, कञ्चुकी, प्रतिहारी, तापस तथा सुमति इस नाटिका के अन्य पात्र हैं।

मलयजाकल्याण नाटिका के नायक तोण्डीरदेश के राजा देवराज धीरललित हैं। इसकी ज्येष्ठा नायिका प्रधानमहिषी तथा कनिष्ठ नायिका मलयजा है। विदूषक, केरलिका, मञ्जरिका, वल्लरिका, अमात्य, पुरुष, मलयदेवी, मलयराज तथा भार्गव इस नाटिका के अन्य पात्र है।

प्रमुख नाटकीय पात्रों का चरित्रचित्रण

अट्ठारहवीं शताब्दी मे चरित्रचित्रण की दो प्रमुख प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं—आदर्शवादी तथा यथार्थवादी। अनेक रूपककारो ने विष्णु, शिव, राम, कृष्ण, मन्मथ, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, कार्त्तिकेय आदि पुरुषपात्रो तथा लक्ष्मी, पार्वती, सीता, रुक्मिणी तथा सत्यभामा आदि स्त्रीपात्रो के चरित्र चित्रण द्वारा उनके आदर्श को प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया है। कुछ रूपककारो ने प्रतीकात्मक, ऐतिहासिक तथा विविध वर्गों के सामाजिक पात्रो के यथार्थ चरित्रचित्रण के द्वारा अपने समय की सभ्यता तथा संस्कृति का निदर्शन किया है। कतिपय रूपककारो ने लौकिक पात्रो को देवत्व प्रदान किया है। अन्य रूपककारों ने लोकोत्तर पात्रो को मानव रूप मे प्रस्तुत किया है।

पुरुष पात्र

विष्णु

वेङ्कटेश्वर के नीलापरिणय नाटक म विष्णु विनोदप्रिय हैं। वे विदूषक के साथ विनोद करते हैं। तथा चम्पकमञ्जरी के रूप मे अवतीर्ण नीला देवी के

प्रति आसक्त हैं। उन्हे भय है कि मेरी पत्नी रक्ताम्बुजनायिका नीला के प्रति मेरा प्रणय देखकर कहीं मुझसे कुपित न हो जाये। विष्णु यज्ञो के रक्षक हैं। उनके संरक्षण मे गोप्रलय तथा गोभिल मुनि अपना यज्ञ सम्पन्न करते हैं। विष्णु की आज्ञा से गरुड स्थूलाक्षादि राक्षसो का संहार करते हैं।

सदाशिव के लक्ष्मीकल्याण नाटक मे विष्णु अपने भक्तो के प्रति अनुग्रहशील है। वे लक्ष्मी के प्रति आसक्त हैं। वे विप्राचार्य के वेष मे लक्ष्मी के पास जाकर अपने प्रति उसके प्रेम की परीक्षा करते है। विष्णु विश्व के सृष्टा, पालक तथा संहारक हैं। शिवादि देवता तथा नारदादि मुनि विष्णु की महिमा को प्रतिपादित करते हैं।

सदाशिवोद्गाता के प्रमुदितगोविन्द नाटक मे विष्णु देवो और असुरो द्वारा समुद्रमन्थन कराते हैं। देवो को मन्दरपर्वत के उठाने मे असमर्थ देखकर वे स्वयं उसे सरलता से उठा लेते हैं। विष्णु का देवो के प्रति पक्षपात है। इसी कारण वे समुद्रमन्थन से आविर्भूत श्रेष्ठ वस्तुओ को देवो को देते है। समुद्रमन्थन से आविर्भूत लक्ष्मी को देखकर विष्णु उसके प्रति अनुरक्त हो जाते हैं। वे लक्ष्मी के साथ विवाह करते है।

विष्णु मोहिनीरूप द्वारा असुरो को वञ्चित कर उनसे अमृतकलश प्राप्त करते हैं। वे देवो की ओर से दानवो के साथ युद्ध कर उन्हे नष्ट करते हैं। शिव के विनय करने पर भी विष्णु स्त्रीरूप धारण करने मे संकोच करते हैं। वे शिव से कहते हैं कि रणभूमि मे ही नट बनना चाहिये, अन्यत्र नही। इससे विष्णु का लोकव्यवहारनैपुण्य प्रकट होता है।

शिव के समक्ष अपनी महिमा प्रकट करने के लिये विष्णु पुन मोहिनी रूप धारण करते है। लक्ष्मी, गौरी और शची आदि नारियाँ भी मोहिनी के सौन्दर्य पर आश्चर्य प्रकट करती हैं। मोहिनी को देखकर शिव उस पर मोहित हो जाते हैं। प्रयास करने पर भी शिव मोहिनी को नही पकड पाते। शिव को लज्जित देखकर विष्णु मोहिनी रूप का उपसंहरण कर अपने वास्तविक रूप मे प्रकट होते हैं। विष्णु और शिव एक दूसरे की महानता के प्रशंसक हैं।

शिव

शाहजी के चन्द्रशेखरविलास नाटक मे शिव गरलपान करते हैं। देवो की प्रार्थना से वे चन्द्रमा को अपने मस्तक पर धारण करते हैं।

वेङ्कटेश्वर के सभापतिविलास नाटक मे शिव बालमुनि की भक्ति से प्रसन्न

होकर उनके समक्ष तिरुववन मे आनन्दताण्डव प्रदर्शित करते हैं। बालमुनि की याचना पर शिव उसके हाथों और पैरो के व्याघ्र के समान हो जाने का उसे वर देते हैं।

शिव विट का वेष धारण कर दारुकवन मे मुनिपत्नियो को मोहित करते हैं। मुनिगण शिव को शाप देते हैं। शिव मुनियो पर कृपालु हैं। वे मुनियो को ज्ञानचक्षु प्रदान कर उन्हे अपना नृत्य दिखाते हैं। मुनियो की भक्ति से प्रसन्न शिव उन्हे दारुकवन मे शिवलिङ्ग की प्रतिष्ठा और पूजा करने का आदेश देते हैं। शिव राजा हिरण्यवर्मा, पतञ्जलि तथा व्याघ्रपाद को अपना आनन्दताण्डव प्रदर्शित करते हैं। शिव अपने भक्तो पर कृपालु हैं।

राम

रामपाणिवाद के सीताराघव नाटक के राम पराक्रमी है। विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करते हुए वे अनेक राक्षसो का सहार करते हैं। राम के मन मे विश्वामित्र के प्रति श्रद्धा है। राम कुशाग्रबुद्धि, सहानुभूतिपरायण तथा मातृपितृ-भक्त हैं। विश्वामित्र की आज्ञा से वे शिवधनुष को तोडते हैं। राम को सीता से प्रेम है। वे सीता के अपहरण से दुखी होते हैं। राम का हनुमान् के प्रति स्नेह है।

वेङ्कटेश्वर के राघवानन्द नाटक मे राम वनवास के समय राक्षसो से भीत सीता को अपना पराक्रम बता कर आश्वस्त करते हैं। राम के मन मे ऋषियो के प्रति सम्मान है। वह शमादि धन को श्रेष्ठ समझते हैं। अगस्त्य की दृष्टि मे राम परब्रह्म हैं। अगस्त्य तथा वसिष्ठ मुनियो को अपने अभ्युदय के लिये प्रयत्नशील देखकर राम इसे अपने पूर्वजो के तप का फल समझते हैं।

राम रावण के सद्गुणो के प्रशसक तथा दुर्गुणो के निन्दक हैं। राम का सीता के प्रति प्रगाढ प्रेम है। सीता के अनुरोध से वे स्वर्णमृग का वध करने जाते हैं। उस मृग को मारकर लौटे हुए राम सीता को न देखकर व्याकुल हो उठते हैं। राम कहते हैं कि सीता का इस प्रकार अपहरण करना रावण के लिये लज्जाजनक है। राम जटायु के सौजन्य, धर्माचरण, शौर्य और शरण्यता की प्रशसा करते हैं।

राम का विभीषण के प्रति स्नेह है। वे उसे लङ्का के राजसिंहासन पर अभिषिक्त करते हैं। अङ्गद के प्रति राम का स्नेह है। अङ्गद राम के प्रति विनयशील हैं। राम की अगस्त्य के प्रति श्रद्धा है। वे उन्हे प्रणाम कर रावण से युद्ध करने जाते हैं।

राम कुशल सेनानी हैं। वे सुचारु रूप से युद्ध का सचालन करते हैं। युद्ध मे विजय प्राप्त करने के लिये राम विजयादित्य की उपासना करते हैं।

प्रधान वेङ्कप्प के वीरराघव व्यायोग मे मुनियो की प्रार्थना पर राम दण्डक वन म राक्षसो का सहार करने की प्रतिज्ञा करते हैं। वे विराध का वध करते हैं। राम कहते हैं कि खर और दूषण के रक्त से ही मैं धर्मपरिताप को दूर करूँगा।[1]

राम तपोभूमि के शान्तिपूर्ण वातावरण को अक्षुण्ण रखना चाहते हैं। अत वे राक्षसो से युद्ध करने के लिये तपोवन से दूर चले जाते हैं। राम वनवास के समय सीता की रक्षा का निरन्तर ध्यान रखते हैं। वे सीता की रक्षा के लिये कुटी मे लक्ष्मण को नियुक्त करते हैं।

राम कुशल धनुर्द्धर हैं। वे अपने बाणो द्वारा खर, दूषण तथा त्रिशिरादि प्रमुख राक्षसो तथा उनकी विशाल सेना को नष्ट करते हैं।

प्रधान वेङ्कप्प की सीताकल्याण वीथी मे राम लक्ष्मण तथा विश्वामित्र के साथ सीतास्वयवर के लिये मिथिला जाते हैं। राम मे तुरन्त ही वास्तविकता को समझने की अद्भुत क्षमता है। वे जनक का सम्मान करते हैं। राम अव्याज-वत्सल हैं। वे अद्भुत बलशाली हैं। सीतास्वयवर मे उपस्थित समस्त राजाओ के शिवधनुरारोपण मे असफल हो जाने पर राम उस धनुष को तोडते हैं।

सीता के प्रति राम के मन म प्रबल आकर्षण है। सीता द्वारा कण्ठ मे वरमाला डाली जाने पर राम आनन्द से ओत प्रोत हो जाते हैं। राम विनम्र हैं। वे अपनी विनम्रता से परशुराम पर विजय प्राप्त करते हैं। राम को विश्वामित्र के प्रति श्रद्धा है। वे अपनी विजय का श्रेय विश्वामित्र को देते हैं। राम अपने माता पिता तथा भाइयो के अनुरञ्जक हैं।

श्रीकृष्ण

श्रीकृष्ण द्वारकानाथ के गोविन्दवल्लभ नाटक के नायक हैं। श्रीकृष्ण मल्ललीला, व्यायाम तथा गोदोहनादि मे निपुण हैं। वे अपने मित्रो सहित गोचारण के लिये वृन्दावन जाते हैं। उन्हें गायों से प्रेम है। नन्द और यशोदा श्रीकृष्ण को प्रेम करते हैं।

---

1. वीरराघव व्यायोग, पद्य 19।

श्रीकृष्ण वृषभानुपुत्री राधा के प्रति अनुरक्त हैं। वे मुरलीवादन में कुशल हैं। श्रीराम और सुदामा के प्रति श्रीकृष्ण के मन में स्नेह है। श्रीकृष्ण कौतुकप्रिय हैं। वे वृषभ के साथ युद्ध करते हैं। जलक्रीडा में श्रीकृष्ण को विशेष आनन्द मिलता है। वे अपने मित्रों के साथ यमुना में अनेक क्रीडायें करते हैं।

वृन्दावन में गोचारण करते हुए श्रीकृष्ण को गोपबालक वहाँ का राजा बना देते हैं। गोपबालकों को श्रीकृष्ण से स्नेह है। श्रीकृष्ण कुशल नाविक हैं। वे राधा को नाव में बैठाकर पुष्पप्रचय के लिए उसे यमुना के दूसरे पार ले जाते हैं।

बलदेव का श्रीकृष्ण के प्रति स्नेह है। वे श्रीकृष्ण को अपनी गोद में सुलाते हैं। व्रजसुन्दरियाँ श्रीकृष्ण का लालन करती हैं।

रामवर्मवञ्चियुवराज के रुक्मिणीपरिणय नाटक में श्रीकृष्ण रुक्मिणी के प्रति अनुरक्त हैं। श्रीकृष्ण कुशल आयोजक हैं। वे रुक्मिणी से विवाह करने की योजना बनाते हैं और उसमें सफल होते है। श्रीकृष्ण का अपने अमात्य उद्धव की कार्यकुशलता में विश्वास है। श्रीकृष्ण कुशल योद्धा हैं। वे शिशुपालादि विरोधियों को युद्ध में पराजित करते हैं। उनके सुदर्शन चक्र से भीत शाल्व रुक्मिणी को मुक्त कर भाग जाता है। रुक्मिणी के प्रति श्रीकृष्ण का इतना अधिक अनुराग है कि वे रुक्मिणी के अनुरोध से रुक्मी के दुर्वचन भी सहन करते हैं।

प्रधान वेङ्कप्प के रुक्मिणीमाधवाङ्क में श्रीकृष्ण रुक्मिणी के साथ विवाह करने के लिये उसके अपहरण की योजना बनाते हैं। वे बलदेव के नेतृत्व में सेना को सन्नद्ध कर विदर्भ जाते हैं। श्रीकृष्ण रुक्मिणी के सौन्दर्य की प्रशंसा करते हैं। श्रीकृष्ण की सत्यवादिता में रुक्मिणी की सखी को पूर्ण विश्वास है। रुक्मिणी श्रीकृष्ण के गुणों के कारण उनके प्रति अनुरक्त है। श्रीकृष्ण को रुक्मिणी के साथ सहानुभूति है। मूर्च्छित रुक्मिणी को उनके हस्तस्पर्श से चेतना प्राप्त होती है।

शिशुपाल तथा उसके मित्र श्रीकृष्ण सहनशील हैं। शिशुपाल के अपशब्दों को सुनकर श्रीकृष्ण केवल हँसते हैं। वे शिशुपाल से कहते हैं कि मेरी तलवार से आप कन के समान मारे जायेंगे।

श्रीकृष्ण रुक्मिणी के पत्रवाहक ब्राह्मण के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं। श्रीकृष्ण अपने माता-पिता का सम्मान करते हैं। रुक्मिणी के साथ विवाह करने के पश्चात् वे अपने माता-पिता के पादवन्दन के लिये जाते हैं।

वेङ्कटाचार्य तृतीय के शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक में श्रीकृष्ण रुक्मिणी को पारिजात पुष्प देने से रुष्ट सत्यभामा को मनाने का प्रयास करते हैं। सत्यभामा के

अनिरुद्ध द्यूतक्रीडा मे निपुण हैं। वे उषा के साथ द्यूतक्रीडा करते है। अनिरुद्ध बाणासुर के पुत्रो का वध करने के लिये बाणासुर से क्षमा माँगते है। अनिरुद्ध की स्तुति से प्रसन्न सूर्य उन्हे दिव्य धनुष तथा अभेद्य कवच प्रदान करते हैं। जब बाणासुर अनिरुद्ध को नागपाश से बाँध कर कारागृह मे डाल देता है तो अनिरुद्ध दुर्गा की स्तुति कर उनसे अपना बन्धन शिथिल कराते हैं। श्रीकृष्ण अनिरुद्ध को नागपाश से मुक्त करते हैं।

कार्तिकेय

शिव तथा पार्वती के पुत्र कार्तिकेय घनश्याम के कुविजय नाटक के नायक हैं। कार्तिकेय बलशाली योद्धा हैं। वे अपने पराक्रम से देवोत्पीडक मायाधुरीण तारकासुर का वध करते हैं।

कार्तिकेय शस्त्रास्त्र-विचक्षण योद्धा है। वे अपने माता-पिता का सम्मान करते हैं। वे विनम्र हैं। वे पिता के समक्ष अपनी विजय का वर्णन करने मे सकोच का अनुभव करते हैं। वे विष्णु के द्वारा ही अपने पिता को अपनी विजय के वृत्तान्त से अवगत कराते हैं।

कार्तिकेय कुशल धनुर्द्धर है। वे अपने बाणो की वर्षा से तारकासुर के अश्व, हरिण, हस्ती, वृष, महिष, तरक्षु, ऋक्ष, हर्यक्ष, वृक्ष, धराधर तथा मेघादि मायावी रूपो को नष्ट करते हैं। वे महास्त्राग्नि द्वारा तारकासुर की विशाल सेना को नष्ट करते हैं। कार्तिकेय की शक्ति अमोघ है। इसके द्वारा वे क्रौञ्चपर्वत को विदीर्ण कर तारकासुर का वध करते हैं।

ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्रादि देवो की प्रार्थना से कार्तिकेय सेनापति पद स्वीकार करते हैं। सेनापति बनने के पश्चात् कार्तिकेय अपने माता-पिता की वन्दना कर उनसे आशीर्वाद प्राप्त करते हैं।

महेन्द्र

महेन्द्र प्रधान वेङ्कप्प के महेन्द्रविजयडिम तथा उर्वशीसार्वभौमेहामृग के प्रमुख पात्र हैं।

महेन्द्रविजयडिम मे महेन्द्र को अपनी नगरी अमरावती से प्रेम है। दैत्यो द्वारा विजित अमरावती की दुर्दशा सुनकर महेन्द्र के मन मे दुख होता है। दैत्यो के प्रति महेन्द्र के हृदय मे क्रोध है। बृहस्पति के प्रति महेन्द्र की श्रद्धा है। वे बृहस्पति पर अपने-श्रेय साधन का भार डालते हैं। वे छद्म का आश्रय लेकर विजय प्राप्त करना अपने लिये लज्जाजनक समझते हैं। बृहस्पति अनेक बार महेन्द्र

को समझाकर उनके दैत्यो के प्रति क्रोध को शान्त करते है। पराक्रमी महेन्द्र युद्ध में दैत्यो को नष्ट करते है।

उर्वशीसार्वभौमेहामृग मे महेन्द्र उर्वशी के प्रति अनुरक्त है और उससे विवाह करना चाहते हैं। महेन्द्र अपनी कार्यसिद्धि के लिये छल करने मे सकोच नही करते। वे पुरूरवा का वेष बनाकर उर्वशी को प्राप्त करने का प्रयास करते है। महेन्द्र झूठ बोलकर अपने को वास्तविक पुरूरवा सिद्ध करना चाहते हैं और वास्तविक पुरूरवा को राक्षस। वे उर्वशी के लिये पुरूरवा के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध तोडकर युद्ध करने को तत्पर हो जाते है। इस प्रकार इस ईहामृग मे महेन्द्र का चरित्र निम्न हो गया है।

कुवलयाश्व

वाराणसी के राजा शत्रुजित् का पुत्र कुवलयाश्व, कृष्णदत्त मैथिल के कुवलयाश्वीय नाटक का नायक है। कुवलयाश्व बुद्धिमान्, तेजस्वी, धैर्यशाली, परोपकारी और वीर है। वह दानी है। वह अपने यौवराज्याभिषेक का मुक्ताहार भिक्षु को दान मे दे देता है।

कुवलयाश्व अपने पिता की आज्ञा का परिपालक है। पिता की आज्ञा से गालवमुनि के आश्रम पर जाकर वह यज्ञ मे विघ्न करने वाले अनेक दैत्यो का सहार करता है। कुवलयाश्व विनम्र है। उसके माता-पिता उससे स्नेह करते हैं। राक्षसो से मुनियो की रक्षा कर कुवलयाश्व अपने जीवन को धन्य समझता है। मुनियो के प्रति कुवलयाश्व की श्रद्धा है।

आश्रमवासियो को कुवलयाश्व के शौर्य मे विश्वास है। कुवलयाश्व के आश्रम मे पहुँच जाने मात्र से वहाँ के निवासी निर्भय हो जाते हैं। उसकी वीरता पर दानव भी आश्चर्य प्रकट करते हैं। उसके भय से दानव अपने वास्तविक रूप मे आश्रम के पास नही जाते। वे साधु का कपट वेष बनाकर वहाँ आते है।

कुवलयाश्व गालव मुनि के आश्रय पर आक्रमण करने वाले दैत्यराज तथा उसके अनुचरों का बध करता है। कुवलयाश्व मदालसा के प्रति आसक्त है। उसका धर्म और सदाचार में विश्वास है। वह अपने तथा मदालसा के माता पिता की अनुमति के बिना विवाह करना अनुचित समझता है।

कुवलयाश्व शिव का भक्त है। कुवलयाश्व की बुद्धिसेन तथा सिद्धिसेन से मैत्री है। वह मायावी दैत्य कङ्कालक का वध करता है।

नन्दक

राजा नन्दक रामचन्द्रशेखर के कलानन्दक नाटक का नायक है। वह कलावती के प्रति अनुरक्त है। वह अपना चित्रपट कलावती के पास भेजता है। उसकी करङ्कवाहिनी बुद्धिमती उसे कलावती का चित्रपट देती है।

नन्दक मुनियो का रक्षक है। मुनि त्रिकालवेदी की प्रार्थना पर वह उनके आश्रम मे जाकर सिंह का वध करता है। नन्दक वीर है। वह युद्ध मे दिल्लीपति इन्द्रसखा को पराजित कर उससे कलावती को प्राप्त करता है।

कलावती के सिद्धयोगितपोवन मे प्रविष्ट होने पर नन्दक दु खी होता है। वह त्रिकालवेदी के चरणो की अर्चना करता है।

प्रतिनायक

रावण

रावण वेङ्कटेश्वर के राघवानन्द नाटक तथा रामपाणिवाद के सीताराघव नाटक मे प्रतिनायक है।

राघवानन्द का रावण दुष्ट है। सीता का अपहरण कर वह अपने आपको धन्य समझता है। वह सीता के प्रति कामासक्त है। रावण को लक्ष्मण की वीरता से भय है।[1] मारीच के वध से वह दु खी है। वीर होते हुए भी रावण कामुक है। वह कुहना का आश्रय लेकर सीता का अपहरण करता है। वह राक्षसो के द्वारा राम का वध कराना चाहता है। वह हनुमान की अवहेलना करता है। रावण की राक्षसो के प्रति सहानुभूति है। राक्षसो के वध से वह दु खी होता है।

रावण का अपशकुनो मे विश्वास है। जब उसके समक्ष एक मार्जार तिर्यक् दौड़कर निकल जाता है तब वह स्तम्भित-सा रह जाता है। वह हनुमान् द्वारा मारे गये अक्षकुमार, जम्बुमाली, मन्त्रिपुत्रो, सेनापतियो तथा अन्य राक्षसो को देखकर जुगुप्सा का अनुभव करता है और विलाप करता है।

रावण के मन मे विभीषण के प्रति क्रोध है। वह विभीषण को राम की सहायता करने के अपराध पर दण्डित करना चाहता है। रावण राम के

---

1. राघवानन्द नाटक, तृतीयाङ्क, पद्य 15।

समक्ष अपना शौर्य प्रकट करता हुआ उन पर प्रहार करता है। वह राम के द्वारा मारा जाता है।

सीताराघव नाटक मे रावण सीता के प्रति कामासक्त है। यद्यपि छः ऋतुऐं रावण की सेवा करती हैं तथापि वह केवल वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा तथा शरद् का ही सम्मान करता है क्योंकि ये उसे सीता के विशेप अङ्गो का स्मरण दिलाती हैं। हेमन्त और शिशिर ऋतु का रावण इसलिये अनादर करता है क्योंकि उनमे रात्रि के दीर्घ होने से उसकी सीताविरहवेदना बढ जाती है।[1]

नल-कूबर के शाप से यन्त्रित होने के कारण रावण की सबल भुजायें स्त्रियो की स्वीकृति के बिना उन्हे बलपूर्वक ग्रहण कर सकती हैं। रावण कामदेव को बुरा भला कहता है।[2] उसे अपने पराक्रम का गर्व है। वह राम को केवल मर्त्य ही समझ कर उनकी सेवा करना अपने लिये अपमानजनक मानता है।[3]

रावण क्रोधी स्वभाव का है। उसकी प्रतिहारी उससे डरती है। कामोन्मत्त रावण कामदेव पर आक्रमण करने के लिये अपनी प्रतिहारी को धनुष लाने की आज्ञा देता है। कामुक रावण चित्रगत सीता को वास्तविक सीता समझकर उससे दीनतापूर्वक आलिङ्गन तथा चुम्बन के लिये विनय करता है।[4] प्रतिहारी के वास्तविकता बताने पर रावण लज्जित होता है।

राम और लक्ष्मण के प्रति रावण के मन मे क्रोध है। चित्र मे राम और लक्ष्मण को देखकर रावण उन्हे बुरा भला कहता हुआ उनका वध करने के लिये खड्ग उठा लेता है। रावण आचारविहीन है। वह गन्धर्ववेदविशेषज्ञ है। गन्धर्व भी रावण के समक्ष अपना गानकौशल दिखाने मे लज्जा का अनुभव करता है।

रावण को अपने बान्धवो से प्रेम है। राम द्वारा किये गये विराधवध के विषय मे सुनकर रावण दुःखी होता है। लक्ष्मण द्वारा अपनी बहिन शूर्पणखा के नाक-कान काटे जाने का समाचार सुनकर रावण क्रुद्ध होता है। राम के द्वारा किये गये खर, दूषण और त्रिशिरा के वध को जानकर रावण मारीच के साथ मन्त्रणा

---

1. सीताराघव नाटक, चतुर्थाङ्क 11।
2. वही वही 15।
3. वही वही 18।
4. सीताराघव नाटक, चतुर्थाङ्क, 27।

कर राम और लक्ष्मण को नष्ट करने की योजना बनाता है। वह सीता का अपहरण करता है और युद्ध में राम के द्वारा मारा जाता है।

शिशुपाल

रामवर्मवञ्चियुवराज के रुक्मिणीपरिणय नाटक तथा प्रधान वेङ्कप्प के रुक्मिणीमाधवाङ्क में चेदिराज शिशुपाल प्रतिनायक है। शिशुपाल दुष्ट है। वह रुक्मी का मित्र है। वह रुक्मिणी के प्रति कामासक्त है। उसे अपने बल पर गर्व है। वह कहता है कि मेरे रहते हुए वासुभद्र रुक्मिणी के साथ कैसे विवाह कर सकता है।

शिशुपाल को वासुभद्र (श्रीकृष्ण) के प्रति ईर्ष्या है। श्रीकृष्ण के अमात्य उद्धव शिशुपाल को ठगते हैं। शिशुपाल रुक्मिणी का वेष धारण करने वाली अनङ्गसेना को रुक्मिणी समझकर उसके साथ विवाह करता है। सत्य ज्ञात होने पर शिशुपाल क्रुद्ध होता है।

रुक्मिणीमाधवाङ्क में शिशुपाल श्रीकृष्ण से रुक्मिणी को छुड़ाने के लिये उनकी ओर दौड़ता है। शिशुपाल दर्पी है। वह श्रीकृष्ण के प्रति शत्रुता रखता है। शिशुपाल श्रीकृष्ण को अनेक अपशब्द कहता है। वह श्रीकृष्ण से कहता है कि मैं आपका रथ तोड़ डालूँगा और आपको यहाँ से भागना पड़ेगा।[1] परन्तु अपने साथियों जरासन्धादि के बलदेव से हार जाने पर अपने को असहाय देखकर स्वयं शिशुपाल वहाँ से भागकर अपने प्राण बचाता है। शिशुपाल अभद्र है। उसका सूत उसकी रक्षा करता है।

शम्बरासुर

शम्बरासुर जगन्नाथ के रतिमन्मथ नाटक में प्रतिनायक है। शम्बरासुर रति के प्रति कामासक्त है। वह बाष्कल को रति के माता-पिता के पास भेजकर अपने लिये रति की याचना करता है। रति के माता-पिता शम्बर को रति देना अस्वीकार करते हैं।

शम्बर को अपने बल का दर्प है। वह रति का अपहरण करता है। शम्बर मायायुद्ध में कुशल है। वह मन्मथ द्वारा मारा जाता है।

प्रतीकात्मक पुरुष पात्र

विवेक

शिव कवि के विवेकचन्द्रोदय तथा हरियज्वा के विवेकमिहिर नाटकों में

---

1 रुक्मिणीमाधवाङ्क, पद्य 40।

विवेक प्रमुख पात्र है।

विवेकचन्द्रोदय नाटक का विवेक धर्म का मन्त्री है। विवेक के मन मे अपने राजा धर्म के प्रति सम्मान है। विवेक धर्म की आज्ञा का पालन करता है। विवेक दुर्विनय को नही पहिचानता है। दुर्विनय विवेक का उपहास करता है। दुर्विनय को दुर्विनीत कहकर विवेक उसका अधिक्षेप करता है। दुर्विनय को मूर्ख समझकर विवेक अपने पुत्र विनय को उसे शिक्षा देने के लिये भेजता है।

विवेकमिहिर नाटक का नायक विवेक अत्यन्त प्रभावशाली है। विवेक मोहादि छः शत्रुओ का विनाशक तथा शान्त्यादि सद्गुणो का पोषक है।[1] विवेक की दृष्टि मे मोह वराक है। विवेक सज्जन है। वह विदूषक द्वारा बताये गये उन दृष्टान्तो को सुनकर मौन हो जाता है जिनमे वह विश्वामित्र की क्रोध से तथा महादेव की काम से रक्षा नही कर सका था।

विवेक आचार्य के प्रति श्रद्धावान् है। विवेक का स्वभाव कोमल है। विदूषक से अपनी निन्दा सुनकर विवेक विमनस्क हो जाता है और इसे आचार्य को भी बताता है। आचार्य विवेक को धैर्य बँधाता है।

शमदमादि विवेक का परिवार है। विवेक अपने परिवार सहित गुरु और शास्त्र द्वारा निर्दिष्ट पथ से मुमुक्षु के मनोदुर्ग मे पहुँच कर वहाँ अपने शत्रु मोहराज को सपरिवार नष्ट कर देता है। विवेक भगवद्भक्त है। वह दयालु है।

न्यायरसिक

न्यायरसिक न्यायदर्शन का मानवीकरण है। न्यायरसिक नृसिंह कवि के अनुमितिपरिणय रूपक का नायक है। उसका अनुरागपेशल हृदय परामर्श की पुत्री अनुमिति मे सलग्न हो जाता है। ऐसा होने पर क्रुद्ध हुई अपनी पत्नी साक्षात्कारिणी को मनाने का प्रयास भी न्यायरसिक करता है।

न्यायरसिक विनयशील है। वह साक्षात्कारिणी के पिता चार्वाक को अपने *विनय से सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करता है। न्यायरसिक लोकव्यवहार मे निपुण* है। पहिले तो वह चार्वाक की प्रशसा कर उसे अपने पक्ष मे करना चाहता है परन्तु चार्वाक के विपरीत रहने पर वह युक्तियो द्वारा उसे पराजित करता है। न्यायरसिक का मित्र तर्कसार है।

गुणभूषण

राजा गुणभूषण जगन्नाथ के वसुमतीपरिणय नाटक का नायक है। वह स्वप्न मे वसुमती को देखकर उस पर मोहित हो जाता है। गुणभूषणकर्त्तव्य-

1. विवेकमिहिर नाटक, प्रथमाङ्क पद्य 1–2।

परायण राजा है। वह जानता है कि प्रजा की निरन्तर रक्षा करना राजा का महान् कर्त्तव्य है।[1]

गुणभूषण नीतिमर्मज्ञ है। वह सचिव अर्थपर द्वारा प्रदत्त तथा काश्मीर-नरेश द्वारा उपहार मे भेजे गये अदभुत फलो को परीक्षा किये बिना उन्हे स्वीकार नही करता। गुणभूषण ब्राह्मणो का सम्मान करता है। वह विवेकशील है। वह सम्यक् रूप से विचार किये बिना किसी विषय म भी निर्णय नही लेता।

गुणभूषण अपने अर्थपर की धनलोलुपता तथा उत्कोचग्रहणशीलता का जानता है। अत वह अर्थपर के प्रस्ताव का परीक्षण किये बिना उससे सहमत नही होता। गुणभूषण का अपने कुलवृद्ध मन्त्री विवेकनिधि के प्रति सम्मान है। वह विवेकनिधि के परामर्श से कार्य करता है।

गुणभूषण मृगया अक्षक्रीडा तथा सुन्दरियो के लास्य-गीत का परित्याग करता है। वह सुमेरु सौध पर चढकर अपने नगर का वृत्तान्त देखता है और सर्वदर्शी नामक चाराधिकारी से उस विषय मे परामर्श करता है।

गुणभूषण की प्रकृति गम्भीर है। वह शूर तथा दानी है। उसकी क्षिप्रकारिता श्लाघनीय है। गुणभूषण के शरीर पर चक्रवर्ती होने के सभी लक्षण है। वह शिव का भक्त है। वह अपने मित्र राजाओ की युद्ध मे सहायता करता है। अपने अनुज युवराज विजयवर्मा के प्रति गुणभूषण के हृदय मे वात्सल्य है। वह अपने सेनापति विक्रमवर्मा का सम्मान करता है। वह मुनियो के आशीर्वाद को महत्त्व देता है।

गुणभूषण का ज्योतिष मे विश्वास है। सार्वभौमत्वलाभ से वह प्रसन्न होता है। वह कुशल चित्रकार है। वह अपनी चित्रशाला की दीवारो पर वसुमती के अनेक चित्र बनाता है।

गुणभूषण सदाचारी है। उसे अपनी पत्नी सुनीति से प्रेम है। वह सुनीति की अनुमति के बिना वसुमती से विवाह करना अनुचित समझता है। सुनीति के मन मे गुणभूषण के प्रति आदर और प्रेम है।

गुणभूषण की विजय से प्रसन्न महेन्द्र उसे पारितोषिक भेजता है। गुणभूषण क्षमाशील है। वह अपराधी सचिव अर्थपर को क्षमा कर देता है। वसुमती तथा चक्रवर्तिता की प्राप्ति से प्रसन्न गुणभूषण कारागृह के बन्दियो को मुक्त करा देता है।

पुरञ्जन

पुरञ्जन कृष्णदत्त मैथिल के पुरञ्जनचरित्त नाटक का नायक है। वह युवा,

---

1 वसुमतीपरिणय नाटक प्रथमाङ्क, पद्य 16

कुलीन तथा सुन्दर है। प्रारम्भ मे न तो उसके पास कोई नगर है, न पत्नी और न सेवकवर्ग। पुरञ्जनी के साथ विवाह करने से उसका प्रवरापुरी पर आधिपत्य हो जाता है।

पुरञ्जन के चरित्र के विषय मे पुरञ्जनी को शङ्का हो जाती है। पुरञ्जन को पुरञ्जनी के प्रति अनुराग है। वह अपने विषय मे पुरञ्जनी की शङ्का को दूर कर उसके साथ नगर के प्रमुख स्थानो को देखने जाता है।

पुरञ्जन वीर है। वह गन्धर्व चण्डवेग, कालकन्यका जरा तथा यवनेश्वर भय के द्वारा अपने नगर पर आक्रमण किये जाने की सूचना पाकर साहसपूर्वक कहता है कि इन शत्रुओ मे कोई सामर्थ्य नही जो मेरे नगर की छाया तक ले सकें। पुरञ्जन का आत्मविश्वास दृढ है। उसे अपने पुरपाल प्रजागर के शौर्य पर अभिमान है।

युद्ध मे पराजित होने पर पुरञ्जन दीन होकर अन्त पुर मे शरण लेता है। अज्ञान के कारण पुरञ्जन को स्त्रीत्व की प्राप्ति होती है। अपने पुराने मित्र महायोगी अविज्ञातलक्षण की शरण मे जाने से पुरञ्जन को ज्ञान तथा अथा अपने ब्रह्मरूप की प्राप्ति होती है। अविज्ञातलक्षण का पुरञ्जन के प्रति स्नेह है।

पुरञ्जन विष्णुभक्तो तथा ब्राह्मणो का रक्षक है।

स्त्री पात्र

सीता राघवानन्द नाटक की नायिका हैं। वे वनवास के समय राक्षसो से डरती हैं। उनकी मुनियो के प्रति श्रद्धा है। अगस्त्य सीता की रक्षा के लिए उन्हे एक दिव्य रत्न देते हैं। अगस्त्य उन्हें यह आशीर्वाद देते हैं कि आपके पति तथा देवर से वियुक्त होने पर पृथ्वी आपको अपने जठर मे धारण करे।

सीता से राम को प्रेम है। उनके अनुरोध से राम स्वर्णमृग को पकडने जाते है। सीता स्वर्णमृग को प्राप्त करने के लिये उत्सुक हैं। सीता को अकेला पाकर रावण उनका अपहरण करता है।

सीता को राम के प्रति प्रगाढ अनुराग है। राम के वियोग मे वे प्राणान्त करना चाहती हैं। त्रिजटा को सीता के प्रति स्नेह है। वह सीता को प्राणो का परित्याग करने से रोकती है। राम को अपने वियोग से व्याकुल देखकर सीता भय, लज्जा और अनुराग का अनुभव करती है। राम के द्वारा राक्षसों के मारे जाने का समाचार सुनकर सीता प्रसन्न होती हैं।

सीता को हनुमान् के प्रति स्नेह है। हनुमान् को अनेक राक्षसो द्वारा उपरुद्ध

देखकर सीता कातरता का अनुभव करती हैं। वे राक्षसो का वध करने पर हनुमान् की प्रशसा करती है। वे हनुमान् को अपना हार उपहार मे देती हैं।

सीता वसिष्ठ की वन्दना करती हैं और वे उन्हें दो पुत्र होने का आशीर्वाद देते हैं।

रामपाणिवाद के सीताराघव नाटक की नायिका सीता स्वभावत लज्जाशील तथा सहानुभूतिपरायण हैं। सीता के मन मे जनक के प्रति स्नेह तथा सम्मान है। वे कोमलगात्री होती हुई भी पति के साथ वन मे अपार कष्ट सहन करती हैं। सीता के मन मे अपनी जनस्थान की सखी मन्दारवती के प्रति स्नेह है।

सीता त्रिजटा का सम्मान करती हैं तथा सरमा से स्नेह। वे त्रिजटा के औदार्य की प्रशसा करती है। वे करुणाशील हैं। अपने श्वसुर दशरथ के प्रति सीता के मन मे सम्मान तथा देवर भरत और शत्रुघ्न के प्रति स्नेह है। सीता को अपने द्वारा जनस्थान मे लगाये लतावृक्षादिको से स्नेह है। वे विश्वामित्र का सम्मान करती हैं।

प्रधान वेङ्कप्प की सीताकल्याण वीथी की नायिका सीता राम के प्रति अनुरक्त है। *राम को सीता के प्रति प्रबल आकर्षण है। सीता के स्पर्शमात्र से राम* पुलकित होते हैं।

धनुभङ्ग के कारण परशुराम से सीता डरती है। परशुराम के चले जाने पर वे प्रसन्न होती है। सीता की सखी उनके साथ विनोद करती है। वह सीता से कहती है कि आप लक्ष्मी हैं, अत आपके ही प्रभाव के कारण परशुराम चले गये है। सखी के इन परिहासपूर्ण बचनो को सुनकर लज्जा का अनुभव करती हुई सीता उसे माला से ताडित करती है।

राम को पति रूप मे प्राप्त कर सीता इतनी पुलकित होती है कि उनका अपने शरीर पर नियन्त्रण नही रहता।[1] अपने प्रति गुरुजनो का आग्रह देखकर सीता आश्चर्य करती है।

रुक्मिणी

रुक्मिणी प्रधान वेङ्कप्प के रुक्मिणीमाधवाङ्क की नायिका है। वे विदर्भराज भीम की पुत्री हैं। वे इस बात से दुःखी है कि मेरा भाई रुक्मी मेरा विवाह शिशुपाल से कराना चाहता है।[2] वे बुद्धिमती हैं और शिशुपाल से बचने का उपाय ढूँढ

1. सीताकल्याण वीथी।
2 रुक्मिणी माधवाङ्क, पद्य 11

निकालती हैं। वे एक वृद्ध ब्राह्मण के द्वारा श्रीकृष्ण के पास पत्र भेजकर उनसे विनय करती हैं कि आप शिशुपाल के पहुँचने के पूर्व ही विदर्भनगर आकर मुझे ले जायें।

रुक्मिणी के हृदय मे विश्वास है कि श्रीकृष्ण के प्रति अनुरक्त होने के कारण कोई भी मेरा अपहरण करने मे समर्थ नही है। रुक्मिणी इस बात से व्यथित हैं कि शिशुपाल मेरे साथ विवाह करने के लिये आ रहा है।[1]

रुक्मिणी कात्यायनी देवी की भक्त है। वे देवी से अपने अनुकूल होने की प्रार्थना करती हैं। निराश रुक्मिणी अपनी सखी से कहती है कि मेरे पूर्व जन्म के पापों को देवी किस प्रकार नष्ट कर सकती हैं। रुक्मिणी की सखी को रुक्मिणी से स्नेह है। वह रुक्मिणी को यह कहकर आश्वस्त करती है कि आप जैसी सुन्दरियां मन्दभागिनी नही होती। नैराश्य के कारण रुक्मिणी अपने सुन्दर रूप को भी मिथ्या बताती हैं। उनका विचार है कि मेरे सौकुमार्यादिगुण तभी सफल होंगे जब मुझे श्रीकृष्ण की पति रूप मे प्राप्ति हो।

श्रीकृष्ण के विचार से रुक्मिणी कामदेव की जगज्जेत्री शक्ति है।[2] दारुक रुक्मिणी के सौन्दर्य और अनुराग की प्रशसा करता है।[3] रुक्मिणी इस समय श्रीकृष्ण का आगमन असभव समझकर अपने स्त्रीत्व की निन्दा करती हुई कहती हैं—

"हा ! हतास्मि, अस्वतन्त्रप्रतिपादकेन स्त्रीत्वेन"

निराश रुक्मिणी मूच्छित हो जाती हैं। श्रीकृष्ण के स्पर्श मात्र से रुक्मिणी की मूर्च्छा दूर हो जाती है। रुक्मिणी यह समझकर कि शिशुपाल मेरा अपहरण कर मुझे यहाँ ले आया है, मरने का निश्चय करती हैं। रुक्मिणी को दारुक से यह जानकर कि श्रीकृष्ण उन्हें यहाँ ले आये हैं आश्चर्य और आनन्द होता है।

श्रीकृष्ण से युद्ध करने के लिये शिशुपाल के आगमन की घोषणा सुनकर रुक्मिणी दीनता से देखने लगती हैं। वे शिशुपाल को श्रीकृष्ण से अधिक बलवान् समझकर अहित की आशङ्का से पुन अपनी सखी के साथ प्राणो का परित्याग करने का निश्चय करती हैं। शिशुपाल के रणक्षेत्र से भागने पर रुक्मिणी प्रसन्न होती हैं।

रुक्मिणी को अपनी सखी से और सखी को रुक्मिणी से इतना स्नेह है कि

---

1. रुक्मिणी माधवाङ्क, पद्य 7।
2. रुक्मिणीमाधवाङ्क, पद्य 27
3. वही , पद्य 28

वे एक दूसरे के बिना जीवित नही रह सकती। अतः अनिष्ट की आशङ्का से वे दोनो परस्पर वेणी बाँध कर मरने का निश्चय करती हैं।

कृतज्ञ रुक्मिणी अपने पत्रवाहक ब्राह्मण को अपना मुक्ताहार पारितोषिक के रूप मे देती हैं।

रामवर्मवञ्चियुवराज के रुक्मिणीपरिणय नाटक की नायिका रुक्मिणी को अपनी सखियो नवमालिका तथा कनङ्कसेना से स्नेह है। नवमालिका और उद्धव के प्रयत्न से रुक्मिणी का श्रीकृष्ण के साथ विवाह हो जाता है।

रुक्मिणी मे स्त्रीजनोचित लज्जा है। अपने विप्रियकारी रुक्मि के प्रति भी रुक्मिणी के मन मे दया है। वे श्रीकृष्ण को रुक्मी का वध करने से रोकती है। वे सहृदया है। उनके हृदय मे वृक्षो तथा पशुपक्षियो के प्रति उत्कट अनुराग है। रुक्मिणी मे सपत्नियो के प्रति ईर्ष्या है। वे अपने पति की आज्ञा का पालन करती है।

राधा

वृषभानुपुरी के राजा वृषभानु की पुत्री राधा जगन्नाथ के गोविन्दवल्लभ नाटक तथा अनादि कवि के रासक्रगोष्ठि रूपक की नायिका है।

गोविन्दवल्लभ नाटक मे राधा श्रीकृष्ण के प्रति अनुरक्त है। वे श्रीकृष्ण के अपने घर आने पर उन्हे वीटिका अर्पित करती है। श्रीकृष्ण को राधा के प्रति अनुराग है। श्रीकृष्ण के धूर्तचरितो को सुनकर भी राधा का मन उनसे विचलित नही होता।

राधा लज्जाशील है। श्रीकृष्ण के प्रति आसक्त होती हुई भी वे उनके पास से भागती है।

रासक्रगोष्ठिरूपक मे राधा श्रीकृष्ण के विरह मे सन्तप्त है। अपनी सखी ललिता के प्रति राधा के हृदय मे स्नेह है। राधा कात्यायनी की उपासिका है और अपने प्रति श्रीकृष्ण के अनुराग को उनकी कृपा मानती हैं।

सुवल के मत मे राधा श्रीकृष्ण के द्वारा रसवती कविता के समान विचारणीय है।'[1] श्रीकृष्ण की दृष्टि मे राधा कामदेव की माया के समान है।"[2] श्रीकृष्ण की गुणवती वाणी को सुनकर राधा का धैर्य नष्ट हो जाता है। श्रीकृष्ण के स्पर्शमात्र से राधा की श्रान्ति दूर हो जाती है। श्रीकृष्ण राधा को अपने लिए उपहार मानते है। राधा श्रीकृष्ण के साथ रासक्रीडा करती है।

---

1. रासक्रगोष्ठि रूपक, पद्य 15
2. वही , पद्य 16

सत्यभामा

सत्यभामा वेङ्कटाचार्य तृतीय के शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक की नायिका है। श्रीकृष्ण के पारिजात पुष्प को रुक्मिणी को देने पर सत्यभामा उनसे रुष्ट होकर कोपागार मे चली जाती हैं। श्रीकृष्ण के प्रति सत्यभामा के हृदय मे प्रगाढ ग्रनुराग है। सत्यभामा मे स्त्रीसुलभ सपत्नीर्ष्या है। वे श्रीकृष्ण के प्रति ग्रनेक व्यग्यपूर्ण बातें कहती है।

ग्रपनी वक्रोक्तियों से श्रीकृष्ण को व्याकुल देखकर भी सत्यभामा ग्रपनी मनोरथ पूर्ति के लिये पुरुष बनी रहती हैं। वे श्रीकृष्ण से कहती हैं—

ग्रयुक्तमपि चान्यासा तव कर्णामृतायते।
युक्त मयोक्त विषवज्जायते किं करोम्यहम्॥[1]

श्रीकृष्ण प्रतिज्ञा करते हैं कि मैं इन्द्रपुरी को जीतकर वहां से पारिजात वृक्ष लाकर कल सत्यभामा के केल्युपवन मे ग्रारोपित कर दूंगा। इससे सत्यभामा प्रसन्न होती है। वे श्रीकृष्ण से कहती है कि मैं पारिजातपुष्पो की शय्या बनाकर ग्रापका मनोविनोद करना चाहती हूँ।

सत्यभामा नारद की कलहप्रिय प्रवृत्ति को जानती हुई भी उनका सम्मान करती हैं। वे हास्योक्तियो मे प्रवीण हैं। श्रीकृष्ण के प्रति सत्यभामा का ग्रनन्य ग्रनुराग है। सत्यभामा को ग्रपनी सखियो से स्नेह है। पारिजातवृक्ष के नीचे रत्नपर्यङ्किका पर श्रीकृष्ण के साथ बैठकर सत्यभामा सुख का ग्रनुभव करती है।

रति

रति जगन्नाथ के रतिमन्मथ नाटक की नायिका है। वह मन्मथ के प्रति ग्रासक्त है। रति का ग्रपने माता-पिता के प्रति सम्मान है। रति के माता-पिता उससे स्नेह करते हैं। माता-पिता की ग्राज्ञा से रति ग्रनुरूप पति प्राप्त करने के लिये परा देवता की ग्राराधना करती है। मन्मथ को देखकर रति समझती है कि मुझे परदेवताराधन का फल मिल गया।

रति चित्रकला मे निपुण है। वह मन्मथ का चित्र बनाकर ग्रपना मनोविनोद करती है। रति सहृदय है। वह ग्रपनी विरहव्यथा से मन्मथ के सन्ताप का ग्रनुमान लगा लेती है। रति पर योगिनी सर्वार्थसाधिका की कृपा है। रति को मन्मथ से इतना प्रेम है कि वह उसे मूर्च्छित देखकर मूर्च्छित हो जाती है ग्रौर ग्राश्वस्त देखकर ग्राश्वस्त होती है।

---

3 शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक, द्वितीयाङ्क पद्य 61

मन्मथ को रति के प्रति अनुराग है। जिस चित्रफलक पर रति मन्मथ का चित्र बनाती है, उसी पर मन्मथ रति का चित्र बना देता है। रति उस चित्रफलक को हृदय से लगाकर अपने आपको आश्वस्त करती है।

रति शम्बर के साथ विवाह करना स्वीकार नही करती। वह सर्वार्थसाधिका की आज्ञा का पालन करती है।

प्रभावती

वज्रनाभ की पुत्री प्रभावती हरिहरोपाध्याय के प्रभावतीपरिणय तथा शङ्कर-दीक्षित के प्रद्युम्नविजय नाटको की नायिका है।

प्रभावती प्रद्युम्न के प्रति अनुरक्त है। वह कुछ समय तक अपने इस अनुराग को गूढ रखती है। हसी शुचिमुखी प्रभावती की हृदयङ्गमा सखी है। प्रभावती शुचिमुखी के नीतिनिपुणत्व की प्रशसा करती है। प्रभावती की अन्य प्रियसखी तरलिका है। प्रभावती का दैव मे विश्वास है।

शुचिमुखी द्वारा चित्रफलक पर आलिखित प्रद्युम्न को देखकर प्रभावती अपना मनोविनोद करती है प्रभावती लज्जाशील है। वह प्रद्युम्न के साथ विहार करने मे सकोच का अनुभव करती है।

दुर्वासा ऋषि से प्रभावती को वह विद्या प्राप्त हुई है जिससे कामदेव प्रसन्न होकर अभीष्ट व्यक्ति के साथ सयोग करा देते हैं। प्रभावती का अपनी बहिनों चन्द्रवती तथा गुणवती के प्रति स्नेह है।

प्रभावती स्वप्न मे प्रद्युम्न को अपने पिता के घातक देखकर विषण्ण हो जाती है। *वह प्रद्युम्न से कुपित होकर मान धारण करती है। वह देवो, द्विजो, तथा* गुरुजनो की पूजा द्वारा अपने दुस्वप्न का उपशम करना चाहती है। जब प्रद्युम्न प्रभावती को यह वचन देते है कि मैं आपकी अनुमति के विना आपके पिता का वध नही करूँगा, तब प्रभावती अपना मान त्यागती है।

प्रभावती को अपने पिता वज्रनाभ से स्नेह है। वह उसकी मृत्यु पर रोती है।

उषा

बाणासुर की पुत्री उषा चयनी चन्द्रशेखर रायगुरु के मधुरानिरुद्ध तथा कवि चन्द्र द्विज के कामकुमारहरण नाटको की नायिका है।

मधुरानिरुद्ध नाटक मे उषा पर पार्वती का महान् अनुग्रह है। उषा को अपनी सखी चित्रलेखा के प्रति स्नेह है। वह चित्रलेखा के साथ हास-परिहास करती है। अपने भावी पति का चिन्तन करती हुई उषा के निराश होने पर चित्रलेखा उसे धैर्य बँधाती है।

उषा स्वप्न मे अनिरुद्ध के साथ रमण करती है। जागने पर अनिरुद्ध को न देखकर वह चिन्तित हो जाती है। चित्रलेखा के द्वारा चित्रफलक पर अभिलिखित भुवनत्रय के पुरुषो म अनिरुद्ध को पहिचान कर उषा के मन मे सात्विक भाव उदित होते हैं।

नारद को उषा के प्रति स्नेह है। वे उषा को आश्वस्त करते हैं। कुलकन्याओ के विपरीत आचरण करने म उषा को ग्लानि होती है। उषा अपनी माता की आज्ञा का पालन करती है। वह अपने क्रुद्ध पिता बाणासुर से अनिरुद्ध करती है।

कामकुमारहरण नाटक म उषा पार्वती के इस वर को भूल जाती है कि वैशाख शुक्ला द्वादशी की रात्रि मे वह जिस पुरुष के साथ स्वप्न मे रमण करेगी वही उसका पति होगा। तब एक श्यामवर्ण पुरुष पार्वती द्वारा निर्दिष्ट रात्रि मे उषा के साथ रमण करता है तब वह लज्जा और भय से व्याकुल हो जाती है। वह जाग कर उस पुरुष को वहां न देखकर विलाप करती हुई मूच्छित हो जाती है। सखियो के आश्वस्त करने पर भी उषा आश्वस्त नही होती। चित्रलेखा के पार्वती के वर का स्मरण दिलाने पर उषा प्रसन्न हो जाती हैं।

चित्रलेखा उषा की प्रियसखी है। उसके द्वारा बनाये गये चित्रो मे से उषा अनिरुद्ध को पहचान जाती है। उषा चित्रलेखा को द्वारका भेजकर अनिरुद्ध को बुलवाती है। उषा चित्रलेखा के साथ परिहास करती है। उषा लज्जाशील है। अनिरुद्ध के उसके पास पहुँचने पर वह वस्त्राञ्चल से अपना शिर ढक लेती है।

उषा अनिरुद्ध की बुराई नही सुन सकती। वह अनिरुद्ध को बुराई करने वाली कुब्जा के नाक-कान काटने के लिए उद्यत हो जाती है। अनिरुद्ध द्वारा भाइयो का वध किये जाने पर भी उषा उससे कुपित नही होती। उषा को अनिरुद्ध से प्रगाढ़ प्रेम है।

उर्वशी

उर्वशी प्रधान वेङ्कप्प के उर्वशीसार्वभौमेहामृग की नायिका है। महेन्द्र और पुरूरवा उर्वशी के प्रति आसक्त हैं। उर्वशी को केवल पुरूरवा के प्रति आसक्ति है। वह महेन्द्र की ओर देखती भी नही है।

उर्वशी यह चाहती है कि वह महेन्द्र तथा पुरूरवा के बीच कलह का निमित न बने। उसे विश्वास है कि मेरे पिता नारायण के भय से महेन्द्र मेरा अपहरण नहीं करेगा। वह अन्तर्धानविद्या जानती है।

उर्वशी पुरूरवा को प्रधान रूप से दो कारणो से अनुराग करती है। इनमे से पहिला कारण यह है कि पुरूरवा महेन्द्र की अपेक्षा अधिक सुन्दर है और दूसरा कारण यह है कि पुरूरवा ने अपने पराक्रम से असुरो को पराजित कर देवो को पुनः स्वर्ग में प्रतिष्ठापित किया है।

पुरूरवा का वेष बनाये हुए महेन्द्र को उर्वशी वास्तविक पुरूरवा समझकर उसका अतिथि-सत्कार करना चाहती है । संयोगवश उसी समय वास्तविक पुरूरवा भी उर्वशी के पास पहुँचता है। इस प्रकार उर्वशी अपने सामने दो पुरूरवाओ को देखकर किंकर्त्तव्यविमूढ हो जाती है। उसे चिन्ता और भय होते हैं । नारायण द्वारा भेजे गये तापस से ही उसे वास्तविकता का ज्ञान होता है ।

उर्वशी को इस बात से दुःख है कि मेरे लिये महेन्द्र तथा पुरूरवा मे युद्ध हो रहा है। उर्वशी चित्ररथ के प्रति कृतज्ञ है । उसे अपनी सखी के साथ स्नेह है। वह अपने पिता नारायण की दयालुता को प्रशसा करती है। वह नारद के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती है ।

मदालसा

गन्धर्वचक्रवर्ती विश्वावसु की पुत्री मदालसा कृष्णदत्त मैथिल के कुवलयाश्वीय नाटक की नायिका है। कुण्डला मदालसा की प्रियसखी है। मदालसा कुण्डला के वचन मे विश्वास करती है ।

पातालकेतु के धमकी देने पर मदालसा आत्मघात करना चाहती है। वह अपना अपहरण करने वाले पातालकेतु के साथ विवाह करना स्वीकार नही करती। मदालसा भगवती की भक्त है। वह भगवती के वचन मे विश्वास कर अपने आपको जीवित रखती है। कुण्डला को मदालसा से सहानुभूति है और वह उसके दुःख को दूर करने का उपाय सोचती है ।

मदालसा कुवलयाश्व के प्रति आसक्त है। वह अतिथिपरायणा है। पातालकेतु से डरी हुई मदालसा को कुवलयाश्व धैर्य बँधाता है। कुवलयाश्व द्वारा पातालकेतु का सहार किये जाने पर मदालसा प्रसन्न होती है ।

मदालसा का कुवलयाश्व के प्रति प्रगाढ प्रेम है। वह विश्वनाथ शिव की पूजा कर उनसे यह वर मांगती है कि जन्मान्तर मे भी कुवलयाश्व उसके पति बने। मदालसा की चित्रकला मे अभिरुचि है।

कलावती

दिल्ली के राजा इन्द्रसखा की पुत्री कलावती रामचन्द्रशेखर के कलानन्दक नाटक की नायिका है। कलावती राजा नन्दक के प्रति अनुरक्त है। कलावती की विश्वासपात्र सखी चन्द्रिका है ।

कलावती नन्दक के पास अपना चित्र भेजती है। वह नन्दक के पास यह सन्देश भेजती है कि आप प्रच्छन्नवेष मे मुझसे मिलें ।

गौरीपूजा के व्याज से कलावती नन्दक से मिलने जाती है। कलावती मुग्धा नायिका है। वह वास्तविक नन्दक को उसका चित्र समझती है। वह कामदेव की पूजा के रूप मे नन्दक की ही पूजा करती है।

कलावती का अपनी सखियो के प्रति अनुराग है। उसे अपनी माता के प्रति सम्मान और स्नेह है। नन्दक से वियोग होने पर कलावती सन्तप्त होती है। वह नन्दक से मिलकर हर्षित होती है। वह अपने प्रमाद द्वारा किये गये प्रणय-कलह पर दु ख प्रकट करती है और नन्दक से क्षमा माँगती है।

प्रतीकात्मक स्त्रीपात्र

जीवन्मुक्ति

जीवन्मुक्ति नल्लाध्वरी के जीवन्मुक्तिकल्याण नाटक की नायिका है। वह अयोनिजा तथा नित्यसिद्धा है।

जीवन्मुक्ति ब्रह्मपुर में हृत्पुण्डरीक नामक रजोगुणशून्य, स्वस्त्ययन तथा विशुद्ध गृह के अन्तर्गत 'दहर' नामक अङ्गण मे रहती है। बुद्धि, साधनसम्पत्ति तथा ब्रह्मजिज्ञासा से युक्त होने पर ही जीवन्मुक्ति को देख सकती है।

जीवन्मुक्ति की प्रियसखी भवितव्यता है। जीवन्मुक्ति को स्वप्न मे देखकर जीव मोहित हो जाता है। जीवन्मुक्ति दुर्दर्शना तथा अन्तर्हिता है। वह आम्नाय-पर्वत के अन्त में निवास करती है। उसे प्राप्त करने के लिये जीव सन्यासाश्रम मे जाता है। अन्विष्ट किये जाने पर भी वह त्रिभुवन मे प्राप्त नही होती। तप और ब्रह्मचर्य के द्वारा उसकी प्राप्ति होती है। वह परमानन्दमयी है।

जीवन्मुक्ति चिदानन्दस्वरूपा है। जीव की पत्नी बुद्धि का जीवन्मुक्ति के प्रति ईर्ष्याभाव है। साधनसम्पत्ति के समझाने पर बुद्धि ईर्ष्या त्याग कर जीवन्मुक्ति की सखी बन जाती है। बुद्धि से मिलकर जीवन्मुक्ति प्रसन्न होती है। जीवन्मुक्ति लज्जाशील है। जीवन्मुक्ति से स्पर्शमात्र से जीव को दुर्निरूप, दुरवाप निर्वाण उन्मिषित होता है, उसकी इन्द्रियाँ प्रसन्न होती हैं, चैतन्य उल्लसित होता है तथा कामरोग शान्त होता है।

विद्या

विद्या आनन्दरायमखी के विद्यापरिणय नाटक की नायिका है। वह वेदारण्य मे निवास करती है और शमदमादि तापसो की स्वामिनी है। वह मनन तथा निदिध्यासन से उद्भूत होती है। वह उपनिषद्वश की सर्वश्रेष्ठ नारी है। उसे

प्राप्त करने पर अशना, पिपासा, व्याधि, जरा, मृत्यु, क्लेश तथा भय नहीं होते। विद्या से परमानन्द तथा सत्य की प्राप्ति होती है।

विद्या को प्राप्त किये बिना जीव दुःखी रहता है। योगीजन विद्या के द्वारा सत्यार्थ का दर्शन करते हैं। विद्या निमेषरहित दिव्य दृष्टि है। विद्या की दृष्टि से देखते हुए लोगों के समस्त संशय, भ्रम, विपर्यास तथा कर्म विच्छिन्न हो जाते हैं। विद्या के द्वारा जीव को प्रकाश तथा अमृत की प्राप्ति होती है।

विद्या के चित्र को देखकर जीव उसे प्राप्त करने के लिये उत्सुक हो जाता है। निवृत्ति से जीव के सद्गुणों को सुनकर विद्या जीव के साथ विवाह करने के लिये उत्कण्ठित है।

विद्या को प्राप्त करने के लिये जीव वेदारण्य में प्रवेश करता है। तप, धर्म, मेधा, तथा बहुश्रुतता के द्वारा भी अलभ्य विद्या को जीव शिव की कृपा से प्राप्त करता है।

विद्या के प्रसाद से जीव सुप्तप्रबुद्ध के समान अपने आपको आत्मा समझता है। विद्या का प्रभाव वाणी के परे है। कोटि जन्मों में अविद्या के द्वारा सञ्चित किये गये कर्मों को विद्या भस्म कर देती है।

वसुमती

राजा पृथु की पुत्री वसुमती जगन्नाथ कवि के वसुमतीपरिणय नाटक की नायिका है। पृथु की मृत्यु हो जाने से वसुमती अपनी बड़ी बहिन तथा राजा गुणभूषण की पत्नी सुनीति के साथ अन्तःपुर में रहती है।

वसुमती में सार्वभौमगृहिणी के लक्षण हैं। वह गुणभूषण को देखकर उसके प्रति अनुरक्त हो जाती है। वसुमती सुशील है। उसे इस बात पर आश्चर्य है कि उसके मन में कुलकन्यकाओं के शील के विपरीत यह अनुराग गुणभूषण के प्रति कैसे उत्पन्न हुआ?

वसुमती का सुनीति के प्रति सम्मान और स्नेह है। गुणभूषण के प्रति अपना प्रेम निवेदित करने में वसुमती को सङ्कोच होता है। वसुमती की दोनों सखियाँ शुकवाणी तथा पिकवाणी उसकी विश्वासपात्र हैं। वसुमती सखियों के साथ हासपरिहास करती है।

वसुमती गौरीपूजन के प्रति आस्था रखती है। गुणभूषण वसुमती के आभिजात्य तथा गुणों का प्रशंसक है। वसुमती को इस बात का दुःख है कि वह सुनीति के कारण गुणभूषण के प्रति अपना अनुराग भी निवेदित नहीं कर सकती।

गुणभूषण के विरह से वसुमती सन्तप्त होती है। वसुमती सहृदया है। वह अपनी वेदना से गुणभूषण की वेदना का अनुमान लगाकर पर्याकुल हो जाती है। व्यामोह के कारण वसुमती अनुपस्थित गुणभूषण को भी अपने समक्ष उपस्थित देखती है।

वसुमती चित्रकला मे कुशल है। वह फलक पर गुणभूषण का चित्र बनाकर अपना मनोविनोद करती है। गुणभूषण उसी चित्रफलक पर अपनी अनुरागसूचिका गीति लिखकर वसुमती को लौटा देता है।

वसुमती कृतज्ञ है। वह कात्यायनी के वात्सल्यपूर्ण आचरण के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती है वह गुणभूषण के प्रति अपने अनुराग को सुनीति से छिपाने का प्रयत्न करती है। उसके मन मे सुनीति से भय है।

अनुमिति

अक्षसुता अनुमिति नृसिंह कवि के अनुमितिपरिणय नाटक की नायिका है। अनुमिति राजा न्यायरसिक के प्रति अनुरागिणी है। अपनी पत्नी साक्षात्कारिणी के होते हुए भी न्यायरसिक अनुमिति के प्रति अनुरक्त हो जाते हैं। साक्षात्कारिणी के मन मे अनुमिति के प्रति ईर्ष्या है।

पुरञ्जनी

पुरञ्जनी कृष्णदत्त मैथिल के पुरञ्जनचरित नाटक की नायिका है। वह निश्चय करती है कि जो पुरुष मुझमे अनुराग उत्पन्न कर सकेगा तथा क्रीडामृग की भाँति सदैव मेरे अधीन रहेगा, उसी के लिये मैं अपने आपको तथा अपनी नगरी प्रवरापुरी को समर्पित करूँगी।

पुरञ्जनी लज्जाशील है। वह ऐसे पुरुष के सम्मुख नही आती जिनका उसे कुल, शील तथा नाम ज्ञात न हो। वह अतिथिपरायणा है। वह नायक पुरञ्जन का प्रत्युद्गमन करने के लिये स्वय सखियो के साथ नगरसीमा तक जाती है। प्रवरापुरी के समस्त नागरिक नगरस्वामिनी पुरञ्जनी का सम्मान करते हैं।

अज्ञान के कारण पुरञ्जनी प्रवरापुरी क निर्माता तथा अपने पिता को भी नहीं जानती। विवाह के पश्चात् वह प्रवरापुरी तथा उसके नागरिकों को पुरञ्जन के अधीन कर देती है। पति के विषय मे सन्देह होने पर कि वह किसी अन्य नायिका मे अनुरक्त है वह प्राणत्याग करने के लिये उद्यत हो जाती है।

आपत्ति के समय पुरञ्जनी अपना धैर्य खो बैठती है। गन्धर्व चण्डवेग तथा कालकन्यका द्वारा अपने नगर पर आक्रमण के श्रवणमात्र से पुरञ्जनी डर जाती है।

उसके हृदय मे कालकन्यका से विशेष भय है। युद्ध मे कालकन्यका द्वारा किये गये पुरञ्जन के उपभोग तथा दौर्बल्य को देखकर पुरञ्जनी उसे अकेला ही छोडकर वहाँ से चली जाती है।

ऐतिहासिक पुरुष पात्र

शाहजी

शाहजी तञ्जौर के राजा थे। वे चोक्कनाथ के कान्तिमतीपरिणय नाटक के नायक हैं। शाहजी मे गाम्भीर्यादि अनेक सद्गुण है। वे वीर योद्धा हैं। वे अपने मित्र राजाओ की सहायता करते हैं। अपने मित्र भागानगर के राजा चित्रवर्मा का राज्य किसी यवन द्वारा छीन लिये जाने पर शाहजी यवन को पराजित कर चित्रवर्मा को अपने राज्य पर पुन प्रतिष्ठित करते है।

शाहजी को मृगया से प्रेम है। चित्रवर्मा की पुत्री कान्तिमती शाहजी के प्रति आसक्त है। शाहजी का ज्योतिषशास्त्र मे विश्वास है। वे ज्योतिषी से मुहूर्त पूछकर चित्रवर्मा से मिलने के लिये तञ्जोर से कुम्भकोणम् जाते हैं।

शाहजी का प्रिय तथा विश्वासपात्र मित्र विदूषक कविराक्षस है। कुम्भकोणम् मे शिव के रथोत्सवदर्शन के लिये प्रासादाग्र पर आरूढ शाहजी अपने समक्ष अन्य प्रासाद पर सुन्दरी कान्तिमती को देखकर उसके प्रति आसक्त हो जाते है।

शाहजी शिव के भक्त हैं। रथ मे विराजमान शिव को श्रद्धा से प्रणाम कर वे उनसे समस्त पापो को नष्ट करने तथा कल्याण करने की प्रार्थना करते हैं।

शाहजी की ज्येष्ठा पत्नी (देवी) उनके कान्तिमती के प्रति अनुराग को सहन नही करती। अतः वे कान्तिमती के प्रति अपने प्रेम को देवी से छिपाते हैं। वे कान्तिमती के विरह मे सन्तप्त होते हैं।

चित्रवर्मा के प्रति शाहजी का अभिन्न मैत्रीभाव है। इसी कारण उन्हे चित्रवर्मा के उपहारो को स्वीकार करने म सकोच होता है। चित्रवर्मा शाहजी को एक देवता मानता है, जिन्होने भूतल पर अवतीर्ण होकर आपत्ति मे उसकी रक्षा की।

शाहजी स्वभावतः विनम्र हैं। वे अपनी अत्यधिक प्रशसा सुनना नही चाहते। चित्रवर्मा शाहजी को एक अद्भुत रत्न उपहार मे देता है। स्वभावत धैर्यशाली होते हुए भी शाहजी कान्तिमती के वियोग मे अधीर हो जाते हैं।

शाहजी का अपने मित्र वर्धन के प्रति स्नेह है। वे अद्भुत रत्न के प्रयोग कान्तिमती की लज्जा की रक्षा करते हैं। शाहजी को अपनी ज्येष्ठा पत्नी (देवी) के प्रति प्रगाढ़ प्रेम है। वे देवी की अनुमति के बिना कान्तिमती के साथ विवाह करना अनुचित समझते हैं। शाहजी कमलाम्बिका की स्तुति कर उनसे अपने कल्याण के लिये प्रार्थना करते हैं।

वसवभूपाल

वसवभूपाल मैसूर प्रदेश मे केलडि के राजा थे। वे चोक्कनाथ के सेवन्तिकापरिणय नाटक के नायक हैं। वे स्वभावत करुणाशील हैं। वे मित्रवर्मा के परिवार के साथ सहानुभूति का व्यवहार करते हैं। वे मूकाम्बिकानगर मे अपने भवन के समक्ष एक नवीन भवन बनवा कर उसमे मित्रवर्मा का परिवार रख देते हैं।

वसवभूपाल अश्वारोहण मे प्रवीण हैं। वे मूकाम्बिका देवी के भक्त हैं। वे मित्रवर्मा की पुत्री सेवन्तिका के प्रति अनुरक्त हैं। वे धर्मात्मा हैं। सेवन्तिका को अपने यहाँ न्यास मे रखी हुई समझकर वे उसके साथ भोग करना अनुचिन समझते हैं। ज्येष्ठा पत्नी के भय से राजा वसव अपने सेवन्तिकाविषयक प्रणय को उससे गुप्त रखते हैं।

राजा वसव पराक्रमी हैं। वे अपने पराक्रम से सेवन्तिका को निषादो से मुक्त करते हैं। उन्हे सङ्गीत से प्रेम है। सेवन्तिका के वीणा पर गाये गये गीत को सुनकर वे प्रसन्न होते हैं।

राजा वसव का प्रियमित्र विदूषक कौपीतक है। उन्हे ज्योतिषशास्त्र मे मे विश्वास है। वे प्रत्युत्पन्नमति हैं। वे सेवन्तिका को अद्भुत मूलिका देकर उसकी लज्जा की रक्षा करते हैं।

सेवन्तिका के प्रति राजा वसव को इतना अधिक अनुराग है कि उससे वियोग होने का विचारमात्र उन्हे खिन्न कर देता है। देवी के द्वारा सेवन्तिका तथा सारङ्गिका के कारागृह मे डाल दिये जाने पर राजा वसव दु खी होते हैं।

देवनारायण

देवनारायण केरल प्रदेश मे अम्पलप्पुल के राजा थे। वे श्रीधर के लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक के नायक हैं। वे द्विजराज की पुत्री लक्ष्मी के प्रति अनुरक्त हैं।

देवनारायण वासुदेव के भक्त हैं। वे प्रकृतिप्रेमी हैं। विदूषक प्रियवद उनका मित्र है। देवनारायण के चित्र को देखकर लक्ष्मी उनके प्रति आसक्त हो जाती है।

देवनारायण को स्वजनो के प्रति स्नेह है। वे पराक्रमी है। वे तपस्वियो के रक्षक हैं। वे तपस्या मे विघ्न डालने वाले राक्षस भद्रायुध को अपने पराक्रम से भगा देते हैं।

देवनारायण को लक्ष्मी के प्रति सहानुभूति है। वे लक्ष्मी की विरह-व्यथा दूर करने के लिये उसके पास अपना हार भेजते हैं और स्वय भी जाते हैं।

पराक्रमी देवनारायण लक्ष्मी का अपहरण करने वाले राक्षस भद्रायुध का सपरिवार वध करते है। लक्ष्मी को न देखकर देवनारायण उन्मत्त के समान वनवृक्षो तथा पशुपक्षियो से उसके विषय मे पूछते हैं। वे वारिभद्रा नदी म गिरकर अपने प्राणो का त्याग करना चाहते है।

देवनारायण का पुनर्जन्म मे विश्वास है। उनका यह विश्वास है कि अशुभहारिणी वारिभद्रा नदी मे प्राणपरित्याग करने से उसका अगले जन्म मे लक्ष्मी के साथ समागम होगा। देवनारायण की भक्ति से प्रसन्न वासुदेव स्वय प्रकट होकर उन्हे आत्मघात करने से विरत कर लक्ष्मी की कुशलता का समाचार बताते है। देवनारायण प्रसन्न होकर वासुदेव के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते है।

गुरुजनो के प्रति देवनारायण के मन मे सम्मान है। वे दिनराज का सम्मान करते हैं। वे शिष्टाचार का सदैव ध्यान रखते है।

बालमार्तण्डवर्मा

बालमार्तण्डवर्मा केरल प्रदेश मे त्रावणकोर के राजा थे। वे देवराज कवि के बालमार्तण्ड विजय नाटक के नायक हैं।

बालमार्तण्डवर्मा धीरोदात्त हैं। वे कुलीन, विद्वानो का सम्मान करने वाले तथा उदारसत्त्व हैं। वे पद्मनाभ के अनन्य भक्त, धार्मिक नियमो तथा व्रतो के पालक तथा प्रजा के अनुरञ्जक हैं।

पद्मनाभ के भक्त बालमार्तण्डवर्मा स्यानन्दूरपुर (त्रिवेन्द्रम्) मे स्थित पद्मनाभ के जीर्णमन्दिर का अभिनवीकरण कराते है। वे पद्मनाभ का राजसूय-विधि से अभिषेक कराते हैं। बालमार्तण्डवर्मा की ब्राह्मणो के प्रति आस्था है। व ब्राह्मणो को धनधेन्वादिक दान करते हैं।

बालमार्तण्डवर्मा के हृदय मे अपने अमात्यो के प्रति प्रेम है। वे अमात्यो का विश्वास करते हैं। वे शूर, तेजस्वी तथा शरणागतवत्सल हैं। वे इतने करुणा-शील हैं कि शत्रुओ का भी सहार करने मे वे सकोच का अनुभव करते है।

बालमार्तण्डवर्मा शास्त्रचक्षु हैं। वे अपने सेनापतियो तथा सेना का सम्मान करते हैं। उनके हृदय म अपने भागिनेय युवराज रामवर्मा के प्रति स्नेह है। वे तीर्थयात्रा करते हैं।

बालमार्तण्डवर्मा की सभी देवो के प्रति आस्था है । वे पद्मनाभ के भक्त होते हुए भी शिव तथा सुब्रह्मण्य की अर्चना करते हैं। बालमार्तण्डववर्मा की प्रजा को उनके प्रति अनुराग है । वे शिल्प तथा साहित्य के पोषक हैं ।

बालमार्तण्डवर्मा स्वभावत गम्भीर हैं । वे सन्ध्यावन्दनादि क्रियाओ के प्रति आस्थावान् हैं । वे राजतन्त्र म कुशल हैं । वे अपना समस्त राज्य पद्मनाभ के लिए अर्पित कर उनके युवराज के रूप मे शासन करते हैं। शिल्पाचार्य के मत मे बालमार्तण्डवर्मा एक सिद्ध हैं ।

बालमार्तण्डवर्मा पद्मनाभ से केवल भक्ति की याचना करत हैं । वे ब्राह्मणो को स्वादिष्ट भाजन कराते है । ब्राह्मणो की दृष्टि मे वे भरद्वाज मुनि से भी श्रेष्ठ हैं । वे ब्राह्मणो की कृपा को श्रेयस्करी मानते हैं।

बालमार्तण्डवर्मा के हृदय मे अपने कर्मचारियो के प्रति स्नेह है और वे सदैव उनके हित का ध्यान रखते हैं । बालमार्तण्डवर्मा के परिजन उनका सम्मान करते है और उनके औदार्य की प्रशसा करते है ।

बालमार्तण्डवर्मा पीताम्बर तथा भूषणादि देकर अपने आश्रित राजाओ का सम्मान करते हैं । वे आचार्यों का सम्मान करते हैं और उन्हे अनेक उपहार देते हैं । वे पद्मनाभ के चरणो को अपने शिर पर धारण करते हैं । वे देवराज कवि का सम्मान करते हैं और उनके कवित्व से प्रसन्न होकर उन्हे अनेक बहुमूल्य उपहार और "अभिनवकालिदास" की उपाधि प्रदान करते हैं ।

बालमार्तण्डवर्मा रसिक हैं । वे कवित्व के मर्म को जानते हैं । उनमे लोकोत्तर गुणो का आवास है । देवराज कवि बालमार्तण्डवर्मा को अपने नाटक का नायक बनाकर अपनी वाणी को धन्य समझता है।

राजवल्लभ

राजा राजवल्लभ बगाल के नवाब मीरकासिम के पटनास्थित उपराज्यपाल थे । वे राजविजय नाटक के नायक हैं । वे समाजसुधारक तथा धार्मिक थे । उन्होंने प्रसिद्ध पण्डितो के द्वारा यह प्रमाणित कराया कि वैद्य जाति को वैदिक यज्ञ करने तथा यज्ञोपवीत धारण करने का अधिकार है । राजवल्लभ स्वय विक्रमपुर मे सप्तसस्था यज्ञ करते हैं ।

राजल्वलभ विद्वानो के आश्रयदाता हैं । इनकी सभा मे सत्रह प्रसिद्ध विद्वान् थे । राजा बल्लालसेन के द्वारा छीने गये वैद्यो के यज्ञोपवीत धारण करने के अधिकार को राजा राजवल्लभ उन्हे पुन. प्रदान कराते हैं ।

राजवल्लभ पुण्यात्मा, तपस्वी तथा यशस्वी हैं। वे महान् दानी हैं। यज्ञ के समय वे अनेक गायें, हाथी, घोडे तथा मोती प्रदान करते हैं। वे अत्यन्त पराक्रमी है।

राजा राजवल्लभ प्रजारक्षण मे सदैव तत्पर रहते हैं। वे कालिका, गौरी, राधा तथा कृष्ण के उपासक है। वे ब्राह्मणो का सम्मान करते हैं। वे बुद्धिमान् तथा सम्पत्तिशाली हैं। वे अपनी अतिस्तुति को नही सुनना चाहते। वे विनयशील हैं।

राजवल्लभ पर भगवान् जगन्नाथ की कृपा है। उन्हे विश्वास है कि जगन्नाथ की कृपा से वे दुष्कर सप्तसस्था यज्ञ कर सकेंगे।

नञ्जराज

नञ्जराज नृसिंह कवि के चन्द्रकलाकल्याण नाटक के नायक है। नञ्जराज मैसूर के राजा कृष्णराज द्वितीय के सर्वाधिकारी थे। नञ्जराज अनेक विद्वानो के आश्रयदाता थे और स्वय भी कर्णाट भाषा के कवि थे। वे कलुले वश मे उत्पन्न हुए थे।

चन्द्रकलाकल्याण नाटक मे नञ्जराज कुन्तलराज रत्नाकर की पुत्री चन्द्रकला के प्रति आसक्त है। नञ्जराज का प्रियमित्र विदूषक है।

नञ्जराज वीर योद्धा है। वे केरलराज कनकवर्मा को पराजित कर कारागृह मे डाल देते हैं। चन्द्रकला के साथ अपने विवाह के उपलक्ष्य मे वे सभी बन्दी राजाओ को मुक्त कर देते हैं और ब्राह्मणो को अनेक उपहार देते हैं। नञ्जराज विद्याप्रेमी तथा दानी हैं।

राजा नन्द

नन्द इतिहासप्रसिद्ध नन्दवशीय राजा है। वे बाणेश्वर शर्मा के चन्द्राभिषेक नाटक के एक प्रमुख पात्र हैं।

राजा नन्द पराक्रमी हैं। वे अपने पराक्रम से शत्रु राजाओ को पराजित करते हैं। राजसूय यज्ञ के लिये नन्द बहुत सा सोना, चाँदी एकत्रित करते हैं।

राजा नन्द कूटनीतिज्ञ हैं। वे प्रधानामात्य शकटारदास को अपना महाशत्रु तथा धूर्तशिरोमणि जानकर भी उसे अपने पक्ष मे किये रहते हैं। जब तक उन्हे प्रधानामात्य पद सँभालने के लिये बुद्धिमान् राक्षस नही मिल जाता, तब तक वे शकटारदास के प्रति अपना क्रोध प्रच्छन्न रखते हैं। फिर वे राक्षस को प्रधानामात्य बनाकर शकटारदास को सपरिवार भूमिविवर मे बद करा देते है।

राजा नन्द स्वभावत क्रोधी हैं। वे अपनी पट्टमहिषी से अपने हास का आन्तरिक कारण पूछते है। देवी के यह उत्तर देने पर कि मैं सर्वज्ञ नही हूँ, अत आपके

प्रश्न का उत्तर नही जानती, वे उससे कहते है कि यदि आपने मध्य रात्रि तक मेरे प्रश्न का उत्तर नही दिया तो मैं प्रात काल आपका वध करा दूँगा ।

राजा नन्द को शाकटारदास के साथ किये गये अपने नृशस व्यवहार पर पश्चात्ताप होता है । वे उसे भूमिविवर से निकलवा कर पुन प्रधानामात्य पद पर अभिषिक्त कराते है ।

अपने क्रोधी स्वभाव के कारण राजा नन्द राजसूय यज्ञ मे चाणक्य का अपमान करते हैं । चाणक्य नन्दवश का विनाश करता है ।

बालराम वर्मा

बालराम वर्मा केरल प्रदेश मे त्रावणकोर के राजा थे । वे सदाशिव तथा तथा वेङ्कटसुब्रह्मण्याध्वरी के वसुलक्ष्मीकल्याण नाटको के नायक है । सदाशिव के लक्ष्मीकल्याण नाटक म वे एक प्रमुख पात्र हैं ।

सदाशिव के वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक के नायक बालराम वर्मा वसुलक्ष्मी के प्रति अनुरक्त हैं । उनकी ज्येष्ठा पत्नी वसुमती उनके वसुलक्ष्मीविषयक प्रणय को सहन न कर सकने के कारण उन्हे बुरा भला कहती है । इससे वे दु खी होते हैं '

बालराम वर्मा देव म विश्वास करते है । वे समय के औचित्य का ध्यान रखते हैं । भगवान् पद्मनाभ की कृपालुता मे उनका दृढ विश्वास है । वे धर्मपरायण शासक हैं । उनकी प्रजा सुखी है ।

बालराम वर्मा अपनी प्रजा के रक्षण मे सदैव तत्पर रहते हैं । वे स्वय ही जाकर मत्तहस्ती से विदूषक के पुत्र की रक्षा करते है । विदूषक वामन बालरामवर्मा का विश्वासभाजन मित्र तथा गूढामात्य है । बालरामवमा अपने परिजनो को पारितोषिक देकर सत्कार्यों के लिये प्रोत्साहित करते हैं । वे अपने अमात्य नीतिसागर की बुद्धिमता के प्रशसक ह ।

ज्येष्ठा नायिका वसुमती के प्रति बालराम वर्मा के हृदय मे सम्मान तथा स्नेह है और वे उसकी अनुमति से ही वसुलक्ष्मी के साथ विवाह करते हैं । बालराम वर्मा वसुलक्ष्मी के पिता सिन्धुराज का सम्मान करते है । सिन्धुराज बालरामवर्मा को वसुलक्ष्मी समर्पित कर अपने आपको धन्य समझता है । बालराम वर्मा वीर योद्धा है । वे अनेक राजाओ को पराजित करते है ।

वेङ्कटसुब्रह्मणयाध्वरी के वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक मे राजा बालरामवर्मा पद्मनाभ के कृपापात्र है । सब लोग उनका सम्मान करते हैं । वे वसुलक्ष्मी के प्रति अनुरक्त है ।

बालरामवर्मा का अपने मन्त्री बुद्धिसागर की नीति की सत्यता तथा सफलता मे विश्वास है। बुद्धिसागर बालरामवर्मा के अभ्युदय के लिये निरन्तर प्रयत्नशील है।

बालरामवर्मा उदार हैं। वे अभ्युदय-निवेदक विदूषक को अपने आभरण उपहार मे देते हैं वे ब्राह्मणो का सम्मान करते है और उनसे चरणस्पर्श कराना अनुचित समझते हैं।

बालरामवर्मा ओजस्वी हैं। उनसे मैत्री करने के लिये दुर्मद हूणराज उन्हे सिन्धुदेशीय अश्व उपहार मे देता है। वे शत्रुराजाओ को पराजित कर उनसे कर प्राप्त करते हैं। वे अपने सैनिको का सम्मान करते है। वे न्यायप्रिय, कृतज्ञतथा विनयशील हैं।

सदाशिव के लक्ष्मीकल्याण नाटक मे बालरामवर्मा जगज्जननी लक्ष्मी का अपनी पुत्री के रूप मे लालन-पालन कर उनका पद्मनाभ के साथ विवाह कर देते हैं।

बालरामवर्मा की अगस्त्य तथा नारद मुनियो के प्रति श्रद्धा है। वे लक्ष्मी के विवाह मे आये हुए देवो और मुनियो का सम्मान करते हैं।

रसानुशीलन

रसो की सम्यक् उद्बुद्धि तथा परिपाक ही सस्कृत रूपको का प्रधान उद्देश्य है। रूपककार किसी विशेष रस के उद्बोधन द्वारा नैतिक आदर्श को स्थापित करने मे सफल होता है। रूपको मे पात्र, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन आदि साधन हैं, साध्य नही। रूपको का साध्य है एकमात्र रसोद्बोध।

पूर्ववर्ती रूपककारो की भाँति अट्ठारहवी शताब्दी के सस्कृत रूपककारो ने भी अपने रूपको मे एकमात्र रस को ही साध्य बनाकर उसके उद्बोध कराने का प्रयास किया है। इस शताब्दी के रूपकों में एक या दो रस तो प्रधान रूप से आये हैं तथा अन्य रस उनके सहायक के रूप म। एक ओर जहाँ इस शताब्दी के रूपककारो ने शृङ्गार जैसे कोमल रसो को अपने रूपको मे चित्रित करने मे दक्षता प्रदर्शित की है, वही दूसरी ओर वीर और भयानक जैसे गम्भीर रसो के चित्रण मे भी उनकी कुशलता देखी जा सकती है।

शृङ्गार रस

सम्भोग शृङ्गार

शृङ्गाररस का सम्भोग तथा विप्रलम्भ दोनो ही रूपो मे प्रदर्शन अट्ठारहवी शताब्दी के सस्कृत रूपको मे प्राप्त होता है।

आलम्बन विभाव

शृङ्गाररस के आलम्बन विभाव नायक और नायिका है, परन्तु कभी कभी पशु-पक्षियो तथा वृक्ष और लताओ को भी आलम्बनविभाव के रूप मे चित्रित किया गया है। निम्नलिखित पद्य मे कोकिल तथा उसकी प्रिया को शृङ्गाररस का आलम्बन विभाव बनाया गया है—

छाया विधाय सपदि स्तबकैरनेकै
राच्छिद्य नूतनरसालतरुप्रवालम् ।
चञ्चूपुटे परभृतो विनिधाय निद्रा
भङ्ग प्रतीक्ष्य निकटे वसति प्रियाया ॥

सेवन्तिकापरिणय, 2 22

अधोलिखित पद्य मे वृक्षो तथा लताओ को शृङ्गार रस का आलम्बन विभाव बनाया गया है—

जातिं जातिसुखोद्गम स्पृहयते रक्त प्रियालद्रुम-
श्चाम्पेयश्चलदङ्क परिणयत्युत्कण्टका मल्लिकाम् ।
ताम्बूली क्रमुको भजत्यतिरसामेला लवग सुखा-
दालिङ्गत्यपि पिप्पली विलुलिता चुम्बत्यय चन्दन ॥

मदनसञ्जीवन भाण, 43 ।

रतिमन्मथ नाटक मे रति और मन्मथ, प्रभावतीपरिणय नाटक मे प्रभावती तथा प्रद्युम्न, कुवलयाश्वीय नाटक मे कुवलयाश्व और मदालसा, रुक्मिणीपरिणय नाटक मे रुक्मिणी और श्रीकृष्ण, कलानन्दक नाटक मे कलावती और नन्दक, सीताराघव नाटक म सीता और राम, नीलापरिणय नाटक मे नीला और राजगोपाल, शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक मे सत्यभामा और कृष्ण, मधुरानिरुद्ध नाटक में उषा तथा अनिरुद्ध, सेवन्तिकापरिणय नाटक मे सेवन्तिका और वसवराज, वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक म वसुलक्ष्मी तथा रामवर्मा और कान्तिमतीपरिणय नाटक मे कान्तिमती तथा शाहजी शृङ्गाररस के आलम्बन विभाव हैं और उनकी शृङ्गारित क्रीडाओ का इन नाटको में वर्णन है ।

मणिमाला नाटिका म मणिमाला और शृङ्गारशृङ्ग, नवमालिका नाटिका म नवमालिका और विजयसेन तथा मलयजाकल्याण नाटिका मे मलयजा और देवराज शृङ्गाररस के आलम्बन विभाव हैं ।

उद्दीपन विभाव

अट्ठारहवी शताब्दी के रूपको मे प्रात , सूर्योदय, मध्याह्न, सन्ध्या, अन्धकार, चन्द्रोदय, ऋतुएँ, उद्यान, पुष्पावचय, सुरापान, चन्द्रिका, कोकिलनिनाद, जलक्रीडा

आदि शृङ्गाररस के उद्दीपन विभावो के रूप म वर्णित किये गये है । नायक नायिका का शारीरिक सौन्दर्य तथा अलङ्करण भी शृङ्गाररस के उद्दीपन विभावो के रूप मे इस शताब्दी के रूपको मे मिलते हैं ।

रतिमन्मथ नाटक मे रति का शारीरिक सौन्दर्य तथा नन्दनोद्यान मे पुष्पावचय शृङ्गाररस के उद्दीपन विभाव है । रति को देखकर मन्मथ कहता है—

सेय-सेय शशधरमुखी या मया दृष्टपूर्वा
वित्रस्तैणी चपलनयना चन्द्रिका चेतसो मे ।
मोहो वेत्थ मनसि स कथ ममास्या सखीभ्या
स्वैरालाप कलयति सुधासभृता श्रोत्रसीमाम् ॥

अधुना तावदनया—

पादाग्रस्थितया ऋजूकृतवलिप्रव्यक्तरोमावलि-
श्वासोदञ्चदुरोजकोशयुगल चोन्नम्रया यत्नत. ।
न्यञ्चन्त्याप्यवशान्नितम्बभरत स्विद्यलल्लाट शनै-
श्चिन्वन्त्या कुसुमं तरो. कवलित लोलभ्रुवा मे मनः ॥
रतिमन्मथनाटक, 1'। 18-19।

इसी नाटक मे मलयपवन, वसन्तरात्रि, चन्द्रमा, शुक, कोकिल, भ्रमर, मयूर, कलहस तथा सुरसुन्दरियो का शृङ्गाररस के उद्दीपन विभावो के रूप मे, वर्णन है ।[1]

प्रभावतीपरिणय नाटक में प्रद्युम्न द्वारा प्रभावती के चित्र को देखकर उसके शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन,[2] वेङ्कटसुब्रह्मण्याध्वरी के वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक मे राजा रामवर्मा द्वारा वसुलक्ष्मी के चित्र को देखकर उसके सौन्दर्य की प्रशसा,[3] सदाशिव के वसुलक्ष्मीकल्याणनाटक मे राजा रामवर्मा द्वारा उद्यान मे वसुलक्ष्मी को देखकर उसके सौन्दर्य का वर्णन,[4] सेवन्तिकापरिणय नाटक मे सेवन्तिका को देखकर वसवराज द्वारा उसका स्वरूप चित्रण करना[5] तथा उपवन

---

1. रतिमन्मथ नाटक, 3 । 28-38 ।
2. प्रभावतीपरिणय नाटक, 1 । 38-40, 43-45 ।
3. वसुलक्ष्मीकल्याणनाटक, 1 । 37-38 ।
4. वही, 2 । 13-21 ।
5. सेवन्तिकापरिणय नाटक, 1 38-39, 48-50, 55-56 ।

मे विभिन्न पुष्पो को देखकर उनके साम्य से सेवन्तिका के अङ्गो का स्मरण करना,[1] कान्तिमतीपरिणय नाटक मे निष्कुट वन मे अनेक वृक्षो को देखकर उनके साम्य से कान्तिमती के विभिन्न अङ्गो का स्मरण कर शाहजी का कामग्रस्त होना[2] आदि शृङ्गाररस के वर्णनो मे उद्दीपन विभावो का प्रयोग द्रष्टव्य है।

अनुभाव

नायक और नायिका के स्थायीभाव रति के सूचक भ्रूविक्षेप, कटाक्ष, स्तम्भ, प्रलय, रोमाञ्च, स्वेद, वैवर्ण्य, कम्प, अश्रुपात तथा वैस्वर्य आदि शारीरिक विकार शृङ्गाररस के अनुभाव हैं। अट्ठारहवी शताब्दी के शृङ्गारप्रधान रूपको मे इन अनुभावो का प्रचुरता से प्रयोग किया गया है। लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक मे देवनारायण को देखकर लक्ष्मी के शरीर मे रोमाञ्च उत्पन्न होता है तथा उसके नेत्रो में आनन्दाश्रु आ जाते हैं।[3] वह देवनारायण पर कटाक्षपात करती है।[4] चन्द्रकला-कल्याणनाटक मे नायिका चन्द्रकला और नायक नञ्जराज मे एक दूसरे को देखकर स्वेद, कम्पादि अनुभावो का उदय होता है।[5] कलानन्दक नाटक मे कलावती को देखकर नन्दक मे रोमाञ्च तथा मन्दस्मित उद्भूत होते हैं।[6] वसुमतीपरिणय नाटक मे वसुमती गुणभूषण पर कटाक्षपात करती है।[7] मधुरानिरुद्ध नाटक मे अनिरुद्ध के चित्र को देखकर उषा मे अश्रु, पुलक तथा स्वेद रूपी अनुभाव उदित होते हैं।[8] नवमालिका नाटिका मे नवमालिका को देखकर विजयसेन मे औत्सुक्य प्रकट होता है।[9] मणिमाला नाटिका मे शृङ्गारशृङ्ग के चित्र को देखकर मणिमाला अनुरागपूर्वक उसे अपने हृदय पर रख लेती है।[10] कान्तिमतीपरिणय नाटक मे कान्तिमती शाहजी पर दीर्घकटाक्ष डालती है।

---

1. सेवन्तिका परिणय नाटक 2। 20।
2. कान्तिमतीपरिणय नाटक, 3। 9।
3. लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक, तृतीयाङ्क।
4. वही, पञ्चमाङ्क।
5. चन्द्रकलाकल्याणनाटक, तृतीयाङ्क।
6. कलानन्दक नाटक, 2'40।
7. वसुमतीपरिणय नाटक, द्वितीयाङ्क।
8. मधुरानिरुद्ध नाटक, 6' 29–30।
9. नवमालिका नाटिका, 2' 3।
10. मणिमाला नाटिका, द्वितीयाङ्क।

व्यभिचारी भाव

अट्ठारहवीं शताब्दी के शृङ्गारप्रधान रूपकों मे आवेग, दैन्य, श्रम, मद, जडता, मोह, विबोध, स्वप्न, अपस्मार, गर्व, अमर्ष, निद्रा, अवहित्था, औत्सुक्य, उन्माद, शङ्का, स्मृति, मति, त्रास, लज्जा, हर्ष, असूया, विषाद, धृति, चपलता, ग्लानि, चिन्ता आदि व्यभिचारी भावो का शृङ्गार रस के परिपोषण के लिये प्रयोग किया गया है।

मधुरानिरुद्ध नाटक म अनिरुद्ध से मिलन होने म विलम्ब होने के कारण उषा के मन मे विषाद उत्पन्न होता है। वह अपने जीवन स निराश होकर अपना मुख नीचे की ओर कर लम्बी साँसें लेती है। यहाँ विषाद व्यभिचारी भाव है।[1] उषा यह तर्क करती है कि उसका स्वप्नजार महाकुल प्रसूत होगा अथवा नहीं।[2] हृदय में अनिरुद्ध के स्फुरित होने पर उषा मे जडता आ जाती है।[3]

प्रद्युम्नविजय नाटक में प्रभावती के मन म यह शङ्का उत्पन्न होती है कि प्रद्युम्न मेरे पास आयेंगे अथवा नहीं। प्रभावती का हृदय कम्पित हो उठता है।[4] प्रभावती में प्रद्युम्न से मिलन के लिये औत्सुक्य है। वह प्रद्युम्न से मिलने में विलम्ब सहन नहीं कर पा रही है। उसका हृदय सन्तप्त है। उसके नेत्र अश्रु से भरे हैं तथा वह दीर्घ श्वासें ले रही है। वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक में वसुलक्ष्मी को देखकर रामवर्मा के हृदय में मोह उत्पन्न होना है और वे आनन्द में मग्न हो जाते हैं।[5]

कान्तिमतीपरिणय नाटक मे शाहजी कान्तिमती क साथ अपने सघटन के सम्भव होने अथवा न होने की चिन्ता में निमग्न हो जाते हैं।[6] वे कान्तिमती का बार बार स्मरण कर सन्तप्त होते हैं।[7] कान्तिमती के मन में इस बात स व्रीडा उत्पन्न होती है कि मैंने स्वप्न में भी दुर्लभ वल्लभ के साथ समागम की कामना की।

---

1 मधुरानिरुद्ध नाटक, द्वितीयाङ्क।

2. वही।

3 वही।

4 प्रद्युम्नविजयनाटक, पञ्चमाङ्क।

5. सदाशिव का वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक, 2। 19-20

6 कान्तिमतीपरिणय नाटक, 2। 6।

7 वही 2। 7।

वह श्रम का अनुभव करती है।[1] शाहजी प्रच्छन्न होकर उपवन में कान्तिमती का उत्स्वप्नायित सुनते हैं।[2] कान्तिमती के साथ समागम होने में अपनी तथा कान्तिमती की विवशता पर विचार कर शाहजी के मन में निर्वेद होता है। जागने पर कान्तिमती का हृदय इस बात से कम्पित होने लगता है कि कहीं वृक्षान्तरित किसी व्यक्ति ने मेरे उत्स्वप्नायित को तो नहीं सुन लिया है।

सेवन्तिकापरिणय नाटक में वसवराज सेवन्तिका के उत्स्वप्नायित को सुनकर प्रसन्न होते हैं।[3] जागने पर सेवन्तिका नेत्रों का उन्मृजन करती है और अँगड़ाई लेती है। उसका हृदय इस आशङ्का से कम्पित हो उठता है कि कहीं लतान्तरित किसी व्यक्ति ने मेरा उत्स्वप्नायित तो नहीं सुन लिया है।

रुक्मिणीपरिणय नाटक में रुक्मिणी के सौन्दर्य का ध्यान करते हुए वासुभद्र का मन उनमें निमग्न हो जाता है।[4] वे स्वप्न में रुक्मिणी को देखकर उनका लीलाकमल छीन लेते हैं।[5] वसुभद्र को देखकर रुक्मिणी में शृङ्गारलज्जा का उदय होता है। जब नवमालिका रुक्मिणी से वासुभद्र का स्वागत करने के लिये कहती है तो रुक्मिणी लज्जावश उसे डाँटती हैं। वासुभद्र को प्राप्त करने के लिये उत्कण्ठित रुक्मिणी के मन में उन्माद आता है। वे चित्रगुप्त वासुभद्र को प्रत्यक्ष समझकर उनके चरणों में गिरकर उनसे दया की याचना करती है[6]। अपनी चपलता पर रुक्मिणी को लज्जा तथा विषाद का अनुभव होता है। शिशुपाल को अपने साथ विवाह करने के लिये आता हुआ सुनकर रुक्मिणी रोने लगती है और दुःखावेग से मूर्च्छित हो जाती हैं। प्रतिनायक शिशुपाल असूया के कारण श्रीकृष्ण से कुपित होता है।

लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक में लक्ष्मी को न देखकर देवनारायण के मन में विषाद उत्पन्न होता है। उनके नेत्र अश्रुपूरित हो जाते हैं। वे उन्मत्त होकर वृक्षों तथा पशुपक्षियों से लक्ष्मी के विषय में पूछते हैं।[7] शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक

---

1. कान्तिमति परिणय नाटक, 2। 14।
2. वही, तृतीयाङ्क।
3. सेवन्तिकापरिणय नाटक, तृतीयाङ्क।
4. रुक्मिणीपरिणय नाटक, प्रथमाङ्क।
5. वही, द्वितीयाङ्क।
6. रुक्मिणीपरिणय नाटक, तृतीयाङ्क।
7. लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक, चतुर्थाङ्क।

मे समयातिपात के कारण सत्यभामा को श्रीकृष्ण के प्रति अमर्ष होता है और वे काँपने लगती है।[1] नीलापरिणय नाटक मे भयङ्कर झञ्झानिल के द्वारा दर्पण के उड़ा दिये जाने पर श्रीकृष्ण उसमे प्रतिबिम्बित अपनी प्रिया को न देखकर त्रास से पर्याकुल हो जाते हैं। सीताकल्याण वीथी मे राम को पति के रूप मे प्राप्त कर सीता के मन मे हर्ष होता है। वे पुलकित होकर अपनी सखी से कहती है कि मैं आनन्द से परवश हो गई हूँ और अपने शरीर पर मेरा अधिकार नही रहा है।

विप्रलम्भशृङ्गार

विप्रलम्भ शृङ्गार शृङ्गार का वह भेद है जिसमे नायक नायिका का परस्पर अनुराग तो प्रगाढ होता है किन्तु परिस्थितिवश उनका मिलन नही हो पाता। विप्रलम्भ शृङ्गार के चार भेद है—(1) पूर्वराग-विप्रलम्भ (2) मान-विप्रलम्भ (3) प्रवास-विप्रलम्भ तथा (4) करुण-विप्रलम्भ।

पूर्वराग-विप्रलम्भ

अट्ठारहवी शताब्दी के अधिकाश नाटको मे पूर्वराग-विप्रलम्भ प्राप्त होता है। नीलापरिणय नाटक मे दर्पण मे प्रतिबिम्बित नीला को देखकर श्रीकृष्ण का चित्र बनाती है। नीला के विरह मे श्रीकृष्ण व्याकुल होते हैं। चन्द्रमा तथा मलयमारुत श्रीकृष्ण के विरहसन्ताप को बढाते हैं।[2] राक्षस मायाधर द्वारा नीला के तिराहित कर दिये जाने पर विषण्ण होकर उनका अन्वेषण करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं—

> आरामो मरुभूयते पिकरुत चण्डाट्टहासायते
> माध्वी क्ष्वेलरसायते मलयभूर्वातोऽग्निसारायते।
> रम्य यत्त्वत् क्वथायते तदखिलं तन्वीवियोगव्यथा
> मूर्च्छाजर्जरमानसा वयमिह नास्मादृशायामहे॥
>
> नीलापरिणयनाटक, 4, 2

वसुमतीपरिणय नाटक मे गुणभूषण स्वप्न म वसुमती को देखकर उसके प्रति अनुरक्त हो जाता है। ज्येष्ठा नायिका सुनीति के गृह मे भोजन करता हुआ गुणभूषण सौधजाल मे अवस्थित वसुमती को देखता है। प्रमदवन मे उसका

---

1. शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक 5।61।
2. नीलापरिणय नाटक, 3।10-13।

वसुमती के साथ मिलन होता है। वह वसुमती के विरह मे सन्तप्त होता है।[1] गुणभूषण के विरह मे वसुमती को शीतल वायु भी क्रुद्ध सर्प के फूत्कार के समान उष्ण लगती है। वसुमती को भय है कि सुनीति के कारण मेरा राजा के साथ विवाह न हो सकेगा। शिशिरोपचार से वसुमती का सन्ताप बढ जाता है।

कलानन्दक नाटक मे गुप्तचर से कलावती के सौन्दर्य के विषय मे सुनकर नन्दक का उसके प्रति अनुराग हो जाता है।[2] कलावती अपनी सखी से नन्दक के गुणो को सुनकर उसके प्रति अनुरक्त हो जाती है और उसे स्वप्न मे देखती है।[3] नन्दक और कलावती चित्रपट मे एक दूसरे को देखते हैं। उपवन मे उन दोनो को एक दूसरे के प्रत्यक्ष दर्शन होते है। कलावती के विरह मे नन्दक काम से पीडित होता है। उसके मन मे खेद उत्पन्न होता है। वह कलावती को देखने के लिये उत्कण्ठित है। वह कहता है—

कदा वा तत्तादृङ नवतरुणिमाभ्युन्नतिवशा-
दुदञ्चद्वक्षोजस्तवकमतिचारुजघनम्।
स्मरस्मेराननकमललोलालकभर
वपुस्तस्या मुग्ध पुनरपि पुरा स्थास्यति मम ॥

कलानन्दक नाटक, 2 12।

राजा नन्दक कलावती को वन, पर्वत तथा नदियो के तटो पर ढूढता है और वृक्षो तथा पशुपक्षियो से उसका पता पूछता है।[4]

सेवन्तिकापरिणय नाटक म वसवराज तथा सेवन्तिका प्रत्यक्ष दर्शन द्वारा परस्पर अनुरक्त हो जाते हैं। सेवन्तिका के वियोग मे वसवराज को चन्द्रकिरणें अग्निस्फुलिङ्ग के समान जलाती हैं। कोकिलाध्वनि तथा मलयपवन भी वसवराज को पीडित करते है।[5]

कान्तिमतीपरिणय नाटक मे भी कान्तिमती और शाहजी प्रत्यक्ष दर्शन द्वारा परस्पर अनुरक्त होते हैं। शाहजी के वियोग म कान्तिमती के मन में व्यामोह उत्पन्न होता है, जिसके कारण वह अनुपस्थित शाहजी को भी अपने

1 वसुमतीपरिणय नाटक, 3।31
2 कलानन्दक नाटक, प्रथमाङ्क।
3. वही।
4 कलानन्दक नाटक, 7।10-14।
5 सेवन्तिकापरिणय नाटक, 2।19।

समीप देखती है।[1] शाहजी के विरह मे वह दुर्बल हो जाती है। कान्तिमती के विरह मे शाहजी निद्रा तथा भोजन का परित्याग कर देते हैं। उनका शरीर पीला पड गया है।[2] शाहजी के विरह मे कान्तिमती अपने जीवन का परित्याग करने के लिये उद्यत है। कान्तिमती के विरह मे पटीरपवन, सरसिजशय्या तथा चन्द्रकिरणें शाहजी के सन्ताप को शान्त करने की अपेक्षा उसमे वृद्धि करती हैं।[3]

लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक मे देवनारायण वारिभद्रा नदी के जल मे लक्ष्मी के प्रतिबिम्ब को देखकर उसके प्रति आसक्त हो जाते हैं। देवनारायण और लक्ष्मी एक दूसरे का चित्र देखकर परस्पर अनुरक्त होते हैं। वे दोनों नदी के तीर पर एक दूसरे को प्रत्यक्ष रूप से देखते हैं। लक्ष्मी के विरह मे चन्द्रकिरणें तथा शीतल समीर देवनारायण को सन्तापित करते हैं।[4] कामसन्तप्त लक्ष्मी देवनारायण के पास मदनलेख भेजती है। शैवल, कुसुम तथा कमलपत्र की शय्या पर शयन करने से लक्ष्मी का कामसन्ताप बढ जाता है।[5] वह मूर्च्छित हो जाती है। उसके विरह मे देवनारायण उन्मत्त हो जाते हैं। वे वृक्षो तथा पशुपक्षियो से लक्ष्मी का पता पूछते हैं।[6] लक्ष्मी के न मिलने पर देवनारायण नदी मे गिरकर अपने प्राणो के परित्याग करने का निश्चय करते है।[7]

चन्द्रकलाकल्याण नाटक म नञ्जराज और चन्द्रकला प्रत्यक्ष दर्शन द्वारा एक दूसरे के प्रति आसक्त हो जाते हैं। चन्द्रकला के विरह मे मरकत सरोवर की शीतल वायु भी नञ्जराज को सुख नही देती।[8] वियोग मे नञ्जराज को एक रात्रि भी व्यतीत करना कष्टदायी प्रतीत होता है।[9] चन्द्रकला के अभाव मे उनके लिये सारी आनन्दसामग्री दुखदायिनी हो जाती है।[10]

रतिमन्मथ नाटक मे रति और मन्मथ एक दूसरे के प्रत्यक्ष दर्शन द्वारा आसक्त होते हैं। मन्मथ के विरह मे रति सन्तप्त होती है। कोमल पल्लवशय्या,

1 कान्तिमतीपरिणय नाटक, चतुर्थाङ्क।
2 वही।
3. वही, 5।1–3।
4 लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक, 2।18–19।
5 लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक, 3।14–15।
6 वही, चतुर्थाङ्क।
7 वही।
8 चन्द्रकलाकल्याणनाटक, प्रथमाङ्क।
9 वही द्वितीयाङ्क।
10 वही, चतुर्थाङ्क।

चन्दन तथा कृष्णाशीरतालवृन्त की वायु के सेवन से भी रति को शान्ति नहीं मिलती। शीतल वायु उसे क्रुद्ध सर्प के फुफकार के समान कष्ट देती है।[1] रति कहती है कि मेरा शरीर वज्रलेप से बना होने के कारण इन शीतोपचारों से भी शान्ति प्राप्त नहीं कर रहा है। वह व्यामोह के कारण मन्मथ को अपने सम्मुख स्थित समझकर उसके बैठने के लिये रत्नासन डालना चाहती है। सत्य का पता चलने पर वह रोती है और अपने भाग्य को धिक्कारती है।[2] रति के वियोग में मन्मथ का अनुजीवी वर्ग वसन्त, चन्द्रमा, मलयपवन, परभृत, शुक, भृङ्ग, माल्य, मधु, चन्दन, पङ्कजरज, गीत, लास्य तथा प्रमदवनादि उसके प्रतीप हो जाते हैं।[3] सन्तप्त मन्मथ कहता है—

> दावं हृद्यमवैमि चन्दनरसाच्चण्डातप चन्द्रिका–
> पूरात्कि च सुराधिपप्रहरण श्रीखण्डशैलानिलात ।
> कुन्ताग्रे कृतमास्तर विचकिलस्तोमादिदानी सखे
> मृत्यु जीवनतोऽप्यलब्धदयिताश्लेषप्रमोद· पुनः ॥
> रतिमन्मथ नाटक, 2.20

वेङ्कट सुब्रह्मण्याध्वरी के वसुलक्ष्मीकल्याणनाटक मे राजा रामवर्मा और वसुलक्ष्मी चित्रफलक मे एक दूसरे के रूपसौन्दर्य को देखकर परस्पर आसक्त हो जाते हैं।[4] उपवन में एक दूसरे के प्रत्यक्ष दर्शन कर रामवर्मा और वसुलक्ष्मी का अनुराग बढ जाता है।[5] वे दोनों एक दूसरे के वियोग मे सन्तप्त होते हैं।[6]

सदाशिव के वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक मे रामवर्मा बोधिका द्वारा अपने करतल पर लगाये गये सिद्धाञ्जन की महिमा से नायिका वसुलक्ष्मी के सौन्दर्य को देखकर उसके प्रति आसक्त हो जाते हैं। वसुलक्ष्मी के विरह मे रामवर्मा कामसन्तप्त होते हैं। वे कामदेव से पूछते हैं कि मैंने आपका कौनसा अपकार किया है जो आप मुझे अपने बाणों द्वारा पीडित कर रहे हैं।[7] वसुलक्ष्मी पहले चित्र मे रामवर्मा के देखकर

---

1 रतिमन्मथ नाटक, द्वितीयाङ्क ।
2 वही ।
3 वही, 2.19 ।
4 वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक, प्रथमाङ्क ।
5. वही, द्वितीयाङ्क ।
6 वही, तृतीयाङ्क ।
7 वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक, 2.4 ।

उन्हें अपना पति चुन लेती है। उपवन में एक दूसरे के प्रत्यक्ष दर्शन कर उन दोनों का अनुराग बढ़ जाता है। रामवर्मा के विरह में वसुलक्ष्मी भी व्यथित होती है। चन्द्रमा तथा मलयानिल के स्पर्श से पीडित वसुलक्ष्मी अपने जीवन को धारण करना दुष्कर समझती है।"[1]

हरिहरोपाध्याय के प्रभावतीपरिणय नाटक मे प्रभावती हसी शुचिमुखी से प्रद्युम्न के गुणो को सुनकर उनके प्रति आसक्त हो जाती है। प्रद्युम्न के विरह मे कोकिलध्वनि प्रभावती के कर्ण मे बाधा उत्पन्न करती है तथा चन्द्रोदय उसके नेत्रों को कष्ट देता है।"[2] प्रद्युम्न शुचिमुखी द्वारा प्रदत्त चित्रफलक मे प्रभावती के सौन्दर्य को देखकर उसके प्रति आसक्त हो जाते है। प्रभावती के वियोग मे चिन्ता के कारण प्रद्युम्न के नेत्र स्मितशून्य हो जाते हैं। दीर्घ निश्वासो से उनकी दशनद्युति मलिन हो जाती है। कामविकार से उनके कपोल पाण्डु हो जाते हैं। उनकी दृष्टि मन्द तथा रसहीन हो जाती है।

शङ्कर दीक्षित के प्रद्युम्नविजय नाटक मे प्रभावती और प्रद्युम्न केवल एक दूसरे के रूप तथा गुणो के विषय मे सुनकर परस्पर अनुरक्त हो जाते है। प्रद्युम्न के विरह मे सन्तप्त प्रभावती का शीतोपचार सखियाँ करती हैं।"[3] प्रभावती को रुग्ण समझकर उसके उपचार के लिये अनेक वैद्य बुलाये जाते है।"[4]

मधुरानिरुद्ध नाटक मे उषा और अनिरुद्ध स्वप्न मे विहार करते है। उषा के विरह मे अनिरुद्ध के मन मे व्यामोह उत्पन्न होता है जिसके कारण वह उषा को अपने पास आया हुआ समझकर उसका आलिङ्गन करना चाहते हैं। उषा का स्मरण करते हुए अनिरुद्ध मूर्च्छित हो जाते हैं।[5] अनिरुद्ध के वियोग मे उषा का शरीर पीला पड जाता है। वह नलिनीनालो को सर्प समझकर उन्हे अपने शरीर से हटा देती है। वह कस्तूरीद्रव को फेंक देती है। कोकिलध्वनि से सन्तर्जित उषा अपने क्रीडाशुक की ओर भी नही देखती।"[6]

(2) मान-विप्रलम्भ

नीलापरिणय, सेवन्तिकापरिणय, कान्तिमतीपरिणय तथा वेङ्कटसुब्रह्मण्याध्वरी

---

1. वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक; 2.46-48
2. प्रभावतीपरिणयनाटक, 1.31
3. प्रद्युम्नविजय नाटक, तृतीयाङ्क
4. वही।
5. मधुरानिरुद्ध नाटक, तृतीयाङ्क
6. वही, 6.2-5 ।

और सदाशिव के वसुलक्ष्मीकल्याण नाटको मे नायक को कनिष्ठा नायिका के प्रति अनुरक्त देखकर ज्येष्ठा नायिका मान धारण कर लेती है। अतः वहाँ मानविप्रलम्भ शृङ्गार है। शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक मे श्रीकृष्ण के रुक्मिणी को पारिजात पुष्प देने पर सत्यभामा रुष्ट हो जाती हैं और मान धारण कर लेती हैं। प्रभावतीपरिणय नाटक मे प्रभावती स्वप्न मे प्रद्युम्न को अपने पिता का वध करने वाला देखकर प्रद्युम्न के प्रति मान धारण कर लेती है।[1]

(3) प्रवास-विप्रलम्भ

कान्तिमतीपरिणय नाटक मे कान्तिमती के भागानगर चले जाने से तथा सेवन्तिकापरिणय नाटक मे सेवन्तिका के केरल देश चले जाने से उनका नायको के साथ वियोग हो जाता है। यहाँ प्रवास-विप्रलम्भ शृङ्गार है।

(4) करुण-विप्रलम्भ

अट्ठारहवीं शताब्दी के रूपकों मे करुण-विप्रलम्भ नही मिलता।

शृङ्गाराभास

स्थायीभाव रति की अनुचित प्रवृत्ति के कारण अट्ठारहवी शताब्दी के प्राय समस्त भाणों और प्रहसनो तथा कतिपय नाटको मे शृङ्गाराभास की प्रतीति होती है।

राघवानन्द और सीताराघव नाटको मे प्रतिनायक रावण की सीता के प्रति रति अनुचित है।[2] इसी प्रकार सभापतिविलास नाटक मे मुनिपत्नियो की शिव के प्रति तथा मुनियो की मोहिनी के प्रति रति अनुचित है।[3] प्रमुदितगोविन्द नाटक मे शिव का विष्णु के मोहिनी रूप के प्रति कामासक्त होना शृङ्गार रस के अनौचित्य का उदाहरण है।[4]

रति

देवविषयक

कुवलयाश्वीय नाटक मे सूत्रधार भक्तिभाव से दुर्गादेवा की स्तुति करता है।[5] प्रमुदितगोविन्द नाटक मे देवगण विष्णु की स्तुति करते है[6] सभापतिविलास नाटक मे

---

1. प्रभावतीपरिणय नाटक, 6।17–18
2. राघवानन्द नाटक, 3।20, सीताराघव नाटक, 4।27
3. सभापतिविलास नाटक, 2।28–41
4. प्रमुदितगोविन्द नाटक, 7।10–16
5. कुवलयाश्वीयनाटक, प्रस्तावना
6. प्रमुदितगोविन्द नाटक, 1।14-16

नन्दिकेश्वर और ऋषि माध्यन्दिनि शिव का गुणगान करते है ।[1] व्याघ्रपाद, कौण्डिन्य, उपमन्यु, पतञ्जलि तथा हिरण्यवर्मा का शिव के प्रति भक्तिभाव का चित्रण भी सभापतिविलास नाटक मे मिलता है । पूर्णपुरुषार्थचन्द्रोदय नाटक मे सुमक्ति का शिव के प्रति भक्तिभाव है ।[2] लक्ष्मीकल्याण नाटक मे नारद और तुम्बुरु का पद्मनाभ के प्रति भक्तिभाव है ।[3] रतिमन्मथ नाटक में मन्मथ का भगवती कामेश्वरी के प्रति भक्तिभाव है ।[4] प्रद्युम्नविजय नाटक मे श्रीकृष्ण के इन्द्र के प्रति रतिभाव का वर्णन है ।[5] मधुरानिरुद्ध नाटक मे अनिरुद्ध का ज्वालामुखीदेवी के प्रति भक्तिभाव है ।[6]

गुरुविषयक

सीताराघवनाटक मे राम का गुरु विश्वामित्र के प्रति रतिभाव है ।[7] चन्द्राभिषेक नाटक मे दान्त और विनीत का अपने गुरु सम्पन्नसमाधि के प्रति भक्तिभाव है । सभापतिविलास नाटक मे कृष्ण का गुरु के प्रति भक्तिभाव है ।[8]

ऋषिविषयक

लक्ष्मीकल्याण नाटक मे रामवर्मा का अगस्त्य तथा नारद ऋषियो के प्रति रतिभाव है ।[9] नीलापरिणय नाटक मे नारद और गोप्रलय ऋषियो के परस्पर रतिभाव का वर्णन है ।[10] राघवानन्द नाटक मे राम का अगस्त्य ऋषि के प्रति श्रद्धाभाव है ।[11] मलयजाकल्याण नाटिका मे मलयराज का मुनि भार्गव के प्रति रतिभाव है ।[12]

पुत्रविषयक

वसुमतीपरिणय नाटक मे राजा गुरुभूषण को युवराज विजयवर्मा के प्रति वात्सल्य है ।[13] इसी कारण विजयवर्मा को युद्ध के लिए भेजने मे गुणभूषण को सकोच

---

1 सभापतिविलास नाटक, 1 41, 47, 48 54-56
2. पूर्णपुरुषार्थचन्द्रोदय नाटक, 2 8
3 लक्ष्मीकल्याण नाटक, 2 58-59
4 रतिमन्मथनाटक, 5 22-27
5 प्रद्युम्नविजय नाटक, 1.19
6 मधुरानिरुद्धनाटक, 5 25-28
7. सीताराघवनाटक, 6 34
8. सभापतिविलासनाटक, 3 22
9 लक्ष्मीकल्याण नाटक, 1 22-24, 26
10 नीलापरिणय नाटक 5 2-3
11 राघवानन्दनाटक, 2 28, 31
12. मलयजाकल्याणनाटिका चतुर्थाङ्क
13 वसुमतीपरिणयनाटक, चतुर्थाङ्क

होता है। रतिमन्मय नाटक मे महेन्द्र को मन्मय के प्रति वात्सल्य है।[1] शिवलिङ्ग-सूर्योदय नाटक मे विद्या को अपना पुत्री भक्ति के प्रति वात्सल्य है, इसीलिये वह विद्या के वियोग मे दु:खी होती है। गोविन्दवल्लभ नाटक मे नन्द और यशोदा को श्रीकृष्ण के प्रति वात्सल्य है। सीताराघवनाटक में दशरथ और कौशल्या को राम के प्रति तथा जनक को सीता, उर्मिला, माण्डवी तथा श्रुतकीर्ति के प्रति वात्सल्य है।[2]

वीररस

अट्ठारहवी शताब्दी के अनेक रूपको मे युद्धवर्णनो मे वीररस के उदाहरण मिलते हैं। कुवलयाश्वीय नाटक[3] मे कुवलयाश्व और पातालकेतु के युद्ध म, रतिमन्मथनाटक[4] मे मन्मथ और शम्बर के युद्ध मे, शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक[5] मे श्रीकृष्ण और इन्द्र के युद्ध मे, राघवानन्द[6] तथा सीताराघव [7] नाटको मे रावण के युद्ध मे, प्रभावतीपरिणय[6] तथा प्रद्युम्नविजय[9] नाटको मे प्रद्युम्न तथा वज्रनाभ के युद्ध मे, कलानन्दक नाटक[10] मे नन्दक और दिल्लीपति इन्द्रसखा के युद्ध मे, वसुमतीपरिणय नाटक[11] मे विजयवर्मा तथा यवनराज के युद्ध मे और मधुरानिरुद्ध[12] तथा कुमारहरण[13] नाटको मे अनिरुद्ध तथा बाणासुर के युद्ध मे वीररस का परिपाक दिखाई देता है। वीररस के कतिपय उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं—

मन्मथ-शम्बर युद्ध का वर्णन—

श्चोतद्दानाम्बुजम्बालितधरणितल वृंहितप्रौढिफक्क
दिक्कम्पोच्चण्डशुण्डाविधुतिसरभसा मोटितव्योमयानम्।

---

1. रतिमन्मथनाटक, 3.20
2. सीताराघवनाटक, प्रथमाङ्क तथा तृतीयाङ्क
3. कुवलयाश्वीयनाटक, चतुर्थाङ्क
4. रतिमन्मथनाटक, 4 22 29–33
5. शृङ्गारतरङ्गिणीनाटक, चतुर्थाङ्क
6. राघवानन्दनाटक चतुर्थाङ्क, पञ्चमाङ्क तथ षष्ठाङ्क
7. सीताराघवनाटक, षष्ठाङ्क
8. प्रभावतीपरिणयनाटक, सप्तमाङ्क
9. प्रद्युम्नविजयनाटक, सप्तमाङ्क
10. कलानन्दक नाटक, चतुर्थाङ्क
11. वसुमतीपरिणयनाटक, चतुर्थाङ्क
12. मधुरानिरुद्धनाटक, अष्टमाङ्क
13. कुमारहरण नाटक, चतुर्थ, पञ्चम तथा षष्ठाङ्क

तिर्यग्दन्ताभिघातप्रकटितबहलश्वभ्रमभ्रेष्वदभ्र
वप्रक्रीडा भजन्तोऽनुकृतिशिखरिणो दन्तिन प्रोन्नदन्ति ।।
रतिमन्मथ नाटक, 4 32

कृष्ण और इन्द्र के युद्ध का वणन—

रङ्गत्तुङ्गतुरङ्गपुङ्गवमिषत्वङ्गत्तरङ्गावलि
र्वाताघातविघूर्णकेतनमहामीना समानोन्नित ।
एषा यादववाहिनीपटुभटप्रेङ्खोलितासिच्छटा
छायाछायितपद्मपालिरधुना पुष्णाति तृष्णा दृशो ।।
शृङ्गारतरङ्गिणीनाटक, 4 22

राम-रावण युद्ध का वणन—

मृदनासि क शरशतैर्द्रवत प्लवगान्
प्रागप्यमी विचलिता रिपुभि प्रशान्तै ।
नन्वेष विद्विषदखर्वभुजापलेप
स्सर्वङ्कषो रघुपतेरनुजोऽहमस्मि ।।
राघवानन्दनाटक, 6 2

प्रद्युम्न वज्रनाभ युद्ध का वणन—

कोऽय कर्णोपघाती प्रतिहतपटहग्रामगम्भीरगर्ज्ज
स्फूर्जत्फूत्कारतारध्वनिबहलवलत्कोहलोद्गाहलोल ।
प्रङ्खत्युन्मेषशङ्खस्वनग्रामगगनप्रान्तरोग्रप्रचारो
द्वारोपासन्नदूरोन्नतमणिवलभीदुन्दुभीनान्निनाद ।।
प्रभावतीपरिणयनाटक, 7 8

नन्दक और इन्द्रसखा के युद्ध का वर्णन—

सैन्यभारभरणासहनत्वादबराङ्गणमवाप्य चरन्ती ।
मेदिनीव पृतना जनिताना भाति हन्त रजसा ततिरेषा ।।
कलानन्दकनाटक, 4 39

शान्त

अट्ठारहवी शताब्दी के केवल कुछ ही नाटको म शान्त रस मिलता है। हरिहरोपाध्याय के भर्तृहरिनिर्वेदनाटक मे शान्त प्रधानरस है । इस नाटक म योगी गोरक्षनाथ के उपदेश से राजा भर्तृहरि अपना मन सासारिक विषयो से हटाकर परम तत्त्व के चिन्तन मे लगाते है। भर्तृहरि भिक्षा, तरुच्छायानिवास तथा कन्यासस्तरण म आनन्द का अनुभव करत हैं—

स्वच्छन्दाटनमात्रत परगृहान्नानारसान्नादन
कन्थाकोमलसस्तरस्तरुघनच्छायासु वासक्रिया ।
अश्रान्ति सुखसञ्चरेण रुचित शीतातपोपासन
देहे यत्सुखमस्ति शान्तिसुलभ गेहे सतस्तत्कुत ॥
भर्तृहरिनिर्वेदनाटक, 5 26

हरिहरोपाध्याय शृङ्गाररस को परमविश्रान्तिदायक मानते हैं ।[1]

वेङ्कटेश्वर के राघवानन्दनाटक मे राम मुनियो के वैराग्यसुख को श्रेष्ठ बताते हुए कहते हैं—

शय्या स्निग्धतरोस्तल सिकतिल सर्वर्तुभोग्य पय
पर्यन्ते विमल प्रबुद्धकमल स्नानार्चनादे क्षमम् ।
काले ध्यानविरामदायिपतनाटोप फल चाशन
कस्यैव सुखमस्त्विद शमधनैर्यत्प्राप्यते कानने ॥
राघवानन्दनाटक, 2 20

घनश्याम के कुमारविजयनाटक मे सती के दक्षयज्ञ मे प्राणत्याग करने से शोकाकुल शिव सनत्कुमार के वचना से आश्वस्त होकर योगी बनने मे आनन्द का अनुभव करते है । शिव कहते है—

जटाजूटश्चूडामधिवसति भिक्षाटनकृते
कपाल पाणौ मे विलसति कटौ चर्म जयति ।
अतो योगीवाह विमलदहराकाशकुहरे
परा शक्ति ध्यायन्वनभुवि वसेय चिरतरम् ॥
कुमारविजयनाटक, 1 31

कलानन्दकनाटक मे योगी त्रिकालदेवी के रत्नकूटपर्वत पर स्थित आश्रम मे मृग निर्विकल्पक समाधि मे मग्न योगियो के शरीरो को शिला समझकर उनसे अपने शृङ्गो का घर्षण करते ह ।[2] यहाँ आश्रम शान्त रस का उद्दीपन विभाव है ।

अद्भुत

अट्ठारहवी शताब्दी के रूपको मे अलौकिक पात्रा, कार्यों तथा आयुधो के सन्निवेश द्वारा अद्भुतरस की सृष्टि की गई है । सदाशिव के वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक[3] म बाधिका द्वारा करतल पर लगाये गये सिद्धाञ्जन की महिमा से राजा रामवर्मा

1 भर्तृहरिनिर्वेदनाटक 1 2
2 कलानन्दकनाटक, 6 24
3 वसुलक्ष्मीकल्याणनाटक, प्रथमाङ्क

अन्त पुर मे अपनी प्रेमिका वसुलक्ष्मी को देखता है। रतिमन्मथनाटक[1] मे सन्यासिनी सर्वार्थसाधिका अपनी योगसिद्धि के बल से रति के रूप के सदृश मायावती नामक स्त्री का निर्माण कर उसे किसी के बिना जाने ही शम्बर के रथ मे निविष्ट कर वहाँ से रति को मुक्त करती है।

राघवानन्दनाटक[2] मे अगस्त्य मुनि के अपने नेत्रो को मुकुलित कर वैतानिक अग्नि के समीप स्थित होने पर उसमे से एक दिव्य रत्न प्रकट होता है, जिसे देखकर सब लोग चकित हो जाते है। इसी नाटक[3] मे हनुमान् द्वारा लाई गई दिव्यौषधि के आघ्राण से राम का सैन्य जीवित हो जाता है और किलकिला शब्द करता है। नीलापरिणयनाटक[4] मे राजगोपाल तथा विदूषक एक अद्भुतदर्पण मे प्रतिबिम्बित दूरस्थित सौध मे विद्यमान चम्पकमञ्जरी तथा उसकी सखियो को देखते हैं।

कान्तिमतीपरिणय नाटक[5] मे दिव्यमणि के प्रभाव से कान्तिमती के मुख की सुगन्धि तो सूँघी जा सकती है परन्तु उसका मुख नही दिखाई देता। उसके कङ्कणो का शब्द तो सुनाई देता है परन्तु उसके हाथ दिखाई नही देते। कान्तिमती सुलोचना को उस दिव्यमणि को देकर उसे मुचित और शाहजी की गोपनीय वार्ता को सुनने के लिये भेजती है।[6] इसी नाटक मे किराती ध्यान द्वारा कान्तिमती के मनोरथ को जानकर उसकी पूर्ति के लिये कमलाम्बिका का उपासना का उपाय बताती है।[7] शोभावती मे कमलाम्बिका के आवेश से भी अद्भुतरस की सृष्टि होती है।[8]

सेवन्तिकापरिणयनाटक मे एक विशिष्ट मूलिका को धारण करने से धारण करने वाला व्यक्ति अन्य व्यक्तियो के लिये अदृश्य हो जाता है। इस मूलिका के प्रभाव से अश्वारूढ निषाद स्थपति अपने आपको दूसरो से अदृश्य रखता है।[9] इस मूलिका को धारण कर सेवन्तिका अन्य व्यक्तियो के लिये अदृश्य होकर अपने शील की रक्षा करती है। मूलिका के प्रभाव से अदृश्य सेवन्तिका को न देखकर राजा बसव इस मूलिका की महिमा का वर्णन करते हुए कहते है—

---

1. रतिमन्मथनाटक, चतुर्थाङ्क।
2. राघवानन्दनाटक, द्वितीयाङ्क
3. राघवानन्दनाटक, 6 36।
4 नीलापरिणयनाटक, प्रथमाङ्क
5. कान्तिमतीपरिणयनाटक, 3 24
6 वही, चतुर्थाङ्क
7. वही
8 वही, पञ्चमाङ्क
9. सेवन्तिकापरिणयनाटक, 2.31-33।

श्रृणोमि मणिकिङ्किणीझणझणत्कृतिं मञ्जुलां
सुवर्णरशनालसत्कटितटी पुनर्नेक्ष्यते ।
मुखाम्बुजपरीमलो मृगदृशः समाघ्रायते
मुखं तु न च दृश्यते कनककुण्डलालङ्कृतम् ।।
सेवन्तिकापरिणयनाटक, 3.40

उपर्युक्त नाटक में ईक्षणिका प्रेक्षावती सेवन्तिका के करतल पर अद्भुत चूर्ण लगा देती है जिसके प्रभाव से सेवन्तिका अपने करतल पर ही केरल से मैसूर के मूकाम्बिकानगर में रहने वाले अपने वल्लभ वसवराज को प्रत्यक्ष देखती है।[1] मित्रवर्मा के द्वारा वसवराज के पास उपहारस्वरूप भेजी गई मञ्जूषाओं को उद्घाटित करने पर उनमें से एक में से बाहर निकलती हुई सेवन्तिका को देखकर सब लोग आश्चर्य प्रकट करते हैं।[2]

चन्द्राभिषेक नाटक में विनीत द्वारा प्रयुक्त महौषधि के राजा नन्द के मृतशरीर से स्पर्शमात्र होने पर वह जीवित हो जाता है।[3] इससे सबको आश्चर्य होता है। प्रभावतीपरिणयनाटक में प्रद्युम्न माया के द्वारा अपने उतने ही शरीर बनाते हैं, जितने दानव उनसे युद्ध करने के लिये आये हुए थे।[4]

नवमालिका नाटिका में दण्डकारण्यवासी तापस के पास एक दिव्य रत्न है, जिसके प्रभाव से राक्षस निष्प्रभाव हो जाते हैं।[5] राक्षस द्वारा अपहृत नवमालिकादि तीन कन्यायें इसी रत्न के प्रभाव से दण्डकारण्य में उसके हाथ से छूटकर भूमि पर गिर पड़ती हैं। मणिमाला नाटिका में योगिनी सुसिद्धिसाधिनी द्वारा प्रदत्त गगनगामिनी नौका द्वारा मणिमाला, विचित्रचातुरी तथा चित्रचरित के पुष्कर द्वीप से उज्जयिनी जाने,[6] मूर्च्छित राजा शृङ्गारशृङ्ग और चित्रचरित को योगिनी सुसिद्धिसाधिनी द्वारा मन्त्रजल से बोध प्रदान किये जाने[7], मृत मणि-

---

1. सेवन्तिकापरिणयनाटक, 4.18–25।
2. वही, 5.13–16।
3. चन्द्राभिषेक नाटक, 3.84।
4. प्रभावतीपरिणयनाटक, 6.37।
5. नवमालिकानाटिका, 416।
6. मणिमालानाटिका, द्वितीयाङ्क।
7. वही, चतुर्थाङ्क।

माला को सुसिद्धिसाधिनी द्वारा मृत्युसजीवनी विद्या से पुनर्जीवित किये जाने[8] तथा योगी अद्भुतभूति के आमन्त्रण पर अनेक वेतालो के आकर राक्षस द्वन्द्वदष्ट्र से युद्ध करने[1] मे अद्भुतरस की सृष्टि हुई है।

करुण

किसी पात्र की वास्तविक अथवा काल्पनिक मृत्यु से करुण रस की उत्पत्ति होती है। इष्ट वस्तु का नाश तथा अनिष्ट की प्राप्ति से इसकी उत्पत्ति होती है। वेङ्कटसुब्रह्मण्याध्वरी के वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक मे विदूषक पिठर उन्मत्त हाथी द्वारा अपने पुत्र के ग्रस्त किये जाने की घोषणा सुनकर उसकी मृत्यु की आशङ्का से शोकाकुल होकर उसके लिये विलाप करतो है।[2] शिवलिङ्गसूर्योदय नाटक म विद्या अपनी पुत्री भक्ति को मृत समझकर उसके लिये विलाप करती है।[3] *पुत्री भक्ति के शोक से व्याकुल होती हुई विद्या की करुण दशा के वर्णन मे भी करुण रस की सृष्टि हुई है।*[4] *रतिमन्मथनाटक मे रति के माता-पिता तथा* सखियाँ शम्बर द्वारा उसके अपहरण किये जाने पर उसकी मृत्यु के भय से विलाप करते है।[5] शिव को पार्वती से सघटित करने के पश्चात् मन्मथ रति के अपहरण को सुनकर उसकी मृत्यु की आशङ्का से उसके लिये विलाप करता है। रति के लिये विलाप करता हुआ मन्मथ कहता है—

सर्वस्व मे हृदयहृदय चक्षुष किं च चक्षु
प्राणप्राण· सुखसुखनिधि प्रेम च प्रमभूम्न ।
व्याघ्रस्येव प्रकृतिकृपणा नैचिकी देवशत्रो
र्हस्ते लग्ना कथमिव बत प्राणिति प्रेयसी सा ॥

रतिमन्मथनाटक, 4 16

निम्नलिखित पद्य म मन्मथ रति की इस विपत्ति से दु खी होता हुआ अपनी करुण दशा का वर्णन करता है—

---

1 मणिमालानाटिका
2 वही
3. वसुलक्ष्मीकल्याणनाटक, 3 61–62।
4 शिवलिङ्गसूर्योदय नाटक, 3 1–2।
5 वही, 4 7
6 रतिमन्मथनाटक, 4 1–7।

विवेक न्यक्कुर्वन् सहजमपि धैर्यं शिथिलयन्
खिलीकुर्वन् व्रीडा विनयमतिमात्र व्यपनयन् ।
विमोह व्यातन्वन्नहह परिताप बहलयन
इयत्तातिक्रान्त प्रभवति विकार किमपि मे ।।
रतिमन्मथनाटक, 4 17

राघवानन्दनाटक मे महाशम्बर से यह सुनकर कि रावण ने लक्ष्मण पर महती शक्ति से प्रहार कर उन्हें मार डाला है, कौशल्या, सुमित्रा तथा भरत मूर्च्छित होकर गिर पडते है। आश्वस्त होने पर वे लक्ष्मण के लिये विलाप करते हैं।[1] महाशम्बर से राम और शत्रुघ्न की भी युद्धभूमि मे मृत्यु को सुनकर कौशल्या, सुमित्रा और भरत उनके लिये रोते हैं।[2]

लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक[3] मे लक्ष्मी के पिता दिनराज यह समझ कर कि वह लता से अपने गले को आबद्ध कर मर गई है, उसके लिये विलाप करते हैं। कुमारविजयनाटक[4] मे सती देवी की मृत्यु पर भृङ्गरीटि विलाप करता है। सती के मरण से दु खी शिव उनके लिये विलाप करते हैं।[5] चन्द्राभिषेक नाटक मे राजा नन्द की मृत्यु होने पर उसके परिजनो के विलाप मे करुण रस की सृष्टि हुई है।[6] इसी नाटक मे दान्त अपने गुरु सम्पन्नसमाधि के भस्मीभूत शरीर को देखकर शोकाकुल हुआ देवनिन्दा कर कहता है—

सर्वा हन्त निराश्रया गुणगणा विद्यास्तथा सिद्धयो
योगाश्चाद्य वियोगदु खदलिता यान्तो क्षय सर्वथा।
श्रद्धाबुद्धिरथोत्तमाच मधुरा सत्या गिर सयमो
निर्वेद करुणा च भक्तिरमला विश्रामभूर्वजिताः ।।
चन्द्राभिषेक नाटक, 4 90

---

1 राघवानन्दनाटक, 7 12-14
2 वही, सप्तमाङ्क
3 लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक, 5 3 5
4 कुमारविजय नाटक, प्रथमाङ्क
5 वही, 1 9 13
6 चन्द्राभिषेक नाटक, तृतीयाङ्क

इसी नाटक में नागरक शाकटारदास की दुर्गति को देखकर दैव को उपालम्भ देता हुआ शोक प्रकट करता है।[1] कञ्चुकी वेहोनर भी शाकटारदास की इस दुर्गति पर खेद प्रकट करता है।[2]

भयानक

भयानक रस का स्थायीभाव भय है। इस रस की उत्पत्ति प्रायः युद्ध मे पराक्रम दिखाने वाले योद्धाओ, मार्ग मे किसी महती बाधा के आ जाने अथवा वन्य पशुओ से होती है। जीवन अथवा किसी महती क्षति का विचार मन मे आने पर स्थायीभाव भय की उत्पत्ति है। योद्धाओ अथवा वन्य पशुओ की भयावह प्रवृत्तियाँ तथा गतिविधियाँ इसके उद्दीपन विभाव हैं। युद्धभूमि से पलायन करना, हाथ मे लिये हुए कार्य को छोड देना तथा विवशता आदि अट्ठारहवी शताब्दी के रूपको मे वर्णित अनुभाव हैं।

सदाशिव के वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक मे उन्मत्त हस्ती अपने बन्धन को तोड देता है। वह तोरण को नष्ट कर देता है तथा आपण को अस्त व्यस्त कर देता है। वह नगर मे सब ओर भागता है। इससे पुरवासियो के हृदयो मे भय का सञ्चार होता है।[3] वेङ्कटसुब्रह्मण्याध्वरी के वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक मे भी उन्मत्त हस्ती को भागता हुआ देखकर लोग डर जाते हैं।[4] प्रमुदितगोविन्दनाटक मे समुद्रमन्थन के समय उत्पन्न कोलाहल को सुनकर विद्याधर मालाधर का शिष्य सूनशेखर भय से अपने कानो को पिहित कर लेता है। निम्नलिखित पद्य मे इस कोलाहल का वर्णन देखिये—

> दिक्षु त्रस्तसमस्तहस्तिविकृतध्वानावलीमासलैः
> कल्लोलोत्करमालिकाकलकलत्रैगुण्यमापादितः।
> पायः क्ष्माधरनाथमन्थमथनप्रारब्धकोलाहलैः
> तैस्तैर्वधसभाजनोदरदरी नीरन्ध्रमापूर्यते ॥

प्रमुदितगोविन्दनाटक, 4.6

रतिमन्मथनाटक मे शिव के तप मे मन्मथ द्वारा विघ्न डाले जाने पर उसे भस्म करने के लिये शिव के तृतीय नेत्र से अग्नि की उत्पत्ति होती है। इस अग्नि

1. चन्द्राभिषेक नाटक, 5 108
2. वही, 5.109
3. वसुलक्ष्मीकल्याणनाटक, 2.31
4. वही, 3 56

की भयानकता को देखकर महेन्द्र के मन मे वैक्लव्य का सञ्चार होता है। यह अग्नि समुद्रजल को चूस रही थी, पर्वतो की शिलाओं को विदलित कर रही थी, वृक्षो को जला रही थी तथा चटचट शब्द करती हुई सर्वत्र फैल रही थी।[1]

शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक मे शची की परिचारिका नवचन्द्रिका मार्ग मे सिंहो और हाथियो को देखकर डर जाती है।[2] वह कुब्जक से अपनी रक्षा करने के लिये कहती है। राघवानन्द नाटक मे विन्ध्याटवी के भयावह प्रदेशो मे विद्यमान अजगरों, सिंहो तथा कौलेयको की गतिविधियो से भयानक रस की सृष्टि होती है।

प्रद्युम्नविजयनाटक मे वज्रनाभ से डरे हुए देवता उसके सामने से पलायन करते है। देवपत्नियाँ भी वज्रनाभ के भय से व्याकुल हैं।[3] कान्तिमतीपरिणय नाटक मे रणमत्त हस्ती को पीछे से दौडकर आता हुआ देखकर विदूषक भय से कम्पित होकर भूमि पर गिर पडता है।[4] सेवन्तिकापरिणय नाटक मे सेवन्तिका निषादो से भीत हो जाती है। भीत सेवन्तिका की चेष्टाओं का वर्णन बसवराज निम्नलिखित पद्य मे करते हैं—

उन्मील्याक्षि समीक्षते सचकित भीरुः समस्ता दिशः
वार वारमकाण्ड एव रभसादाशिलष्यति स्वा सखीम्।
आहूतापि न भाषते कथयति स्वच्छन्दमन्या गिरः
त्रस्ताया अपि चेष्टित विजयते सजीवन मे दृशोः॥
सेवन्तिकापरिणयनाटक, 2 4

इसी नाटक मे मत्त हस्ती को दौडते हुए देखकर लोग भीत होकर अपने जीवन की रक्षा करने का प्रयास करते हैं।[5]

कलानन्दकनाटक मे सिंह की क्रोध से दीप्त नेत्राग्नि को देखकर हाथियो के कलभ दूर से ही भय के कारण भाग जाते हैं। निम्नलिखित पद्य मे सिंह की भयानकता का वर्णन किया गया है[6]—

---

1. रतिमन्मथनाटक, 3 39।
2. शृङ्गारतरङ्गिणीनाटक 4 11।
3. प्रद्युम्नविजयनाटक, 2 21-2।
4. कान्तिमतीपरिणयनाटक, पञ्चमाङ्क।
5. सेवन्तिकापरिणयनाटक, चतुर्थाङ्क।
6. कलानन्दकनाटक, 3.33।

नखाग्रपरिघट्टणत्रुटितगण्डशैलावलि-
कठोरतरफीत्कृति श्रुतिवितीर्णकर्णज्वरः।
जटापटलवीक्षणक्षुभितदूरधावत्करी
दरीगृहमुखादमीनिकटमेति न केसरी ॥
कलानन्दकनाटक, 3 35

लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक मे राक्षस भद्रायुध वन्यहस्ती रूप धारण कर तपस्वियो को पीडित करता है। वह वन को नष्ट करता है। राक्षस को देखकर लक्ष्मी भीत हुई देवनारायण की शरण लेती है।[1] चन्द्राभिषेक नाटक मे राक्षस के प्रधानामात्य पद पर अभिषिक्त किये जाने के समय भीषण दुन्दुभिध्वनि से भयानक रस की सृष्टि होती है।

मधुरानिरुद्धनाटक मे प्रबल वायु के कारण बाण के केतुभङ्ग से उत्पात की आशङ्का कर बाण की पत्नी प्रियवदा डर जाती है। प्रियवदा की भीत अवस्था का वर्णन निम्नलिखित पद्य मे मिलता है—

विन्नस्यन्ताविव मधुकरो लोचने केशपाशो
भ्रश्यद्दामा कुसुमधनुषश्चामरौपम्यमेति।
श्वासैर्नासामणिरपि नरीनर्त्यते सर्वथा ते
गत्यायासो नवनिधुवनक्रीडया तुल्यमासीत् ॥
मधुरानिरुद्धनाटक, 4 12

इसी नाटक मे बाण और श्रीकृष्ण के युद्ध के समय कोटवी देवी के भयङ्कर रूप को देखकर नारद का मित्र पर्वत भय से अपने नेत्र निमीलित कर लेता है।[3] बाण के साथ युद्ध करते हुए श्रीकृष्ण के धनुष की ध्वनि को सुनकर पर्वत डर जाता है।[4]

प्रभावतीपरिणयनाटक मे प्रद्युम्न और वज्रनाभ के युद्ध के समय साग्रामिक वादित्रनाद को सुनकर वज्रनाभ का पुरोहित भय से आतङ्कित हो जाता है।[5]

---

1 लक्ष्मीदेवनारायणीयनाटक, तृतीयाङ्क।
2 चन्द्राभिषेक नाटक, 5 111।
3 मधुरानिरुद्धनाटक, 8 17।
4 वही, 8 19।
5 प्रभावतीपरिणयनाटक, 7 8 9।

रौद्र

रौद्ररस का स्थायीभाव क्रोध है। इसका आलम्बन विभाव शत्रु है। शत्रु की चेष्टायें इसका उद्दीपन विभाव है। इसकी विशेष उद्दीप्ति मुष्टिप्रहार, भूपातन-भयकर मारकाट, शरीरविच्छेद, युद्ध तथा सम्भ्रमादि से होती है।

रौद्ररस का आलम्बनविभाव शत्रु तथा उद्दीपन विभाव शत्रु की चेष्टायें होने के कारण यह वीररस से साम्य रखता है। वीररस की भाँति रौद्ररस भी युद्ध–वर्णन के प्रसङ्ग मे मिलता है।

रतिमन्मथनाटक मे शम्बर के द्वारा रति के अपहरण का समाचार सुनकर महेन्द्र के मन मे क्रोध का आविर्भाव होता है। वे युद्ध मे शम्बर का वधकर रति के प्रत्याहरण के लिये जाने को उद्यत हो जाते हैं। वे कहते हैं—

> क्षोणीभृत्कुलकक्षपालिलवनाकुण्ठास्त्रिणा विस्रवद्
> वृत्रासृक्भरलब्धपारणसमारम्भेण दम्भोलिना।
> निर्मथ्याहमनेन दैत्यहतक त शम्बर सयुगे
> प्रत्याहृत्य रतिं वयस्यहृदयानन्दाय जायेऽञ्जसा ॥
>
> रतिमन्मथनाटक 3 47

इसी नाटक मे मन्मथ और शम्बर के युद्ध में मन्मथ रति का अपहरण करने वाले शम्बर के प्रति क्रुद्ध होकर अनेक कठोर वचन कहता है।[1]

राघवानन्द नाटक मे राम और रावण के युद्ध मे लक्ष्मण और अतिकाय की एक दूसरे के प्रति क्रोधपूर्ण उक्तियो मे रौद्ररस का परिपाक हुआ है।[2] इसी नाटक मे सिद्धपुरुष का कपटवेष धारण किये हुए राक्षस महाशम्बर के वचन से शत्रुघ्न को शत्रुघ्नवेषधारी लवणासुर समझकर भरत क्रोधपूर्वक धनुरारोपण कर उसके प्रति अनेक अपशब्द कहते हुए उसका वध करने के लिये तत्पर हो जाते हैं।[3]

लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक मे राक्षस भद्रायुध के द्वारा लक्ष्मी का अपहरण किये जाने पर राजा देवनारायण क्रुद्ध होकर राक्षस का सहार करने का सकल्प करते हैं।[4] कुमारविजयनाटक मे दक्षयज्ञ का विध्वस करने के लिये शिव द्वारा उत्पन्न किया गया वीरभद्र अपने दाँतो को कटकटाता हुआ क्रोधपूर्वक कहता है।

---

1 रतिमन्मथनाटक, 4 25।
2 राघवानन्द नाटक, 6 2–18 26।
3 वही, 7 27।
4 लक्ष्मीदेवनारायणीयनाटक 3 21, 25।

दोष्णा गा शकलीकरोमी नखरैश्चूर्णीकरोम्यम्बर
दुर्दान्त कवलीकरोमि यममाचामामि सप्तार्णवीम् ।
ऊर्ध्वं नागजगन्नयाम्यहमधः स्वर्गं करोम्यश्रमः
श्रीमद्भीमपदाब्जरेणुकरुणालेशाणुमात्रा यदि ।।
कुमारविजयनाटक, 1.14

क्रुद्ध वीरभद्र द्वारा दक्षयज्ञ के विनाश तथा उस यज्ञ मे आये हुए देवो को दण्डित किये जाने के वर्णन मे भी रौद्ररस की सृष्टि हुई है।[1]

चन्द्राभिषेकनाटक मे शाकटारदास के द्वारा छलपूर्वक सम्पन्नसमाधि के पुरातन देह के दग्ध करा दिये जाने पर उसका शिष्य विनीत क्रुद्ध होकर अपने हाथ मे लिये हुए जल को पृथ्वी पर छोडकर शाकटारदास को शाप देता है।[2] प्रभावतीपरिणय नाटक मे वज्रनाभ की पुत्री प्रभावती के प्रति आसक्त प्रद्युम्न यह समझकर कि देवों का जन्म से ही वैरी होने के कारण वज्रनाभ उसे अपनी पुत्री नही प्रदान करेगा, क्रुद्ध होकर असुरो के विनाश की प्रतिज्ञा करते हैं और अपने कृपाण तथा खड्ग की महिमा बताते हैं।[3] वज्रनाभ और प्रद्युम्न के युद्धवर्णन में भी रौद्ररस की सृष्टि हुई है।[4]

पूर्णपुरुषार्थचन्द्रोदय नाटक मे राजा दशाश्व जैनमतानुयायी के प्रति क्रुद्ध होकर उसका वध करने के लिए तत्पर हो जाता है।[5] दशाश्व बौद्धभिक्षु को अपनी प्रिया आनन्दपक्ववल्ली का अपहरण करने के लिए आया हुआ राक्षस समझकर उसका वध करना चाहता है।[6]

बीभत्स

रतिमन्मथनाटक में मन्मथ और शम्बर के युद्ध मे रणक्षेत्र शस्त्रो द्वारा काटे गये हस्तियो, अश्वो तथा दैत्यो के स्नायुओ, अस्थियो, वसा तथा मज्जा आदि से भर जाता है। गृध्र तथा शृगाल आदि उन दुर्गन्धयुक्त स्नायु-मासादि का भक्षण कर रहे हैं। प्रेत, पिशाच तथा डाकिनीगण वहाँ रक्तपान कर रहे हैं।[7]

---

1. कुमारविजय नाटक 1.16–24
2. चन्द्राभिषेकनाटक, चतुर्थाङ्क
3. प्रभावतीपरिणयनाटक, 3.14–16
4. वही, 7.15–16, 23 42–47
5. पूर्णपुरुषार्थचन्द्रोदयनाटक, 3 8
6. वही, 3 18।
7. रतिमन्मथनाटक, 4,35

राघवानन्द नाटक मे राक्षसी अधोमुखी को देखकर लक्ष्मण के मन म जुगुप्सा का उदय होता है। अधोमुखी क्रुद्ध कृष्णसर्पो को अपने पदो से खीचकर उनसे अपने स्तनो को आबद्ध कर रही थी। वह अपने दन्तशङ्कुओ से व्याघ्रो को खा रही थी तथा क्रोधपूर्वक गुहा से निकल रही थी।[1] इसी नाटक मे राम और रावण के युद्ध मे मारे गये योद्धाओ, हस्तियो तथा अश्वो के रक्त का पान करता हुआ पिशाच ब्रह्म तथा उसकी अर्द्धाङ्गिनी चूलिका प्रसन्न होते हैं।[2] राम के बाणो से कुम्भकर्ण के दोनो पदो तथा बाहुओ के विच्छिन्न होने पर उनसे रक्तधारा बहने लगती हैं। उसका शरीर रणभूमि मे लुठन करता है।[3]

वसुमतीपरिणयनाटक मे विजयवर्मा और यवनराज के युद्ध मे पिशाच तथा डाकिनियाँ शस्त्रो से काटे गये योद्धाओ का रक्तपात करते हुए प्रसन्न हो रहे हैं।[4] कुमारविजय नाटक मे कार्तिकेय और तारकासुर के युद्ध मे मारे गये दानवो का मासभक्षण करते करते हुए भूतवग अपना उदरपोषण करते हैं।[5] मधुरानिरुद्धनाटक मे ज्वालामुखी देवी के लिये वलि मे अर्पित किये मेषो, महिषो तथा छागो के रक्त का अर्धनिशीथिनी मे पान करती हुई पिशाचियो का वर्णन है।[6]

लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक मे देवनारायण द्वारा मारे गये राक्षसों के रक्त का पान करती हुई पिशाचियाँ युद्धभूमि को आकीर्ण कर लेती हैं[7]। कलानन्दक नाटक मे राजा नन्दक और दिल्लीपति के युद्ध मे आहत हुए हस्तियो के स्वामियो के मस्तको से निकलती हुई रक्तधारा का गृध्रगण पान करते हैं।[8]

कुवलयाश्वीयनाटक मे कुवलयाश्व तथा पातालकेतु के युद्ध मे मारे गये हस्तियो, अश्वो तथा दानवो के मास का वेतालबालाएँ भक्षण करती हैं।[9] शृङ्गार-तरङ्गिणीनाटक मे कृष्ण और इन्द्र के युद्ध मे नष्ट हुई किरातो तथा हूणो की सेना के रक्त का कङ्कगण पान करते हैं।[10]

---

1 राघवानन्दनाटक, 3 34
2 वही षष्ठाङ्क
3 वही, 6 30
4 वसुमतीपरिणयनाटक, 4 36
5 कुमारविजयनाटक, पञ्चमाङ्क
6 मधुरानिरुद्धनाटक, 5 18
7 लक्ष्मीदेवनारायणीयनाटक, 5 2
8 कलानन्दकनाटक, 4 49
9 कुवलयाश्वीयनाटक, चतुर्थाङ्क
10 शृङ्गारतरङ्गिणीनाटक, 4 27

हास्य

अट्ठारहवी शताब्दी के नाटको मे प्राय विदूषक की उक्तियो तथा क्रिया-कलापो से हास्यरस की सृष्टि होती है। इस शताब्दी के प्रहसनो मे हास्य प्रमुख रस है।

कान्तिमतीपरिणयनाटक मे विदूषक कविराक्षस नागज्योतिषिक से यह सुनकर कि शाहजी चित्रवर्मा को लाने के लिये कुम्भकोणनगर जा रहे हैं अट्टहासपूर्वक अपने उरुयुगल को आस्फालित कर वानर के समान उछल पडता है। यहाँ विदूषक आलम्बन विभाव तथा उसका उछलना आदि हास्यरस के उद्दीपन विभाव हैं। इसी नाटक मे विदूषक शोभावती मे देवी कमलाम्बिका की विद्यमानता को ज्ञात करने के लिये उस पर दण्डकाष्ठ से प्रहार करने के लिये उद्यत हो जाता है। यह देखकर सब लोग हँसते हैं।

सेवन्तिकापरिणयनाटक मे वारविलासिनी का अभिनय देखकर विदूषक कहता है कि उनके सव्यापसव्य चरणो से दुष्ट अश्व से गिरने का स्मरण कर मेरा हृदय काँप रहा है। यह सुनकर सब लोग हँसते हैं।[1] विदूषक की इस उक्ति को सुनकर कि रात्रि में वानरों के समान मेरा नयनपाटव नही है, सब लोग हँसते हैं।[2]

नीलापरिणय नाटक मे चन्द्रकान्तमणियो के द्रवित होने से उत्पन्न सरोवर के स्वच्छ जल को नवनीत समझकर विदूषक अपने मित्र राजा राजगोपाल से कहता है कि मैं इस नवनीत का भक्षण कर तुन्दिल तथा प्रचण्ड बाहुदण्ड वाला हो जाऊँगा। राजगोपाल विदूषक से कहते हैं कि इसे भक्षण करने पर आपकी ब्राह्मणी ताटका के समान भीषण हो जायेगी। यह कहकर राजगोपाल तथा विदूषक दोनो हँसते हैं।[3]

गोविन्दवल्लभ नाटक मे विदूषक मधुमङ्गल की हास्यपूर्ण उक्तियो तथा क्रियाकलापो से हास्य की सृष्टि होती है। इसी नाटक मे ज्योतिर्विद् बहरेपन के कारण श्रीकृष्ण के साथी गोपबालक उस पर हँसते हैं।[4] मधुमङ्गल वृषभानुपत्नी कीर्तिदा और सुशीला से कहता है कि केवल श्रीकृष्ण ही दुर्लभ नही हैं, मैं भी दुर्लभ हूँ। मुझे भोजन कराने से आपको आनन्द होगा। मेरी माता का मैं एकमात्र पुत्र हूँ। मेरा मुख देखकर वह आनन्दित होता है। मधुमङ्गल की हास्योक्ति को सुनकर सब

1. सेवन्तिकापरिणय नाटक, प्रथमाङ्क
2. वही, द्वितीयाङ्क
3. नीलापरिणयनाटक, प्रथमाङ्क
4 गोविन्दवल्लभनाटक, द्वितीयाङ्क

लोग हँसते हैं ।[1] सुदाम मधुमङ्गल की हास्यास्पद भूषा बना देता है जिसे देखकर सब लोग हँसते हैं ।[2] चपल विदूषक हरिण को अश्व समझकर उस पर आरूढ हो जाता है। हरिण के वेगपूर्वक उछलने से विदूषक भीत होकर श्रीकृष्ण से अपनी रक्षा की प्रार्थना करता है। श्रीकृष्ण और गोपबालक यह देखकर हँसते हैं ।[3]

बलदेव मधुमङ्गल के चापल्य से यह अनुमान लगाते हैं कि वह मेरे माध्वीकपान की बात यशोदा से कह देगा। वह मधुमङ्गल को वृक्ष से बाँध देते हैं। यह देखकर सब गोपबालक हँसते हैं।[4] बलदेव द्वारा मुक्त किये जाने पर मधुमङ्गल कहता है कि मेरा अदृश्या वनदेवी के साथ विवाह हुआ था, पुरोहित बलदेव ने तो करग्रन्थि का मोचन किया है। विदूषक के इन वचनों को सुनकर सब लोग हँसते हैं ।[5]

वेङ्कटसुब्रह्मण्याध्वरी के वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक मे विदूषक पिठरशर्मा राजा के द्वारा पुरस्कार रूप मे प्रदत्त आभरणो को स्वीकार कर उन्मादपूर्वक नृत्य करता हुआ उनसे आपने आपको आभूषित कर अपनी पत्नी के पास इस वेष मे जाने के लिए राजा से आज्ञा की याचना करता है। इससे हास्य की सृष्टि होती है। [6] विदूषक दण्डकाष्ठ से पट्टमहिषी की चेटी को ताडित करना चाहता है। यह देखकर सब लोग हँसते हैं ।[7] विदूषक का विकृत आकार तथा वेषभूषा हास्यरस की सृष्टि करते हैं ।[8]

सदाशिव के वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक मे विदूषक वामन की उक्तियो से हास्य की सृष्टि होती है। विदूषक राजा बालरामवर्मा की पट्टमहिषी से कहता है कि आप मन्मथ के चित्रफलक की पूजा करने की अपेक्षा प्रत्यक्ष मन्मथ अपने पति की पूजा कीजिये। आप चाहे जिसकी पूजा करें, मुझे तो उपायन दीजिये। विदूषक की इस उपायनप्रियता को देखकर सब लोग हँसते हैं ।[9] विदूषक की राजा के प्रति यह उक्ति कि जिस प्रकार मैं मोदको की प्राप्ति से सन्तुष्ट हो रहा हूँ, उसी प्रकार आप अभिल-

---

1. गोविन्दवल्लभनाटक, तृतीयाङ्क
2. वही, चतुर्थाङ्क
3. वही पञ्चमाङ्क
4. वही, अष्टमाङ्क
5. वही
6. वसुलक्ष्मीकल्याणनाटक, प्रथमाङ्क
7. वही, द्वितीयाङ्क
8. वही, 4 21–22
9. वही, द्वितीयाङ्क

चितसिद्धि से वधित होइये, हास्य को सृष्टि करती है ।[10] इसी नाटक मे कञ्चुकी को स्थविर मल्लूक कहता है ।[11]

पूर्णपुरुषार्थचन्द्रोदय नाटक म राजा के विदूषक से साख्यसिद्धान्त के विषय म पूछने पर वह अपना मुँह चलाने लगता है । राजा कहता है कि आपका यह व्याख्यान अत्यन्त सुन्दर है । राजा और विदूषक के परस्पर वार्तालाप से हास्य की सृष्टि होती है ।[12]

उन्मत्तकविकलश, चण्डानुरञ्जन, सान्द्रकुतूहल, मदनकेतुचरित तथा कुक्षिम्भर-भैक्षव प्रहसनो मे हास्यरस ही प्रमुख है ।

---

1 वसुलक्ष्मीकल्याणनाटक

2 वही, चतुर्थाङ्क

3 पूर्णपुरुषार्थचन्द्रोदय नाटक, चतुर्थाङ्क

चतुर्थ अध्याय

भाषा

सत्रहवी शताब्दी के अधिकाश रूपको की भाषा सरल, सरस, सुबोध तथा भावानुकूल है। कतिपय रूपककारो की भाषा पर पूर्ववर्ती रूपककारो कालिदास, भवभूति तथा भट्टनारायण का प्रभाव है।

कालिदास के मेघदूत की पङ्क्ति श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्याम्, को लेकर मल्लारि आराध्य ने अपने रूपक शिवलिङ्गसूर्योदय मे निम्नलिखित पद्य की रचना की है—

> नानारत्नस्थगितकलशोद्भासिभूषाभिरामा
> चन्द्रज्योत्स्नाविशदवसनप्राकृताशेषगात्री ।
> बुद्धिर्योषा जनततिवृता कोकिलालापिनी या
> श्रोणीभारादलसगमना मन्दमन्दं प्रतस्थे ॥[1]

इसी प्रकार कालिदास के विक्रमोर्वशीयम् नाटक मे नायक पुरूरवा द्वारा नायिका उर्वशी के विषय मे कहे गये निम्नलिखित पद्य का प्रभाव वीरराघव की *मलयजाकल्याणम्* नाटिका मे नायक देवराज द्वारा नायिका मलयजा के सौन्दर्य के विषय मे कहे गये पद्य पर देखा जा सकता है—

कालिदास का पद्य

> अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रदः
> शृङ्गारैकरसः स्वयं नु मदनो मासो नु पुष्पाकरः ।
> वेदाभ्यासजडः कथं नु विषयव्यावृत्तकौतूहलो
> निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः ॥[2]

---

1. शिवलिङ्गसूर्योदय नाटक, 5.12।
2. विक्रमोर्वशीयम्, प्रथमाङ्क।

वीरराघव का पद्य

अस्या सृष्टौ भविन्या कुसुममयशर शिक्षमाणोऽनुकल्प
चक्रे चन्द्राब्जमुख्यान् तदनु सुरवधूरुर्वशीमिन्दिरा वा ।
इत्थ चाभ्यासयोगादनिशमुपचिताच्चातुरी काञ्चिदाप्त्वा
नून तामायताक्षी निखिलगुणनिधि सृष्टवान्निस्तुलाङ्गीम ।।[1]

जगन्नाथ कवि पर कालिदास का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है । कालिदास के मेघदूत का यक्ष जिस प्रकार अपनी प्रियतमा का चित्र बनाकर तथा उसके चरणो पर गिरकर अपनी विरहव्यथा को दूर करने की सोचता है परन्तु नेत्रो के अश्रुओ से पूर्ण हो जाने के कारण वह उस चित्र को भी नही देख पाता, लगभग उसी स्थिति का अनुभव जगन्नाथ के 'वसुमतीपरिणय नाटक' का नायक गुणभूषण तथा रतिमन्मथ नाटक का नायक मन्मथ करते है । कालिदास और जगन्नाथ के एतद्विषयक पद्य देखिये—

कालिदास का पद्य

त्वामालिख्य प्रणयकुपिता धातुरागैश्शिलाया-
मात्मान ते चरणपतित यावदिच्छामि कर्तुम् ।
अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गम नौ कृतान्त ।।[2]

जगन्नाथ का पद्य

यदेकस्मिन्नङ्गे किमपि लिखितेऽस्या मृगदृशो
निमग्न चक्षुर्मे हृदयमपि तत्रैव भवति ।
सकम्पस्वेदोऽप्य प्रभवति न पाणिश्च सकला
कथकार बाला विलिखितुमिह स्या पटुरहम् ।।[3]

वसुमतीपरिणय नाटक मे नायिका वसुमती की भी वही स्थिति होती है ।

वसुमती—(राज्ञ प्रतिकृति लिखन्ती) हला, आनन्दवाष्पोत्पीड पाणि प्रकम्पश्च प्रतिपक्षो भवति ।[4]

---

1 मलयजाकल्याणम् नाटिका 118 ।

2 मेघदूत, उत्तरमेघ ।

3 वसुमतीपरिणयनाटक, 54, रतिमन्मथ नाटक, 211 ।

4 वसुमतीपरिणयनाटक, तृतीयाङ्क ।

कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तल म नायिका शकुन्तला के सौन्दर्यविषयक पद्य का प्रभाव रामचन्द्रशेखर के कलानन्दक नाटक मे नायिका कलावती के सौन्दर्य-विषयक पद्य पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है—

कालिदास का पद्य

सरसिजमनुविद्ध शैवलेनापि रम्य
मलिनमपि हिमाशोर्लक्ष्म लक्ष्मी तनोति ।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणा मण्डन नाकृतीनाम् ॥[1]

रामचन्द्रशेखर का पद्य

भूषणभूष्यत्व स्यान्मण्डनवपुषोरितीतरत्रैव ।
त्वामधिकृत्य सुगात्रि विपरीतमिद विभात्येव ॥[2]

कालिदास की निम्नलिखित रमणीयताविषयक उक्ति का प्रभाव रामपाणिवाद के एक पद्य पर स्पष्ट देखा जा सकता है—

कालिदास की उक्ति

'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूप रमणीयताया '

रामपाणिवाद की उक्ति

प्रेमा नाम प्रतिनवपदार्थान्तरे प्रेमभाजा
निर्वेद यज्जनयतितरा नित्यभुक्तः पदार्थ ॥[3]

कालिदास की मन्त करणविषयक इस उक्ति का प्रभाव राजविजय नाटक के कर्ता पर पूर्णरूप मे दिखाई देता है—

कालिदास की उक्ति

सता हि सन्देहपदेषु वस्तुषु
प्रमाणमन्त करणप्रवृत्तय ॥

---

1 अभिज्ञानशाकुन्तल ।
2 कलानन्दकनाटक, 2.83 ।
3 मदनकेतुचरितप्रहसन, पद्य 33 ।

राजविजयनाटक की उक्ति

अपि मन्त्रिसहस्रस्य संदिग्धे काम्यकर्मणि ।
प्रमाणं तन्मनोवृत्तिस्तद्धि नारायणोदयम् ॥[1]

कृष्णदत्तमैथिल के निम्नलिखित पद्य पर भवभूति के पद्य की छाया स्पष्ट देखी जा सकती है—

भवभूति का पद्य

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि ।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति ॥[2]

कृष्णदत्त मैथिल का पद्य

कुसुमादपि सुकुमारं कुलिशादपि निर्भरद्रढिमम् ।
न विवेक्तुमर्हति जनः प्रकृतिगभीरं मनो महताम् ॥[3]

अट्ठारहवी शताब्दी के कतिपय रूपककारो के रूपको मे पुराणो, रामायण, भगवद्गीता, कामसूत्र तथा भर्तृहरि के नीतिशतक के उद्धरण तथा अन्य प्राचीन सूक्तियां दी गई है।

कृष्णदत्त मैथिल द्वारा उद्धृत इस पौराणिक सुभाषित को देखिये—

त्रय एवाधना राजन् ! भार्यादासस्तथा सुतः ।
यत्ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम् ॥[4]

जगन्नाथ कवि ने वसुमतीपरिणय नाटक में कौटिलीय अर्थशास्त्र तथा रामायण से मैत्रीविषक अनेक सूक्तियो को उद्धृत किया है। इसके अतिरिक्त अनेक प्राचीन सूक्तियां उनके इस नाटक मे उद्धृत की गई हैं। इससे जगन्नाथ की भाषा प्रभावशील हुई है। उनकी भाषा भावो को सम्यक् प्रकार से व्यक्त करने मे सक्षम है।

हरियज्वा के विवेकमिहिर नाटक मे भागवत, महाभारत, भगवद्गीता, तथा शिशुपाल के कतिपय श्लोक उदाहरणो तथा सूक्तियो के रूप मे उद्धृत किये गये हैं। इनसे हरियज्वा की भाषा विशेष प्रभावोत्पादक है।

---

1. राजविजयनाटक।
2. उत्तररामचरित, 2.7।
3. कुवलयाश्वीय नाटक, पञ्चमाङ्क।
4. पुरञ्जनचरित, 1.25।

वीरराघव ने मलयजाकल्याणम् नाटिका में कामसूत्र से उद्धरण दिया है।[1] आनन्दरायमखी के निम्नलिखित पद्य पर गीता का प्रभाव है—

आनन्दरायमखी का पद्य

सर्वस्मिन्विषये निरङ्कुशतया यद्दुर्निरोध मन
प्रायो वायुरिव प्रकृष्टबलवत्सर्वात्मना चञ्चलम्।[2]

गीता का श्लोक

चञ्चल हि मन कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम्।
तस्याह निग्रह मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥

आनन्दरायमखी ने भर्तृहरि के सुभाषित की एक पङ्क्ति का प्रयोग जीवानन्दन नाटक के एक पद्य में किया है—

ये निघ्नन्ति निरर्थक परहित ते के न जानीमहे
ह्येव या समभाणि भर्तृहरिणा काष्ठा परा पापिनाम्।
तामेतामतिशेत एव सपरीवारस्य नाश निज-
स्योत्पश्यन्नपि निष्क्रमाय यतते यो नः पुरात्पातकी॥[3]

आनन्दरायमखी ने दैवी तथा आसुरी सम्पत्ति और मन की चञ्चलता के विषय में गीता से अनेक उद्धरण दिये हैं। उनके द्वारा विद्या तथा अविद्या के विषय में श्रुति से दिया गया यह उद्धरण देखिये—

दूरमेते विपरीते विषूची अविद्या या च विद्येति विज्ञाता।[4]

प्रधान वेङ्कप्प ने सीताकल्याणवीथी में वाल्मीकि के प्रति श्रद्धा व्यक्त की है।[5] चोक्कनाथ ने वाल्मीकि के निम्नलिखित सुभाषित को उद्धृत किया है—

'पितृन् समनुवर्तन्ते नरा. मातरमङ्गना:'।[6]

चोक्कनाथ ने भवभूति तथा कालिदास के प्रति आदरभाव व्यक्त किया है तथा उन नवीन कवियों के चापल्य की चर्चा की है जो अपने को इन महान् कवियों से श्रेष्ठ समझते थे—

---

1. मलयजाकल्याणम् नाटिका, द्वितीयाङ्क
2. जीवानन्दन नाटक, 1.32
3. वही, 3.37
4. जीवानन्दन नाटक, षष्ठाङ्क
5. सीताकल्याणवीथी, प्रस्तावना
6. सेवन्तिकापरिणय नाटक, प्रस्तावना

पञ्चषाणि विरचय्य पदानि
क्वाहमेष भवभूतिकविः क्व ।
कालिदासकविरीतिरभव्ये-
त्यामनन्ति कवयो हि नवीनाः ।।[1]

उन्होने कालिदास के इस सुभाषित को अपने नाटक मे उद्धृत किया है—

सता हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तः करणप्रवृत्तयः ।[2]

नल्लाध्वरी तथा प्रधान वेङ्कप्प के रूपको मे प्राप्त कतिपय पद्यो पर भट्टनारायण के वेणीसहार नाटक के पद्यो का प्रभाव दिखाई देता है। वेणीसहार के तृतीयाङ्क मे द्रोणवध के अनन्तर अर्जुनादि के प्रति क्रुद्ध अश्वत्थामा की उक्ति का प्रभाव नल्लाध्वरी के जीवन्मुक्तिकल्याण नाटक मे अज्ञानवर्मा के प्रति क्रुद्ध अमात्य रमणीयचरण की उक्ति पर स्पष्ट है। देखिये—

वेणीसहारनाटक में अश्वत्थामा की उक्ति

कृतमसनुमत दृष्ट वा यैरिद गुरुपातक
मनुजपशुभिर्निर्मर्यादैर्भवद्भिरुदायुधैः ।
नरकरिपुणा सार्द्ध तेषा सभीमकिरीटिना
मयमहमसृङ्मेदोमासैः करोमि दिशा बलिम् ।।

जीवन्मुक्तिकल्याणनाटक मे रमणीयचरण की उक्ति

आत्मस्वामिनमिन्द्रजालविधिना पाशेन बध्नाति यः
पश्यैनं पशुकल्पमल्पधिषण बद्ध्वा पदाक्रम्य च ।
छिन्दक्रन्दत एष तत्त्वमसिना तस्याङ्क खण्डशो
विश्वग्रासपरस्य तेन महतो भूतस्य कुर्या बलिम् ।।[3]

प्रधानवेङ्कप्प के उर्वशीसार्वभौमेहामृग तथा कामविलासभाण के निम्न-लिखित दोनो पद्य वेणीसहार के इस पद्य से प्रभावित हैं—

वेणीसहार का पद्य

चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघात-
सञ्चूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य ।

---

1. सेवितकापरिणय नाटक, प्रस्तावना 1.6
2. वही, प्रथमाङ्क
3 जीवन्मुक्तिकल्याणनाटक, 1 20

स्त्यानावनद्धघनशोणितशोणपाणि-
रुत्तसयिष्यति कचास्तव देवि भीम ।।

कामविलासभाण का पद्य

चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डकृपाणधारा
निर्भिन्नशात्रवविरोधिविनिस्सरद्भिः ।
आरक्तयन् रणभुव मणि शोणकोषे
भूरिप्रतापसरणीररुणी करोमि ।।[1]

उर्वशीसार्वभौमेहामृग का पद्य

चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डवरायुधश्री-
सम्यकप्रकल्पितघनक्षणमत्सहस्रम् ।
उद्दामभीमशरधारवरूथुकाभ्र
विभ्राजमाननभविष्यदभ्रमभ्रम् ।।[2]

रामचन्द्रशेखर के निम्नलिखित पद्य पर वाल्मीकि के पद्य की छाया स्पष्ट है ।

वाल्मीकि का पद्य

कल्याणी बत गाथेय सत्यमिव प्रतिभाति मे ।
एति जीवन्तमानन्द नर वर्षशतैरपि ।।

रामचन्द्रशेखर का पद्य

जीवन्त पुरुष चिरादुपनमेदानन्द इत्यञ्जसा
गाथा सम्प्रति हन्त य निरवधे पारीन्द्रवाराम्बुधे ।।[3]

नल्लाध्वरी के निम्नलिखित पद्य पर भी कालिदास के मेघदूत के पद्य 'त्वामालिख्य प्रणयकुपिता धातुरागैशिलायाम्' का प्रभाव स्पष्ट है ।

नल्लाध्वरी का पद्य

आचूडातलमानखाञ्चलमपि प्रत्यङ्गमत्यद्भुता
चित्रे विन्यसितु तदाकृतिरितो यावन्मयोल्लिरव्यते ।

1. कामविलासभाण पद्य 28 ।
2. उर्वशीसार्वभौमेहामृग, 4 2 ।
3 श्लानन्दकनाटक, 3 1 ।

तावद्विप्लुतहर्षसिन्धुलहरीगाढावगाहक्षरण-
स्तब्धाङ्गस्य मम स्वतोऽपि परत कीदृक् क्रियाकौशलम् ॥[1]

नल्लाध्वरी की भाषा सरल है। वाक्य छोटे-छोटे हैं। पदविन्यास रसोचित है। कहीं कही अनुप्रासित ध्वनियो का प्रयोग किया गया है। इस विषय मे निम्न-लिखित उदाहरण उल्लेखनीय है।

हन्त, न पर्याप्नुवन्ति सहस्रमपि लोचनानि
सहस्रलोचनस्य सौन्दर्यमस्या निर्वर्णयितु,
वर्णयितु वा वाचोऽपि वाचस्पते ।[2]

चोक्कनाथ की भाषा सरल तथा भावानुकूल है। उनके वाक्य छोटे हैं, परन्तु कहीं कहीं उन्होंने अधिक लम्बे वाक्यो का प्रयोग कर अपनी क्लिष्ट शैली का परिचय दिया है।

आनन्दरायमखी की भाषा विषयोचित है। उन्होंने विषय के अनुरूप ही पदो तथा वाक्यो का चयन किया है। निम्नलिखित रूप मे गङ्गावतरण का वर्णन उल्लेखनीय है।

वेगाकृष्टोडुचक्रानुकरणनिपुणश्वेतडिण्डीरखण्ड-
श्लिष्टोर्मीनिर्मितोर्वीवलयविलयनाशङ्कसातङ्कदेवा।
विभ्रश्यन्त्यभ्रगङ्गा विबुधजनभुव. सर्वदुर्वारगर्वा
निर्विण्णा धूर्जटीयोद्भटघटितजटाजूटगर्भे निनिल्ये ॥[3]

आनन्दरायमखी की निम्नलिखित सूक्ति पर भवभूति का प्रभाव है।

भवभूति की सूक्ति

लौकिकाना हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते।
ऋषीणा पुनराद्याना वाचमर्थोऽनुधावति ॥[4]

आनन्दरायमखी की सूक्ति

सर्वेषा च मनुष्याणामर्थं वागनुवर्तते।
यमिना तु कृतार्थाना वाचमर्थोऽनुवर्तते ॥[5]

---

1 जीवन्मुक्तिकल्याणनाटक, 1.13।
2 वही, प्रथमाङ्क।
3. जीवानन्दन नाटक, 7.12।
4 उत्तररामचरित, 1 10।
5 विद्यापरिणय नाटक, 6 31।

जगन्नाथ की भाषा सरल तथा सुबोध है। यह सूक्तियों तथा लोकोक्तियों से मण्डित होने के कारण प्रभावशील है। जगन्नाथ पर भवभूति का प्रभाव है। उनके रतिमन्मथ नाटक मे रति के विरह मे दुःखी मन्मथ की निम्नलिखित उक्ति भवभूति के उत्तररामचरित मे सीता के विरह से पीडित राम की उक्ति से प्रभावित है।

भवभूति का पद्य

हा हा देवि स्फुटति हृदय ध्वसते देहबन्ध
शून्य मन्ये जगदविरलज्वालमन्तर्ज्वलामि।
सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा
विष्वङ्मोह स्थगयति कथ मन्दभाग्य करोमि ॥[1]

जगन्नाथ का पद्य

विवेक न्यक्कुर्वन् सहजमपि धैर्य शिथिलयन्
खिलीकुर्वन्व्रीडा विनयमतिमात्र व्यपनयन्।
विमोह व्यातन्वन्नहह परिताप बहलयन्
इयत्तातिक्रान्त प्रभवति विकार किमपि मे ॥[2]

जगन्नाथ मावल की भाषा अनुप्रासमयी है। वह रसमयी तथा भाववती है। उनका पदविन्यास विषय के अनुरूप है। वेशवाटी का निम्नलिखित वर्णन उल्लेखनीय है।

इय खलु सततानगसगरप्रसङ्गसप्रवृत्तमृदङ्ग
वीणावेणुनिनदनिरन्तरितदिगन्तरालविराज-
मानोद्यानमध्यविनिर्यदलिकुलझङ्कारमदन-
शरासनटङ्कारपरिक्षुभिता, कामिजनमनोनु-
कूलविविध विलासविलसितविलासिनीसघटन-
विदग्धपीठमर्दविटचेटविदूषककुलसकुला वेशवाटी ।[3]

विश्वेश्वर पाण्डेय की भाषा अलङ्कारो से मण्डित है। यह रसानुकूल तथा भावो को व्यक्त करने मे सक्षम है। निम्नलिखित उदाहरण उल्लेखनीय है।

---

1 उत्तररामचरित 3 38।
2. रतिमन्मथ नाटक, 4 17।
3 अनङ्गविजयभाण।

सा वेणी करवालिकेव सुमनोबाणस्य जेतु वन
तद्वक्त्र प्रतिवादितामुपगत राकासुधादीधितेः ।
सैव भ्रूस्मरचापवीरुदिव वक्षोरुहौ केलती
केलीकन्दुकसुन्दरौ तडिदिव प्रोद्भासुरा सा तनु. ॥[1]

द्वारकानाथ की भाषा समासान्तपदों तथा लम्बे-लम्बे वाक्यों से युक्त है। इसमें अनुप्रासों की बहुलता है। गीतगोविन्दकार जयदेव की भाषा के समान यह भी कोमलकान्त पदावली से मण्डित है। अनेक गीतों से युक्त होने के कारण यह सङ्गीतमयी है।

राजविजयनाटक की भाषा समासबहुला है। यह अलङ्कारों से मण्डित है। यह भाषा कहीं-कहीं बोलचाल की स्थानीय बङ्गभाषा से प्रभावित है। जनसबाध को व्यक्त करने के लिए कवि ने 'तिलार्पणस्थानरहितेव मेदिनी परिस्फुरति' इस वाक्य का प्रयोग किया है। यह वाक्य बङ्गीय लोकोक्ति से प्रभावित है। कवि ने प्रस्तावना में कतिपय समासान्तपदों से युक्त लम्बे-लम्बे वाक्यों का प्रयोग किया है।

रामपाणिवाद की भाषा विषय तथा रस के अनुकूल है। सामान्यत उन्होंने सरल भाषा का ही प्रयोग किया है। कोमल भावों को व्यक्त करते समय उन्होंने सरल पदावली का ही प्रयोग किया है।[2] युद्ध वर्णन में उन्होंने संयुक्ताक्षरप्रचुरा तथा समासबहुला भाषा का प्रयोग किया है।[3] इसी प्रकार चित्रकूट पर्वत का वर्णन करने में उन्होंने समासान्तपदावली का प्रयोग किया है।[4] अलङ्कारों के प्रयोग से उनकी भाषा के सौन्दर्य में वृद्धि हुई है तथा सूक्तियों और लोकोक्तियों के प्रयोग से उसकी प्रभावोत्पादकता बढ़ी है।

रामवर्मा की भाषा विषय के अनुरूप है। कहीं उनके वाक्य छोटे-छोटे हैं तथा कहीं लम्बे-लम्बे और बहुपदव्याप्तिव्यापी। मल्लूक को देखकर भीत हुई वार-सुन्दरियों की अवस्था का वर्णन उल्लेखनीय है।

लोलल्लोलन्नयनयुगलीतारकः सम्भ्रमेण
त्रस्तत्स्रंसद्वसनयमनव्यापृतैकैकहस्तः ।

1. नवमालिका नाटिका, 2.4
2. सीताराघव नाटक, 7.31–32
3. वही, 6.27
4. वही 7.12

दृष्ट्वा दृष्ट्वा विवलितमुखं प्रौढभल्लूकमल्लं
विभ्यद् विभ्यच्चलति सहसा वाणिनीनां कलापः ॥[1]

शिवकवि की भाषा सरल और सुबोध है। उनके वाक्य प्रायः छोटे-छोटे हैं, परन्तु विषय के अनुसार उन्होंने कहीं-कहीं समासान्त पदों से युक्त लम्बे-लम्बे वाक्यों का भी प्रयोग किया है। उनकी भाषा अनुप्रास से मण्डित है। कलिपुरुषों के वर्णन में उन्होंने समासान्त पदावली का प्रयोग किया है।[2] परन्तु कतिपय स्थलों पर उनकी भाषा व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध हो गयी है। उदाहरणार्थ, 'विवेकचन्द्रोदये नाम्नि' तथा 'देवसेनयापि दिव अधिरुरहे' आदि।

काशीपतिकविराज की भाषा अलङ्कारों से मण्डित है। उन्होंने छोटे-छोटे सरल वाक्यों का भी प्रयोग किया है तथा समासान्तपदावली युक्त लम्बे-लम्बे वाक्यों का भी। उनके अनुप्रासमण्डित पद्य का निम्नलिखित उदाहरण उल्लेखनीय है।

कुटिलचिकुरा कुन्दस्मेरा कुरङ्गविलोचना
कमलवदना कम्बुग्रीवा कठोरपयोधरा।
कनकलतिकाकान्ता कान्ता कराङ्गगता गता
कठिनहृदय काम काम कथं कुशलं तव ॥[3]

हरियज्वा की भाषा सरल है। उन्होंने अनेक सूक्तियों का प्रयोग किया है जिससे उनकी भाषा बहुत प्रभावशील है।

कृष्णदत्त की भाषा अनुप्रासमयी है। अनेक बन्धों तथा प्रबन्धों के प्रयोग के कारण कतिपय स्थलों पर उनकी भाषा दुरूह हो गई है। उन्होंने कतिपय शब्दों की व्युत्पत्ति तथा व्याख्या अपने ढंग से की है। यह सिद्ध करने के लिये कि स्त्री सदैव सुख देने वाली होती है, उन्होंने 'कान्ता' शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है—'कं सुखमन्ते ह्यवसाने यस्या सैषा सम्प्रति कान्ता कथितेति।[4] उन्होंने सर्वदा के अर्थ में 'सार्वदिक' शब्द का प्रयोग किया है। इसी प्रकार कवि ने 'कोकिल' शब्द की व्याख्या भी अपने ढंग से की है।[5] कृष्णदत्त की भाषा पर कहीं-कहीं भारवि के किरातार्जुनीय

---

1 शृङ्गारसुधाकरभाण, पद्य 65
2. विवेकचन्द्रोदय नाटक, 4 10
3 मुकुन्दानन्द भाण
4. सान्द्रकुतूहलप्रहसन, तृतीयाङ्क
5 वही 3 18

महाकाव्य की भाषा का प्रभाव दिखाई देता है। कृष्णदत्त ने भारवि के 'वृजन्ति ते मूढधिय पराभवम्' पद्य को अपने रूपक मे उद्धृत किया है।[1]

प्रधान वेङ्कप्प की भाषा सरल है। सामान्यतः उनके वाक्य छोटे-छोटे हैं। उनकी भाषा भाव के अनुकूल है। उनकी भाषा कालिदास, भट्ट नारायण तथा बाण भट्ट की भाषा से प्रभावित है। कालिदास के कुमारसम्भव महाकाव्य के निम्नलिखित पद्य का प्रभाव प्रधान वेङ्कप्प के रुक्मिणीमाधवाक के पद्य पर दिखाई देता है।

कालिदास का पद्य

तथा समक्ष दहता मनोभवं
पिनाकिना भग्नमनोरथा सती।
निनिन्द रूप हृदयेन पार्वती
प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता ॥[2]

प्रधान वेङ्कप्प का पद्य

यत्सौकुमार्यमितरासुलभं लताना
यच्चाभिवृद्धिकरण द्युतिधारणं यत्।
तत्सर्वमेव सफल भविता तदानी
यत्रानुरूपसहकारतरूपगूहः ॥[3]

इसी प्रकार कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तल के पद्य 'सरसिजमनुविद्ध शैवलेनापि रम्यम्' का प्रभाव प्रधान वेङ्कप्प के निम्नलिखित पद्यो पर स्पष्ट है।

1 विधानमस्याः खलु भूषणाना
विधानमेवातनुतेऽङ्गलक्ष्म्याः।
तथापि सौभाग्यविवर्धनाय
वितन्यते वीरवरोचितायः ॥[4]

2 *लाक्षामङ्घ्रिरुचा त्वसौ शुक्लये दीप्त्या दृशोर्दीर्घयोः*
हास हासमरीचिभिश्च मकरीपत्राणि गण्डत्विषा।
जानन्त्या प्रभयैव काञ्चनमय चेल च तन्वीमणिः
भूषा एव परिष्करोति भुवनव्यामोहकैरङ्गकैः ॥[5]

---

1. सारङ्गुसूहलप्रहसन, चतुर्थाङ्क
2. कुमारसम्भव, 5 1
3 रुक्मिणीमाधवाङ्क, पद्य 26
4. लक्ष्मीस्वयंवरसमवकार, 2.7
5. कामविलासभाण, पद्य 77

प्रधानवेङ्कप्प ने कतिपय स्थलो पर बाणभट्ट के समान ही विषय के अनुरूप समासान्त पदो से युक्त बहुपङ्क्तिव्यापी वाक्यो का भी प्रयोग किया है । कामविलास भाण म बालातप का यह वणन उल्लेखनीय है ।

> तदनु किल प्रतिकलोपचीयमानमदारम्भशुण्डावलय-
> विजयक्षिप्तकरिकुम्भसभावितसिन्दूरपरागसमुदय
> इव समवायगुरुरिव पद्मरागद्युते
> सहोदर इव धातुवर्गस्य, सुहृदिव कोशानुरागस्य,
> सीमन्त इव लाक्षाश्रिय पुरत एव परिपतति
> बालातप ।

रामचन्द्रशेखर की भाषा विषय के अनुरूप है । उन्होने अनेक अलकारो का प्रयोग किया है । कतिपय दुर्लभ क्रियारूप उनके नाटक मे प्राप्त होते हैं, जिससे उनके व्याकरण के गहन अध्ययन का पता चलता है । निम्नलिखित उदाहरण उल्लेखनीय है ।

> 'गोर्णं स एव पुत्ररूपेण पर्यणसीत' ।[1]
> 'तत पितृभ्या नन्दक इत्यभिहित प्रतिदिनसमे-
> धमानमूर्तिराशातविश्रान्तकीर्तिरवर्तिष्ट ।[2]

रामचन्द्रशेखर द्वारा 'णमुल' प्रत्यय का प्रयोग निम्नलिखित पद्य मे देखिये—

> आयामिन्या शिलायामपगतकरुणा क्रन्दतो मन्दसत्वान्
> ग्राह ग्राह किराता श्रवणकटुरवैर्भीषयन्तोऽतिवेगात् ।
> दाह दाह प्रदीप्ते हुतभुजि यमुनाभ्रातृभृत्या इवैते
> पेप पेप कराग्रै सममतिशकलीकृत्य हा हा ग्रसन्ति ।।[3]

कृष्णदत्तमैथिल की भाषा सरल है । यह अलङ्कारो और सूक्तियो से मण्डित है । सामान्यत. उन्होने छोटे छोटे वाक्यो का ही प्रयोग किया है । केवल प्रस्तावना मे उन्होंने सामान्य पदावली से युक्त लम्बे-लम्बे वाक्या का प्रयोग किया है । उनके द्वारा की गई व्यवस्था उल्लेखनीय है ।

> देवो ज परमेश्वर परहितोऽस्त्यस्मिन्स्वभवते यतो
> यद्विप्रावनबुद्धिमत्युदयते देङ्वजे चान्वय ।

---

1 कलानन्दक नाटक प्रथमाङ्क

2 वही,

3 कलानन्दक नाटक, 3.23

अर्थी यत्स्फुटमाह देहि हयमित्यर्थे प्रकृत्युक्तिभि
र्देवाजीति यथार्थमेव बलते नामास्य तत्सर्वथा ।।[1]

कृष्णदत्त मैथिल के व्याकरणपाण्डित्य का परिचय उनके निम्नलिखित पद्य से भी प्राप्त होता है ।

व्याकृतौ भवति दीर्घह्रस्वगा
लङ्‌कृतौ च शसगा सवर्णता ।।[2]

कवि के निम्नलिखित वाक्य मे 'शङ्कीः' तथा 'अगामि' क्रियारूपो का प्रयोग उल्लेखनीय है।

मा शङ्की , सचिवप्रेरणया मया मृगयायै
वनमगामि ।[3]

कृष्णदत्त मैथिल द्वारा निम्नलिखित पद्य मे दी गई 'दार' शब्द की व्याख्या देखिये—

प्राणेभ्योऽपि प्रियतमाद्दारयन्ति सुहृज्जनात् ।
यतस्ततो धारयन्ति 'दार' शब्दमिह स्त्रियाः ।।[4]

पुरञ्जनचरित नाटक के पञ्चमाङ्क मे प्रयुक्त दशावतारस्तुति पर जयदेव के गीतगोविन्द का प्रभाव दिखाई देता है। पुरञ्जनचरित मे दशावतारस्तुति उल्लेखनीय है।

जय जय मीनशरीर मुरारे ।
मङ्गलमय मधुसूदन माधव करुणाकर कलुषारे ।।[5]

इस दशावतारस्तुति मे सुललित कोमल कान्त पदावली का प्रयोग किया गया है।

कृष्णदत्त मैथिल की अनुप्रासमयी भाषा तथा समासान्तपदावलीयुक्त लम्बे वाक्य का उदाहरण निम्नलिखित है।

यत्र व्रततियुवतिविततिललितकिसलयकरतल–
कलितमरकतमणिमयवलयरणितमिव मधुमद–

---

1. पुरञ्जनचरित नाटक, प्रस्तावना
2. वही, 1.13
3 पुरञ्जनचरित नाटक, प्रथमाङ्क
4. वही 3,7
5. वही, 5.8

मुदितसमुदितमधुकरनिकरमिलितमदकलकलरव
कुलकलकुहुकितमिदमभिमदयति रसिकजन–
हृदयमिति ।[1]

वीरराघव की भाषा सरल है। उन्होंने अनेक अलङ्कारों के प्रयोग द्वारा भाषा के सौन्दर्य में वृद्धि की है। उनकी पदावली प्राय अनुप्रासित है। उनकी सरल भाषा का उदाहरण निम्नलिखि है।

अद्य प्रसीदति चिरेण विधि प्रसन्नो
अद्य प्रसीदति पर कुसुमायुधोऽपि ।
अद्य प्रसीदति वसन्तसखो नवेन्दु–
रद्य प्रसीदति समस्तमिद जगच्च ।।[2]

वीरराघव ने कहीं-कहीं समासान्त पदावलीयुक्त लम्बे-लम्बे वाक्यों का भी प्रयोग किया है। वीरराघव के एक पद्य पर—

भिद्यते हृदयग्रन्थि छिद्यन्ते सर्वसशया. ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ।।

इस उपनिषदुक्ति का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

वीरराघव का पद्य

तस्मिन्दृष्टे सपदि हृदय भिद्यते मुग्धभावात्
छिद्यन्तेऽस्यास्तदनुसरणे सशया सर्व एव ।
क्षीयन्ते च स्मितसरसतादीनि कर्माण्यमुष्या
स्थानेय न स्मरति मुदिता स्व शरीर तदात्वे ।।[3]

वीरराघव के निम्नलिखित पद्य में 'णमुल्' प्रत्यय का प्रयोग उल्लेखीनीय है।

ध्याय ध्याय निरुपमपद चम्पकाङ्ग्याः
द्राव द्राव प्रवहति मनो मामक स्वेदलक्ष्यात् ।

---

1. पुरञ्जनचरित नाटक, द्वितीयाङ्क ।
2. मलयजाकल्याणम् नाटिका, 4.10 ।
3. वही, 1.13 ।

नो चेदेव कथमिव चिर सस्तुतानामपि स्यात्
भावाना मे हृदयसरणिप्रत्यभिज्ञानभिज्ञा ।।[1]

सदाशिव उद्गाता की भाषा भावो के अनुकूल है । उन्होने छोटे-छोटे वाक्यो का प्रयोग किया है। निम्नलिखित पद्य मे उनके द्वारा किया गया नामधातु का प्रयोग उल्लेखनीय है ।

पुर शीर्षण्यन्ते शिरसि विनियुक्ताः शिखरिणा
सिताभ्रायन्तेऽन्ये कतिपयदिगबलाना निटिलगा ।
परे भूमीभागे घनदिनदलत्केतकरजो
ऽजायन्ते नूत्नोदितमितनिशारत्नकिरणा ।।[2]

मोहिनी की चेष्टाओ का वर्णन कवि ने बहुपङ्क्तिव्यापी एक लम्बे वाक्य मे किया है ।[3] उनकी भाषा अनेक स्थलो पर अनुप्रासमयी है ।

मल्लारि आराध्य की भाषा अलङ्कारो तथा सूक्तियों से मण्डित है । उन्होने केवल प्रस्तावना मे अनुप्रासित तथा समासान्त पदावली युक्त लम्बे-लम्बे वाक्यो का प्रयोग किया है ।[4] अन्यत्र उनके वाक्य छोटे-छोटे हैं । उन्होने केवल एक स्थल पर एकाक्षरबन्ध का प्रयोग किया है ।[5] मल्लारि आराध्य की भाषा पर कालिदास का प्रभाव दिखाई देता है । उन्होने कालिदास की इस सूक्ति को भी उद्धृत किया है—

'सन्तः सख्य साप्तपदीनमाहु. ।।[6]

मल्लारि आराध्य की भाषा मे कतिपय व्याकरण की अशुद्धियाँ है । उन्होने एक स्थल पर 'हन्' धातु के उत्तम पुरुष एकवचन मे 'हनामि' रूप का प्रयोग किया है, जो व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध है ।[7] व्याकरण की दृष्टि से

---

1 मलयजाकल्याणम् नाटिका, 1 15 ।
2 प्रमुदितगोविन्द नाटक, 2 20 ।
3 वही, सप्तमाङ्क ।
4 शिवलिङ्गसूर्योदयनाटक, प्रस्तावना ।
5 वही, 1 33 ।
6 कालिदासकृत कुमारसम्भवमहाकाव्य, पञ्चमसर्ग तथा मल्लारि आराध्य कृत शिवलिङ्गसूर्योदयनाटक, पञ्चमाङ्क ।
7 शिवलिङ्गसूर्योदय नाटक, प्रथमाङ्क ।

यहा 'हनामि' के स्थान पर 'हन्मि' रूप होना चाहिये। इसी प्रकार उनके निम्न-लिखित पद्य में भाषा की अशुद्धियां हैं।

प्रत्येक च समिच्छषालदृषदाकीर्णोदरा यज्वना
मावामास्सखि धर्ममार्गनिरता भूपास्तथा योगिन:।
कापायाम्बरदण्डमृद्धटयुतास्सन्यासिनोऽन्वेषिता:
भक्तिः क्वापि मयाद्य हन्त दुहितुर्नामापि न श्रूयते ।।[5]

उपर्युक्त पद्य मे 'धर्ममार्गनिरता' के स्थान पर 'धर्ममार्गनिरतानाम्' 'योगिन' के स्थान पर 'योगिनाम्' तथा 'सन्यासिनो' के स्थान पर 'सन्यासिनाम्' होना चाहिये। इसी प्रकार 'भक्ति' के स्थान पर 'भक्ते' का प्रयोग होना चाहिये। सम्भवत छन्दसौष्ठव के लिये रूपककार ने व्याकरणसम्बन्धी अशुद्धियो को इस पद्य मे बना रहने दिया है।

देवराजकवि की भाषा सरल है। उनका पदविन्यास विषय के अनुरूप है। उन्होंने कही-कही छोटे-छोटे वाक्यो का प्रयोग किया है तथा कही समासान्तपदावली-युक्त लम्बे वाक्यो का। बालमार्तण्डविजय नाटक के पञ्चमाङ्क मे उन्होने एक बहुपङ्क्तिव्यापी वाक्य का प्रयोग किया है। उन्होने 'तिमतिमायन्ते' तथा 'काननचन्द्रिकायते' आदि नामधातु के 'क्यङ्' प्रत्यय से बने हुए क्रियापदो का प्रयोग किया है। उनकी भाषा मे अलङ्कारों का प्रयोग स्वाभाविक रूप से हुआ है। सूक्तियो और लोकोक्तियों से युक्त होने के कारण उनकी भाषा प्रभावशील है। देवराज कवि की भाषा पर कहीं-कहीं कालिदास तथा विशाखदत्त का प्रभाव है।

घनश्याम की भाषा सरल है। उन्होंने चण्डानुरञ्जनप्रहसन मे गीता तथा बोधायनसूत्र के अनुकरण पर कतिपय श्लोक तथा सूत्र बनाकर प्रयुक्त किये हैं। उन्होंने निम्नलिखित पद्य मे 'पुरोहित' शब्द की व्युत्पत्ति बताई है।

पुरीषस्य च रोगस्य हिंसायास्तस्करस्य च।
आद्यक्षराणि सगृह्य विधिश्चक्रे पुरोहितम् ।।[2]

यह पद्य व्यङ्ग्यात्मक है। घनश्याम के वाक्य प्राय छोटे हैं, परन्तु मदनसञ्जीवनभाण मे उन्होंने विट की प्रेयसी चित्रलेखा के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए एक बहुपृष्ठात्मक वाक्य का प्रयोग किया है। कुमारविजय नाटक मे उनके द्वारा नामधातु प्रत्यय 'क्यङ्' का प्रयोग निम्नलिखित पद्य मे हुआ है।

1. शिवलिङ्गसूर्योदय नाटक, 33।
2. चण्डानुरञ्जन, पद्य 72।

एषा यः कवचायते वपुषि मे भूतिर्मनागर्पिता
शार्दूलस्य महातिरस्करणिका मारायते चर्म च ।
बाहायामपि नागराजवलयं वक्रायते केवलं
सर्गादिव लघुः शिरोभुवि जटाजूटोऽपि शैलायते ॥[1]

वेङ्कटेश्वर, चयनिचन्द्रशेखर, बाणेश्वर शर्मा वेङ्कटाचार्य, श्रीधर, शङ्करदीक्षित, हरिहरोपाध्याय, वेङ्कटसुब्रह्मण्याध्वरी तथा सदाशिव की भाषा सरल तथा भावानुकूल है। इन रूपककारो ने आवश्यकतानुसार छोटे अथवा लम्बे वाक्यो का प्रयोग किया है। इनकी भाषा सूक्तियो के प्रयोग से प्रभावोत्पादक है।

शैली

अलङ्कारो के आधार पर शैली का विभाजन दो वर्गों मे किया जा सकता है। (1) अलकृत (2) अनलकृत। अट्ठारहवी शताब्दी के अधिकाश रूपको की शैली अलकृत प्रकार की है। चोक्कनाथ, जगन्नाथ, जगन्नाथकावल, विश्वेश्वर पाण्डेय, घनश्याम, देवराजकवि, राजविजयनाटक के कर्त्ता द्वारकानाथ, रामपाणिवाद रामवर्मा, काशीपतिकविराज, कृष्णदत्त, प्रधान वेङ्कप्प, रामचन्द्रशेखर, कृष्णदत्त मैथिल, वीरराघव, प्रमुदितगोविन्द नाटक के रचयिता सदाशिव अनादि कवि, बाणेश्वर शर्मा, चयनि चन्द्रशेखर, शङ्करदीक्षित, हरिहरोपाध्याय, वेङ्कटाचार्य, भाग्यमहोदय नाटक के कर्त्ता जगन्नाथ, सदाशिव तथा वेङ्कटसुब्रह्मण्याध्वरी ने लङ्कृत शैली का प्रयोग किया है। नल्लाध्वरी, आनन्दरायमखी, शिवकवि,हरियज्वा, मल्लारि आराध्य, नृसिह, नीलकण्ठ, वेङ्कटेश्वर, जातवेद तथा श्रीधर ने अनलकृत शैली का प्रयोग किया है। परन्तु अनलकृत शैली का प्रयोग करने वाले रूपककारो के रूपको मे भी अलङ्कारो का सर्वथा अभाव नही है। उनमें भी स्वल्प मात्रा मे अलकारो का प्रयोग हुआ है। जिन रूपककारो ने अलङ्कृत शैली का प्रयोग किया है। उनके रूपको मे विविध अलकारो का प्रयोग हुआ है। अलकारो के प्रयोग से भाषा के सौन्दर्य मे वृद्धि हुई है। इन रूपको मे अलकारो का प्रयोग स्वाभाविक रूप से हुआ है, भार स्वरूप नही।

शैली का दूसरा विभाजन (1) सरल तथा (2) कठिन विभागो मे किया जा सकता है। चोक्कनाथ, रामपाणिवाद, शिवकवि, हरियज्वा, प्रधानवेङ्कप्प, रामचन्द्र शेखर, कृष्णदत्तमैथिल तथा वेङ्कटेश्वर कवि की शैली सरल है। जगन्नाथ कावल,

---

1. कुमारविजय नाटक 32

रामवर्मा, काशीपति कविराज तथा कृष्णदत्त ने अपने रूपकों में कठिन शैली का प्रयोग किया है। जगन्नाथ कावल, वीरराघव, घनश्याम, रामवर्मा, काशीपतिकविराज, बाणेश्वर शर्मा, सदाशिव उद्गाता, चयनिचन्द्रशेखर, सदाशिव कवि, तथा वेङ्कटाचार्य ने अपने रूपकों में समासबहुला गौडी रीति का प्रयोग किया है। जगन्नाथ कावल द्वारा प्रयुक्त गौडी शैली का उदाहरण निम्नलिखित राजधानी वर्णन में उल्लेखनीय है।

कथमियमविरतनिरतवनिताचरणोरुरणन्म–
णिमञ्जीरमञ्जुशिञ्जितशब्दायमानहर्म्यतला,
विविधतरानङ्गसङ्गविलासरसिकविलासिजनो–
रस्थलोर्चितहरिचन्दनघुसृणद्रवघुमघुमिता–
खिलाशान्तरा, अविरतव्रह्ममाणागणितवारणगण
ह्लेषमाणोत्तु गतुरगसघप्रतिक्षणक्ष्वेलमाणो–
द्भटभटभटारभटोपटपटनिनदनिरन्तरा राजधानी ।।[1]

नल्लाध्वरी, आनन्दरायमखी, जगन्नाथ, हरियज्वा, शिवकवि तथा कृष्णदत्त मैथिल ने अपने रूपकों में वैदर्भी शैली का प्रयोग किया है। उन्होंने प्रतिपाद्य विषय को स्पष्ट करने के लिये अनेक उदाहरण दिये हैं। हरियज्वा के द्वारा प्रयुक्त वैदर्भी शैली के उदाहरण देखिये—

शीतोपचारे विहितेऽपि यत्ना–
दामज्वर शाम्यति नैव यद्वत् ।
तद्वन्न शाम्यत्युचितोपकारे
कृतेऽपि सतप्यति मत्सरी पुन ।।[2]

कतिपय रूपककारों ने यत्र तत्र प्रश्नोत्तरात्मक शैली का प्रयोग किया है। द्वारकानाथ की प्रश्नोत्तरात्मक शैली का निम्नलिखित उदाहरण उल्लेखनीय है।

यहाँ कृष्णचरित्र जानने वाली एक नारी तथा राधा के सलाप का वर्णन है।

क्व यान ते वृन्दावनभुवि कथ कान्तकुसुमे
च्छया भागाःकस्माद्व्रजपतितनूज पथि जनान् ।
रुणद्ध्यस्मिन्धूर्तः प्रथयति पर धार्ष्ट्यमपि का
मदीयामी स्तस्मान्नृपतिननयास्म्यच्युतमति ।।[3]

---

1. अनङ्गविजयभाण
2. विवेकमिहिर नाटक, 1 19
3. गोविन्दवल्लभ नाटक, 6 6

देवराजकवि, प्रधानवेङ्कप्प तथा वेङ्कटसुब्रह्मण्याध्वरी ने अभिजातशैली का प्रयोग किया है। देवराजकवि द्वारा प्रयुक्त अभिजात शैली का उदाहरण उल्लेखनीय है। यहाँ कवि ने अपने नाम 'देवराज' को सूत्रधार द्वारा इस प्रकार बताया है—

परस्परादेशतया प्रयुक्त हलवर्णकित्वाद्भुतवेदरूपम् ।
स्वकीयनामाथपद वहन्त बाले कवि वेत्सि हि राजचूडम् ।।[1]

कतिपय रूपककारो ने यत्र तत्र द्विरुक्ति शैली का प्रयोग किया है। द्वारकानाथ द्वारा इस शैली का प्रयोग उल्लेखनीय है।

जयति जयति नन्दो नन्दनेनात्र नित्य
जयति जयति नित्य श्रीयशोदासुतेन ।
जयति जयति नित्य गोकुल वल्लभेन
जयति जयति कृष्णो नित्यमेतै प्रियैश्च ।।[2]

कतिपय रूपककारो ने बाणभट्ट की शैली का अनुकरण किया है। यथा काशीपतिकविराज—

सा खलु प्रथमावलोकनप्रभृतिप्रकर्षेण वा
प्राचीनपुण्यपरिपाकानाम्, अनुग्रहेण वा
शुभग्रहाणाम्, आनुकूल्येन वा कुलदेवतानाम्,
अनुरोधेन वा मधुमासवासराणाम्, दाक्षिण्येन
वा दक्षिणानिलानाम्— ... ...
—किन्त्वसावहमपि शोकमनीकृत. ।।[3]

आनन्दरायमखी ने भवभूति की शैली अपना कर करुण रस की सृष्टि की है। निम्नलिखित पद्य मे पुत्र-शोक से सन्तप्त यक्ष्मा का विलाप उल्लेखनीय है।

भोभोः सुता क्व नु गता स्थ विना भवद्भि
र्जीर्णाटवीव जगती परिदृश्यते मे ।
आक्रम्यते च तमसा हरिदन्तराल
शोकाग्निसवलितमुत्तपते वपुश्च ।।[4]

कतिपय रूपककारो ने कृष्णमिश्र के द्वारा प्रबोधचन्द्रोदय नाटक म प्रयुक्त शैली को अपनाया है। ये रूपककार हैं—नल्लाध्वरी, आनन्दरायमखी, शिवकवि,

---

1 बालमार्तण्डविजय नाटक, प्रस्तावना
2 गोविन्दवल्लभ नाटक, 2.25
3 मुकुन्दानन्दभाण
4 जीवानन्दन नाटक, 6 92

हरियज्वा मल्लारि आराध्य नृसिंह, कृष्णदत्तमैथिल तथा जातवेद। इन रूपककारो ने प्रतीक शैली को अपनाया है।

उपर्युक्त शैलीविवेचन से यह स्पष्ट है कि अट्ठारहवी शताब्दी के रूपककारो ने अपने रूपको मे विविध शैलियो को अपनाया। इस शताब्दी मे समासबहुला गौडी शैली की ही प्रधानता रही।

छन्द

अट्ठारहवी शती के नाटको मे बहुविध छन्द मिलते है। यथा—

अक्षरवृत्त

समवृत्त

इस शताब्दी के रूपको मे अनेक प्रकार के समवृत्तो का प्रयोग हुआ है। प्रत्येक पाद मे 8 अक्षर वाले समवृत्त से लेकर प्रत्येक पाद मे 27 अथवा अधिक अक्षर वाले समवृत्त का प्रयोग इन रूपको मे देखा जा सकता है। इन रूपको मे निम्नलिखित समवृत्तो का प्रयोग किया गया है—

8 अक्षर वाले समवृत्त	— अनुष्टुप्।
11 अक्षर वाले समवृत्त	— इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, दोधक, रथोद्धता, शालिनी तथा स्वागता।
12 अक्षर वाले समवृत्त	— इन्द्रवशा, तोटक, द्रुतविलम्बित, प्रमिताक्षरा, भुजङ्गप्रयात, मालती तथा वशस्थविल।
13 अक्षर वाले समवृत्त	— कलहस, प्रहर्षिणी, मञ्जुभाषिणी, मत्तमयूरी, रुचिरा, चण्डी तथा प्रबोधिता।
14 अक्षर वाले समवृत्त	— वसन्ततिलका तथा नान्दीमुखी।
15 अक्षर वाले समवृत्त	— मालिनी।
16 अक्षर वाले समवृत्त	— पञ्चचामर।
17 अक्षर वाले समवृत्त	— नर्दटक, पृथ्वी, मन्दाक्रान्ता, शिखरिणी तथा हरिणी।
18 अक्षर वाले समवृत्त	— नाराच।
19 अक्षर वाले समवृत्त	— शार्दूलविक्रीडित।
20 अक्षर वाले समवृत्त	— शोभा तथा मत्तेभ।
21 अक्षर वाले समवृत्त	—स्रग्धरा।
24 अक्षर वाले समवृत्त	— दुर्मिल।
27 अथवा इससे अधिक अक्षर वाले समवृत्त	— दण्डक।

अर्धसमवृत्त

इस शताब्दी के रूपकों मे जिन अर्धसमवृत्तों का प्रयोग हुआ है, वे हैं— अपरवक्त्र (वैतालीय), पुष्पिताग्रा (वैतालीय अथवा औपच्छन्दसिक), वियोगिनी (वैतालीय अथवा सुन्दरी) तथा मालभारिणी।

विषमवृत्त

विषमवृत्तो मे उद्गता तथा गाथा का प्रयोग इस शताब्दी के रूपको मे हुआ है।

जाति अथवा मात्रिक वृत्त

अट्ठारहवी शताब्दी के रूपको मे जिन मात्रिक वृत्तो का प्रयोग हुआ है, वे हैं— आर्या, गीति, उपगीति, उद्गीति तथा आर्यागीति।

अट्ठारहवी शताब्दी के रूपको मे शार्दूलविक्रीडित का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है। इस शताब्दी के अधिकाश रूपको का प्रमुख छन्द शार्दूलविक्रीडित ही है। नल्लाध्वरी, आनन्दरायमखी, जगन्नाथ, जगन्नाथ कावल, विश्वेश्वर पाण्डेय, द्वारकानाथ, रामपाणिवाद, कृष्णदत्तमैथिल, वीरराघव, देवराजकवि तथा वेङ्कटसुब्रह्मण्याध्वरी आदि रूपककारो ने शार्दूलविक्रीडित का प्रयोग प्रचुरता से किया है। प्रधान वेङ्कप्प को वसन्ततिलका बहुत प्रिय है। उनके उर्वशीसार्वभौमईहामृग तथा रुक्मिणी-माधवाङ्क मे वसन्ततिलका ही प्रमुख छन्द है। रामचन्द्रशेखर को शार्दूलविक्रीडित तथा अनुष्टुप् समान रूप से प्रिय है। शिवकवि तथा हरियज्वा को अनुष्टुप् विशेष प्रिय है। चोक्कनाथ को गीतिवृत्त प्रिय है। (देखिये, सलग्न सारणी)

इस शताब्दी के रूपको मे जिन छन्दो का प्रयोग बहुत कम हुआ है, वे हैं— दुर्मिल, मत्तेभ, कलहस, पञ्चचामर, तोटक, इन्द्रवशा, नर्दटक, दण्डक, भुजङ्गप्रयात, प्रबोधिता, रुचिरा, मत्तमयूर, प्रमिताक्षरा मालती, लोला, चण्डी तथा नान्दीमुखी। शङ्करदीक्षित ने प्रद्युम्नविजय नाटक मे दुर्मिल तथा मत्तेभ छन्द का प्रयोग किया है। वेङ्कटाचार्य ने भी मत्तेभ छन्द का प्रयोग शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक मे किया है। कृष्णदत्त, घनश्याम, वेङ्कटाचार्य तथा नीलकण्ठ कवि ने पञ्चचामर का प्रयोग किया है। तोटक का प्रयोग द्वारकानाथ तथा कृष्णदत्त ने किया है। नान्दीमुखी का प्रयोग जगन्नाथ ने अपने भाग्यमहोदय नाटक मे केवल एक स्थान पर किया है। इसी प्रकार चण्डी तथा लोला का प्रयोग अनादि कवि ने अपनी मणिमाला नाटिका मे एक स्थल पर ही किया है। दण्डक का प्रयोग आनन्दरायमखी, रामचन्द्रशेखर, जगन्नाथ, तथा चयनिचन्द्रशेखर ने एक-एक बार ही किया है।

अट्ठारहवी शताब्दी के रूपको म अक्षरवृत्तो की अपेक्षा मात्रिक वृत्तो का प्रयोग बहुत कम हुआ है।

शब्दालङ्कार

अनुप्रास

नल्लाध्वरी द्वारा जीवन्मुक्तिकल्याण नाटक मे प्रयुक्त अनुप्रास के उदाहरण देखिये। यहाँ 'स' अक्षर पर वृत्यनुप्रास है।

कामादय सन्तु सहस्रमस्य सहायभूता बलिनस्तथापि।'

निम्नलिखित मे 'प्र' अक्षर पर वृत्यनुप्रास है।

'तत्र प्रत्ययत प्रवर्तयितुमप्यद्य प्रगल्भोऽस्म्यहम्।'

यहाँ 'ध' अक्षर मे वृत्ययनुप्रास है।

एष धन्योऽस्मि धन्योऽस्मि धन्योऽस्मि धरणीतले।'[1]

चोक्कनाथ द्वारा कान्तिमतीपरिणय नाटक मे प्रयुक्त अनुप्रास के उदाहरण उल्लेखनीय हैं। निम्नलिखित मे 'म' अक्षर पर वृत्यनुप्रास है।

पुन स्मार स्मार भजति परिमोह मम मनो
मनोभूकोदण्डच्युतशरसमूहेरुपहतम्॥[2]

निम्नलिखित मे 'स' अक्षर पर वृत्यनुप्रास है।

ससेनश्चित्रसेन समागत्य सक्षेमा प्रभावतीमुद्वीक्ष्य।[3]

यहाँ 'क' अक्षर पर वृत्यनुप्रास है—

कनत्कनककङ्कणव्यतिकरस्वन श्रूयते।[4]

चोक्कनाथ द्वारा सेवान्तिकापरिणय मे प्रयुक्त अनुप्रास के उदाहरण द्रष्टव्य हैं। निम्नलिखित मे 'षु' अक्षर पर अन्त्यानुप्रास है—

वस्त्रेषु रत्नेषु विभूषणेषु
प्राप्तेषु हर्षो न च तादृशोऽस्ति।[5]

निम्नलिखित मे 'वि' अक्षर पर वृत्यनुप्रास है—

---

1 जीवन्मुक्तिकल्याण नाटक 5 37
2 कान्तिमतीपरिणय नाटक 2 7
3 कान्तिमतीपरिणय तृतीयाङ्क
4 वही 3 24
5 सेवान्तिकापरिणय नाटक, 1 16

विभातप्राया विभाति विभावरी ।[1]
वितनोति विफलमबला
वितनोर्वीरस्य वीर्यसर्वस्वम ।[3]

आनन्दरायमखी ने अपने नाटकों में अनेक स्थानों पर अनुप्रासों का प्रयोग किया है। निम्नलिखित वाक्य में र अक्षर पर वृत्त्यनुप्रास देखिये—

रचयन्ति रङ्गवल्लीरन्त पुरचारिका एता ।[3]

यहाँ व्य अक्षर पर अन्त्यानुप्रास है।

स्नातव्य जपितव्य वसितव्य नभसितव्यमत्तव्यम ।[4]

यहाँ म अक्षर पर वृत्त्यनुप्रास है—

भस्मोद्धूलनपाण्डरा भगवती भक्ति पुरस्तादियम ।[5]

यहाँ री अक्षर पर अन्त्यानुप्रास देखिये —

नैषा दृष्चरी न वा श्रुतचरी त्वच्चातुरीवैखरी ।[6]

जगन्नाथ ने वसुमतीपरिणय नाटक में अनुप्रास का प्रयोग बहुत कम किया है। उनके द्वारा प्रयुक्त अनुप्रास के लिये निम्नलिखित उदाहरण उल्लेखनीय हैं।

सकलकलाकलापकलानिधिना ।[6]
न हारे नाहारे कलयति विहारेऽपि न मन ।[8]

विश्वेश्वरपाण्डेय द्वारा ण अक्षर पर प्रयुक्त अनुप्रास के उदाहरण के लिये निम्नलिखित पद्य उल्लेखनीय है—

प्रतिक्षणभपणस्वचरणप्रणतप्रिया
वधीरणविचक्षणप्रणयिना मन प्ररए ।
विभीषणवधूगणश्रवणभूषणश्रीचर-
च्छदाभ्रवणकपण सखि समीरण प्रोल्वण ।।[9]

---

1 सेवन्तिकापरिणय नाटक प्रथमाङ्क
2 वही 3 29
3 कोशानन्दनाटक 1 34
4 वही चतुर्थाङ्क
5 विद्यापरिणय नाटक 1 18
6 वही 1 30
7 वसुमतीपरिणय नाटक प्रस्तावना
8 वही 5 16
9 नवमालिका नाटिका 3 8

द्वारकानाथ को अनुप्रास बहुत प्रिय है। जहाँ तक सम्भव हो सका है, उन्होंने अपने गोविन्दवल्लभ नाटक मे अनुप्रास का प्रयोग किया है। उनके निम्नलिखित गीत मे अनुप्रास का प्रयोग द्रष्टव्य है।

चित्रमहीरुह-निवह-निषेव्यम्। विविधविहङ्गमसङ्गमभव्यम्
पीयूषोपमफलनिकुरम्बम्। चित्तचमत्कृतिहरिणकदम्बम् ॥[1]

यहाँ 'म' अक्षर पर अनुप्रास है।

मदनमनोमथनस्य मनोमथनाय हरेर्मदनेन ॥[2]

यमक अलंकार

इस शताब्दी के कतिपय रूपको मे यमक अलकार का प्रयोग किया गया है। जगन्नाथ कवि द्वारा प्रयुक्त यमक अलकार निम्नलिखित पद्य मे द्रष्टव्य है।

मेनका मे न कापि स्याद्यद्रूपस्य निरूपणे।
यल्लास्यगीतानुभवेन भवेत् स्वसुखस्पृहा ॥[3]

यहाँ 'मेनका' शब्द दो बार आया है। प्रथम मेनका शब्द के द्वारा मेनका नामक अप्सरा बोध्य है तथा द्वितीय 'मे न का' शब्द का अर्थ है 'मेरी कोई नही'? यह पद्य राजा गुणभूषण अपनी प्रेमिका वसुमती के विषय मे कहता है। राजा कहता है कि वसुमती के रूप को देख लेने पर मेरे लिए अप्सरा मेनका भी कुछ नहीं लगती। अर्थात् वसुमती मेनका से भी अधिक सुन्दरी है।

यमक अलकार का निम्नलिखित उदाहरण भी जगन्नाथ कवि का ही है—

सेनानीरिव शक्रस्य सेनानीस्त्वं मतो हि न।
विदेहा प्रस्थितस्त्वैधि वत्सस्य प्रत्यन्यर ॥[4]

यहाँ 'सेनानी' शब्द की दो बार आवृत्ति हुई है। प्रथम 'सेनानी' शब्द का तात्पर्य कार्तिकेय से है तथा दूसरे सेनानी शब्द का अर्थ है 'सेनापति' से।

प्रधानवेङ्कप्प के द्वारा प्रयुक्त यमक *अलङ्कार के लिये निम्नलिखित* पद्य द्रष्टव्य है।

अलमलमन्यालापैरसमानधीरावृत्तरसलोपैः।
नवरसचक्रमवीथी नववीथी सम्प्रयुज्यता भवता ॥[5]

---

1. गोविन्दवल्लभनाटक, प्रथमाङ्क, गीत 8
2. वही, षष्ठाङ्क
3. वसुमतीपरिणय नाटक, 1 21
4. वही, 4 21
5. सीताकल्याणवीथी, पद्य 6

इसमे प्रथम वीथी मार्ग और द्वितीय रूपक के भेद के लिए प्रयुक्त है ।

प्रधानवेङ्कप्प का निम्नलिखित पद्यांश भी यमक अलङ्कार के लिये उल्लेखनीय है—

मधुमधुरतरो मधुमास परमिह मधुर सभासदा हृदयम् ।।[1]

यहाँ प्रथम मधु शहद तथा द्वितीय वसन्त के लिये प्रयुक्त है ।

निम्नलिखित पद्य मे 'कौटिल्य' शब्द के दो बार दो भिन्न अर्थों मे प्रयुक्त किये जाने से यमक अलङ्कार है—

कौटिल्यमयता येन कौटिल्यममरद्विषाम् ।
अहारि कस्य तच्चापमारोपविषयो भवेत् ।।[2]

यहाँ शिवचाप का वर्णन है । प्रथम 'कौटिल्य' शब्द का अर्थ है 'टेढा' तथा द्वितीय 'कौटिल्य' शब्द का तात्पर्य दुष्टता से है ।

प्रधानवेङ्कप्प ने परशुराम के शौर्यवर्णन मे यमक अलङ्कार का प्रयोग किया है । निम्नलिखित पद्य मे 'कौमार' शब्द दो बार आया है । प्रथम 'कौमार' का अर्थ है कार्तिकेय का तथा द्वितीय 'कौमार' का तात्पर्य है युवावस्था से । परशुराम के विषय मे कहा गया है—

य कौमारपराक्रमक्रमहृरः कौमार एवाभवत् ।[3]

अर्थात् जिन परशुराम ने युवावस्था मे ही कार्तिकेय के पराक्रम का हरण किया था ।

उर्वशीसार्वभौमेहामृग मे अलङ्कार के लिए निम्नलिखित पद्य द्रष्टव्य है ।

जित्वा सुरारिसमितिं समितिं प्रकामम् ।[4]

यहाँ प्रथम 'समिति' शब्द का अर्थ है सघ तथा द्वितीय समिति शब्द का अर्थ है 'युद्ध' । इस पद्य मे नारद द्वारा राजा पुरूरवा की उपलब्धियो का उल्लेख किया गया है ।

रुक्मिणीमाधवाङ्क के निम्नलिखित पद्यांश मे यमक अलङ्कार द्रष्टव्य है ।

सबलस्सबलस्समेत्य तूर्णम् ।[5]

---

1. सीताकल्याणवीथी, पद्य 7
2. वही, पद्य 17
3. वही, पद्य 51
4. उर्वशीसार्वभौमेहामृग, पद्य 21
5. रुक्मिणीमाधवाङ्क, पद्य 42

यहाँ 'सबल' शब्द दो बार आया है। प्रथम 'सबल' शब्द का अर्थ है सैन्यसहित तथा द्वितीय का अर्थ है श्रीकृष्ण के अग्रज बलदेव। रुक्मिणीमाधव अङ्क में बलदेव सैन्य-सहित आकर शत्रुसेना को नष्ट करते हैं।

रामचन्द्रशेखर ने निम्नलिखित पद्य में यमक अलङ्कार का प्रयोग किया है—

> कोटीराग्रैर्बहुविधमणीमञ्जरीरञ्जिताग्रै
> मञ्जीरान्तैर्बहुलकनकस्फूर्तिभिर्भूषणैर्या।
> विद्युत्पुञ्जच्छुरितबलभिच्चापरेखामयूखा
> प्रावृल्लक्ष्मीमिह वितनुते कालिका कालिकेव॥[1]

यहाँ 'कालिका' शब्द दो बार आया है। प्रथम 'कालिका' शब्द का तात्पर्य दुर्गा (पार्वती) से है तथा दूसरे का मेघसमूह से।

कृष्णदत्त मैथिल द्वारा प्रयुक्त यमक अलङ्कार का उदाहरण देखिये—

> न मे पुरी क्वापि नवालकान्ता
> न बालकान्ता न च भृत्यवर्ग॥[2]

यहाँ 'नवालकान्ता' शब्द दो बार आया है। प्रथम नवालकान्ता' शब्द का अर्थ है नवीन तथा स्वर्ग से बढकर तथा द्वितीय 'नबालकान्ता' का अर्थ है युवती पत्नी का राहित्य। पुरञ्जन कहता है कि न मेरे पास कोई पुरी है और न युवा पत्नी।

सदाशिव उद्गाता के द्वारा प्रयुक्त यमक अलङ्कार का उदाहरण देखिये—

> लेखाधिनाथपथमेत्य विवव्रिरे ते
> पाको वलो नमुर इत्यभिधानवन्त।
> क्रुद्धस्ततोऽथ मघवा शतकोटिना तान्
> प्रत्येकमेव विदधे शतकोटिभागान्॥[3]

इस पद्य का अर्थ है कि इन्द्र ने अपने वज्र से दैत्यों के टुकड़े टुकड़े कर दिये। यहाँ प्रथम 'शतकोटि' शब्द का अर्थ है वज्र से तथा द्वितीय 'शतकोटि' शब्द का अर्थ है—सौ करोड़ से।

निम्नलिखित पद्य में 'विरोचन' शब्द तीन बार आया है परन्तु तीनों बार उसका अर्थ भिन्न है। अतः यहाँ यमक अलङ्कार है।

---

1 कमलानन्दक नाटक 4 30
2 पुरञ्जनचरितनाटक, 1 10
3 प्रमुदितगोविन्द नाटक, 6 9

> विरोचनपदामर्षी सविलार विरोचन. ।
> शरैर्विरोचन चक्रे युद्धे स तु पुनश्च तम् ।।[1]

यहाँ प्रथम 'विरोचन' शब्द का अर्थ है 'सूर्य,' द्वितीय 'विरोचन' शब्द से विरोचन नामक राक्षस से तात्पर्य है तथा तृतीय 'विरोचन' शब्द का अर्थ है शोभाहीन।

रामचन्द्रशेखर के निम्नलिखित पद्य मे 'अनयो' शब्द दो बार आया है, परन्तु दोनो बार इसका अर्थ भिन्न होने के कारण यहाँ यमक अलङ्कार है।

> वृत्रो नासत्यमध्यस्थो युयुधे साम्प्रत हि तत् ।
> अनयोरनयो जातो नाम्नि सत्य निरर्थकम् ।।[2]

यहाँ प्रथम 'अनयो' शब्द का अर्थ है 'इन दोनो का' तथा द्वितीय 'अनयो' शब्द का अर्थ है 'युद्ध'।

मल्लारि आराध्य के द्वारा प्रयुक्त यमक अलङ्कार का उदाहरण निम्नलिखित पद्य मे मिलता है—

> धाता शारदशारदाङ्करुचिरा शुभद्रदा भद्रदा
> वाणीमिन्दुकलाधरोऽपि गिरिजा वाश्यामला श्यामलाम् ।
> विष्णुस्सिन्धुसुता सरोजरुचिरावासक्षमा सक्षमा
> कान्तामेत्य पर प्रमोदति पिकव्याहारिणी हारिणीम् ।।[3]

श्लेषालङ्कार

प्राय सभी रूपककारो ने श्लेषालकार का प्रयोग किया है। चोक्कनाथ द्वारा प्रयुक्त श्लेषालङ्कार निम्नलिखित पद्य मे द्रष्टव्य है।

> उडुपस्य तिरोधानात्स्वरश्मिस्पर्शमात्रत. ।
> तितीर्षति करैरेव तिग्माशुर्गगनार्णवम् ।।[4]

यहाँ 'उडुप' तथा 'कर' शब्दो पर श्लेष है। उडुप के दो अर्थ हैं—चन्द्रमा तथा नौका। कर शब्द के भी दो अर्थ हैं- हाथ तथा किरण। अपनी किरणो के स्पर्शमात्र से चन्द्रमा (नौका) के तिरोहित हो जाने से सूर्य अपनी किरणो (हाथो) से ही आकाशसमुद्र को पार करना चाहता है।

---

1 प्रमुदितगोविन्द नाटक 6 10
2. वही, 6 11
3. शिवलिङ्गसूर्योदय नाटक, 2 29
2, सेवन्तिकापरिणय नाटक, 1 37

आनन्दरायमखी ने कहीं-कहीं श्लेष का प्रयोग किया है। निम्नलिखित पद्य में 'बहुधारणे' शब्द पर श्लेष है—

> आलोक्य शात्रवबलं बहुधारणे त्वं
> भीतासि सम्प्रति न सम्प्रतिपन्नधैर्या।
> जीवस्य जीवितसमे मयि सत्यमात्ये
> भूयात्कथं बत विरोधिशिरोधिरोहः ॥[1]

यहाँ जीवराज का मन्त्री विज्ञानशर्मा तापसी वेशधारिणी धारणा को, जो उससे अपना परिचय गुप्त रखना चाहती है, कहता है कि तुम शत्रु के बल को देखकर भीत हो गई हो। यहाँ 'बहुधारणे' का अन्वय दो प्रकार से किये जाने पर उसके दो अर्थ निकलते हैं। 'बहु+धारणे' तथा बहुधा+रणे। अतः यहाँ श्लेष अलङ्कार है।

निम्नलिखित पद्य में 'तेन किम्' इन दो पदों के दो प्रकार से अन्वय करने पर पद्य का अर्थ ही बदल जाता है। यदि 'ते न किम्' इस प्रकार अन्वय किया जाये तो अर्थ होगा कि क्या यह तुम्हारा नहीं है, अर्थात् तुम्हारा ही है। यदि इन पदों का 'तेन किम्' इस प्रकार अन्वय किया जाये तो उसका अर्थ होगा कि उससे क्या? (लाभ?) अर्थात् वह व्यर्थ है। देखिये—

> क्रीडाकाञ्चनशैलकूटघटितप्रत्युप्तनानामणि
> ज्योतिः कर्बुरसौधसीमसु कनत्कल्पद्रुपुष्पास्तरे।
> उद्दामस्मरदर्पविभ्रमवती सभोगशृङ्गारिणो
> यत्क्रीडन्ति विलासिनस्तदखिलं लीलायितं तेन किम्?[2]

यह पद्य अविद्या देवी प्रवृत्ति की प्रशंसा में कहती है।

जगन्नाथ कवि ने वसुमतीपरिणय नाटक में निम्नलिखित पद्य में श्लेषालङ्कार का प्रयोग किया है—

> हेमालङ्कृतमङ्घ्रिपाणिकमलं रम्भातिमकोरुद्वयी
> वक्षः सीम्नि कृतस्थला कुचतटी ग्रीवा पुनर्वामना।
> नासा किं च तिलोत्तमा वरतनोर्यत्पुण्डरीकाकृति-
> र्नेत्रश्रीश्च समष्टिरेव तदियं स्वर्लोकलोलभ्रुवाम् ॥[3]

---

1. जीवानन्दन नाटक, 1.28
2. विद्यापरिणय नाटक, 1.38
3. वसुमतीपरिण नाटक, 2.14

इस पद्य मे राजा गुणभूषण वसुमती के सौन्दर्य का वर्णन करता है और उसे हेमा, रम्भा तथा तिलोत्तमा आदि सुरसुन्दरियो की समष्टि बताता है। यहाँ हेमा, रम्भा तथा 'तिलोत्तमा' शब्दो पर श्लेष है। हेमा का एक अर्थ है हेमा नाम की अप्सरा तथा दूसरा अर्थ है स्वर्ण। रम्भा के भी दो अर्थ हैं। इसका एक अर्थ रम्भा नाम की अप्सरा तथा दूसरा अर्थ है कदली। इसी प्रकार 'तिलोत्तमा' शब्द के भी दो अर्थ हैं। एक अर्थ है तिलोत्तमा नाम की अप्सरा तथा दूसरा अर्थ है तिल से सुन्दर।

जगन्नाथ के निम्नलिखित पद्य मे 'सुनीति' तथा 'वसुमती' शब्दो पर श्लेष है। सुनीति के दो अर्थ हैं-एक अर्थ है पट्टमहिषी सुनीति से तथा दूसरा अर्थ है अच्छी नीति से। इसी प्रकार वसुमती शब्द के दो अर्थ हैं। एक अर्थ है। प्रेमिका वसुमती तथा दूसरा अर्थ है पृथ्वी। कवि का यह श्लेषप्रयोग द्रष्टव्य है।

गुणानेवादत्ते परिहरति दोष श्रितवतः
मुपायानाचष्टे रिपुविजयमुत्साहयति च।
करस्था कुर्वाणाथ वसुसमृद्धा वसुमती
सतीय मे श्रेयो न किमिव सुनीतिर्घटयति॥[1]

रामचन्द्रशेखर ने निम्नलिखित श्लोक में श्लेष अलङ्कार का प्रयोग किया है—

कृतत्रेतानमस्कारो निर्द्वापरमतिस्सदा।
निष्कलि कल्पतामेष भूयसे श्रेयसे मुनि॥[2]

यहाँ 'त्रेता', 'द्वापर' तथा 'कलि' शब्दो पर श्लेष है। इन तीनो शब्दो मे से प्रत्येक के दो अर्थ हैं। 'त्रेता' शब्द का एक अर्थ है त्रेतायुग तथा दूसरा अर्थ है 'त्रेताग्नि'। द्वापर शब्द का एक अर्थ है द्वापर युग तथा दूसरा अर्थ है द्वैत। इसी प्रकार कलि शब्द का एक अर्थ है कलियुग तथा दूसरा अर्थ है पाप।

चित्रालङ्कार

कृष्णदत्त ने अपने सान्द्रकुतूहल प्रहसन मे अनेक चित्रालङ्कारो का प्रयोग किया है। उन्होने विविध बन्धो मे चित्रप्रणाली के द्वारा शिव, गङ्गा, गणेश श्रीकृष्ण लक्ष्मी, देवी, श्रीमङ्गला, राधा, नृसिंह तथा रामचन्द्र के चरित्र का वर्णन किया है। जिन बन्धो का उन्होने प्रयोग किया है वे हैं—प्रतिलोमानुलोमपाद, द्व्यक्षर, चतुरक्षर, अन्तर्ल्लापिका, पादादियमक, सर्वतोभद्र, हार, एकवाक्यताप्रतिपादिका समस्या, क्रियासमस्या, वक्रोक्ति, नि सति पद्य, बहिर्ल्लापिका, वर्णमोक्षविपर्यासचमत्कृति, एकाक्षर, प्रतिपदयमक, नाक्षरचमत्कृतिकर, निरोष्ठ्य, प्रतिपादान्ते यमक, पादान्ते

1. वसुमतीपरिणय नाटक, 5 20
2 कलानन्दक नाटक, 7 55

यमक, छत्र, व्यञ्जन, क्रियागुप्त, अनुलोम, प्रश्नोत्तर, कमल तथा कविदुराप। उनके एकाक्षरबन्ध का उदाहरण देखिये—

त तु तैतत्तोऽतातो ताताततोतो तितातति ।
ततोतीतोऽततातेते तातेतात तता तत ॥[1]

मल्लारि आराध्य ने भी एकाक्षरबन्ध का केवल एक स्थान पर ही अपने नाटक मे प्रयोग किया है। देखिये—

नानेन नून नुन्नाना नाना नाना ननू ननु ।
नानो नानो ननानाम ननानो नोननानुना ॥[2]

चित्रालङ्कारो का प्रयोग रसानुभूति मे बाधक होने के कारण रूपको मे उपादेय नही है। उनका प्रयोग केवल महाकाव्यो मे किया जाना चाहिये, रूपको मे नही।

अर्थालङ्कार

अर्थालङ्कारो मे अधिकतः उपमा, उत्प्रेक्षा तथा रूपक का प्रयोग हुआ है। इनके बाद दृष्टान्त, अपह्नुति, स्मरण, भ्रान्तिमान्, सन्देह, अर्थान्तरन्यास, विषम, व्यतिरेक, विशेषोक्ति काव्यलिङ्ग, सहोक्ति, अन्योक्ति, दीपक, निदर्शना, विरोध, अतिशयोक्ति, व्याजस्तुति, स्वभावोक्ति, अनन्वय, समासोक्ति आदि आते हैं।

शीघ्रकवीश्वर जगन्नाथ के भाग्यमहोदय नाटक के द्वितीयाङ्क मे प्रमुख अर्थालङ्कार अपने भेदो सहित रङ्गमञ्च पर उपस्थित होते हैं। वे अपना अपना उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। उदाहरणो का प्रतिपाद्य विषय राजा बखतसिंह की प्रशसा अथवा उनके मन्त्री सेनापति (पेरम्मनाथ, भाग्यसिंह, मार्वसिंह आदि) तथा सेना का वर्णन है। इस प्रकार इस अक का प्रत्येक पद्य किसी विशेष अलङ्कार के उदाहरण के साथ कवि के आश्रयदाता की स्तुति प्रस्तुत करता है।

भाग्यमहोदय नाटक मे केवल अर्थालङ्कार ही पात्र हैं, शब्दालङ्कार नही। इन अलङ्कारो का वर्णन कवि ने अप्पय दीक्षित के कुवलयानन्द के आधार पर प्रधान रूप से किया है। सरस्वतीकण्ठाभरण, काव्यप्रकाश, उद्योत, अलङ्कारचन्द्रिका और जयदेव कवि के वाक्य इस नाटक के आधार हैं।

---

1 सान्द्रकुतूहलप्रहसन 2 23

2. शिवलिङ्गसूर्योदय, 1 33

उपमा

अट्ठारहवी शताब्दी के रूपकों म प्राप्त उपमायें विविध क्षेत्रों से ली गई हैं। नल्लाध्वरी की उपमायें उल्लेखनीय हैं।

1 छायातपयोरिव समनियतयोरपि तयोरीदृशो दशापरिणाम ।[1]
2 नीरक्षीरवदावयोरुपनता कालाद्वहोरेकता ।[2]
3 इय सा कल्याणी सुलभितलतामूलनिलया।
पयोदेनालीढा तडिदिव जगन्मोहनतनु ।।[3]
4 सा सम्पन्मम सगति गतवता तेनैव केनाप्यहो
पात्रेषु प्रतिपाद्यते तृणमिव द्राक् त्यज्यते भुज्यते ।।[4]
5 ततो न सरम्भ परिणमति भस्माहुतिरिव ।[5]
6 उद्बोधितोऽपि कवले कवले जनन्या
निद्रालस शिशुरिवाविदितान्यभाव ।।[6]
7 राजकुमारस्य व्याधभाव इव ब्रह्मण एव सतस्तव
भ्रमकल्पितो जीवभाव न परमार्थः ।।[7]

चोक्कनाथ ने उपमालङ्कार का प्रयोग अधिक नहीं किया है। फिर भी उनकी निम्नलिखित उपमायें उल्लेखनीय हैं।

1 आच्छादयति शताङ्गोमेचकमणिशोभितो मुख तस्या ।
निकुरम्बमम्बरतले हिमकरबिम्ब यथाम्बुवाहानाम् ।।[8]
2 परिगहिदभट्टिदारिआ पाणिकमल महाराज ।
करगहिदरदि विअ ममह पेक्खिअ अदिमेत्त मुदिदहिअअम्हि ।।[9]
3 एषा कन्यका द्रौपदीव क्षत्रियाणामनर्थकारिणी सञ्जाता ।[10]

---

1 जीवन्मुक्तिकल्याण नाटक, प्रथमाङ्क
2 वही, 1 34
3 वही, 1.37
4 वही, 3 35
5 वही, 3.40
6 वही, 4 26
7 वही, पञ्चमाङ्क
8 सेवंतिकापरिणय नाटक, 1 41
9 वही, 2 2
10 वही, द्वितीयाङ्क

4 कुसुमश्रियः पुरस्तात्किसलयलक्ष्मीमिवालोक्येमाम् ।
मकरन्दरसजिघृक्षुर्मधुकर इव हर्षमतुलमभ्येमि ।।[1]

5. ताम्यति तनुरियमचिरा-
दातपवेगाहता मृणालीव ।[2]

6. स्वगर्भप्रसूतामपि मा क्रव्यादाना हस्ते बलिमिव
चित्रवर्मणो हस्ते तातः क्षिपतीति जित निष्करुणतया ।।[3]

आनन्दरायमखी ने अपने नाटको मे उपमालङ्कार का प्रयोग किया है। उनके द्वारा प्रयुक्त निम्नलिखित उपमायें देखिये—

1. दीनजनाधीनदयो विहरति समरे च विक्रमार्क इव ।[4]

2 आनन्दरायमखिनो वल्मीकेरिव योगिनः ।
इतरापेक्षणात्सार. स्वत. सारस्वतोदयः ।।[5]

3 छायाशीतलमध्वनि द्रुमतल चण्डातपोपप्लुताः ।
शौरिं दानवपीडिता इव सुरा. पान्था भजन्ति द्रुतम् ।।[6]

4 ननु मे दुःखभागात्मा न धैर्यमवलम्बते ।
काठिन्यमिव मृत्पिण्डो घनवारिसमुक्षितः ।।[7]

5. दहति हृदय शोकोऽग्निरिव शुष्कतृणजालम् ।[8]

6. तामद्राक्षमह रणे स्त्रियमपि व्यातन्वती पौरुष
चामुण्डामिव चण्डमुण्डसमरप्रक्रान्तदोर्विक्रमाम् ।।[9]

---

1. सेवन्तिकापरिणय नाटक, 3 12
2 वही, 3 16
3 वही, चतुर्थाङ्क
4. जीवानन्दन नाटक, प्रस्तावना
5 वही
6. वही, 4 4
7. वही, 6 69
8. वही, 6 69
9. वही, 7.4

7 मेधावृतिव्यपगमे गगन यथाच्छ
चैतन्यमावरणवर्जितमस्मि तद्वत् ।।[1]

8 सुचिरमयमविद्यादुर्विलासेन्द्रजाल
पशुरिव मृगतृष्णावारिपूरैर्विकृष्ट ।[2]

9 सुरतटिनी समुद्रमिव दीव्यदनेकमुखी
गमयसि वस्तुतत्त्वमखिलानपि भिन्नरुचीन् ।।[3]

जगन्नाथ कवि के द्वारा प्रयुक्त निम्नलिखित उपमायें उल्लेखनीय है—

1 पारगता नावमिव प्राप्तारोग्या इवागदकारम् ।
पर्यवसितार्थजाता पृथ्वीशा न स्मरन्ति भृत्यान् ।[4]

2 स्थैर्ये भूधरवद्गते युवतिवज्जीमूतवद्बृ हिते ।
कान्त्या कज्जलवद्रदेरजवद्विप्रे क्षिते सिंहवत् ।
कर्णे वोचिवदुत्कटे मदजले सप्तच्छदक्षोरव-
द्ये राजन्ति मतङ्गजा नृपमणे ! ते राजयोग्या मता ।।[5]

3 वेले सिन्धुरिव त्व वध्वो सदृश नरेन्द्रधिनु शश्वत् ।
वत्से । युवा जुपेथा गङ्गायमुने इव प्रियमभिन्ने ।।[6]

4 हविर्निर्वापार्हां सुवमधिमख श्वेव हतक
स्रज हृद्या जात्यैर्मणिभिरतिलोल कपिरिव ।
नृशस सारङ्गी वृक इव भयोल्लासनयना
जहार त्वा वत्से स कथमसुराणामपसद ।।[7]

5 मरुप्रान्ते हन्त स्थलकमलिनीवोद्गतवती
तरक्षो पार्श्वस्था तरलतरलाक्षीव हरिणी ।

---

1 जीवानन्दन नाटक प्रस्तावना 7 32
2 विद्यापरिणय नाटक 1 19
3 वही 7 22
4 वसुमतीपरिणय नाटक 1 18
5 वही, 4 6
6 वही 5 36
7 रतिमन्मथनाटक 4 2

तमोलीढा चान्द्री तनुरिव कथाशेषविभवा
न राजत्येषा मे दितिजपरिभूता प्रियतमा ।।[1]

अनङ्गविजयभाण के रचयिता जगन्नाथ कावल की निम्नलिखित उपमायें उल्लेखनीय हैं—

1 आस्ते रसालतरुरेष भुजङ्गयुक्त-
मूर्ति स्मराररिव पुष्पभरेण गौर ।।[2]

2 विद्युल्लतेव गलिता घनघट्टनेन
केय विलासगमना कमनीयरूपा ।।[3]

विश्वेश्वर पाण्डेय ने नवमालिका नाटिका मे विविध प्रकार की उपमाओं का प्रयोग किया है । उनके द्वारा प्रयुक्त निम्नलिखित उपमायें द्रष्टव्य हैं ।

1 तत्रत्या वनदेवतामिव नवोद्भिन्ने स्थिता यौवने
कन्या कामपि कन्ययो सवयसोर्मध्ये स्थितामन्ययो ।।[4]

2 सीमन्ते नवसिन्धुवारकुसुमैर्मौक्ताफलीमावली
रक्ताशोकभुवा पुनस्सुमनसा काञ्ची नितम्बस्थले ।
काञ्चेयस्तबकात्मक चरणयोर्मञ्जीरयुग्म गले
नानापुष्पमयी स्रज विदधती देवी लतेवापरा ।।[5]

राजविजय नाटक मे प्रयुक्त निम्नलिखित उपमायें उल्लेखनीय ह ।

1. यथा स्पर्शमणिस्पर्शो लौहरूप्याविशेषक ।
तथाय क्षेत्रसम्पर्क प्राणिमात्रे समार्थक ।।[6]

2 यज्ञसूत्र दधत् स्कन्धे चन्द्राशुनिभमुत्तमम् ।
पश्याम्बष्ठ इहायाति ब्रह्मर्षिरिव सत्तम ।।[7]

---

1 रतिमन्मथनाटक, 4 23
2 अनङ्गविजयभाण, पद्य 32
3 वही, पद्य 61
4 नवमालिका नाटिका, 1 10
5 वही, 1 25
6 राजविजय नाटक प्रथमाङ्क
7 वही, द्वितीयाङ्क

रामपाणिवाद के रूपको मे उपमायें अधोलिखित प्रकार की हैं।

1. तदेव सिकताकूपवद्विशीर्यंत नो जनपदः ।[1]

2. अत्रोद्याने वल्मीकरन्ध्रमुखस्थितं सर्पनिर्मोकमिव
घनपाण्डुरमेतत् दन्तातटङ्क मया गृहीतम् ।[2]

रामवर्मा के द्वारा प्रयुक्त निम्नलिखित उपमायें द्रष्टव्य हैं।

1 याने हंसमयीव सारसमयीवात्यायते लोचने
वर्णे स्वर्णमयीव कर्णमधुरे वीणामयीव स्वरे ।
मध्ये शून्यमयीव मुग्धहसिते जातीमयीव श्रुता
कण्ठे कम्बुमयीव सा प्रियतमा चित्ते वरीवर्ति मे ।[3]

2 *नन्वयस्कान्तमणय इव लोहानि निष्ठुराणि*
क्षुल्लकानामप्याकर्षन्ति मनांसि महता
गुणाः किमुत स्वभावसरसमृदूनीतरेषाम् ।।[4]

शिवकवि के विवेकचन्द्रोदय नाटक मे निम्नलिखित उपमायें द्रष्टव्य हैं—

1 सरिद्भिः सरिता भर्ता हविर्भिर्हव्यवाहनः ।
यथा तथा न तृप्येत लोभी स्वर्णसुमेरुणा ।।[5]

2. न सहन्ते भवन्नाम गरुड पन्नगा इव ।[6]

प्रधान वेङ्कप्प ने अपने रूपको मे जिन उपमाओं को प्रयुक्त किया है उनमे निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं—

1. सापत्न्यभावात्सम्प्रतिव्यपेता
स्वयम्वरस्थानमुपेत्य भावा. ।
तपोवन तावकमेत्य भान्ति
यथा मृगा प्रच्युतवैरिभावाः ।।[7]

---

1. मदनकेतुचरितप्रहसन,
2. सीतावती वीथी
3. रुक्मिणीपरिणय नाटक, प्रथमाङ्क
4. वही
5. विवेकचन्द्रोदय नाटक, 2.26
6. वही, 4 8
7. सीताकल्याणवीथी, पद्य 30

2. सहकारमिवात्तमाधवीक
   शशलक्ष्माणमिवोडुरोहिणीकम् ।
   सह दारमभीक्ष्ण्यमभीक्ष्यमाण
   स कथ पङ्क्तिरथो मुद न यायात् ॥[1]

3. यथा सुगन्धैर्विहितोऽपि तूर्ण
   पलाण्डुगण्ड प्रसरीसरीति ।
   तथा बहिर्गच्छति गूढवार्ता
   विरुद्धधर्माश्रयिणी जनानाम् ।[2]

4 महेन्द्रप्रतिबद्धा सा मम किं वशमेष्यति ।
  घनाघनसमाक्रान्ता कलेव शिशिरत्विष ॥[3]

5. रिपुबलजलधिं विधूय सेय
   सपदि कृता भवता वशे मृगाक्षी ।
   प्रमुदितहृदयेन निर्वितङ्क
   मधुमथनेन यथा सुधाब्धिकन्या ॥[4]

6 सञ्चिन्वन्विमल यशो विजयते धर्मो वपुष्मानिव ॥[5]

रामचन्द्रशेखर के कलानन्दक नाटक मे निम्नलिखित उपमायें उल्लेखनीय हैं—

1. निर्विकल्प श्रुतवत सविकल्पा श्रुतिर्यदि ।
   मत्तस्येव स्वत पूर्वं मदिरा समुपस्थिता ॥ [6]

2 जटाजूटस्फूर्त्या परिहसितविद्युद्गणरुचि-
  र्महादेव साक्षादिव मम पुरो राजति मुनि ॥[7]

3 गाधिज इव दाशरथिं बाधितुमात्मीययज्ञविघ्नकरान् ।

---

1 सीताकल्याणवीथी, पद्य 61
2. कुलिङ्गमरभैक्षवप्रहसन, पद्य 68
3. अर्धशीतार्धमौमेहायुग, 1 14
4. धर्मणोमाथवाङ्क, पद्य 44
5. कामविलासभाण, पद्य 10
6 कलानन्दक नाटक, 1 18
7. वही, 1.45

केशरिण हन्तुमयं नृपकेशरिण समानयामास ।।[1]

4 कृपणजनस्येव धनमायोधनमेव मे दृशोरिष्टम् ।[2]

5. उपसरति सह सखीभ्या जीवयितुं मामियं सरोजाक्षी ।
जीवितकलेव पुरुष मत्या सह चित्तवृत्त्या च ।।[3]

6. निर्व्यूढगुरुनिदेश निर्वर्तितबुधमनोरथ पौरा
रघुवरमिव सकलत्र वीक्ष्य भवन्तं चिराय नन्दन्तु ।।[4]

कृष्णदत्त मैथिल ने अपने रूपको मे अनेक उपमाओ का प्रयोग किया है। उनके द्वारा प्रयुक्त निम्नलिखित उपमायें द्रष्टव्य हैं।

1 योऽसावुद्धव इव यदुवीरस्य, सुमन्त्र इव
रघुवीरस्य, बृहस्पतिरिव सुनाशीरस्य, वीरवल
इवाकब्बरसाहस्य, अमर इव साहसाङ्कस्य,
चाणक्य इव चन्द्रगुप्तस्य, नागरनगरसनाथ-
स्य भोसलावशसिन्धुसम्भवराजन्यचन्द्रस्य
साचिव्यमवलम्ब्य··· ···मतिमात्रमुद्भासते ।।[5]

2 अव्याजप्रियसत्कृतिव्यतिकृता सम्पत्तिरेवाफला ।
मुण्डाकङ्कणवच्छवाभरणवद् वन्ध्याङ्गनासङ्गवत् ।।[6]

3. स्वच्छायेव पतिव्रतेव सतत पुंसोऽनुगा व्यग्रता ।[7]

4 हितोपदेशो मम न प्रवेशं
तन्मानसे लप्स्यत इत्यवैमि ।
दोषागमापादितकोपबन्धे
करः सुधाभास इवारविन्दे ।।[8]

---

1. कलानन्दक नाटक, 3 3
2. वही, 4.17
3. वही, 7.47 (अ)
4. वही, 7 60
5. कुवलयचरितनाटक, प्रस्तावना
6. वही 1.18
7. वही, 1 19
8. वही, 3 9

5 साम्राज्यमनुवर्तन्ते यथा मण्डलभुभुज
तथा सर्वाणि तेजासि तेजा ब्राह्ममखण्डितम् ।।[1]

6 सुक्षेत्रोप्त सुबीज इव कदारिक सुविनीततनयो-
पहितविनयो जनको नून कोषपूरण करोतीति ।।[2]

वीरराघव द्वारा मलयजाकल्याणम् नाटिका मे प्रयुक्त निम्नलिखित उपमा देखिये—

क्षौमेन दुग्धमयनिर्झरिणीतरङ्ग-
सन्दोहसुन्दररुचा परिशोभितेयम् ।
उद्दामशारदसुधाकरकान्तिमिश्रा
सौदामिनीव मुदमावहते दृशोर्मे ।।[3]

सदाशिव उद्गाता ने प्रमुदितगोविन्द नाटक मे अनेक उपमाओं का प्रयोग किया है । उनकी निम्नलिखित उपमायें उल्लेखनीय हैं—

1 समाधिसम्पदा वर्षीयसी वृत्तिरिवात्मन ।
योगिन कल्पवेलेय सत्त्वप्राया प्रकाशते ।।[4]

2 सम्मन्त्रणा कुलवधूरिव गूढभावा ।[5]

3 अदूरवर्तिनमात्मान पामर इव ।[6]

4 लतान्तराच्छादितविग्रहा ता-
मेनामदृष्ट्वाकुलचित्तवृत्ति ।
स कृत्तिवासश्चिरलब्धनष्टा
यथैव हेम्न कृपण शलाकाम् ।।[7]

5 पुनर्दूरेलग्ना पुनरथ समीपे—
पुरो राम चामीकरमृग इव व्यस्तमकरोत ।।[8]

---

1 कुवलयाश्वीयनाटक, द्वितीयाङ्क
2 वही, पञ्चमाङ्क
3 मलयजाकल्याणम नाटिका 4 13
4 प्रमुदितगोविन्द नाटक 3 4
5 वही, 3 6
6 वही चतुर्थाङ्क
7. वही, 71 3
8 वही, 7 14

मल्लारि आराध्य ने उपमाओं का अधिक प्रयोग किया है। उनके द्वारा प्रयुक्त निम्नलिखित उपमायें द्रष्टव्य हैं।

1 शरीरान्निष्क्रम्य व्रजति परलोकं किल पुमान्
ततस्तस्मिन्भुङ्क्ते स्वकृतफलमायाति च पुनः ।
इति भ्रान्ता श्रान्ता श्रवणमननादौ जडधियो
निदाघेऽत्युष्णार्त्ता विफलमृगतृष्णा इव मृगाः ॥[1]

2 गुणेनाप्येकेन प्रभवति च नेयं तुलयितुं
दुराचारा हंसीमिव बकवधूर्जिह्मगमना ॥[2]

3 *शाल्यन्नं मृदुलं हित्वा भवानिव महामतिः ।*
को वा समुत्सहेत् भोक्तुं स्वमांसं क्रिमिसङ्कुलम् ॥[3]

4 दुर्योधनसभान्तराले पराभूतायां द्रौपद्यां
श्रीकृष्ण इव त्वमावयोः प्रादुर्भूतः ॥[4]

5 दण्डाघातातिकुप्यद्विपधरसदृशो निश्वसन् दीर्घदीर्घम् ।[5]

6 *या शाणधारेव मणीन्करोति*
शुद्धान् जनान् दोषसमावृताङ्गान् ॥[6]

7 अज्ञानभूपतिबलेषु महारथेषु
कामस्सुमास्त्रकलितोऽतिरथोऽतिदृप्तः ।
यूथेषु पाण्डवकुरुप्रवरेष्विवैको
गाण्डीवकार्मुकधरः पुरुहूतपुत्रः ॥[7]

क्रियाशक्तिज्ञानशक्ती पत्न्यौ द्वौ परमेशितुः ।
मलिनामलिनादर्शपश्चात्प्राग्भागतुल्ययोः ॥[8]

---

1 शिवलिङ्गसूर्योदय नाटक 2 17
2 वही 3 5
3 वही 3 8
4 वही चतुर्थाङ्क
5 *वही*
6 वही 5 8
7 वही 5 14
8 वही 5 20

उत्प्रेक्षा

इस शताब्दी के प्रायः सभी रूपककारों ने उत्प्रेक्षालङ्कार का प्रयोग किया है। नल्लाध्वरी द्वारा प्रयुक्त निम्नलिखित उत्प्रेक्षा द्रष्टव्य है।

बालातपश्चन्द्रिकया तरुण्या
सश्लिष्यतेसम्प्रति निर्विरोधम्।
ह्रियेव किञ्चिन्मुकुलीकृतानि
वापीभिरब्जोत्पललोचनानि ॥[1]

इस पद्य मे उत्प्रेक्षा तथा रूपक दोनों ही अलङ्कार है।

चोक्कनाथ ने अपने रूपको मे अनेक उत्प्रेक्षायें की हैं। उनकी निम्नलिखित उत्प्रेक्षायें उल्लेखनीय है।

1. हारोल्लसत्कुचभरा तरलायताक्षी
   नासामणिद्युतिविशोभिकपोलभागाम्।
   एना विलोक्य हृदय परिहृष्यतीव
   समुह्यतीव सजतीव विषीदतीव ॥[2]
2. भ्रूमध्ये परिलिखितो विलासवत्या.
   सारङ्गीमदतिलको ममावभाति।
   नीलाम्भोरुहकलिकाशर शिताग्रः
   कोदण्ड कुसुमशरासनेन नीत ॥[3]

आनन्दरायमखी द्वारा अपने रूपको में निम्नलिखित उत्प्रेक्षायें की गई है।

1 जृम्भावसरे दारुणमाननविवर सजिह्वमेतस्य।
  निपतितदीर्घकपाट पातालद्वारमिव पश्यामि ॥[4]
2 स्फुटकुटजमन्दहासा कदम्बमुकुलाभिराभरोमाञ्चा।
  नीलाम्बुदकचविगलद्धनपुष्पा विहरतीव वनलक्ष्मी ॥[5]

जगन्नाथ कवि के रूपको मे अनेक उत्प्रेक्षायें हैं। उन्होंने प्राय वर्णन मे अनेक उत्प्रेक्षायें की हैं।[6] नायिका वसुमती के सौन्दर्यप्रसङ्ग मे उनकी निम्नलिखित उत्प्रेक्षायें उल्लेखनीय हैं—

---

1 श्रीवन्मुपितकल्याण नाटक, 1 43
2. सेवन्तिकापरिणय नाटक, 1 38
3 सेवन्तिकापरिणय नाटक, 3 24
4. श्रीवानन्दननाटक, 2 9
5 वही 4 34
6 वसुमतीपरिणय नाटक, 3 14-15

1 लावण्याम्बुझरीतलादिव शनैरुन्मज्जतस्साम्प्रत
कुम्भौ यौवनकुञ्जरस्य तदिमौ जानामि वक्षोरुहौ ।
तद्गण्डस्थलविस्तृता विलसति स्रस्तेव दानाम्बुनो
धारैषोदरसीम्नि चञ्चलदृशो रोमावलीकैतवात् ।।[1]

इस पद्य मे रूपक उत्प्रेक्षा तथा अपह्नुति तीनो अलङ्कार हैं।

अन्योऽन्य पणमाकलय्य मदनश्चन्द्रश्च शिल्पप्रियो–
त्कर्षे निर्ममतुर्ध्रुव वरतनोरङ्केऽर्धयुग्म पृथक् ।
सुश्लिष्ट च विधाय काञ्चनमयैः पट्टैरिद वेष्टया
चक्राते च बलिच्छलादत इय रूपस्य नि सीमता ।।[2]

यहाँ उत्प्रेक्षा तथा अपह्नुति अलङ्कार हैं।

3 व्यानक्तीव सुधाञ्जनेन नयने वक्तीव कर्णे किम–
प्याश्लेषेण दृढेन चन्दनरस गात्रेष्विवालिम्पति ।
सैषा पाययतीव माणितरसोदार स्वबिम्बाधर
दूर गाहयतीव हर्षजलधेः पूर ममेद मन ।।[3]

अनङ्गविजयभाण के रचयिता जगन्नाथ कावल ने सुन्दरियो,[4] चन्द्रमा[5] तथा सूर्य[6] के विषय मे अनेक उत्प्रेक्षायें की हैं। उनकी निम्नलिखित उत्प्रेक्षायें देखिए —

1, यानेन हसोऽपि विलासिनीना
जित कबर्याननु नाहमेव ।
इति प्रमोदादिव बर्हिणोऽसौ
मुहुर्नरीनर्ति सकेकमेष. ।।[7]

2 कोकीनां विरहारिणोभिरभितो जातस्य भूयस्तरा
मुद्बुद्धस्य पुन पुनर्विरहिणीनि श्वासफूत्कारतः ।

---

1 वसुमतीपरिणय नाटक, 2 15
2 वही, 2 16
3 रतिमन्मथनाटक, 2 16
4 अनङ्गविजयभाण, पद्य 16–17
5 वही, पद्य 18
6 वही, पद्य 23, 24, 74
7 वही पद्य 88

सद्य फुल्लजपारुणस्य विलसत्काष्ठाभिसर्पिणो
धूमोत्पीड इवान्धकारनिवह सन्ध्यानलस्य ध्रुवम् ॥[1]

यहाँ कवि ने ग्रन्धकार के सन्ध्याग्नि का धूम होने की उत्प्रेक्षा की है। यहाँ रूपक तथा उत्प्रेक्षा दोनो ग्रलङ्कार है।

विश्वेश्वर पाण्डेय ने नवमालिका नाटिका म अनेक उत्प्रेक्षायें की हैं। तारागण के विषय मे उनकी निम्नलिखित उत्प्रेक्षा देखिए–

1 दृश्यन्ते विरला मधूकसुकलस्थूलप्रतीकस्पृश–
स्तारा किञ्चिदुप प्रकाशवशतो विच्छायतामागता ।
प्रेयोभिस्सह केलिविभ्रमभृता व्योमाश्मगर्भाङ्गणे
देवीना कबरीभरादिव परिभ्रष्टाच्च्युता मल्लिका ॥[2]

द्वारकानाथ ने गोविन्दवल्लभ नाटक मे जो विविध उत्प्रेक्षायें की हैं, उनमे निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं–

1 ग्रहो रूपमहो रूपमस्य रूपमलौकिकम् ।
मन्ये धातास्य कन्दर्प सोऽपि कोऽपि विलक्षण ॥[3]

2 तरुणकमलिनीना गाढसङ्गेन मन्दो
हिमसमयमुनाम्भो मज्जन सविधाय ।
विविधकुसुमभाजि स्निग्धवृन्दावनान्त
शयन इव स शेते गोपवृन्दे समीर ॥[4]

राजविजय नाटक मे ग्रनेक उत्प्रेक्षायें हैं। राजा राजवल्लभ की कीर्ति के विषय मे निम्नलिखित उत्प्रेक्षा द्रष्टव्य है।

यत्कीर्ति राजहसी भुवनविलसिता चन्द्रकुन्दप्रकाशा
शङ्के कीर्ति मृणालीमितरनरपतेर्भुक्तवत्येव यस्मात् ।
जन्मारभ्यैव तस्या श्रुतिविवरगता नैव कीर्ति परेषा
धातु सर्गो नवोऽय क्षितिपतितिलक कस्य जेता न भूमौ ॥[5]

राजवल्लभ के यश के विषय मे निम्नलिखित उत्प्रेक्षा उल्लेखनीय है।

---

1. ग्रनङ्ग विजयभाण, पद्य 127
2 नवमालिका नाटक, 4 1
3 गोविन्दवल्लभ नाटक, 2 23
4. वही, 8 9
5 राजविजयनाटक

जातोऽसौ जडतो जड स बहुले पक्षेऽपि निक्षीयते
पाथोत्थानविरोधको न च सदा सर्वस्य चामोदक ।
मत्कापुरुषतेति सवगुणिन पूर्वोक्तदोषास्पृश
चक्रे श्रीयुत राजवल्लभयशारूप विधु किं विधि ॥[1]

सूर्यविषयक कवि की निम्नलिखित उत्प्रेक्षा है—

अह जगति कस्य नो स्वपदसस्थितोऽभीप्सित
चकार खगदानवामरगणस्य सम्पादितम् ।
ममात्ययविधौ पुनर्भवति कोऽपि नैवाश्रय
क्रुधेति कनकाकृतिर्मणिरस्तमेति स्फुटम् ॥[2]

दीपो के विषय मे कवि की निम्नलिखित उत्प्रेक्षा है—

पर्वतपातवशात्परिचूर्ण खण्डमुपेत इहाल्पविभूति ।
दीपमयो रविरेव जगत्या वेश्मनि वेश्मनि राजति नो किम् ॥[3]

रामपाणिवाद ने अपने रूपको में जो अनेक उत्प्रेक्षायें की हैं, इनमे निम्नलिखित विचारणीय हैं—

1 दिगङ्गनासूढपयोधरासु यन्न्यलायि कान्तेन मयूखमालिना ।
निमज्जते वारिणि लज्जमानया सरोरुहिण्या किमनेन हेतुना ॥[4]
मा स्म द्राक्षीदुदेष्यन्नुडुभिरुडुपतिर्मत्प्रियामप्रियाय
प्रायस्तत्प्राणिना या परपुरुषपरामृष्टिरन्त पुराणाम् ।
इत्य व्यञ्जन्नसूयामिव घटितपटीविभ्रमैरभ्रखण्डै-
श्चण्डाशु प्रावृणीते मुखमपरहरित्सुभ्रुवो बभ्रुवर्णं ॥[5]

रामवर्मा ने अपने रूपको मे विविध उत्प्रेक्षायें की हैं। उन्होंने प्रात, मध्याह्न तथा सन्ध्या के वर्णन मे सूर्य[6], कमलिनी[7], सरसी[8], सुन्दरियो[9], प्रतीची[10],

---

1 राजविजयनाटक
2 वही,
3 वही,
4 लीलावती वीथी, पद्य 33
5 सीताराघव नाटक, 1 28
6 शृङ्गारसुधाकरभाण, पद्य 9
7 वही पद्य 10
8 वही, पद्य 62
9 वही, पद्य 82
10 वही, पद्य 84

तारागण[1] तथा चन्द्रमा[2] के विषय मे उत्प्रेक्षायें की हैं। प्रेमिका रतिरत्नमालिका के विषय मे विट की ये उत्प्रेक्षायें उल्लेखनीय हैं—

सुधाना सूतिर्वा क्षितितलगता जेतुमटत
स्त्रिलोकी वा जाम्बूनदमयपताका रतिपते ।
सुता वा दुग्धाब्धेरकरकलिताम्भोरुहवरा
प्रयान्ती सा दृष्टा बहुविधवितर्कं प्रियतमा ।।[3]

सुन्दरी के मुख-सौन्दर्य के विषय मे उनकी निम्नलिखित उत्प्रेक्षा द्रष्टव्य है।

लक्ष्मीरनुक्षपमवेक्ष्य निजाधिवास
सौधाकरेण किरणेन विधूतशोभम् ।
शङ्के शशाङ्कजयिन मुखपद्ममस्या
शश्वद्विलासमधिखेलति खञ्जनाक्ष्या ।।[4]

काशीपतिकविराज ने प्रात, मध्याह्न तथा सन्ध्या के वर्णन मे अनेक उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग किया है। सूर्योदय के समय अन्धकार के विषय मे उनकी यह उत्प्रेक्षा उल्लेखनीय है।

आलोकैरतिपाटलैरचरमा विस्तारयद्भिर्दिश
नक्षत्रद्युतिमाक्षिपद्भिरचिरादाशङ्क्य सूर्योदयम् ।
पुञ्जीभूय भयादिवान्धतमस मन्ये द्विरेफच्छला
न्मीलन्नीलसरोरुहोदरकुटीकोणान्तरे लीयते ।। [5]

यहाँ उत्प्रेक्षा तथा अपह्नुति दोनो अलङ्कार हैं। निम्नलिखित पद्य मे मध्याह्न के समय आकाश के मध्य मे विद्यमान सूर्य के विषय मे कवि की यह उत्प्रेक्षा है—

पादानुग्रतरपर्वतमस्तकेषु विन्यस्य सान्द्ररुचिरथ सहस्रभानु
अन्वेष्टुमन्धतमस गहनेषु लीनमारोहतीति गगनाग्रमय प्रतीम ।।[6]

प्रधान वेङ्कप्प के रूपको मे अनेक उत्प्रेक्षायें हैं। उनकी निम्नलिखित उत्प्रेक्षायें द्रष्टव्य है।

---

1. शृङ्गारसुधाकरभाण, पद्य 89
2. वही, पद्य, 90
3. वही, पद्य 14
4. वही, पद्य 53
5. मुकुन्दानन्दभाण, पद्य 31
6. वही, पद्य 157

1 गुञ्जामञ्जरिकेव भाति दिनकृद्‌बिम्ब कुसुम्भारुणम् ।[1]

2 माकन्दमञ्जुलमरन्दसरप्रसार
सामोदसवहनशीतलशीकरोऽयम् ।
आगत्य गन्धवह एष विशेषबन्धु
रालिङ्गतीव शुभवन्तमसौ भवन्तम् ।।[2]

रामचन्द्रशेखर ने कलानन्दक नाटक मे उत्प्रेक्षा का बहुत प्रयोग किया है। उसकी निम्नलिखित उत्प्रेक्षायें उल्लेखनीय है।

1 स्वेदाम्बुकणविकीर्ण मुखसरसिजमेतदाभाति ।
अरविन्दमिव विभाते मकरन्दकणावलीपूर्णम् ।।[3]

2 वरेण सहितो भाति वध्वा च मुनिशेखर ।
वेदेन साकं स्मृत्या च वेदान्त इव मूर्त्तिमान् ।।[4]

3 त्रिभिरपि सचिवाद्यैस्सादर सेव्यमान
परिमितमुखकान्ति कान्तया त्यक्तपार्श्व ।
रविपवनसुमित्रानन्दनैर्वन्धमानो
रघुपतिरिव भाति प्राप्तसीतावियोग ।।[5]

4 चिरकालविप्रयुक्तौ सानुयायिनो पश्चात् ।
पौलोमीपुरुहूताविव भातो दम्पती एतौ ।।[6]

कृष्णदत्त मैथिल के रूपकों में प्राप्त उत्प्रेक्षाओ मे से निम्नलिखित उत्प्रेक्षायें द्रष्टव्य हैं—

1 आगच्छन्त्या भवनभवन वासरश्रीकशाङ्ग या
लाक्षालक्ष्मीरिवचरणयो सान्द्रविन्यासलग्ना ।
भास्वद्वाहोद्धतगिरितटीधातुधारेव भाति
च्छिन्नध्वान्तद्विरदरुधिरासाररूपारुणश्री ।।[7]

2 हरिहयहरिदङ्के क्रीडमानस्य शङ्के
शिशुशिशिरहरीशो कुक्कुटा हासनाय ।

---

1 कामविलासभाण पद्य 41
2 रुक्मिणीमाधवाङ्क पद्य 22
3 कलानन्दक नाटक, 2 82
4 वही 5 15
5 वही 7 44
6 वही 7 58
7 कुवलयाश्वीय नाटक प्रथमाङ्क

> विधुरमधुरचञ्चत्कन्धराबन्धमेते
> विदधति कुकुरूकू काकुमाकूतवाच ।।[1]

वीरराघव ने मलयजाकल्याणम् नाटिका मे अनेक उत्प्रेक्षायें की हैं। उनकी निम्नलिखित उत्प्रेक्षायें उल्लेखनीय हैं।

1. अस्या सृष्टौ भविन्या कुसुममयसरः शिक्षमाणोऽनुकल्प
   चक्रे चन्द्राब्जमुख्यान् तदनु सूरवधूरुर्वशीमिन्दिरा वा ।
   इत्थ चाभ्यासयोगादनिशमुपचिताच्चातुरी काञ्चिदाप्त्वा
   नून तामायताक्षी निखिलगुणनिधि सृष्टवान्निस्तुलाङ्गीम् ।।[2]

2. व्यापादनाद् विरहिणो व्यतिलङ्घनाच्च
   सर्वागमस्य कथमप्यनुतापमेत्य ।
   आम्रप्रसूनजपरागतुषाग्निपाता–
   दात्मानमव पुनते मधुपा सहर्षम् ।।[3]

रूपक

रूपक अलङ्कार इस शताब्दी के प्राय: सभी रूपको मे मिलता है। नल्लाध्वरी के निम्नलिखित पद्यो मे रूपक अलङ्कार का प्रयोग द्रष्टव्य है।

1. इन्द्रियहय मनोमयरश्मिचय बुद्धिसारथिसनाथम् ।
   देहरथमास्थितोऽय देवो विषयाटवीषु पर्यटति ।।[4]

2. चिन्तातूलिकया हृदम्बुजदले रागेण लेख्या परम् ।
   तन्वङ्गी कथमत्र चित्रफलके तत्तादृशी लिख्यताम् ।।[5]

3. एषोऽस्मि हन्त परदूषणशीकरेण
   सम्प्लावयञ्जलधिनेव भुव युगान्ते ।
   सर्वातिशायिपरकीयगुणक्ष्माभृद्
   दम्भोलिकेलिकलनारसिक स्वभावात् ।।[6]

---

1. कुवलयानन्दोप नाटक, प्रथमाङ्क
2. मलयजाकल्याणम् नाटिका, 1.18
3. वही. 1 30
4. जीवन्मुक्तिकल्याण नाटक, 1.16
5. वही, 2.11
6. वही, 3.18

घोक्कनाथ ने अपने रूपकों में रूपक अलङ्कार का प्रयोग किया है। उनके द्वारा प्रयुक्त रूपक अलङ्कार के निम्नलिखित उदाहरण हैं

1 अस्माक मनोरथनाटकस्येदृश निर्वहण साम्प्रत जातमिति ।[1]

2 यस्यौदार्यममर्त्यभूरुहयशोज्योत्स्नापयोदागम
सौन्दर्यं कुसुमास्त्रकीर्तितिनिबिडाहङ्कारसद्रेक्षणम् ।
शौर्यं मध्यमपार्थकीर्तिनिगमाम्नायस्य दर्शोदय
तस्य श्रीवसवेन्द्रभूपतिमणेर्गृह्णीत को भूमिकाम् ।[2]

3 दीर्घलोचननिपङ्गगतै भ्रूशरासनविनिर्मलितै ।
रज्जुभिरिव रथ तवैषा मानस हरति दृष्टिशरै ॥[3]

4, वेणीराहुफणायित
कचमूलग्रस्तमास्यविधुमस्या ।
दृष्ट्वा मज्जति नामी
सरसि मनस्तापधुतये मे ॥[4]

आनन्दरायमखी ने रूपक अलङ्कार का प्रयोग अधिक नहीं किया है। उनके द्वारा प्रयुक्त रूपक अलङ्कार के निम्नलिखित उदाहरण हैं—

1 मन्त्रिस्त्वदीयमतिकौशलनौबलेन
तीर्णो रणाम्बुधिरभूदतिदुस्तरोऽपि ।
यस्मिन्भयकरगतिज्वरपाण्डुमुख्यो
रोगव्रज किल तिमिगिलताभयासीत् ॥[5]

2 भगवन्करुणासमित्समिद्धे
दृढनिर्बीजसमाधियोगवह्नौ ।
प्रविलापितसर्वचित्तवृत्ति
परमानन्दघनोऽस्मि नित्यतृप्त ॥[6]

---

1 कान्तिमती परिणय नाटक द्वितीयाङ्क
2 सेवन्तिकापरिणय नाटक 1 11
3 वही 1 47
4 वही 5 16
5 जीवानन्दननाटक 7 1
6 वही 7 27

3 सरसकवितानाम्नो हेम्न कषोपलता गता
विहरणभव पड्दर्शिन्या विवेकघनाकरा ।
विदधति तपोलभ्या सभ्या इमे मम कौतुक
तदिह हृदय नाट्येनैतानुपासितुमीहते ।।[1]

4 नामैव नालमिह किं युवयोर्जनस्य
ससारघोरविपसागरतारणाय ।।[2]

5 सखे, भवदीयसविधानसुदृढप्रवहणेन निस्तीर्ण
इवायमविद्यासकटसागर ।।[3]

जगन्नाथ कवि के रूपको मे रूपक अलङ्कार का प्रयोग स्वल्प है । उनके द्वारा प्रयुक्त रूपक अलङ्कार के निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

1 अधरमधुनो लोभात्केशद्विरेफसमूहत-
स्सरभसविनिर्याता काचित्सखे मधुपावलि ।।[4]

2 एता किल कामुकमनोमृगाक्रष्टिकिरातगीतय ।[5]

अनङ्गविजयभाण के कर्त्ता जगन्नाथ के निम्नलिखित पद्यो मे रूपक अलङ्कार उल्लेखनीय है—

1 आधोरणेन्द्रसृणिवज्रमहाप्रहार
सक्षोभित कठिनबृंहितगर्जितेन ।
सार्धं मदाम्बुघनवृष्टिभिरञ्जनश्री-
र्धावत्यहो मदगजाधिपकालमेघ ।।[6]

2 सचार्य भानुमृगराज नभोवनान्ते
पुष्यत्तमालतरुसहतिमेचकेऽस्मिन् ।
पातालगह्वरगुहाभिमुखेऽन्धकार-
सघातकुञ्जरघटा स्वयमेति मन्दम् ।।[7]

---

1 विद्यापरिणय नाटक, 1.5
2 वहीं 1 21
3 वही सप्तमाङ्क
4 वसुमतीपरिणय नाटक तृतीयाङ्क
5 रतिमन्मथ नाटक तृतीयाङ्क
6 अनङ्गविजयभाण पद्य 86
7 वही पद्य 125

विश्वेश्वर पाण्डेय ने नवमालिका नाटिका मे रूपक अलङ्कार का प्रयोग कम किया है। उनके द्वारा प्रयुक्त रूपक अलङ्कार के निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

1 अन्तर्दाहो विवस्वानसमशरदहृत्केतकीम्लानहेतु–
मोंहोऽप्याहत्य राहुग्रह इव चित्तचन्द्र धुनोति ।।[1]

2 भुजावीरूदद्वन्द्वो मधुरतरबिम्बाधरसुधा
रसास्वादश्चास्या भवति बहु तावद् व्यवहित ।।[2]

द्वारकानाथ द्वारा गोविन्द वल्लभ नाटक मे प्रयुक्त रूपक अलङ्कार के निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

1 हलधर [1] खलगणविरससमिन्धनदहनपराक्रमदेव ।
यदुकुलदुग्धपयोधिसुधाकर गोकुलकैरवशर्मन् ।[3]

2 भ्रूयुगमदनधनुषि परिरोपय खरतरनयनकलम्ब
निक्षिप सकृदपि तत्र पतिष्यति हृदयहरोऽविलम्बम् ।।[4]

3 क्रमात्तत श्रीवृषभानुनन्दनामुखेन्दुसदर्शनसभवोन्नति ।
हरेस्तु रागाम्बुधिरस्य न शके तनौ मिमिते पुलकप्रभायुजि ।।[5]

राजविजयनाटक मे राजा राजवल्लभ के यशोगान मे अनेक बार रूपक अलङ्कार का उल्लेखनीय प्रयोग हुआ है—

1 यस्मिन् नृसिंहो नृपराजवल्लभ
स चारमेच्छत् श्रुतिगोचराध्वनि ।
अन्ये महीपा मृगसोदरा कथ
यानोद्यमाय स्पृहयन्ति सारत ।।[6]

2 ससारवृक्षममुना मखपुण्यजात
खड्गेन भेत्स्यति भवानिति वृक्षमेतम् ।।[7]

---

1 नवमालिका नाटिका 2 16
2 वही 2 17
3 गोविन्दवल्लभनाटक, 1 गीत 17
4 वही, 6 गीत 2
5 वही 6 12
6 राजविजयनाटक, प्रथमाङ्क
7 वही, द्वितीयाङ्क

3 अस्माक परमानन्दद्रुम पल्लवित पुर· ।
अमुनैव वसन्तेन परित पुष्पित· कृत ॥[1]

रामपाणिवाद ने अपने रूपको मे रूपक अलड्कार का प्रयोग किया है। निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है—

आवृत्तिशून्या पदवी प्रपित्सो-
र्निर्वर्तित मे विषयोपरागात् ।
इद मन कष्टमपाङ्गपाशै-
राकृष्य दत्त शफरध्वजाय ॥[2]

रामवर्मा द्वारा अपने रूपकों म प्रयुक्त रूपक अलड्कार के उदाहरणो मे से निम्नलिखित द्रष्टव्य है—

1 चतुर्विद्याभिनयविद्याविशारदभरतकुलसिन्धुबन्धुर-
मुक्तामणे शृङ्गाररसतरङ्गितस्याभिनवस्य कस्यचित्
प्रेक्षणकस्याभिनयचन्द्रिकामस्माक विलोचनचकोर-
निकर पाययितव्यो भवतेति ॥[3]

2 बिभ्राणस्तिलक मुखे मधुकरप्राग्भारमुग्धालको
भ्राजद्दाडिमपाटलाधरपुटीभास्वत्प्रसूनस्मित. ।
उत्तुङ्गस्तबकस्तनानततनूर्मृद्वीर्लतायोषित
सामोदा विदधत् स एव हि विटोत्त सायते माधवः ॥[4]

शिवकवि के द्वारा प्रयुक्त रूपक अलड्कार का यह उदाहरण उल्लेखनीय है—

देव, इयमनुरागवल्ली रुक्मिणी भवतश्चित्तालवाले
वर्द्धमाना ते विरहसन्ताप दूरीकरोतु ॥[5]

काशीपतिकविराज ने मुकुन्दानन्दभाण मे रूपक अलड्कार का प्रयोग किया है। निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है—

---

1 राजविजयनाटक
2 मदनकेतुचरितप्रहसन, पद्य 8
3 शृङ्गारसुधाकरभाण, प्रस्तावना
4. वही, पद्य 5
5 विवेकचन्द्रोदयनाटक, चतुर्थाङ्क

कलङ्कदासो गगनाम्बुराशौ प्रसार्य चन्द्रातपतन्तुजालम् ।
लग्नोडुमीनाल्लघु सजिघृक्षुश्चन्द्रप्लवस्यश्चरमाब्धिमेति ।।[1]

कृष्णदत्त ने अपने सान्द्रकुतहल प्रहसन मे रूपक अलड् कार का प्रयोग कम किया है । वल्लभाचार्य की प्रशसा मे उनके द्वारा प्रयुक्त रूपक अलड् कार का यह उदाहरण द्रष्टव्य है—

1 यदि प्रादुर्न स्याद्विबुधविटपोवल्लभविभु
निराधारा नक्ष्यन्नविदितफलाऽज्ञातसुमना ।
इय भक्तिर्वल्ली व्यसनकुसुमा कृष्णफलसू
स्तमाश्लिष्याधार जगति खलुविस्तारमगमत् ।।[2]

2 महामायावादप्रचुरतिमिरच्छेदमिहिरम् ।।[3]

प्रधान वेड कप्प ने अपने रूपको मे रूपक अलड् कार का प्रयोग किया है । निम्नलिखित उदाहरण उल्लेखनीय है—

1 वन्दे वल्मीकभुव वन्दारुजनावनैकजन्मभुवम ।
यत्काव्यामृतलाभात्सत्कविबुधनामसार्थता जाता ।।[4]

2 योऽसौ ह्पसुधोसुधाम्बुनिधित प्राभूत भङ्गोदयात
आविर्भूतकलाकलापविभवस्सरक्षते सर्वदा ।
सोऽय नूतनचन्द्रमा विजयते वेङ्कन्द्रनामा कवि
तच्चित्रवा स्मृतमात्रसौख्यघटनाख्यात कवित्वामृतम् ।।[5]

3 तस्यास्तनुद्युतिनवाम्बुषु सञ्चरन्त-
मद्यैव मे हृदयमीनमतीव यत्नात् ।
आदाय वागुरिकया निजमाययैव
बध्नाति वीतकरुणो कुसुमास्त्रदाश· ।।[6]

---

1 मुकुन्दानन्दभाण, पद्य 30
2 सान्द्रकुतूहलप्रहसन, 1 64
3 वही, 1 65
4 सीताकल्याण वीथी, पद्य 3
5 कुक्षिम्भरभैक्षवप्रहसन पद्य 9
6 कामविलासभाण, पद्य 117

रामचन्द्रशेखर द्वारा प्रयुक्त रूपक अलङ्कार के निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

1 दोर्दण्डाग्रशिखण्डितुण्डदलितद्विण्मण्डलीकुण्डली
विद्वत्पाण्डरपुण्डरीकपटलीचण्डांशुरेष प्रभु ।।[1]

2 वाचा वागुरिकावृता नरमृगास्तिष्ठन्त्वल तत्कथा ।।[2]

3 अङ्कूर प्रथम तत किसलय पश्चात्प्रसून भवे-
दाशाया मम वीरुध फलमयो दृश्येत भुज्येत च ।।[3]

4 नवकुवलयनेत्रा सैकतश्रोणिबिम्बा
विकसितजलजास्या चक्रवाकस्तनाढ्या ।
घनविलसितवेणी धर्मरश्मेस्तनूजा
प्रियमुपसरतीय प्रस्फुरत्फेनहासा ।।[4]

5 मरुद्व्यजनवीजितो मधुकरावलीधूमित
प्रकीर्णतरतारकापटलविस्फुलिङ्गच्छट: ।
पिकारवसमुन्मिषच्चटचटध्वनि प्लोषय
त्ययोगिसमिध शशिज्वलन उग्रहेतिव्रजै ।।[5]

कृष्णदत्त मैथिल के रूपको मे उपलब्ध रूपक अलङ्कार के प्रयोगो मे से निम्नलिखित द्रष्टव्य हैं—

1 तन्वाना निजसद्मनि स्मितसुधाकर्पूरपूरप्लवम् ।[6]

2 धैर्यप्लवमवलम्ब्य विपदम्बुधिं निस्तरन्ति महान्त: ।[7]

वीरराघव ने मलयजाकल्याणम् नाटिका मे रूपक अलङ्कार का प्रयोग किया है । निम्नलिखित उदाहरण उल्लेखनीय हैं—

---

1 कलानन्दकनाटक 1 5
2 वही, 1 27
3 कमलानन्दनाटक 2 14
4 वही 3 18
5 वही, 7 39
6 पुरञ्जनचरित, 2 7
7 कुवलयाश्वीयनाटक, तृतीयाङ्क

1 अङ्गारैरिव पल्लवेषु पवनैः पुंसा वसन्तात्मना
ध्माताया मलयात्मनः फलवशादन्ते मृदूत्पादिते ।
आदीप्तेषु निवेश्य बाणनिवहान् पौष्पो भृशं तापयन् ।
तीक्ष्णत्वाय मधुद्रवे कलयते कन्दर्पकर्मारराट् ॥[1]

2 अद्याहृत्य सुधांशुमण्डलमयीं नव्यां कलङ्कालिका
विभ्राणामसितानिलोदयपटानञ्चत्प्रपञ्चार्णवे ।
ताराभिर्गुलिकाभिराश्रितदशा चन्द्रप्रभावागुरा
विस्तार्य स्मरधीवरो विरहिणो मीनान् विमीनात्यहो ॥[2]

दृष्टान्त—

दृष्टान्त का प्रयोग नरसाध्वरी,[3] चोक्कनाथ,[4] आनन्दरायमखी,[5] जगन्नाथ,[6] विश्वेश्वर पाण्डेय,[7] रामपाणिवाद,[8] प्रधानवेङ्कप्प[9] रामचन्द्रशेखर,[10] कृष्णदत्त-मैथिल,[11] सदाशिव उद्गाता,[12] तथा मल्लारि आराध्य[13] ने किया है। कृष्णदत्त-मैथिल द्वारा प्रयुक्त निम्नलिखित दृष्टान्त द्रष्टव्य है—

त्रैलोक्याभयदानशौण्डमनसस्तातस्य यत्तादृश
पुत्रोऽस्मीति मम प्रतिष्ठितिरसौ प्रीणाति युष्मानपि ।

---

1 मलयजाकल्याणम् नाटिका, 1 32
2 वही 3 10
3 जीवन्मुक्तिकल्याणनाटक, 3 48 5 18 19, 21, 26, 29-32
4 सेवन्तिकापरिणयनाटक 1 46
5 जीवानन्दननाटक 4 16, 6 32
6 वसुमतीपरिणयनाटक, 3 32, 4 25, 5 6, 9 रतिमन्मथनाटक, 5 26
7 नवमालिका नाटिका, 1 8
8 मदनकेतुचरितप्रहसन, पद्य 12, 44, 65, 71
9 सीताकल्याणवीथी पद्य 58 [illegible]ईहामृग 3 6, महेन्द्रविजयडिम, 1 14, 4 12
10 कलानन्दक नाटक, 1 8
11 पुरञ्जनचरितनाटक, 1 3 13, 3 20, 5 38, कुवलयाश्वीयनाटक, 1 5
12 प्रमुदितगोविन्दनाटक, 1 6
13 शिवलिङ्गसूर्योदय नाटक, 1 27, 2 24 28, 3 9, 5 15, 31, 32

तातस्यास्य मया सुतेन तु गुणः कीटायमानेन कः
सौम्यत्वेन बुधोऽश्नुते ग्रहपदं चान्द्री प्रतिष्ठा स्वतः ॥[1]

अपह्नुति

चोक्कनाथ,[2] आनन्दरायमखी,[3] जगन्नाथ,[4] कावल जगन्नाथ,[5] राजविजय नाटक के अज्ञात कर्ता,[6] रामवर्मा,[7] कृष्णदत्त,[8] प्रधान वेङ्कप्प,[9] रामचन्द्रशेखर,[10] कृष्णदत्तमैथिल,[11] तथा सदाशिव उद्गाता[12] ने अपह्नुति अलङ्कार का प्रयोग किया है। रामचन्द्रशेखर द्वारा प्रयुक्त अपह्नुति का निम्नलिखित उदाहरण देखिये—

एताः प्रत्युटजं मुनीन्द्रवनिता नित्यात्मपूजाविधौ
सन्तुष्यन्मनसा समर्पितमिव त्रेताग्निना बिभ्रते ।
नेत्रेष्वञ्जनमुत्पलं श्रुतिषु च व्याकीर्णधूमच्छला-
न्मुक्ताहारचयं श्रमाम्बुकणिकाव्याजेन वक्षःस्थले ॥[13]

---

1. कुवलयाश्वीय नाटक, द्वितीयाङ्क
2. कान्तिमतीपरिणय नाटक, 1.33, 5.6, 22, सेवन्तिकापरिणय नाटक, 1.34, 42, 5.4।
3. जीवानन्दननाटक, 3.20
4. वसुमतीपरिणय नाटक, 2.15–16, 3.24–25
   रतिमन्मथनाटक, 1.23-24, 2.9
5. अनङ्गविजयभाण, पद्य 47
6. राजविजयनाटक, प्रथमाङ्क तथा द्वितीयाङ्क
7. शृङ्गारसुधाकर भाण, पद्य 38, 66, 93
8. सान्द्रकुतूहलप्रहसन, 1.51
9. कामविलासभाण, पद्य 93,118
10. कलानन्दक नाटक, 2.85 3.9, 6.14, 33-34, 7.40
11. पुरञ्जनचरितनाटक, 5.17
12. प्रमुदितगोविन्दनाटक, 3.2
13. कलानन्दकनाटक, 7.53

स्मरण—

चोक्कनाथ[1], आनन्दरायमखी[2], प्रधान वेङ्कप्प[3] तथा रामचन्द्रशेखर[4] ने अपने रूपकों में स्मरण अलङ्कार का प्रयोग किया है।

भ्रान्तिमान्—

चोक्कनाथ[5], आनन्दरायमखी[6], जगन्नाथ[7], रामवर्मा[8], कृष्णदत्त[9], प्रधान वेङ्कप्प[10], रामचन्द्रशेखर[11], वीरराघव[12] तथा सदाशिव उद्गाता[13] के रूपकों में भ्रान्तिमान् अलङ्कार द्रष्टव्य हैं।

सन्देह—

चोक्कनाथ[14], जगन्नाथ[15], द्वारकानाथ[16], रामपाणिवाद[17], प्रधान वेङ्कप्प[18] तथा वीरराघव[19] के रूपकों में सन्देहालङ्कार का प्रयोग किया गया है।

---

1 कान्तिमतीपरिणयनाटक, 3 9 सेवन्तिकापरिणयनाटक 1 21 2 20, 3 25
2 विद्यापरिणय नाटक, 6 20।
3 कुक्षिम्भरभैक्षवप्रहसन, पद्य 16
4. कलानन्दकनाटक 3.13
5 कान्तिमतीपरिणयनाटक, 3.10, सेवन्तिकापरिणयनाटक, 1 1, 3 17
6. जीवानन्दननाटक, 4.30, 7 13
7 रतिमन्मथनाटक, 5 9
8] शृंगारसुधाकरभाण, पद्य 42, 58
9 सान्द्रकुतूहलप्रहसन, प्रथमाङ्क
10 कामविलासभाण, पद्य 70, रुक्मिणीमाधवाङ्क, 1 14
11 कलानन्दक नाटक, 4 49, 6 15 7 32
12. मलयजाकल्याणम् नाटिका 4 12
13 प्रमुदितगोविन्दनाटक, 2.23 3 3
14 सेवन्तिकापरिणय नाटक, 3 43
15 रतिमन्मथ नाटक 5 6
16 गोविन्दवल्लभनाटक 6 11
17 लीलावतीवीथी, पद्य 32
18 महेन्द्रविजयडिम, 1 49
19 मलयजाकल्याणम् नाटिका, 3 1

अर्थान्तरन्यास—

अर्थान्तरन्यास का प्रयोग चोक्कनाथ[1] आन्दरायमखी[2] विश्वेश्वर पाण्डेय,[3] द्वारकानाथ[4], राजविजयनाटक के अज्ञातकर्त्ता[5], रामपाणिवाद[6], प्रधानवेङ्कप्प[7] तथा कृष्णदत्तमैथिल[8] ने अपने रूपकों में किया है।

विषम—

चोक्कनाथ[9], आनन्दराय मखी[10], जगन्नाथ,[11] तथा रामपाणिवाद[12] ने रूपकों में विषम अलङ्कार का प्रयोग किया है।

व्यतिरेक—

चोक्कनाथ[13], जगन्नाथ[14], जगन्नाथ वावल[15], विश्वेश्वर पाण्डेय[16], राजविजय नाटक के अज्ञात कर्त्ता[17], रामपाणिवाद[18], रामवर्मा[19] प्रधानवेङ्कप्प[20], रामचन्द्रशेखर[21],

---

1. कान्तिमतीपरिणयनाटक, 3 11
2. जीवानन्दननाटक, 2 12, विद्यापरिणय नाटक, 5 40
3. नवमालिका नाटिका, 2 17
4. गोविंदवल्लभनाटक, 1.5–6
5. राजविजयनाटक
6. मदनकेतुचरितप्रहसन, पद्य 4 31, 49, 55, 89, 111
7. सर्वंसीसार्वभौमेहामृग, 4 18, महेन्द्रविजयडिम, 4.3, रुक्मिणीमाधवाङ्क, 1.15
8. पुरञ्जनचरितनाटक, 5 2 11,
   कुवलयाश्वीय नाटक, प्रथमाङ्क
9. सेवन्तिकापरिणयनाटक. 1.6
10. विद्यापरिणयनाटक, 7 36
11. वसुमतीपरिणयनाटक, 5 19
12. मदनकेतुचरितप्रहसन, पद्य 60
13. सेवन्तिकापरिणयनाटक, 2 29
14. वसुमतीपरिणयनाटक, 5 17
15. अनङ्गविजयभाण, पद्य 148–49
16. नवमालिकानाटिका, 3 3, 6
17. राजविजय नाटक, प्रथमाङ्क, द्वितीयाङ्क
18. मदनकेतुचरितप्रहसन, पद्य 96
19. शृङ्गारसुधाकरभाण, पद्य 49, 52, 63, 69, 80
20. महेन्द्रविजयडिम, 3 16, कामविलासभाण, पद्य 39, 77, 82
21. रसानन्दक नाटक, 2 81

वीरराघव[1] तथा मल्लारि आराध्य[2] के रूपको मे व्यतिरेक अलङ्कार का प्रयोग हुआ है ।

विशेषोक्ति

चोक्कनाथ ने विशेषोक्ति अलङ्कार का प्रयोग किया है । निम्नलिखित उदाहरण देखिये—

> विलिप्तः प्रत्यङ्ग हिमजलयुतश्चन्दनरसः
> गृहीतः पर्यङ्कः सरसिजदलैरेव रचितः ।
> श्रिता हर्म्याग्रेषु प्रतिनिशमघर्मांशुकिरणाः
> न शान्तः सन्तापस्तदपि बत वृद्धिं च भजते ॥[3]

काव्यलिङ्ग—

चोक्कनाथ[4], रामवर्मा[5], तथा कृष्णदत्तमैथिल[6] ने अपने रूपको मे काव्यलिङ्ग अलङ्कार का प्रयोग किया है।

सहोक्ति—

जगन्नाथ[7], विश्वेश्वर पाण्डेय[8] तथा रामवर्मा[9] ने अपने रूपको मे सहोक्ति का प्रयोग किया है ।

अन्योक्ति—

जगन्नाथ[10], जगन्नाथ कावल[11], रामपाणिवाद[12], प्रधान वेङ्कप्प[13], कृष्णदत्त मैथिल[14] तथा वीरराघव[15] के रूपको मे अन्योक्ति का प्रयोग मिलता है ।

---

1. मलयजाकल्याणम् नाटिका, 1.33
2. शिवलिङ्गसूर्योदय, 5 4, 6, 22
3 सेवन्तिकापरिणयनाटक, 5 2
4. सेवन्तिकापरिणयनाटक, 5 10
5. शृङ्गारसुधाकरभाण, पद्य 13
6. पुरञ्जनचरित, 5 6,9
7. वसुमतीपरिणय नाटक, 2 12
8. नवमलिका नाटिका, 1.31
9. शृंगारसुधाकरभाण,पद्य 45, 87
10. वसुमतीपरिणयनाटक,3 34, 42
11. अनङ्गविजयभाण, पद्य 91
12. मदनकेतुचरितप्रहसन, पद्य 25, 59, लीलावती वीथी,पद्य 27
13. सीताकल्याणवीथी, पद्य 2,3 25, कुक्षिम्भरभैक्षवप्रहसन, पद्य 80, महेन्द्रविजयडिम, 3 11, रुक्मिणीमाधवाङ्क, पद्य 26
14. पुरञ्जनचरित नाटक, 1.2
15. मलयजाकल्याणम् नाटिका, 1.5

दीपक—

विश्वेश्वरपाण्डेय[1], रामपाणिवाद[2] तथा रामचन्द्रशेखर[3] ने दीपक अलकार का प्रयोग किया है।

निदर्शना—

जगन्नाथ कावल[4], शिवकवि[5] तथा वीरराघव[6] ने निदर्शना का प्रयोग किया है।

विरोध

विरोध अलङ्कार का प्रयोग जगन्नाथ कावल[7] तथा रामवर्मा[8] ने अपने रूपकों मे किया है।

अतिशयोक्ति

रामवर्मा[9] ने शृंगारसुधाकर भाण मे अतिशयोक्ति अलङ्कार का प्रयोग किया है।

व्याजस्तुति

रामपाणिवाद[10] तथा कृष्णदत्त[11] ने अपने रूपकों मे व्याजस्तुति का प्रयोग किया है।

स्वभावोक्ति

रामपाणिवाद[12] ने स्वभावोक्ति का प्रयोग किया है।

---

1. नवमालिकानाटिका, 3 24-25
2. मदनकेतुचरितप्रहसन, पद्य 66, 72
3. कलानन्दक नाटक, 1 32
4. अनङ्गविजयभाण, पद्य 124
5. विवेकचन्द्रोदय नाटक, 3.24
6. मलयजाकल्याणम् नाटिका, 3.9, 4 17
7. अनङ्गविजय भाण
8. शृंगारसुधाकर भाण
9. वही, पद्य 71, 79
10. मदनकेतुचरितप्रहसन, पद्य 41
11. सान्द्रकुतूहलप्रहसन, 1.67, 3.11
12. लीलावती वीथी पद्य 37

अनन्वय

रामचन्द्रशेखर[1] तथा कृष्णदत्तमैथिल[2] ने अनन्वय का प्रयोग किया है।

समासोक्ति

विश्वेश्वर पाण्डेय ने समासोक्ति का प्रयोग किया है। निम्नलिखित उदाहरण देखिए—

अभिनवदयितायाः सन्निधानं दधानं
प्रमदमदमदभ्रं बिभ्रतं वीक्ष्य देवम्।
तरुणमरुणिमानां पानमामर्षरुक्ष्यं
बहलमुपवहन्ती दृश्यते चन्द्रलेखा ॥[3]

रीति और गुण

अट्ठारहवीं शताब्दी के रूपककारों ने अपने रूपकों में विविध रीतियों को अपनाया है। रीतियों का प्रयोग रस के अनुरूप किया गया है। इस प्रकार जिस रूपक में जिस रस की प्रधानता है, उसके अनुरूप ही रीति की भी उस रूपक में प्रधानता है। एक ही रूपक में विभिन्न रसों के अनुकूल विविध रीतियों का भी प्रयोग दिखाई देता है।

गौडी

प्रायश. भाणों में गौडी रीति का प्रयोग किया गया है। गौडी रीति में क्लिष्ट-बन्धता पाई जाती है। रूपकों में युद्धवर्णन में गौडी रीति का प्रयोग हुआ है। जगन्नाथ कावल, घनश्याम, रामवर्मा तथा प्रधानवेङ्कप्प ने अपने भाणों में इस रीति का प्रयोग किया है। *जगन्नाथ, रामपाणिवाद, प्रधान वेङ्कप्प तथा रामचन्द्र*-शेखर के रूपकों में युद्धवर्णन के समय इस रीति का प्रयोग हुआ है। रामचन्द्रशेखर के द्वारा गौडी रीति का प्रयोग देखिये—

प्रचण्डभटमण्डलीकरपुटीकृपाणीलता-
विपाटितमदावलाधिपतिमस्तकान्निस्तलात्।

---

1 कलानन्दकनाटक, 2 80
2. पुरञ्जनचरितनाटक, 5 30
3. नवमालिका नाटिका, 3 30

अनर्गलविनिर्गलद्रु धिरघोरणीशुष्मण-
स्तनोति दिवि गृध्रसन्ततिरिय हि धूम्रभ्रमम् ।।[1]

पांचाली

गोविन्दवल्लभ नाटक इस शताब्दी का पाञ्चालीरीतिप्रधान नाटक है। इसके अतिरिक्त पुरञ्जनचरित नाटक मे दशावतारस्तुति के समय पाचाली रीति का प्रयोग हुआ है। कोमल कान्त पदावली का प्रयोग रीति की विशेषता है। पुरञ्जनचरित नाटक मे पाचाली रीति का प्रयोग निम्नलिखित पद्य मे द्रष्टव्य है—

प्रलयपयोधिजलेऽपि न सीदति निगमतरिस्त्वयि सक्ता ।
भवजलधौ पतितोऽपि न मज्जति किमपि भवद्गुणवक्ता ।।
जय जय मीनशरीर मुरारे ।
मङ्गलमय मधुसूदन माधव करुणाकर कलुषारे ।।[2]

वैदर्भी

वैदर्भी रीति की प्रमुख विशेषता सरल भाषा है। अट्ठारहवी शताब्दी के रूपको मे जहाँ सरल भाषा का प्रयोग हुआ है, वहाँ वैदर्भी रीति प्राप्त होती है। नल्लाध्वरी, चोक्कनाथ, आनन्दराय मखी, हरियज्वा तथा शिव कवि के रूपको मे वैदर्भी रीति का प्राधान्य है। शिव कवि के द्वारा वैदर्भी रीति का प्रयोग निम्नलिखित पद्य मे द्रष्टव्य है—

राजा धर्मो यत्र मन्त्री विवेकः
श्रद्धा राज्ञी निर्णयो राजपुत्रः
कोपस्तोपः सैनिकाः सयमाद्याः
कामध्वसान्मोक्षसाम्राज्यलब्धिः ।।[3]

गुण रस के धर्म हैं। अट्ठारहवीं शताब्दी के रूपको मे प्रसाद गुण का प्राधान्य है। प्रसादगुण की स्थिति सभी रसो मे होने के कारण यह प्रधान गुण है। इस शताब्दी के रूपको मे जहाँ शृङ्गार, करुण तथा शान्त रसो का प्रयोग हुआ है, वहाँ माधुर्य गुण प्राप्त होता है। इसी प्रकार इस शताब्दी के जिन रूपको में वीर, बीभत्स तथा रौद्र रसो का प्रयोग हुआ है वहाँ ओजोगुण मिलता है।

---

1. रसानन्दक नाटक, 4.49
2. पुरञ्जनचरित नाटक, 5.8
3. विवेकचन्द्रोदय नाटक, 3.27

विविध भाषाओं का प्रयोग

अट्ठारहवी शताब्दी के अधिकाश रूपककारो ने अपने रूपको मे प्राकृत भाषा का प्रयोग किया है। इस शताब्दी के रूपको मे विदूषक, स्त्रियाँ तथा अन्य नीच पात्र प्राकृत मे बोलते हैं। जिन रूपककारो ने अपने रूपको मे प्राकृत का प्रयोग नही किया है, वे हैं—सान्द्रकुतूहलप्रहसन के कर्त्ता कृष्णदत्त, विवेकमिहिरनाटक के रचयिता हरियज्वा, शिवलिङ्गसूर्योदय नाटक के लेखक मल्लारि आराध्य मञ्ज-महोदय रूपक के कर्त्ता नीलकण्ठ तथा माध्यमहोदय नाटक के रचयिता जगन्नाथ। असमिया अङ्कियानाट की शैली पर लिखे गये कविचन्द्रद्विज के नाटक कामकुमार-हरण मे प्राकृतभाषा का प्रयोग नही किया गया है, परन्तु इसमे प्राप्त कतिपय गीत असमिया भाषा में हैं। अङ्कियानाट की शैली के ही अन्य सस्कृत नाटक गौरीकान्त द्विज के विघ्नेशराजन्मोदय मे भी प्राकृत का प्रयोग नही किया गया है, परन्तु इसके भी गीत असमिया छन्दो मे सस्कृत भाषा मे लिखे गये हैं।

शाहजी के चन्द्रशेखरविलास रूपक तथा आनन्दराय मखी के विद्यापरिणय नाटक मे प्राकृत का प्रयोग नही किया गया है। विद्यापरिणय नाटक पूर्ण रूप से सस्कृत मे लिखा गया है। चन्द्रशेखरविलास मे प्राकृत के स्थान पर आन्ध्री का प्रयोग हुआ है।

नाट्यशास्त्रीय नियमो के अनुसार भाणो मे प्राकृत का प्रयोग नहीं किया जाता। तदनुसार इस शताब्दी के भाणो मे भी प्राकृत का प्रयोग नही हुआ है। अपवादस्वरूप काशीपतिकविराज द्वारा विरचित मुकुन्दानन्द भाण है जिसमे प्राकृत का भी प्रयोग हुआ है। सम्भवतः यही कारण है कि इसकी प्रस्तावना मे इसे मिश्र-भाण कहा गया है।

घनश्याम ने अपने दो रूपको चण्डानुरञ्जनप्रहसन तथा डमरुक की रचना पूर्ण रूप से संस्कृत मे की है। अत. इन दोनो रूपको मे भी प्राकृत भाषा नही प्राप्त होती।

उपर्युक्त रूपको मे प्राकृत का प्रयोग सम्भवत. उसके अपरिचित हो जाने के कारण नही किया गया है। आनन्दराय मखी के विद्यापरिणय नाटक की प्रस्तावना में सूत्रधार ने आकाशभाषित के प्रयोग द्वारा सामाजिकों की निम्नलिखित उक्ति कही है—

> अप्राकृतसभा हृद्या न प्राकृतगिरो मता।
> अतः सस्कृतया वाचा सभालङ्क्रियतामिति ॥[1]

---

1. विद्यापरिणय नाटक, प्रस्तावना।

इससे यह स्पष्ट है कि उस समय कतिपय लोग प्राकृत के प्रयोग का बहिष्कार करते थे।

अट्ठारहवीं शताब्दी के अधिकांश रूपककारों द्वारा प्राकृत भाषा का प्रयोग किये जाने से यह स्पष्ट है कि उस समय के रूपककार रूपकों में प्राकृत प्रयोग की प्राचीन परम्परा को अक्षुण्ण रखना चाहते थे।

अट्ठारहवीं शताब्दी के अधिकांश रूपकों में प्रयुक्त प्राकृत शौरसेनी, मागधी अथवा अर्द्धमागधी है। कतिपय रूपककारों ने प्राकृत में पद्य रचना भी की है। वीरराघव द्वारा प्राकृत में रचित पद्य का निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है—

> रक्खाए लोग्राण पुरट्ठिओ एव्व पुव्वसञ्झाए ।
> फलेहिं करेहिं णिलिग्राँ ईसिसमभिण्णकुम्भल राग्रा ॥[1]

शाहजी के पञ्चभाषाविलास नाटक में संस्कृत के अतिरिक्त तमिल, तेलुगु, मराठी तथा हिन्दी भाषाओं का भी प्रयोग हुआ है।

रमापति उपाध्याय के रुक्मिणीपरिणय नाटक तथा लाल कवि के गौरीस्वयवर नाटक में मैथिली भाषा के गीतों को निविष्ट किया गया है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि अट्ठारहवीं शताब्दी के संस्कृत रूपकों में संस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत तथा अन्य स्थानीय भाषाओं का प्रयोग हुआ है। धीरे धीरे प्राकृत का स्थान स्थानीय भाषाएँ लेना प्रारम्भ करती हुईदिखाई देती हैं।

गीति–योजना

गीतों के प्रयोग से नाटक की रोचकता में वृद्धि की गई है। गीति रूपक का पञ्चम तत्त्व भी है। यही कारण है कि प्राचीन काल से संस्कृत रूपकों में गीतों का प्रयोग होता रहा है। इसी परम्परा को निरन्तर रखने के लिये अट्ठारहवीं शताब्दी के रूपककारों ने अपने रूपकों में गीतों का समावेश किया है। इस शताब्दी के कतिपय रूपकों के गीत संस्कृत भाषा में, अन्य के मैथिली भाषा में, कतिपय के असमिया भाषा में तथा अन्य के तमिल, तेलुगु, मराठी तथा हिन्दी भाषा म हैं।

कृष्णदत्तमैथिल के पुरञ्जनचरित नाटक में दशावतारस्तोत्र संस्कृत भाषा में है। यह जयदेव के गीतगोविन्द की शैली में सुललित तथा कोमलकान्त पदावली

---

1 मलयजाकल्याणम् नाटिका, 1 5

में रचा गया है। यह गेय होने के कारण रोचकता में वृद्धि करता है। कच्छपावतार की निम्नलिखित स्तुति देखिये—

> नगभरभुजगविनि श्वसिताकुलमवनितल सुगरिष्ठे।
> कलितमुकुर इव तिष्ठति सुस्थिरमाकलित तव पृष्ठे॥
> जय जय कच्छपरूप मुरारे।
> मङ्गलमय मधुसूदन माधव करुणाकर कलुपारे॥[1]

शाहजी ने चन्द्रशेखरविलास नाटक में अनेक सस्कृतगीतो का प्रयोग किया है। ये गीत यहाँ दस कहे गये हैं। ये विविध रागो तथा तालो में निर्मित हैं। इस रूपक में निम्नलिखित रागो तथा तालो से विरचित गीतो का प्रयोग हुआ है—

1 नाटराग तथा झम्पताल
2 गौल राग तथा त्रिपुटताल
3 गुम्मकाम्मोदिराग तथा अतिताल
4 पाडिराग तथा आदि ताल
5 राग (अज्ञात) तथा अटताल
6 राग (अज्ञात) तथा आदिताल
7 आहिरिराग तथा आदिताल
8 राग (अज्ञात) तथा आदिताल
9 रेवगुप्तिराग तथा अटताल
10 राग (अज्ञात) तथा आदिताल
11. राग (अज्ञात) तथा अटताल
12 राग (अज्ञात) तथा आदिताल
13. राग (अज्ञात) तथा अटताल
14 राग (अज्ञात) तथा आदिताल
15 राग (अज्ञात) तथा आदिताल
16 राग (अज्ञात) तथा अटताल
17. राग (अज्ञान) तथा आदिताल
18 राग (अज्ञात) तथा आदिताल
19 राग (अज्ञात) तथा अटताल
20 राग (अज्ञात) तथा अटताल

---

1. पुरञ्जयचरित नाटक, 5.10

21 राग (अज्ञात) तथा अटताल
22 राग (अज्ञात) तथा अटताल

इसी प्रकार इस रूपक के अन्य गीत भी विविध रागों तथा तालों में विरचित हैं।

गोविन्दवल्लभ नाटक में द्वारकानाथ ने जयदेव के गीतगोविन्द की शैली में कोमलकान्त पदावली में संस्कृत भाषा में विविध गीतों की रचना कर समाविष्ट किया है। निम्नलिखित उदाहरण देखिये—

नन्दनन्दनो वृन्दावासे।
विहरति विविधमनोरमकुसुमसमाकुलविटपिविलासे ॥[1]

गौरीकान्त द्विज ने विघ्नेशजन्मोदय रूपक में अनेक गीतों का प्रयोग किया है। ये गीत संस्कृत भाषा में हैं परन्तु असमिया छन्दों में लिखे गये हैं। इन गीतों में असमिया भाषा के दुलडी तथा लेहारी छन्दों का प्रयोग हुआ है।

नारायणतीर्थ की कृष्णलीलातरङ्गिणी में विविध रागों तथा तालों में विरचित संस्कृत भाषा के गीत प्राप्त होते हैं। इन गीतों में से कतिपय के राग तथा ताल निम्नलिखित हैं—

1 सौराष्ट्रराग तथा अटताल।
2 मुखारिराग तथा अटताल।
3 सौराष्ट्रराग तथा त्रिपुटताल।
4 नाटराग तथा जम्पे ताल।
5 नादनामक्रियाराग तथा आदिताल।

सत्रहवीं शताब्दी के कवि मानवेद की कृष्णनीति के आदर्श पर रामपाणिवाद द्वारा अट्ठारहवीं शताब्दी में विरचित शिवागीति में अनेक संस्कृत गीतों का प्रयोग हुआ है। ये गीत जयदेव के गीतगोविन्द की शैली में लिखे गये हैं। इनमें विविध रागों तथा तालों का प्रयोग किया गया है।

उमापति उपाध्याय के पारिजातहरण नाटक, रमापति उपाध्याय के रुक्मिणी परिणय नाटक तथा कवि लाल के गौरीस्वयंवर रूपक में मैथिली भाषा के अनेक गीतों का प्रयोग हुआ है। ये कीर्तनिया नाटक हैं। इन रूपकों के गीत विविध रागों तथा तालों में हैं। कविलाल ने नाटक, भैरवी, मालव, धनाश्री आदि रागों का प्रयोग किया

1. गोविन्दवल्लभ नाटक, 4.4

है। रमापति उपाध्याय द्वारा रुक्मिणीपरिणय नाटक मे प्रयुक्त गीत का उदाहरण देखिये—

> मैथिलभूपति सिंह नरेन्द्र
> जसु परतापे चकित मेल इन्द्र।
> खण्डवलाकुल मणिमय दीप
> भुजबल जीतल सकल महीप ।।[1]

उपर्युक्त गीत मे कवि ने अपने आश्रयदाता का परिचय दिया है।

उमापति उपाध्याय ने पारिजातहरण नाटक में मालव, वसन्त, असावरी, पञ्चम राजविजय, कोडाव, विभास, केदार तथा ललित रागो मे निर्मित गीतो का प्रयोग किया है।

असमप्रदेशीय अङ्कियानाट की शैली मे कविचन्द्र द्विज द्वारा विरचित काम-कुमारहरण नामक सस्कृतरूपक मे सस्कृतगीतो के अतिरिक्त कतिपय असमियाभाषा के गीतो का भी यत्र तत्र प्रयोग किया गया है। इसके सस्कृतगीत जयदेव के गीत-गोविन्द की शैली मे लिखे गये हैं। ये गीत विविध रागो तथा तालो मे निर्मित हैं। इन गीतो मे निम्नलिखित रागो तथा तालो का प्रयोग हुआ है—

1. पाहाडिया गान्धारराग तथा रुपकजोतिताल
2. मल्लारराग तथा दशवाडी ताल
3. वेलावली राग तथा जोति ताल
4. *सिन्धुराराग तथा चुटाताल*
5. मालसीराग तथा जोति ताल
6. देशाखराग तथा चुटाताल
7. सिन्धुरा राग तथा जोति ताल
8. मालसी राग तथा मगलि ताल
9. जयन्तिराग तथा एकतालिताल
10. खट्राग तथा एकतालिताल
11. *कर्णाटराग तथा चुटाताल*
12. *विहागडा राग तथा एकतालिताल*
13. भटियाली राग तथा एकतालिताल

---

1. रुक्मिणीपरिणय नाटक, प्रस्तावना।।

14. गुञ्जरीराग तथा छुटाताल
15, कौराग तथा एकतालिताल
16. मालसीराग तथा छुटा ताल

कामकुमारहरण रूपक के गीत मधुर हैं । इन गीतों मे सस्कृत तथा असमिया भाषा के छन्दो का प्रयोग हुआ है .

शाहजी के पञ्चभाषाविलास रूपक मे सस्कृत के अतिरिक्त तामिल, तेलुगु मराठी, तथा हिन्दीभाषा के गीतो का भी प्रयोग किया गया है .

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अट्ठारहवी शताब्दी के सस्कृत रूपको मे विविध भाषाओं मे अनेक रागो तथा तालों मे रचित गीतों का प्रयोग हुआ है।

संवाद-योजना

अट्ठारहवी शताब्दी के रूपको मे दो प्रकार की सवादयोजना मिलती है—सरल तथा कठिन । छोटे-छोटे वाक्यो से युक्त सवाद सरल, सरस तथा प्रभावशील होते हैं । वे अभिनेता की दृष्टि से भी उपयुक्त होते हैं । लम्बे-लम्बे वाक्यो तथा क्लिष्ट भाषा से युक्त सवाद कठिन होते हैं । वे रूपक की अभिनेयता तथा प्रभावशीलता की दृष्टि से अनुपयुक्त होते हैं ।

शाहजी[1], नल्लाध्वरी, चोक्कनाथ, वेङ्कटेश्वर[2], आनन्दरायमखी, जगन्नाथ[3], विश्वेश्वर पाण्डेय, घनश्याम, नृसिंह, श्रीधर देवराजकवि, शङ्करदीक्षित, द्वारकानाथ रामपाणिवाद, रामवर्मा, सदाशिव कवि[1], शिवकवि, हरियज्वा, प्रधानवेङ्कप्प, कृष्णदत्त मैथिल, वीरराघव, मल्लारि आराध्य तथा जातवेद के सवाद सरल, सरस तथा प्रभावोत्पादक हैं । इन रूपककारो ने छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग किया है ।

वेङ्कटेश्वर कवि ने सभापतिविलास नाटक मे नन्दिकेश्वर तिल्ववन का लम्बा वर्णन करते हैं । यह वर्णन बहुपृष्ठात्मक है । इसी नाटक के तृतीयाङ्क के प्रारम्भ मे दारुक प्रभात का लम्बा वर्णन करता है । इन लम्बे वर्णनो से सवाद का सौन्दर्य कम हो गया है । इसी प्रकार वेङ्कटेश्वर के ही राघवानन्द नाटक के तृतीयाङ्क के प्रारम्भ मे महाशम्बर का एक लम्बा वक्तव्य है, जो सवाद के सौन्दर्य को क्षीण कर देता है ।

---

1. धर्मरोश्वर विलास नाटक
2. नीलापरिणय नाटक तथा उन्मत्तकविकलश प्रहसन
3. रतिमन्मथ नाटक

अनादि कवि की मणिमाला नाटिका मे अनेक लम्बे-लम्बे वर्णन हैं। द्वितीयाङ्क के प्रारम्भ मे योगिनी सुसिद्धिसाधिनी सूर्यास्त, सन्ध्या तथा चन्द्रोदय का लम्बा वर्णन करती है। चतुर्थाङ्क के प्रारम्भ मे वैतालिक योगीन्द्र अद्भूतभूति भारत के विभिन्न भूभागो का विस्तृत वर्णन करता है। इसी प्रकार इसी अङ्क मे विरही नायक की व्यथा का लम्बा वर्णन है। ये सभी लम्बे वर्णन सवादो की चारुता के लिए हानि-कारक हैं।

जगन्नाथ ने वसुमतीपरिणय नाटक के द्वितीयाङ्क मे वसुमती के सौन्दर्य का लम्बा वर्णन किया है। इसी प्रकार तृतीयाङ्क मे भी उन्होने मन्त्री विवेकनिधि द्वारा राजविषयक लम्बा वर्णन कराया है। ये वर्णन कवि ने पाण्डित्यप्रदर्शन के लिए किये हैं। वास्तव मे इन वर्णनो से सवाद का सौन्दर्य क्षीण हुआ है।

बाणेश्वर शर्मा के चन्द्राभिषेक नाटक मे यत्र-तत्र लम्बे लम्बे वर्णन हैं। प्रथमाङ्क मे राजा चित्रसेन की कीर्ति और वसन्त के लम्बे वर्णन हैं। इसी प्रकार तृतीयाङ्क मे उज्जयिनी के राजा काञ्चनापीड की आख्यायिका का वर्णन है। इन वर्णनो के कारण कथावस्तु की गतिशीलता मे ह्रास हुआ है। बाणेश्वर की भाषा कही कही क्लिष्ट होने के कारण उनके सवाद कठिन हो गये हैं।

श्रीधर के लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक के चतुर्थाङ्क मे विरह से उन्मत्त राजा देवनारायण की व्यथा का लम्बा वर्णन है। यह बहुपृष्ठात्मक है। यह वर्णन सवाद की चारुता को क्षीण करता है।

देवराज कवि के बालमार्तण्डविजय नाटक मे वर्णनो का बाहुल्य है। तृतीयाङ्क मे वर्णन सबसे अधिक हैं। कही-कही समासान्त पदो से युक्त लम्बे-लम्बे वाक्यो का प्रयोग किया गया है। कवि ने 'तदनु' तथा 'ततस्तत.' के द्वारा वर्णनो को निरन्तर रखा है। इन वर्णनो ने सवाद की चारुता को क्षीण कर दिया है।

शङ्कर दीक्षित के प्रद्युम्नविजय नाटक मे कही-कही लम्बे वर्णन मिलते हैं। द्वितीयाङ्क तथा चतुर्थाङ्क के प्रारम्भ मे प्रात काल के लम्बे-लम्बे वर्णन हैं। इन वर्णनो ने सवादो के सौन्दर्य को क्षति पहुँचाई है।

चयनिचन्द्रशेखर के मधुरानिरुद्ध नाटक मे लम्बे-लम्बे वर्णन हैं। तृतीयाङ्क मे अनिरुद्ध उषा के सौन्दर्य का लम्बा वर्णन करते हैं। चतुर्थाङ्क के प्रारम्भ मे भृङ्गी भारत के भूभागो का विस्तृत वर्णन करता है। यह वर्णन बहुपृष्ठात्मक है। अनिरुद्ध द्वारा ज्वालामुखीपीठ तथा सन्ध्या का वर्णन और ज्वालामुखीदेवी की स्तुति बहुपृष्ठा-त्मक है। नारद द्वारा मगध, मथुरा, अवन्ती, मद्र, माहिष्मती तथा विदर्भ के राजाओ

का लम्बा वर्णन किया गया है। अनिरुद्ध की विरहव्यथा और बाणासुर के साथ हुए श्रीकृष्णादि के युद्ध के भी लम्बे वर्णन इस नाटक मे मिलते हैं। इन सभी वर्णनों ने सवाद के सौन्दर्य को कम किया है।

राजविजय नाटक म राजा राजवल्लभ की कीर्ति का लम्बा वर्णन सवाद की चारुता को क्षीण करता है।

सदाशिव कवि के लक्ष्मीकल्याण नाटक मे अनेक लम्बे-लम्बे वर्णन हैं। प्रथमाङ्क मे श्रीपुरी तथा लक्ष्मी के सौन्दर्य के बहुपृष्ठात्मक वर्णन है। यहाँ राजा बालरामवर्मा के गुणो का भी लम्बा वर्णन है। द्वितीयाङ्क मे पुण्यशील द्वारा सन्ध्या का बहुपृष्ठात्मक लम्बा वर्णन किया गया है। नारद और तुम्बुरु चन्द्रमा तथा तारागण का लम्बा वर्णन करते है। तृतीयाङ्क के प्रारम्भ म नन्द द्वारा प्रात्यूषिक मरुत् का लम्बा वर्णन है। इसी अङ्क मे प्रभातवेला का पाण्डित्यपूर्ण लम्बा वर्णन है। यही लक्ष्मी के सौन्दर्य का बहुपृष्ठात्मक वर्णन है। चतुर्थाङ्क मे पद्मनाभ की विरहव्यथा का लम्बा वर्णन है। इन वर्णनो के कारण कथावस्तु की गतिशीलता मे शिथिलता आई है तथा सवादो की चारुता क्षीण हुई है।

वेङ्कटसुब्रह्मण्याध्वरी के वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक के प्रथमाङ्क मे नायक राजा नायिका वसुलक्ष्मी के सौन्दर्य का लम्बा वर्णन करता है। यह बहुपृष्ठात्मक वर्णन पाण्डित्यपूर्ण है। इसी प्रकार द्वितीयाङ्क मे नायक वसन्त और वसुलक्ष्मी के सौन्दर्य का लम्बा वर्णन करता है। ये वर्णन सवादो के सौन्दर्य के लिए हानिकारक हैं।

कृष्णदत्त के सान्द्रकुतूहल प्रहसन के द्वितीयाङ्क मे चित्रालङ्कारो के बाहुल्य के कारण भाषा दुरूह हो गई है। अत इस अङ्क के सवाद कठिन हैं।

रामचन्द्रशेखर के कलानन्दक नाटक मे प्रथमाङ्क मे राजा नन्दक नायिका कलावती के सौन्दर्य का बहुपृष्ठात्मक लम्बा वर्णन करता है। द्वितीयाङ्क मे भी कलावती के सौन्दर्य का लम्बा वर्णन मिलता है। इन वर्णनो ने सवादो की चारुता को क्षति पहुँचाई है।

नीलकण्ठ कवि के मञ्जमहोदय रूपक म लम्बे-लम्बे वर्णनो का आधिक्य है। गौडी रीति के प्रयोग के कारण इसकी भाषा क्लिष्ट होने से इसके सवाद भी कठिन है।

जगन्नाथ शीघ्रकवीश्वर के मत्यमहोदय नाटक म अलङ्कारों के प्रचुर प्रयोग से भाषा के दुरूह हो जाने से सवाद भी कठिन हो गये हैं।

वेङ्कटाचार्य के शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक मे अनेक लम्बे लम्बे वर्णन हैं। प्रथमाङ्क मे मदनशेखर प्रभात का लम्बा वर्णन करता है। द्वितीयाङ्क मे कृष्ण समासान्तपदावलीयुक्त लम्बे वाक्यो मे विहारशैलो का वर्णन करते हैं। यहाँ भाषा की क्लिष्टता के कारण सवाद कठिन हो गये हैं। तृतीयाङ्क मे चित्राङ्ग वसन्त का लम्बा वर्णन करता है। चतुर्थाङ्क के प्रारम्भ मे कुब्जक प्रात काल का बहुपृष्ठात्मक लम्बा वर्णन करता है। पञ्चमाङ्क म सत्यभामा के सौ दर्य का लम्बा वणन है। वर्णनो के इस बाहुल्य के कारण कथावस्तु की गतिशीलता मे कमी आने के साथ ही सवादों की चारुता क्षीण हुई है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अट्ठारहवी शताब्दी के अधिकाश रूपकों के सवाद सरल सरस तथा प्रभावशील हैं तथा केवल कुछ ही रूपको के सवाद कठिन हैं।

लोकोक्तियाँ तथा सूक्तियाँ

अट्ठारहवी शताब्दी के रूपको म अनेक लोकोक्तिया तथा सूक्तिया का प्रयोग हुआ है। कतिपय रूपका मे प्राप्त प्रमुख लोकोक्तियो तथा सूक्तिया को नीचे दिया जा रहा है।

जीवन्मुक्तिकल्याण नाटक

लोकोक्तियाँ

1 खादिरमूले कपित्थफललाभ ।
2 वराटिकान्वेषणप्रवृत्तस्य निधिलाभ ।
3 मलय गच्छतो मन्दरपथानुवर्तनमेतत् ।

सूक्तियाँ

1 *बहुविघ्नानि नाम श्रेयासि ।*
2 अनतिलङ्घनीय नाम राजशासनम् ।

सेवन्तिकापरिणय नाटक

लोकोक्तियाँ

1 हन्त ! घट्टकुट्या प्रभातम् ।
2 वृक्षामूलाश्रयणेन वृष्टिपरिहार मन्यसे ।

सूक्तियाँ

1 मैत्री सुलभा तस्या परिपालनमेव दुष्कर लोके ।
2 अपराधिनि रचिता या सैव क्षान्ति समीरिता सद्भि ॥

जीवानन्दन नाटक

लोकोक्तियाँ

1. पिपीलिकापि न प्रसरीसरीति ।
2. जीवन्नाखुर्न मार्जारं हन्ति हन्यात्कथं मृतं ।

सूक्तियाँ

1. प्राग्जन्मीयतप.फलं तनुभृता प्राप्येत मानुष्यकं
   तच्च प्राप्तवता किमन्यदुचितं प्राप्तुं त्रिवर्गं विना।
2. जाड्यं भिनत्ति जनयत्यधिकं पटुत्वं
   सार्वज्ञमावहति समदमातनोति ।
   विद्वेषिवर्गविजयाय धृतिं विधत्ते
   किं किं करोति न महद् भजनं जनस्य ।।

विद्यापरिणय नाटक

लोकोक्तियाँ

1. किं न प्रसरेयुः सवित्रीगुणास्तत्प्रसवेषु ।
2. विधिरहो तिक्तां विधत्ते सुधाम् ।

सूक्तियाँ

1. विद्याख्या हृदयंगमाकृतिरसावस्याः समासादने
   न व्याधिर्न जरा न मृत्युरशना या सा पिपासापि न ।
   न क्लेशो न भयं च किंतु परमानन्दातिसान्द्रीकृता
   दुःखासकलिता च काचन दशा सत्या समुन्मीलति ।।
2. तेजोवैभवकौशलोपकरणान्यद्धा मुधा सिद्धिषु
   व्यक्तं राघवपाण्डवादिषु रणे मुह्यत्सु दृष्टं हि तम् ।
   तन्मन्ये पुरुषस्य काङ्क्षितहितावाप्तिस्तु दैवेच्छया
   स्वेनेदं कृतमेतदाप्तमिति ये नन्दन्ति मूढा हि ते ।।
3. *मोहस्य किल सवेगं केनापि न निवार्यते ।*
   कोऽनुरुन्धीत वा वेगं नीचप्रवणपाथसाम् ।।

वसुमतीपरिणय नाटक

लोकोक्तियाँ

1. स्वयमेव मया समर्पितो निजचरणयोर्निगडबन्धः ।
2. एष खलु ज्वरितस्य हिमसलिलसेकः ।

3 औदरिकस्याभ्यवहारमेवानुधावति चेतोवृत्ति

4 किं क्वापि वधूवराभ्या विरहित पाणिग्रहो दृष्ट ?

सूक्तियाँ

1 साध्वी रूपवती सदन्वयभवा स्वैर्लक्षणैर्भूषिता
लज्जाप्रावरणा भृश गुरुजनस्याराधने सादरा ।
सापत्या पतिदेवताबहुमता बन्धुव्रजस्याधिक
दक्षा कृत्यविधौ गृहस्य गृहिणी पुण्यात्मना लभ्यते ।।

2 यो हि मित्रेषु कालज्ञ सतत साधु वर्तते ।
तस्य राज्य च कीर्तिश्च प्रतापश्चाभिवर्धते ।।

3 वाहा गन्धवहातिशायितरसो दानोद्धुरा सिन्धुरा
वित्त स्वाश्रितदैन्यहारि सरसाभोगाश्च भोगाश्चिरम् ।
मानश्चातिशयीति लभ्यमखिल यस्मादिह स्वामिन
स्तस्यार्थेष्वनुजीविभि कियदिद त्याज्या यदेषा तनु ।।

सीताराघव नाटक

लोकोक्तियाँ

1 न खलु माधवीलता उद्भिन्नमात्रे पल्लवानि दर्शयन्ति ।

2 महानद्यो महोदधि वर्जयित्वा क्वान्यत्र विश्राम्यन्ति ।

3 नन्वेषानभ्रा सुधावृष्टि ।

सूक्तियाँ

1 शेषेण भारयति चक्रधरो धरित्रीम्
मेघेन वपयति सोऽपि पतिर्नदीनाम् ।
नैशन्तमश्शमयति ज्वलनेन भास्वान
नानन्तर स्वविभव प्रययन्ति सन्त ।।

2 भर्ता काम भवतु भवने वा वने वा वनेऽपि
प्रायेणास्तु क्वचन विषय सम्पदामापदा वा ।
स्वच्छन्दो वा भवतु परतन्त्रोऽथवा सर्वयापि
च्छायेवैन प्रतिलगति या केवल सैव साध्वी ।।

मदनकेतुचरित प्रहसन

सूक्तियाँ

1 निर्व्याजनिर्मलधिया विधुरेषु मन्ये
वीताभिसन्धिकरिणक करुणानुषङ्ग ।

किं चातका विदधते हितमम्बुदेभ्य
सन्तर्पयन्ति किममून्न हि ते पयोभि ॥

2 आयुर्नाम नृणा दिनानि कतिचित्सौदामिनीचञ्चल
नामी भान्ति मनोरथास्त्रिभुवने सिद्धेष्वनास्थापराः।
धन्यस्तावदय क्षण सहृदयं साध प्रसन्नोत्तरं
सलापामृतपाननिर्वृ तधिया लोकेन यो नीयते ॥

रुक्मिणीपरिणय नाटक

सूक्तियाँ

1, परगुणग्राही विद्वान्द्विजातिरनेषणो
रिपुरभिमतो वीतक्राधोऽपरागमना मुनि ।
वितरणपटु श्लाघाशून्य सुखी परसेवको
विगतकुहनाटोपो लोके द्विटोऽपि सुदुर्लभ ॥

2 तन्मित्र यद् व्यसने सा लक्ष्मीर्या करे स्थिता भवति ।
तद्रूप यत्र गुणास्तद्विज्ञान यत्र धर्म ॥

विवेकचन्द्रोदय नाटक

लोकोक्तियाँ

1 तत् त्वमन्धाना नेत्राञ्जन करोषि ।

2 कौलेयक कण्ठीरवास्पदमलङ्कर्तु मिच्छति ।

सूक्तियाँ

1 सत्य वाचि, रुचि श्रुते, हृदि दया, दान करे, पादयो
स्तीर्थानामटन, कथा श्रवणयो , सन्दर्शन चक्षुषि ।
वैराग्य विषयेषु, भक्तिरखिलान्तर्यामिनि ब्रह्मणि
ध्यान यस्य परस्य नास्त्यनुभवो धर्माय तस्म नम ॥

2 यमाह मनुरागम तमवधारयस्व प्रभो
न शत्रुमवशेषयेन्न पुनरागत विश्वसेत् ।
निरस्तमथ शेषित गिरिगुहासु लीन दिवा
पराभवति तत्पुनर्मिहिरमन्धकार निशि ॥

विवेकमिहिर नाटक

सूक्तियाँ

1. पापानि भञ्जयति रञ्जयति स्वचेतस्

ससज्जयत्यविकल सुकृतानि सद्य. ।
बोध ददाति विदधाति तमोविनाश
किं किं न साधयति सद्गुरुदृक्प्रसाद ।।

2 यस्यालवाल हरिभक्तिरेखा
यस्याम्बुसेको भगवत्प्रसाद ।
सोऽय विवेकद्रुरपायहीन
फलिष्यति स्वाभिमत फल हि ।।

बालमार्तण्डविजय नाटक

सूक्तियाँ

1 राज्येन किं भवेत्तु सो महामोहप्रदायिना ।
यस्मिन् निविशमानस्य हरिभक्तिर्दवीयसी ।।

2 उत्तुङ्गवीचिघाटीभिरुद्धतोऽपि पयोनिधि· ।
वेला न लघते तद्वद्राजाज्ञा राजसेवक ।।

3 लक्ष्मीशचरणाम्भोजभक्तिरूपधन विना ।
रत्नादिक सुवर्ण वा न धन बन्धनं हि तत ।।

4 वारिधेरेव गृह्णन्ति वारिदा सलिल बहु ।
न सगृह्णन्ति तद्भूय सद्यो मुञ्चन्ति भूमिषु ।।

5 कुलीनतावयोविद्यातप शमगुणादय. ।
पृथक्त्वेनैव सम्पूज्या किमु यत्र समष्टय. ।।

महेन्द्रविजयडिम

सूक्तियाँ

1 यद्विद्यानिचयार्जन यदपि वा साहित्यमत्यद्भुत
यद्वा सत्कुलजन्म यच्च विबुधश्लाघ्योपशान्तिव्रतम् ।
तत्सर्व सुकृतैकलभ्यमिदमप्यास्तामह तु ब्रुवे
सत्य धन्यतमत्वमस्य · · मानवे ।।

2 प्रसजति विरागिणा वा प्रायो हृदय सुहृत्त्वभाजिजने ।
किमभिलषन्निह लोह सरयमुपयाति मणिमस्तकातम् ।।

3 अनेहसानुकूलेन प्रयुक्त फलति स्वयम् ।
क्षितौ बीजमिव न्यस्तमुपायाना चतुष्टयम् ।।

4 अमर्षणोऽपि कार्यार्थिमति. शान्तिमुपैति स ।
मणिमन्त्रक्रियारुद्धो महाहिरिव साधुताम् ।।

5. यदुपायबलेन साध्यते तदलम्य किल विक्रमक्रमैः ।
तरणिमात्रयता यथाम्बुधिस्तरणीयो न तथा भुजोर्धमैः ।।

कलानन्दक नाटक

1 न शत्रुत्व न मित्रत्व जातिर्यस्याहितश्च य
यस्य यश्च हितस्तौ तौ शत्रुमित्रे परस्परम् ।।

2. शम्भु पश्यति यः सदा स तु महान् जात्या पिशाचोऽपि सन् ।

3 भवितव्यतेव लोके तनुते जन्तो शुभाशुभे नियतम् ।

पुरञ्जनचरित नाटक

लोकोक्तियाँ

1. स्वर्णे न योगो मणे. ।
2. एका क्रिया द्वयर्थकरी बभूव ।
3 लिखितस्योपरि कोऽपि न प्रभुः ।
4 अयमपरो गण्डस्योपरि पिटिकोद्भेद ।

सूक्तियाँ

1 यदपि जगति सन्त शीलयन्त सुशील
परगुणपरमाणूनप्यमी शैलयन्ति ।
तदपि मनसि शङ्का वर्तते मे किमेषा
मभिमतमभिनेय दुर्विद ह्यन्यचेत ।।

2. प्रकाश कः कर्तु प्रभवति विना मित्रमपरः ?

3 रक्ताक्षो मलिनः पिको मधुरया वाचा पर श्लाघ्यते
मेघ्याशी कटुभाषणोऽपि शकुनाख्यानेन काकोऽर्च्यते
सुश्लाघ्यो नवलक्षणाप्रणयनादत्यन्तदुष्टोऽप्यसा
वेकः कोऽपि गुणो विलक्षणतर स्यात्सर्वदोषापह. ।।

प्रमुदितगोविन्द नाटक

लोकोक्तियाँ

1. द्वितीयोऽयं शिरोरोगः ।
2. जालपतितस्योपरि लगुडघातः ।।

3 न हि हैयङ्गवीनगोलके क्वचित्कूपसम्भावना।

4 एकत्र पथि कार्यद्वय साधितम्।

सूक्तियाँ

1 घनेऽपि येषाममदोऽनुकम्पा
दीनेषु नित्योपकृति· परेषु।
दानेऽतिहर्ष प्रियताविधाने
तानेव किं साधुषु शिक्षयाम ॥

2 भर्तु पियापि हितवर्त्मचरी गुणाढ्या
वृद्धि क्षय स्थितिमुपेत्य समप्रकारा।
पत्यौ प्रजा सुखदा दधतीव वृत्ति
सम्मन्त्रणा कुलवधूरिव गूढभावा ॥

इसी प्रकार अन्य रूपककारो के रूपको मे लोकोक्तियो तथा सूक्तियो का प्रयोग देखा जा सकता है। इन लोकोक्तियो तथा सूक्तियो के प्रयोग से भाषा के सौन्दर्य तथा प्रभावोत्पादकता मे वृद्धि हुई है।

———

पंचम अध्याय

प्रकृति-वर्णन

प्राचीन अभिनयपरम्परा मे दृश्यपटो का अभाव होने के कारण काल और स्थान की सूचना पात्रो द्वारा ही दी जाती थी। प्रकृतिवर्णन यद्यपि प्रधान रूप से काव्य का विषय है तथापि इसकी परम्परा बहुत प्राचीन काल से रूपको मे भी दिखाई देती है। इसके मुख्यतः दो कारण हैं। प्रथम तो रूपककारो का कविस्वभाव तथा द्वितीय प्रकृतिवर्णन का नाट्यधर्मी प्रयोजन। रूपककार प्रकृति का उतना ही वर्णन कर सकता है जितना उस रूपक के प्रकृत अंश के लिये आवश्यक हो। उन्हे काव्यग्रन्थो के रचयिताओ के समान स्वतन्त्रता नहीं होती है कि वे ऋतुवर्णन आदि पर सर्ग का सर्ग रच डालें। वे प्रसङ्गोपात्त दृश्यो का ही सूक्ष्मता तथा मनोहरिता के साथ वर्णन कर सकते हैं।

अट्ठारहवी शताब्दी के रूपककारो ने प्रकृति वर्णन की इस परम्परा का अपने रूपको मे पालन किया है। इसका कारण यही है कि अट्ठारहवी शताब्दी तक आधुनिक नाट्याभिनयपद्धति का विकास नही हुआ था, जिससे कि दृश्यपटो के द्वारा सूर्योदय, मध्याह्न, सन्ध्या, चन्द्रोदय, पर्वत वन तथा सागरादि प्राकृतिक दृश्यो को दर्शको को दिखाया जा सके।

अट्ठारहवी शताब्दी के शृङ्गारप्रधान रूपको मे प्रकृति का प्राय आलम्बन तथा उद्दीपन विभावो के रूप मे वर्णन किया गया है।

अट्ठारहवीं शताब्दी के रूपककारो द्वारा किया गया प्रकृत-वर्णन कालिदास तथा विशाखदत्त आदि प्राचीन रूपककारो का अनुकरण मात्र नही है। इन रूपककारो ने अपनी नवीन कल्पनाओं द्वारा प्रकृति का एक नवीनरूप प्रस्तुत किया है। विभिन्न रूपककारो ने एक ही विषय सूर्योदय, वसन्त, वन, पर्वत, नदी आदि का अपनी अपनी रुचि और कल्पनाशक्ति के द्वारा विभिन्न प्रकार का वर्णन किया है। कही कहीं तो इन प्राकृतिक दृश्यो के वर्णन मे अलङ्कार-योजना इतनी सटीक बैठ गई है कि उनके सौन्दर्य मे द्विगुणित वृद्धि हो गई है।

पर्वत

सीताराघव नाटक मे चित्रकूट, ऋष्यमूक तथा विन्ध्याचल पर्वतो का वर्णन है। चित्रकूट पर्वत के हिम से धवल उत्तुङ्ग शृङ्ग दूर से ही दिखाई देते हैं। ये शृङ्ग दृढता से बाँधे गये केतुओ के समान प्रतीत होते हैं। मन्दाकिनी नदी द्वारा आश्लिष्ट यह पर्वत अनेक प्रकार के रत्नो की रुचि से चित्रित है।[1]

ऋष्यमूक पर्वत से अनेक निर्झर निकलते हैं इस पर्वत पर मयूर सदैव नृत्य करते हैं। उन मयूरो के कलापो से कर्बुरित यह पर्वत इन्द्रधनुष जैसा लगता है। इसके शुभ्र शिखरो का शरत्कालीन मेघ आश्लेष करते हैं। इसके उत्तुङ्ग शिखर गगनतल के परिधान जैसे प्रतीत होते हैं।[2]

विन्ध्याचल पर अनेक सिंह तथा हस्ती सचार करते हैं। इसकी भूमि सिंहों द्वारा कृष्ट हरिणियो के रक्त से अवसिक्त है। इसके उच्च शिखर तारामार्ग को स्पृष्ट करते हैं। यह व्योमोत्सङ्ग मे वैमानिको के गमनागमन मे भी बाधा उपस्थित करता है।[3]

प्रमुदितगोविन्द नाटक मे मन्दरपर्वत का वर्णन है। इस पर्वत पर सूर्यकान्तादि अनेक मणियां हैं जिनकी कान्ति से यह देदीप्यमान रहता है। यह पर्वत राजा के समान है। इस पर लगे हुए अनेक उच्च वृक्ष इसकी प्रजा के समान हैं।[4] अपने समस्त अङ्गो के नीलाश्मच्छाया से आपूरित होने तथा अतिरिक्त धूम्र से ऊर्ध्वकेश होने के कारण यह पर्वत शिव के समान प्रतीत होता है।[5] इस पर्वत पर व्याघ्र, वृक, हस्ती, श्वान, हरिण तथा शश आदि निवास करते हैं।[6]

देवों द्वारा समुद्रमन्थन के लिये कष्टपूर्वक उठाये जाने पर मन्दर पर्वत अपने स्थान में निविष्ट हो जाता था।[7] मन्दरपर्वत को उठाने मे देवो को असमर्थ देखकर स्वय विष्णु उसे उठाते हैं। मन्दर पर्वत के उठाये जाने पर उसमे से कही

---

1. सीताराघव नाटक, 4 28
2. वही, 5 15
3. वही, 5 9
4. प्रमुदितगोविन्द नाटक, 2 1
5. वही, 2 2
6. वही, 2.3
7. वही, 2 4

से स्थूलोपल गिरते हैं, कहीं से जल गिरता है, कहीं कलकल करते हुए पक्षी उड़ते हैं, कहीं से सर्प निकलते हैं, कहीं हस्ती तथा मृग भ्रमण करते हुए दिखाई देते हैं।[1] मन्दर पर्वत के उद्धरण के समय उसमें रहने वाले पशुपक्षियों को कष्ट का अनुभव होता है। उस पर निवास करने वाले सिंह आश्चर्य से निर्निमेष थे। हस्तिनियों को भूमिकम्पन की आशङ्का होती है। मन्दराचल पर रहने वाले सिद्धयोगी भी कम्प और सम्पात का अनुभव करते हैं। मन्दराचल पर सर्प, मयूर, श्वान, वृक तथा सिंह निवास करते हैं।[2]

सभापतिविलास नाटक में हिमालय, सुमेरु तथा कैलाश पर्वतों का वर्णन है। अपने उत्तुङ्गशृङ्गों द्वारा हिमालय नेत्रों को आनन्द प्रदान करता है। उससे गङ्गा नदी निकलती है। वह अपने विकट शृङ्गों द्वारा समस्त दिशाओं को पूरित किये हुए है। उस पर अनेक वृक्ष लगे हुए हैं।[3]

सुमेरु पर्वत स्वर्ण का बना हुआ है। वह ऊँचा है तथा उस पर अनेक पशु निवास करते हैं। वह सर्वगुणोत्तर है। सब लोग उसे प्राप्त करने के लिये लालायित रहते हैं। पृथ्वी और ब्रह्मलोक सुमेरु पर्वत का आश्रय लिये हुए हैं। परन्तु निःस्पृह मुनि उपमन्यु सुमेरु पर्वत को धिक्कारते हैं।[4]

कैलाश पर्वत पर अनेक वृक्ष लगे हुए हैं। इस पर्वत पर शिव निवास करते हैं। ब्रह्मादि देवगण शिव के दर्शन के लिये वहाँ आते हैं।[5]

कुमारविजय नाटक में हिमालय पर्वत को राजा के रूप में प्रतिपादित किया गया है। उस पर्वत पर उत्तुङ्ग अश्वों, मत्त हस्तियों, वल्लियों, मुक्ता तथा विद्रुम पङ्क्तियों, मणियों, स्वर्ण तथा देवों के उचित स्थलों का इस नाटक में उल्लेख किया गया है।[6]

सीतापरिणय नाटक में पर्वतों के समुद्र में सन्तरण करने का उल्लेख है।[7] शिवलिङ्गसूर्योदय नाटक में श्रीपर्वत का वर्णन है। इस पर्वत को परम मुक्तिक्षेत्र

---

1 प्रमुदितगोविन्द नाटक, 29
2. वही, 211-14
3 सभापतिविलास नाटक, 458-59
4 वही, 460-62
5 वही 464-65
6 कुमारविजयनाटक, 21
7. सीतापरिणयनाटक, 418

तथा दिव्यक्षेत्र कहा गया है। यह पर्वत विविध धातुओं से युक्त है। इस पर पूगी, नागवल्ली, सप्तच्छद, रम्भा, घनसार तथा चन्दन के वृक्ष लगे हुए हैं। यहां अनेक विरक्त रहते हैं। इस पर्वत पर प्रतिदिन सन्ध्या के समय किये गये मल्लिकार्जुन पूजामहोत्सव में वसिष्ठादि ऋषि आते हैं। इस पर्वत पर उपयोगी औषधियों के अनेक वृक्ष लगे हुए हैं। यहां अनेक तीर्थयात्री आते हैं।[1]

मधुरानिरुद्धनाटक में आकाश में उड़ते हुए भृङ्गों को त्रिकूट तथा मलय पर्वत स्तनकञ्चुक के समान प्रतीत होते हैं।[2]

मन्मथमहोदय नाटक में हादगरुड पर्वत का वर्णन है। यह पर्वत शिला-समूह के कारण मार्ग के उच्चावच होने से दुर्गम था। उस पर अनेक विशाल शाल-वृक्ष लगे थे। हस्तियों के गर्जन से निनादित इस पर्वत की नीलशिलायुक्त मणिदका को देखकर मयूरगण उसे नवीन मेघ समझकर आनन्द से नृत्य करते थे। इस पर्वत के भूमिविभाग कहीं नत, कहीं उन्नत, कहीं सम, कहीं अनेक रूपों में, कहीं श्वेत तथा कहीं नीलवर्ण के प्रतीत हो रहे थे। इस पर्वत पर गज, मृग, शम्बर, वराह तथा मयूर निवास करते थे।[3]

लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक में वर्णित गिरिराज पार्वती के चरणयावक से रञ्जित, नवनिर्मित प्रस्तरखंड से युक्त तथा अपने गगनचुम्बी शिखरों द्वारा मेघों का चुम्बन करने वाला है।[4]

कलानन्दक नाटक में रत्नकूट पर्वत का वर्णन है। इस पर्वत पर अनेक प्रकार की मणियां होने के कारण इसकी शोभा विचित्र है। स्वर्ण से रुचिर यह पर्वत अमरावती का भी उपहास करता है। अपनी अधिक ऊँचाई तथा निरवलंबता के कारण यह पर्वत दुरारोह है[5]। इस पर्वत पर अनेक आश्रम हैं। इस पर्वत की स्वर्णगामी हरिन्मणिद्युति देखकर सब लोग इसे ब्रह्मा के आसन कमल की नालयष्टि समझते हैं।

मणिमाला नाटिका में कनक, हिमालय, त्रिकूट, चित्रकूट, कैलाश, मलय, महेन्द्र, माल्यवान् तथा श्रीशैल पर्वतों का वर्णन है। कनक पर्वत सर्वतः सुशोभित हो रहा है। इस पर्वत पर अनेक मणियां हैं। यहां कल्पवृक्ष फलित हो रहा है।[6]

---

1. शिवलिङ्गसूर्योदय नाटक, द्वितीय तथा पञ्चमाङ्क
2. मधुरानिरुद्ध नाटक, पञ्चमाङ्क
3. मन्मथमहोदय नाटक, 10.8–11
4. लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक, 2.1
5. कलानन्दक नाटक, 3.42, 43
6. मणिमाला नाटिका, 4.8

गिरिराज हिमालय अपने उत्तुङ्ग गौरशिखरों से आकाशान्तर को विलिखित कर रहा है। यहाँ पर सिंह, हस्ती, हरिण तथा भल्लूक आदि पशु रहते हैं। वहाँ सिंहों के क्रन्दनों से हरिण भीत हो जाते हैं। वहाँ भल्लूकों का प्रचुर तथा गंभीर फूत्कार शम्बरियों के गर्भ को स्खलित कर देता है।[1]

त्रिकूट, चित्रकूट, कैलास, मलय, महेन्द्र तथा माल्यवान् आदि पर्वत अपने वृक्ष, लता, फल तथा पुष्पों द्वारा अपने आश्रितों को मत्त कर रहे हैं।[2]

क्रौञ्चपर्वत अपने स्वर्णिम शिखरों से प्रकाशित हो रहा है। इसके शृङ्ग वेतालों द्वारा छिन्न किये गये राक्षसों के रक्त से सान्द्र हैं। इस पर एक स्वर्णिम शोभा वाला वृक्ष विलसित हो रहा है।[3]

मथुरानिरुद्ध नाटक में शिव से शून्य कैलाशपर्वत की शोचनीय अवस्था का वर्णन है। इस पर्वत पर अनेक उपवन हैं। शिव के वियोग में आक्रन्दन करती हुई वनदेवता के अश्रुजल से इन उपवनों के वृक्षों के आलवाल पूर्ण हो गये हैं।[4]

रत्नकूट पर्वत की स्फटिकमणिमय भूमि पर अनेक देवाङ्गनायें आती हैं। इस पर्वत पर किरातों द्वारा विदारित हस्तियों के गण्डस्थलों से गिरे हुए मुक्ताफलों द्वारा दन्तुरित शिलायें तारकायुक्त सन्ध्या के समान दिखाई देती हैं। इस पर्वत पर श्रीखण्ड वन है। वहाँ शीतल वायु चलती रहती है। इस पर्वत पर अनेक शबर निवास करते हैं। यह सुमेरु पर्वत से भी अधिक रमणीय है। यहाँ अनेक मृग निवास करते हैं। यहाँ तपस्वीगण गर्भिणी मृगियों को कुश वितरित करते हैं। इस पर्वत पर स्फटिक, माहेन्द्रनील तथा ताम्रोपल थे। इन विभिन्न प्रकार के प्रस्तरों पर बहती हुई कृत्रिम नदी कहीं गङ्गा, कहीं यमुना तथा कहीं शोणनद के समान दिखाई देती है।[5]

चन्द्रकलाकल्याण[6] तथा शृङ्गारतरङ्गिणी[7] नाटकों में क्रीडाशैल तथा विहार-शैलों का भी उल्लेख है।

---

1. मणिमाला नाटिका, 4.9–10
2. वही, चतुर्थाङ्क
3. वही, 4.70
4. मथुरानिरुद्ध नाटक, 2.3
5. रत्नानन्दक नाटक, 6.10–18, 22
6. चन्द्रकलाकल्याण नाटक, द्वितीयाङ्क
7. शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक, 2.25

वन

सभापतिविलास नाटक मे तिल्व वन का वर्णन है। तिल्ववन मे अनेक सघन वृक्ष लगे हुए हैं। वहाँ वृक्षो की शाखायें इतनी सघन हैं कि उनमे से सूर्य की किरणें पृथ्वी पर नही आ सकतीं। वहाँ अनेक बकुल तथा रसालवृक्ष लगे हैं। वह कोकिलो के कूजन से मनोहारी है[1]। राघवानन्द नाटक में विन्ध्यपर्वत के वनो का वर्णन है। वह वन कण्टको से पूर्ण है। उसमे प्रतिपद पर कण्टकयुक्त वृक्ष हैं। पञ्चवटी के वनप्रदेश गहन हैं। इन प्रदेशो मे दूर तक महवालुका है।[2] विन्ध्यपर्वत के वनविभागो मे अनेक सर्प हैं। वहाँ के वृक्ष इतने गहन हैं कि उनमे से सूर्य की किरणें भी नीचे नहीं आ सकतीं। यहाँ घर्मपीडा मे व्यथित अजगरो के मुख मे गिरे हुए कुलालक के घोष से दिशायें मुखरित हो रही हैं। इस वन मे अनेक हस्ती तथा सिंह हैं। इस वन में अनेक कौलेयक तथा पक्षी निवास करते हैं।[3]

पञ्चवटी वन बीच-बीच मे मुनीन्द्रगृहाङ्गण से स्फुरित तुलसी की सुगन्धि से दिशाओ को चमत्कृत करता है। इसमे अनेक स्थानो पर पुष्पो पर भ्रमर उड रहे हैं। इस वन मे अनेक कदली तथा चन्दन वृक्ष लगे हुए हैं। इस वन मे बहता हुआ वायु फुल्ल मतल्ली परिमल से युक्त है। वह वायु शरीर को पुलकित कर रहा है। वहाँ अभिनव किसलयो तथा पुष्पयुक्त वृक्षो पर भ्रमर ध्वनि कर रहे हैं।[4]

किष्किन्धा के प्रान्तवर्ती वन की सीमायें वानर, ऋक्ष, मल्लूक तथा गोलाङ्गूलो से पूर्ण हैं।[5]

तिल्ववन मे अन्धकार बना रहता है। वहाँ की पादपवीथियाँ नेत्रो को आनन्द प्रदान करती है। वहाँ के वृक्ष अपनी शाखाओ मधुरस, पुष्पो तथा फलो से सदैव परोपकार करते हैं। यहाँ के हस्ती अपनी शुण्ड से मुनियो की पर्णशालाओ के गृहाङ्गण का सिञ्चन किया करते हैं। वहाँ शीतल तथा सुगन्धित वायु निरन्तर प्रवाहित रहती है। वहाँ अनेक भ्रमर, शुक तथा मृग निवास करते हैं।[6]

तिल्ववन की विविध कुसुमो के परागो से सुगन्धित वीथिकायें मनोहारिणी है। वहाँ नदियो की तटभूमि सिकतिल है। वहाँ आम्रवन विगलित मकरन्द से तुन्दिल

---

1 सभापतिविलास नाटक
2 राघवानन्द नाटक, 2 4-5
3 वही, 2 6-8
4 वही, 2 10-12
5 राघवानन्द नाटक तृतीयाङ्क
6 सभापतिविलास नाटक, 1 26-36

है। वहाँ अनेक लतायें हैं। कामदेव के प्रभाव से युक्त, कोकिलों की कूजन से मञ्जुल तथा मधुकर-झङ्कार से मुखरित वह वन हृदय को आनन्द प्रदान करता है।[1]

राघवानन्द नाटक मे वनवीथिका का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वहाँ फुल्लेन्दीवर के मकरन्द की निरन्तर वृष्टि हो रही है। वहाँ श्रमहारी मन्द समीर निरन्तर बह रही है। वह कोकिलाओं के मधुर स्वर से गुञ्जित है।[2] इस नाटक मे पञ्चवटी का भी वर्णन है।

गोविन्दवल्लभ नाटक मे वन की भयङ्करता का वर्णन है।[3] उसमे विद्यमान हिंसक पशुओं का भी यहाँ उल्लेख किया गया है।[4] इस नाटक मे वृन्दावन मे लगे हुए रम्भा, पनस, बदरी, नारिकेल, आम्र, जम्बू तथा जम्बीर वृक्षों का उल्लेख है।[5]

चन्द्राभिषेक नाटक में मन्दाकिनी नदी के तट पर स्थित वन का वर्णन है। वह वन विविध प्रकार के पुष्पों से रमणीय है। वहाँ योगियों के आश्रम है।[6] वहाँ राम, लक्ष्मण तथा सीता ने निवास किया था। अत उस वन मे जाने वाले लोगों को आयुधों तथा अविनय का परित्याग करना पडता है। वह वन पवित्र माना जाता है।[7]

मुकुन्दानन्द भाण में कावेरी नदी की तटवर्तिनी वनवीथिकाओं की रमणीयता का वर्णन है। वहाँ कोकिल कलकल कर रहे हैं। वहाँ मधुमत्त भ्रमरों की चञ्चलता के कारण बकुल वृक्षों से मकरन्द गिर रहा था। वह कलहंसों की उपस्थिति से धवल थी। वहाँ क्रीडाकुरङ्ग दूर्वाङ्कुर-भक्षण कर रहे थे।[8]

रुक्मिणीपरिणय नाटक मे विन्ध्यनदी का वर्णन है।[9] इस नाटक मे गोदावरी के तट पर स्थित पञ्चवटी का भी वर्णन है।[10]

---

1. समापतिविलास नाटक, 3 8, 13-16
2. राघवानन्द नाटक, 3 25
3. गोविन्दवल्लभनाटक, 1 गीत 14
4. वही, 1 39
5. वही, 8 10
6. चन्द्राभिषेक नाटक, 2 62
7. वही, 4 94
8. मुकुन्दानन्द भाण
9. रुक्मिणीपरिणयनाटक, प्रथमाङ्क
10. वही, पञ्चमाङ्क

लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक मे वारिमद्रा नदी के तटवर्ती वन का वर्णन है। वह वन रमणीय है। उसमे अनेक कुसुमित वृक्षो पर मधुधारा के लिए भ्रमर उड़ रहे हैं। वहाँ अनेक प्रियकार वृक्ष लगे हुए हैं।[1]

कलानन्दक नाटक मे यमुनातटवर्ती वन का वर्णन है। उस वन मे एक भयङ्कर सिंह था जिसके दिखाई दे जाने मात्र से अनेक लोगो ने प्राणो का परित्याग कर दिया था।[2]

उस वन के वृक्ष बहुत ऊँचे है। वह वन इतना गहन है कि उसमे सूर्य की किरणें दिखाई नही देती हैं। उसमे अनेक विषाक्त सर्प है जो अपनी फणाओ को फैलाकर वहाँ प्रकाश करते है। वहाँ वृक्षो के पत्र इतने गहन है कि उनके अन्तरालो से मन्द-मन्द जाता हुआ सूर्यमण्डल शीतल प्रतीत होता है। उस वन मे निर्दय किरात मन्द पशुओ को श्रवणकटु शब्दो से डराकर पकड लेते हैं और उनका मांस पकाकर खाते है। उस वन में अनेक हस्ती रहते है जो कृपाणधारी पुरुषो को देखकर भीत होकर छिप जाते है। वहाँ अनेक मृग विचरण करते है।[3]

यमुनातटवर्ती वन मे वानरगण वृक्षो पर बैठे हुए पक्षियो को भगाते हैं। वहाँ वनवासीगण भयानक सिंहो का आखेट करते है। वहाँ प्राचीन वृक्षो के मध्य से निकली हुई बालो को सर्प समझकर भूमिस्थ नकुलगण उन्हे खींचते है। वह वन मृगो तथा हस्तियो का मर्दन कर गर्जन करने वाले सिंहो से युक्त है। वहाँ मयूर नृत्य करते हैं। कण्टको तथा पाषाणखण्डो से आकीर्ण होने के कारण वह वन दुर्गम है। सिंहो की उपस्थिति के कारण मुनिगण वहाँ धार्मिक क्रियाओ को समय पर सम्पन्न नही कर पाते थे। क्षत्रिय लोग उस वन मे मृगया करने मे असमर्थ थे।[4]

मञ्जमहोदय नाटक मे केन्दुझरी नगरी के समीप स्थित वन का वर्णन है। उस वन मे वराह, गज तथा शार्दूलादि दुष्ट जीव रहते है। यह वन भयानक है तथा इसे पार करने मे पथिक कष्ट का अनुभव करते हैं[5] वन मे नदी बहती है। गिरे हुए पाषाणो के कारण वन के आन्तरिक भाग दुर्गम हैं। अनेक शैल हैं। वन की भयङ्करता मनुष्यो की बुद्धि, वीर्य तथा धैर्य का अपहरण करती है। वहाँ शाल,

---

1. लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक, 1 8
2 *कलानन्दक नाटक, 3 2*
3 वही, 3 21–25
4. वही, 3 26–36
5 मञ्जमहोदय नाटक, 1 48

अश्वत्थ, कपित्थादि अनेक वृक्ष लगे हुए है। इस वन मे दिहुरीकिरात रहते हैं। वे शबरमन्त्रयन्त्र मे निपुण हैं। वे क्रूर हैं। वे गिरिनदी का स्वच्छ जल पीते हैं। दुर्गम पर्वतभूमि के विज्ञ होने के कारण वे यहाँ निरापद होकर आनन्दपूर्वक रहते हैं।[1] शबर तथा पुलिन्द वन्यजातियो के गृहो तथा आचार का वर्णन है।[2]

समुद्र

प्रमुदितगोविन्द नाटक मे क्षीरसागर का वर्णन है। उसमे उत्तुङ्गवात से अनेक तरङ्गें उठ रही है। उसमे अनेक नक्र, वारिगज, कुलीर, सर्प तथा मीन हैं। ये सब सागर में वरुण की सेना के सदृश दिखाई दे रहे है। क्षीरसागर इतना अधिक गम्भीर है कि उसमे मन्दर पर्वत भी निमग्न हो जाता है।[3] क्षीर सागर के मन्थन से घोर शब्द उत्पन्न होता है। समुद्रमन्थन से त्रस्त दिग्हस्ती विकारयुक्त ध्वनि करते हैं। यह शब्द तरङ्गो के कलकल से त्रिगुणित हुआ ब्रह्माण्ड को पूर्ण कर रहा है।[4] पर्वतो से निकल कर बहती हुई नदियाँ इस समुद्र का आश्रय लेती हैं।[5] मन्थवेग के कारण समुद्र जल ऊपर की ओर जाता है। मन्थन के समय मन्दर पर्वत से सघट्टित होने के कारण कतिपय जलजीवो के शिर नष्ट हो जाते है तथा कतिपय जीव उस पर्वत से अपने अङ्गो को सघट्टित कर कण्डूति को दूर करते हैं। समुद्र के फेन से मन्दरपर्वत का शिखर आच्छन्न हो जाता है।[6] क्षीरसागर के मन्थन से चन्द्रमा, कामधेनु, उच्चैःश्रवा अश्व, ऐरावत हस्ती, सुरसुन्दरियाँ, कल्पवृक्ष, वारुणी, कालकूट विष, लक्ष्मी तथा अमृत की प्राप्ति होती है।

मणिमाला नाटिका मे क्षीरसागर को धवल तरङ्गो से सुशोभित कहा गया है। मन्थनकाल मे इस समुद्र के जल से मन्दराचल के सौधाट्ट पूर्ण हो गये थे। अपने सान्द्र नाद के व्याज से क्षीरसागर मानो अपनी कीर्ति गा रहा है। दैत्यवध करने के पश्चात् स्वय विष्णु लक्ष्मी सहित यहाँ शेषशय्या पर निवास करते हैं। इस सागर के तट पर वट, नारिकेल तथा हिन्तालादि अनेक वृक्ष लगे है। इस सागर में स्फुरित होता हुआ फेनसघ विकसित कासससमूह के समान शोभायुक्त प्रतीत होता है। इसका

1 मञ्जमहोदय नाटक, 10.19–22
2, वही, 1.39–47
3 प्रमुदितगोविंद नाटक, 3.17, 21
4. वही, 4 6
5. वही, 4.9
6. वही, 4 10–12

जल दधि, घृत तथा आम्र के सदृश स्वादिष्ट है। सीमान्त पर्वतों से टकरा कर इस समुद्र की तरङ्गें अपनी गर्जना से आकाशगर्भ को पूर्ण करती है[1]

सभापतिविलास नाटक मे पूर्वी समुद्र का वर्णन है। यह समुद्र अपनी पटु तथा चञ्चल तरङ्गो के द्वारा दिशाओं को वाचालित कर रहा है। यह समुद्र रुचिर तमालावली के समान है। गगनतल का चुम्बन करता हुआ यह समुद्र नवीन मेघों के सदृश प्रतीत हो रहा है।[2] इस समुद्र के तट पर छायावन स्थित है। इसके तट पर शिवमूर्ति विराजमान है। तट से टकराती हुई इसकी लहरें मानो शिव के चरणो का सेवन करती हैं।[3]

बालमार्तण्डविजय नाटक मे समुद्र को पद्मनाभ की भक्ति करता हुआ बताया गया है। अपनी सयमित लहरो द्वारा हस्ताञ्जलि बाँधे हुए अपने तीर पर आकर समुद्र पद्मनाभ को प्रणाम करता है तथा स्खलित होता है।[4] समुद्र अपने जठर मे शयन करने वाले पद्मनाभ के दर्शन के लिए सदाशय से समुल्लसित विपुल तरङ्गो रूपी माला को लिए हुए आदर पूर्वक अपने तीर पर आता है।

लक्ष्मीकल्याण नाटक मे समुद्र को अपनी नदीरूपिणी पत्नियो सहित मौक्तिक-गण लेकर लक्ष्मी के विवाह मे आता हुआ वर्णित किया गया है।[5] समुद्र के गर्जन के विषय मे कवि कल्पना करता है कि समुद्र इसलिये आक्रन्दन कर रहा है कि वह पद्मनाभ का श्वसुर होते हुए भी उस यश को प्राप्त न कर सका जिसे बालरामवर्मा ने प्राप्त किया।[6]

नदी

सभापतिविलास नाटक मे गङ्गा नदी का वर्णन। गङ्गा नदी ससारसागर के लिए नौका, पाप रूपी वन के लिए कुठार तथा सगर पुत्रो के स्वर्गारोहण के लिए सोपानपङ्क्ति है। वह शिव की मुकुटविभूषा है[7]। मणिमाला नाटिका मे गङ्गा नदी को पृथ्वी की शिटाभ्रपत्रावली के समान बताया गया है। गङ्गा की तरगें शीघ्रगामी

---

1. मणिमाला नाटिका, 4.1–5
2. सभापतिविलास नाटक, 4 4
3. वही, 4.14
4. बालमार्तण्डविजय नाटक, 4 52
5. लक्ष्मीकल्याण नाटक, 5'27
6. वही, पञ्चमाङ्क
7. सभापतिविलास नाटक, 4 51

है तथा यह नदी यमुना से समुन्मीलित होकर बह रही है।[1] रुक्मिणीपरिणय नाटक में गङ्गा को पृथ्वी के हार के समान बताया गया है।[2] लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक में कहा गया है कि गङ्गा में देवस्त्रियाँ स्नान करती हैं तथा उसका जल उनके अङ्गों से गलित पराग से युक्त है। गङ्गा की क्षुब्ध लहरों का भी इस नाटक में उल्लेख है।[3]

गोविन्दवल्लभ नाटक में यमुना नदी के सौन्दर्य का वर्णन है।[4] सान्द्रकुतूहल प्रहसन में यमुना के जल का माहात्म्य बताया गया है।[5] मधुरानिरुद्ध नाटक में सन्ध्याकाल में यमुना नदी का वर्णन किया गया है। रात्रि में वियुक्त हो जाने से आर्त्त चक्रवाकियों के करुणनाद के व्याज से यमुना नदी मानो आक्रन्दन करती है। उसके उष्ण जल में उठते हुए बुद्बुदों को तारागण कहा गया है। इन बुद्बुदों रूपी तारागण के द्वारा यमुना को अपने पिता सूर्य को खोजते हुए बताया गया है।[6] कलानन्दक नाटक में प्रात समय यमुना की शोभा का वर्णन है। यमुना में लगे हुए अनेक कमल जब हिलते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है मानो यमुना हिल रही है। उसके तट पर अनेक कुञ्ज हैं।[7] यमुना को एक नायिका के रूप में चित्रित किया गया है। सैकत, विकसित कमल, चक्रवाक तथा मेघ को यमुना की क्रमशः श्रोणि, मुख, स्तन, तथा वेणी बताया गया है।[8] यमुना कहीं हरिणों के मदकर्दम से अंकित है, कहीं मरकतमणि से आभूषण धारण किये हुई के समान है तथा कहीं वह अञ्जन लगाई हुई सी दिखाई देती है।[9]

सभापतिविलास नाटक में शिवगङ्गानदी के सौन्दर्य तथा माहात्म्य का वर्णन है। शिवगङ्गा कमलवन, शैवलकुल, कुमुदमण्डल, उत्पलसमूह, भ्रमरों, सारसपङ्क्ति कुररपालिका तथा हंसों से सुशोभित है। इन नदी के तटवर्ती वृक्षों पर गान करते हुए भ्रमर मानो इसकी स्तुति कर रहे हैं। इसमें जललहरियों से युक्त अनेक शिलायें हैं। इसकी तरङ्गवायु कमलगन्ध से युक्त है।[1]

---

1. मणिमाला नाटिका, 4 6
2. रुक्मिणीपरिणय नाटक, पञ्चमाङ्क
3. लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक, 2.2–3
4. गोविन्दवल्लभ नाटक, 4 2, 3, 8
5. सान्द्रकुतूहल प्रहसन, 1 53–60
6. मधुरानिरुद्ध नाटक, 5 21
7. कलानन्दक नाटक, 3.7
8. वही, 3.19
9. वही 3 18
10. सभापतिविलास नाटक, 1.44–45

नर्मदा नदी का वर्णन सभापतिविलास[1] तथा रुक्मिणीपरिणय[2] नाटको मे प्राप्त होता है। नर्मदा मे ही कार्तवीर्यार्जुन ने रावण को जलमानुष बनाया था।

गोदावरी नदी अनेक भीम वनो से होकर बहती है। उन वनो मे अनेक कुक्कुट कूजन करते हैं। यह नदी अपने पिता विन्ध्याचल के चरणो पर गिरती है। इसका जल निर्मल है तथा उसमे अनेक प्रकार के उत्पल लगे हुए है। इस नदी मे अनेक तरङ्गें उठती हैं। इसके तटवर्ती वनो मे अनेक प्रकार के पुष्प लगे हुए हैं।[3] इसके तट पर स्थित वृक्षो मे स्वादिष्ट तथा पक्व फल लगे हुए हैं। इन उन्नत शाखा वाले वृक्षो से फलो के गिरने के कारण मछलिया स्फुरित होती रहती है। इन वृक्षो पर विकसित पुष्प लगे हुए हैं।[4] इसके तट पर पञ्चवटी स्थित है।[5]

कावेरी नदी चलती हुई लक्ष्मी के विमल दुकूलपट तथा पृथ्वी की मौक्तिक यष्टि के समान है। उससे उत्तुङ्ग लहरें उठती रहती हैं। इसके तट पर अनेक वृक्ष लगे हुए हैं। इन वृक्षो मे लगे हुए पुष्पो पर भ्रमण करते हुए भ्रमरो के अन्धकार से क्षोभ्यमाण चक्रवाक के द्वारा आश्रित कमलो की धूलि से वह सुशोभित है। इसके तीरभागो पर चोलमण्डल स्थित है।[6] इसके तट पर अनेक रमणीय वीथिकायें हैं।[7] इन वीथिकाओ मे अनेक कोकिल कलरव करते हैं तथा ये कुसुमो के पराग से सुगन्धित हैं। इस नदी पर लोग मुखमार्जन के लिए जाते है।[8]

तुङ्गभद्रा नदी पापो को नष्ट करने वाली है। यह अपने जल मे स्नान करने वाले मनुष्यो को समस्त कल्याण प्रदान करती है। इसमे अनेक कमल लगे हैं। इन कमलो के मरन्द का भ्रमर पान करते हैं। वायु के चलने पर इसमे अनेक तरङ्गें उठती हैं।[9]

वैतरणी नदी गोनासिका से उत्पन्न होती है। यह समस्त प्राणियो को पवित्र करने वाली है। इसके जल के स्पर्शमात्र से अनेक जन्मो के पाप नष्ट हो जाते हैं।

---

1 सभापतिविलास नाटक 4 48
2 रुक्मिणीपरिणय नाटक, पञ्चमाङ्क
3 मणिमाला नाटिका 4 7
4 राघवानन्द नाटक, 2 1
5 रुक्मिणीपरिणय नाटक पञ्चमाङ्क
6 सभापतिविलास नाटक, 4 5-7
7 मुकुन्दानन्द भाण
8 कामविलास भाण
9 सेवन्तिकापरिणय नाटक, 4 24

इसके तट पर अनेक वृक्ष लगे हुए हैं तथा इसके जल मे अनेक मछलियाँ हैं। इसका जल स्वादु, स्वच्छ तथा शीतल है। यह लहरो से आकुल है। इसके तट पर निवास करने वाले लोग इसके जल मे स्नान कर निर्मल हो जाते हैं। इसके तट पर दधिवामन का मन्दिर है।

वारिभद्रा नदी अत्यन्त रमणीय है। वह मन्दार वृक्ष की सुगन्धि से युक्त है। इसका जल इसमे लगे हुए अनेक कमलो के पराग से सुवासित है। इसमे अनेक फेनयुक्त लहरें उठती हैं। इसके तट पर वासुदेव का मन्दिर है। इस नदी के तट का वन भी रमणीय है। उसमें अनेक कुसुमित वृक्षो पर मधु के लिए भ्रमर उड रहे हैं। यह कलहसो के शब्दो, पुष्पो तथा मन्दसमीर से प्राणियो को आनन्दित करती है। इसके तट पर प्रियकार तथा मन्दार वृक्ष लगे हुए हैं। यह स्वर्णकमलो मे सलीन भ्रमरियो के कलनाद से रम्य है।[1]

कुक्कुरकर्तना नदी तीव्र वेग से बहती है। इसमे अनेक भयावह शिलायें हैं। यह दुस्तरा है।[2]

मुसला नदी मे अनेक शिलाखण्ड होने के कारण वह दुर्गम है। यह वेग से बहती है। वह सबको कुशल प्रदान करती है। इसकी ध्वनि गम्भीर होने के कारण सब जीवो को इससे भय लगता है। इसका जल चञ्चल है। यह गिरिनदी वर्षा मे अधिक सुशोभित होती है।[3]

मन्दाकिनी नदी का जल इन्द्र, ब्रह्मादि देवो के लिए दुर्लभ है।[4] इसमे स्वय राम ने लक्ष्मण और सीता सहित स्नान किया था। इस नदी के तट पर स्थित वन अनेक प्रकार के पुष्पो से रमणीय है। इस वन मे मुनियो के आश्रम हैं। इस वन मे सीता और लक्ष्मण सहित राम ने निवास किया था।[5]

प्रातः

पुष्प

प्रातः काल वृक्षो पर पुष्प विकसित हो जाते हैं। सेवन्तिकापरिणय नाटक मे कवि यह कल्पना करता है कि ये पुष्प रात्रि मे अम्बरतल पर क्रीड़ा करती हुई

---

1 लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक, 1 7–8
2. शङ्खमहोदय नाटक, 10.12
3. वही, 10 23–24
4. चन्द्राभिषेक नाटक, 2 62
5. वही, 4.94

सुरसुन्दरियों के आलिङ्गन से त्रुटित होकर गिरे हुए उनके हारो के मणि हैं, जो वन में विकीर्ण हो गये हैं। इन पुष्पो का पराग सुरसुन्दरियो के वक्ष से निपतित चन्दन-रज है।[1] प्रात काल चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर कुमुद मीलित हो जाते हैं तथा सूर्य का उदय होने पर कमल विकसित होते हैं।[2]

प्रात काल कुमुदो की कान्ति स्वर्ग तथा पृथ्वी मे प्रविष्ट हो जाती है। कमलो मे बोधशक्ति प्रवृत्त हो जाती है।[3] सूर्य की किरणें कमलवन को विकसित करती हैं, सूर्योदय होने पर भ्रमर कमलिनियो से बाहर निकलते हैं। कवि यह कल्पना करता है कि सूर्य के विरह मे कमलिनी ने भ्रमररूपी विष का पान किया था, जिसे वह सूर्य से संयुक्त होने पर बाहर निकाल रही है। भ्रमरो के कैतव से सूर्य नलिनी के हाथ मे नीलमणिकङ्कण पहिना रहा है। कमलिनी भ्रमरो के व्याज से सूर्य को उपालम्भ दे रही है कि अन्य स्त्रियो के साथ विहार करने के कारण अब आप मेरा स्पर्श न कीजिये।[4]

भ्रमर रूपी मुखर दौवारिक प्रात काल लक्ष्मी के लीलागृह कमलो के द्वार खोल देता है। इससे सूर्य की किरणें कमलो के अन्तर्गत प्रवेश करती हैं। सूर्य की किरणो के इस प्रवेश को कवि अन्यायपूर्ण समझता है। वह इस बात पर खेद प्रकट करता है कि राजहस इसे देखता हुआ भी मौन है।[5] चन्द्रमा द्वारा पीडित की गई कमलिनी ने भ्रमरों के मिष से अपने मुख पर विष धारण कर लिया है।[6] कमल रूपी गृहो मे सोई हुई मत्त भ्रमरियो के लिये सूर्य की किरणें प्रदीप का काम करती हैं।[7]

प्रात काल सूर्य का उदय होने पर कमलिनी प्रसन्न होती है तथा कुमुदिनी मौन हो जाती है।[8] लतायें पुष्पिणी हो जाती हैं।[9] कमलिनी दीर्घकाल के पश्चात्

---

1 सेवन्तिकापरिणय नाटक, 1 23
2 सभापतिविलास नाटक 3,5
3, नवमालिका नाटिका, 4 4
4. प्रभावतीपरिणय नाटक, 6.8, 9, 13, 14, 15
5 मधुरानिरुद्ध नाटक, 5 38
6, प्रद्युम्नविजय नाटक, 2.5
7. मदनकेतुचरित प्रहसन पद्य 10
8 कुवलयाश्वीय नाटक, प्रथमाङ्क
9 कुक्षिम्भरभैक्षव प्रहसन, पद्य 22

आये हुए सूर्य को मधुर उत्पलमालिका के द्वारा वरण कर लेती है।[1] सूर्य अपनी किरणो से किञ्चित् मम्भिन्नकुड्मला नलिनी को स्पृष्ट करता है।[2] प्रातःकाल कमलोदर मे भ्रमण करती हुई भ्रमरावली सूर्य की किरणो से दलित अन्धकारावली के समान दिखाई देती है।[3] इस समय किंशुक, मल्ली, कर्पूर, कदली तथा शोणाम्भोज विकसित हो जाते हैं।[4] कमल विकसित होते हैं तथा कुमुदिनी का मुख झुक जाता है।[5] रात्रि मे चन्द्रमा के कारण कुमुदिनी पर हँस रही थी, परन्तु प्रातःकाल होने पर सूर्य के उदित होने से उसकी किरणो द्वारा राहत किये जाने से झुकी हुई कुमुदिनी पर कमलिनी हँस रही है।[6] चन्द्रमा के द्वारा पद्मकोष रूपी कारागार मे बन्दी बनाये गये भ्रमरो को सर्वाधिप काल प्रातःकाल उन्मुक्त करता है।[7]

सूर्य

बाल सूर्य चक्रवाको के सन्ताप को दूर करता है। उसकी दीर्घ तथा अनातप किरणें आकाश मे प्रविष्ट हो जाती हैं।[8] प्रातःकाल सूर्य उदयाचल पर उदित होकर क्रमश. आकाश मे आरूढ होने लगते हैं। वह क्रमशः मसृण घुसृण, क्षोद तथा कपिश वर्ण के हो जाते हैं। सूर्य की किरणों से संसार नवीन सा हो जाता है। ये किरणें गाढान्धकार रूपी लतावितान को नष्ट कर देती हैं। ये कमलो को विकसित करती हैं। चक्रवाको की विरह-व्यथा को दूर करने के लिये ये सूर्यकिरणें प्रलेपचूर्ण के समान हैं। ये अन्धकार को नष्ट करती हैं।[9]

प्रातःकाल सूर्य अपनी मृदु किरणो से वधुओ के कुमुदो का स्पर्श करता है।[10] उसकी किरणें विकीर्ण होकर दिशाओ के अन्धकार को नष्ट कर देती है।[11] सूर्य

---

1. सीताकल्याण वीथी, पद्य 23
2. मलयजाकल्याणम्, 1.5
8. कलानन्दक नाटक, 3.11
4 शृंगारतरङ्गिणी नाटक, 1.20
5. वही, 4.2, 4
6. शृंगारसुधाकर भाण, पद्य 10
7. लक्ष्मीकल्याण नाटक, 3.10
8. प्रमुदितगोविन्द नाटक, 3.3
9. प्रमुदितगोविन्द नाटक, 4.2
10. वही, 7.4
11. जीवन्मुक्तिकल्याण नाटक, 5.20

मन्देहो को दलित करता है, आकाश को विशद बनाता है, सरोवरो को विमल बनाता है, विप्रों को उठाता है, जीमूतो को अनुरञ्जित तथा तिलकित करता है, काको को समुद्बुद्ध करता है, दिशाओं को प्रोज्ज्वलित करता है तथा विटो को कलुषित करता है। वह अन्धकार को नष्ट करने वाला, भक्तो तथा कमलो को आनन्द प्रदान करने वाला तथा शूर है।[1]

सूर्य के उदय होने पर कमलिनी की शोभा को चुराने वाला अपराधी चन्द्रमा भाग जाता है। सूर्य की किरणो के स्पर्शमात्र से तारागण तिरोहित हो जाते हैं। सूर्य अपनी किरणों रूपी हाथो द्वारा मानो आकाशसागर को पार करना चाहता है।[2]

प्रात काल सूर्य उदयगिरि रूपी हस्ती पर आरूढ होता हुआ दिखाई देता है। उसका उदय होते ही अन्धकार नष्ट हो जाता है। उसके सम्पर्क से समुद्र का जल जपापुष्प के समान रक्तवर्ण का प्रतीत होता है। प्रात कालीन सूर्य का मण्डल सुन्दरियो के कुङ्कुमसिक्त स्तनमण्डल के सदृश प्रतीत होता है।[3]

प्रात काल सूर्य की किरणो मे से कतिपय अन्धकार को नष्ट करती हैं, कतिपय सूर्य के आगे वलित होती हैं, कतिपय शीघ्रता से अनेक दिशाओ मे धावन करती हैं, कतिपय पर्वत के अग्रिम भाग पर घूर्णन करती हैं तथा कतिपय पर्वत के गृहो मे प्रवेश करती हैं।[4] वेङ्कटेश्वर ने सूर्योदय के विषय मे कल्पना की है कि सूर्य अपने कुलोत्तम राम की सेना को निशाचर द्वारा आवद्ध किया हुआ सुनकर अन्धकार से आवृत हुआ उस अन्धकार को हटाकर पुन इसे विजृम्भण करती हुई देखने के लिये प्रसन्न हुआ मानो उदयाचल के शिखर पर आरूढ हो गया है।[5]

काशीपति कविराज ने उदित होते हुए सूर्य के विषय में कहा है कि वह चक्रवाकमिथुन का परस्पर सघटन कराता हुआ चक्रवाकी के स्तन को अपने किरण रूपी हाथो से स्पृष्ट कर रहा है। वह प्राची रूपिणी वेश्या के अरुण कान्तिवाले अधर का चुम्बन कर रहा है।[6] सूर्य पहिले ही जागकर अपनी किरणो को फैला कर अपनी

---

1 मदनसञ्जीवन भाण, 25-26
2 सेवन्तिकापरिणय नाटक, 1 36-37
3. अनङ्गविजय भाण, 23-24
4 सभापतिविलास नाटक, 3.1
5 राघवानन्द नाटक, 4 3-4
6. मुकुन्दानन्द भाण, पद्य 66

पत्नी पद्मिनी को जगा रहा है। परन्तु भ्रमरो के अस्थिर प्रेम से व्याप्त होने के कारण पद्मिनी जान बूझ कर भी नहीं जागती है।[1]

विवेकचन्द्रोदय नाटक मे कवि ने कहा है कि सूर्य के उदय होने पर तारागण को निरस्त कर रात्रि सहित भीत हुआ चन्द्रमा गगनाङ्गण को इसलिये छोड़ देता है क्योंकि सूर्य प्राची के कहने से तप करता है, वस्त्रहीन भ्रमण करता है तथा समुद्र मे भी गिर जाता है।[2]

सूर्य की किरणो के उदयाचल के शिखर पर पडते ही अन्धकार का आक्रमण करने का पौरुष समाप्त हो जाता है। जो अन्धकार कान्तारदरीगृह का आश्रय लेकर अपने शत्रु चन्द्रमा से त्रास का अनुभव नहीं करता, अब वही अन्धकार सूर्य की तीव्र किरणो द्वारा नष्ट कर दिया जाता है।[3] सूर्य उदय के समय रक्तवर्ण का होता है। हरिहरोपाध्याय ने कल्पना की है कि सूर्य इस अरुणिमा द्वारा चिरविरह से मूर्च्छित नलिनी के प्रति अपना अनुराग प्रकट कर रहा है। क्या सूर्य इस अरुणिमा के द्वारा त्रैलोक्य को अन्धकार के प्रति अपना क्रोध प्रकट कर रहा है।[4]

सूर्य रूपी अगस्त्य रात्रि रूपी समुद्र को बलपूर्वक चुलकित करता है। वह अपनी किरणो की शोभा से उल्लसित होता है तथा कामदेव के दर्प को बलपूर्वक नष्ट कर देता है।[5] पूर्व दिशा सूर्य रूपी पति की कामना करती हुई अरुण वस्त्र को धारण कर तथा शुक्र रूपी तिलक लगाकर वासकसज्जा के समान क्या पति की प्रतीक्षा कर रही है?[6] प्रात काल चन्द्रमा तथा तारागण अस्त हो जाते हैं और सूर्य का उदय होता है। इस विषय मे शङ्कर दीक्षित ने कल्पना की है कि जब तक तारा रूपी मुक्ताओ का अन्वेषण करने के लिए कतिपय सूर्यकिरणें आती हैं तब तक चन्द्रमा इन सबको लेकर अस्त हो जाता है। सूर्य किरणो को आगे कर मानो क्रोध से अरुण प्रतीत हो रहा है।[7]

---

1. भ्रान्तिविवेक नाटक, 2 55
2. विवेकचन्द्रोदय नाटक, 4 38
3 प्रभावतीपरिणय नाटक, 6 6
4, वही, 6 12
5. मधुरानिरुद्ध नाटक !5 35
6 प्रद्युम्नविजय नाटक, 2 3
7. वही, 2 4

प्रातःकाल में सूर्यमण्डल काषायवस्त्रधारी कालरूपी सन्यासी के कमण्डलु के समान दिखाई देता है ।[1] यह रमणीय सूर्यमण्डल कालरूपी किरात के प्रायुध द्वारा दारित अन्धकार का एकत्रित किया गया मांस है ।[2] लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक मे प्रात.काल मे सूर्य को पूर्वोदधि से ऊपर उठने वाला, प्रसूनो की शोभा से शोभित तथा अन्धकार को नष्ट कर प्रकाशित होने वाला कहा गया है ।[3] सायकाल मे कमलो के मुद्रित हो जाने पर माध्वी के लोभ से उनमे प्रविष्ट निद्रित भ्रमरो को रुचिर किरणोवाला सूर्य जगा रहा है ।[4]

वारुणी का सेवन कर प्रात.काल लौटे हुए सूर्य को देखकर प्राची स्मेरमुखी हो जाती है ।[5] सूर्य प्राचीरूपिणी नारी का नवकाश्मीरमय तमालपत्र है ।[6] सूर्य उदयाचल रूपी हस्ती के शिर पर रखा हुआ माणिक्यनिर्मित खेटक है ।[7] अपनी ज्योतिर्मय किरणो के द्वारा समस्त लोक के अन्धकार को दूर करता हुआ सूर्य उदयाचल के शिखर पर स्वर्णकुम्भ के समान प्रतीत होता है ।[8]

सन्ध्या के समय सूर्य के पश्चिम दिशा के प्रति अनुरक्त हो जाने के कारण तारागण रूपी अश्रुओ से रोती हुई पूर्व दिशा के अश्रुओ को सूर्य प्रात.काल अपनी रुचिर किरणो से मार्जित करता है। अपने वियोग के कारण गाढ अन्धकार रूपी रक्ताशुक द्वारा समलङ्कृत करता है ।[9]

सूर्य एक है, जो अपनी किरणों से अन्धकार को नष्ट कर जगत् को पुनर्जीवन प्रदान करता है ।[10] वह एक दक्षिण नायक है जिसके उदय से प्राची तथा पद्मिनी

---

1 कुक्षिम्भरभैक्षव प्रहसन, पद्य 21
2. वही, पद्य 22
3 लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक, 3.1
4. वही, 3 3
5. कलानन्दक नाटक, 3 9
6. वही 3 16
7. शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक, 4.7
8. शृङ्गारसुधाकर भाण, पद्य 11
9. वही, पद्य 8 9
10. लक्ष्मीकल्याण नाटक, 3.13

दोनों ही प्रफुल्लित होती है।[1] वह जगद् का कल्याणकारी सुराजा है।[2] वह वह रसिकशिखामणि तथा योद्धा है।[3]

चन्द्र

प्रातःकाल सूर्य का उदय होने पर चन्द्रमा स्रस्तवस्त्र होकर भागता है : चन्द्रमा रात्रि मे कमलिनी की शोभा को चुराता है तथा कैरविणी के साथ विहार करता है। इस अपराध के कारण वह प्रात काल सूर्य को देखकर भीत होकर भाग जाता है।[4]

जीवानन्दन नाटक मे कवि यह कल्पना करता है कि रात्रि को छोडकर चन्द्रमा ने कुमुदिनी का आलिङ्गन किया। इससे क्रुद्ध होकर रात्रि के अस्ताचल पर चले जाने पर चन्द्रमा भी वहाँ जा रहा है।[5] प्रात काल चन्द्रमा प्रभाहीन हो जाता है। अनादि मिश्र ने यह कल्पना की है कि उदीयमान सूर्यकिरणो के भय से चन्द्रमा अपनी शोभा का परित्याग कर रहा है।[6] सभापतिविलास नाटक मे कवि ने कल्पना की है कि श्रीकृष्ण के शैवदीक्षा ग्रहण करने पर कुलगुरु चन्द्रमा उसे नाग-लोक से निवेदित करने के लिये पश्चिम सागर मे प्रवेश कर रहा है।[7] चन्द्रमा के अस्त होने पर कुमुद मीलित हो जाते हैं।

प्रात काल चन्द्रमा जीर्णमराल के समान हो जाता है। वह अपनी जर्जर किरणो से पश्चिम सागर मे स्खलित हो जाता है।[8] चन्द्रमा के कलङ्क को कलङ्क-दास नामक व्यक्ति मानकर काशीपति कविराज ने यह उत्प्रेक्षा की है कि यह कलङ्कदास आकाश रूपी समुद्र मे चन्द्रताप रूपी तन्तुजाल फैलाकर उसमे फँसी हुई तारकाओं रूपी मछलियो को शीघ्रता से पकडने की कामना से चन्द्रमा रूपी नाव पर स्थित होकर शीघ्र ही समुद्र के पास आ गया है।[9] चन्द्रमा अपनी

---

1. लक्ष्मीकल्याण नाटक, पद्य 3.15
2. वही, 3 8
3. वही, 3 11
4. सेवन्तिकापरिणय नाटक, 1 36
5. जीवानन्दन नाटक, 3 6
6. मणिमाला नाटिका, 3 79
7. सभापतिविलास नाटक, 3 4
8. मुकुन्दानन्द भाण, पद्य 29
9. वही, पद्य 30

नक्षत्ररूपिणी सेना सहित रात्रि मे आकाश रूपी वन मे विचरण कर अपनी किरणो मे फँसे कतिपय पथिको का वध कर इस समय शीघ्रता से भागा जा रहा है।[1]

जगन्नाथ कवि यह कल्पना करते हैं कि चन्द्रमा रात्रिरूपिणी नायिका का भोग कर पश्चिम दिशा मे जा रहे है। चन्द्रमा अर्द्धरात्रि मे सुन्दरियो के मुखकमल की शोभा हरण करता हुआ अधिक कान्तिमान् था। बाद में उन सुन्दरियो ने शयन से उठकर प्रात काल उसे शोभाहीन देखा। इस कारण स्त्रियो से लज्जा तथा भय का अनुभव करता हुआ वह समुद्र मे डूबा जा रहा है।[2] प्रात काल चन्द्रमा वियोगियो के मुख के समान कान्तिहीन हो जाता है।[3] आकाश रूपी अष्टापद म तारका रूपी शारिचय को प्रसारित कर अश्विन्यादि अङ्गनाओ के साथ क्रीडा करता हुआ चन्द्रमा प्रात काल पक्षियो के कलरव से सूर्य के आगमन को जानकर छिप जाता है। चन्द्रमा सासारिक मर्यादा के कारण ऐसा करता है।[4] प्रात काल अस्त होते हुए चन्द्रमा के विषय में जगनाथ ने कल्पना की है कि चन्द्रमा पश्चिम दिशा के प्रति अनुरक्त हो गया है।[5]

प्रात काल चन्द्रमा की किरणें मलिन हो जाती हैं। सूर्य की किरणो के उदयाचल पर पडते ही चन्द्रमा शोभाहीन हो जाता है।[6] प्रात काल आपद्ग्रस्त चन्द्रमा विनम्रमुख से चक्रवाको द्वारा की गई अपनी निन्दा को सहता है।[7] सुन्दरी प्राची की कुचनटी तथा गाढाङ्कपानी से मिश्रित काश्मीरद्रव से मानो मुद्रित हुआ, रक्तवर्ण हुआ, कैरविणीसमागमकृन श्रान्ति को मुक्त करने के लिये निद्रा के वशीभूत हुआ चन्द्रमा अस्तावल की कन्दरा मे जा रहा है।[8] कलानन्दक नाटक मे राजा नन्दक को प्रात काल चन्द्रमा के मलिन मण्डल को देखकर विरहिणी कलावती के मुख का स्मरण हो आता है।[9] शृङ्गारतङ्गिणी मे प्रात काल चन्द्रमा के मलिन

---

1 मुकुन्दानन्द भाण, पद्य 31
2 अनङ्गविजय भाण, पद्य 18
3 मदनसञ्जीवन भाण, पद्य 20
4 कुमारविजय नाटक, 3 1
5 वसुमतीपरिणयनाटक, 3 14
6 प्रभावतीपरिणय नाटक, 6 5-6
7. वही, 6 10
8 कामविलास भाण, पद्य 44
9 कलानन्दक नाटक, 3 13

होने का वर्णन है।[1] सदाशिव दीक्षित ने यह कल्पना की है कि पद्मिनी का स्पर्श कर चन्द्रमा ने जो अपराध किया था, उसके कारण उसे सूर्य से दण्डित होकर अस्त होना पड़ा।[2]

पक्षी तथा भ्रमर

प्रात काल सूर्योदय होने पर चक्रवाकमिथुन की विरहव्यथा दूर हो जाती है।[3] चोक्कनाथ कवि ने यह कल्पना की है कि कमलिनी-दल मे रहने वाला चक्रवाक, जिसके मुख से सायकाल मे गृहीत मृणालदण्ड ससक्त है, सूर्य के उदय की आकाक्षा करता हुआ, प्रात काल जप करते हुए दण्डधारी वटु के समान प्रतीत हो रहा है।[4] प्रात काल कोकयुवक परस्पर सयुक्त हो जाते हैं।[5] इस समय सारस तथा हस उन्नत स्वर से कूजन कर रहे है। भवनशिखरो पर कुक्कुट भी उच्च स्वर से बोल रहे हैं।[6] सूर्योदय होने पर भ्रमरियाँ पदमो का चुम्बन करती हैं। चक्रवाको का चक्रवाकियो से पुर्नमिलन हो जाने से वे परस्पर प्रसन्न होते हैं।[7] जो भ्रमरादि रात्रि मे सरोवर को स्वेच्छा से त्याग कर असस्तुत के समान यहां से चले गये थे, वे इस समय इस सरोवर को विकसित कमलो से युक्त देखकर पुन इसका स्वतन्त्रता-पूर्वक उपभोग करने के लिये इसके समीप आ रहे हैं।[8] इस समय पक्षी कूजन कर रहे हैं।[9] चक्रवाकमिथुन भी इस समय कूजन कर रहे हैं। वे कमलाङ्कुरो का भक्षण कर रहे हैं।[8] वे चञ्चु द्वारा अपने वलितकन्धर शरीर का कर्षण कर रहे है। मदव्यतिकर से व्याकुल ये चक्रवाकमिथुन सकाकूदय कूजन कर रहे है।[10] प्रत्येक वृक्ष पर भ्रमर पराग का पान कर रहा है।[11]

---

1 शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक 4 2
2. लक्ष्मीकल्याण नाटक, 3 17
3. प्रमुदितगोविन्द नाटक, 3 3, लक्ष्मीकल्याण नाटक, 3 9
4. सेवन्तिकापरिणय नाटक, 1 22
5. नवमालिका नाटिका, 4 4
6. अनङ्गविजयभाण, पद्य 22
7. वही, पद्य 25
8. वसुमतीपरिणय नाटक, 3.16
9. सभापतिविलास, नाटक, 3 9
10 वही, 3 11
11. वही, 3 13-14

आनन्दराय मखी ने यह कल्पना की है कि 'पति चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर नेत्रों से अञ्जनमिश्रित अश्रुओं को बहाती हुई, त्रास से मीलित नेत्रवाली *कुमुदिनी को यह सूर्य अपनी किरणों द्वारा आलिङ्गित करेगा'* इस अपन्याय की आशङ्का करने वाला कुक्कुट शीघ्रता से 'कू कू' शब्द कर रहा है।[1] प्रातःकाल विषयानुबन्ध की सार्वत्रिकता के कारण कोक पहिले ही विहार-पुष्करसरोवर में आकर बैठा हुआ यह सोच रहा है कि मेरी वधू मेरा अन्वेषण करती हुई यहाँ आकर, प्रेम से मेरा शरीर स्पृष्ट कर, अपने सलापों से मुझे तुष्ट कर मेरे मुख से भुक्तावशिष्ट कमल को स्वीकार करेगी।[2]

प्रात.काल कूजन करते हुए कुक्कुटों के विषय में घनश्याम कवि ने यह कल्पना की है कि ये कुक्कुट मानो यह रट रहे हैं कि चिदम्बर में निवास करने वाले सभी जन्तु शिव की महिमा से शिवरूप ही हो जायेंगे।[3] सूर्योदय के समय चक्रवाकमिथुन तटाक में विलास करते हैं। चकवाक अर्द्धखण्डित कमल को चक्रवाकी के मुख में डाल रहा है। वह चक्रवाकी अपने चञ्चु से अपने पति को शिर पर खुजला रही है। प्रेम से परवश चक्रवाक चक्रवाकी की गोद में सो जाता है।[4] प्रात काल पक्षियों का कलरव सर्वत्र सुनाई देता है। यह कलरव मानो सूर्य के आगमन की सूचना देता है।[5] प्रात काल चक्रवाकियाँ सूर्य की किरणों को साभिप्राय दृष्टि से देखती हैं।[6]

प्रात काल प्रत्येक वृक्ष पर शब्द करती हुई काकपङ्क्ति ऐसी प्रतीत होती है *मानों वह अरुण के तेज से नष्ट हुई अन्धकारपङ्क्ति हो।*[7] *प्रातःकाल कुक्कुट*-कूजन को सुनकर विट तथा जारिणी विघटित हो जाते हैं। प्रधान वेङ्कप्प ने कहा है कि विट तथा जारिणी को विघटित करने वाला यह नीच तथा महापातकी कुक्कुट लज्जित नहीं होता।[8] भ्रमर मकरन्दपान करते हुए गुञ्जन करते हैं।[9] प्रात काल

---

1 जीवानन्दन नाटक, 3 4
2 विद्यापरिणय नाटक, 7 9
3 मदनसञ्जीवन भाण, पद्य 19
4 वही, पद्य 28
5. कुमारविजय नाटक 3 1
6 सीताराघव नाटक, 4.1
7. प्रद्युम्नविजय नाटक, 2 1
8. कुक्षिम्भरभैक्षव प्रहसन, पद्य 20
9. शृङ्गारतरङ्गिणीनाटक, 4.3.5

कुक्कुट 'कुकुरकू' शब्द करते हैं। सूर्योदय से कोक-कुटुम्ब का शोक नष्ट हो जाता है।[1] प्रातःकाल कुक्कुटध्वनि दिशाओं में ह्रस्व, दीर्घ तथा प्लुतवर्ण के समान फैलती है।[2]

रात्रि को भ्रमरियों के साथ कमलकोष में व्यतीत कर प्रातःकाल भ्रमर जाग जाते हैं।[3] प्रातःकाल मराल यमुना के तट पर सुन्दर गीत गाते हैं।[4] पक्षी-गण यमुनातटवर्ती तपोवनों में छात्रों द्वारा उदीरित वेदवचनों की पुनरावृत्ति करते हैं।[5] प्रातःकाल कोकिल कूजन करते हैं।[6]

वायु

प्रातःकालीन वायु जीवों को आनन्द प्रदान करता है। इस वायु का शरीर विकसित कमल के मनोज्ञ मकरन्दबिन्दुओं से तुन्दिल रहता है। यह नारियों के सुन्दर केशों का स्पर्श कर उनके कामक्रीडाश्रम को दूर करता है।[7]

यह केरली नारियों का गर्भकरण, वृद्ध मानिनियों के मान को नष्ट करने में सिद्धमणि, कामदेव का मुख्यायुध, मकरन्दबिन्दुओं से ललित तथा कमलवन के सौरभ का चोर है। यह मन्द गति से बहता है।[8] प्रातःकालीन वायु शीतल तथा समस्त जगत् की वस्तुओं को सौरभपूर्ण बनाने वाला है। यह हस्ती के मदजल से सुरभित, पद्मिनी के रज से लिप्त तथा विरहीजनों के मान को नष्ट करने वाला है। यह वायु पथिकों की वधुओं को मारने में धीर है। यह हिलते हुए कमलों के जल से सुरभित है।[9]

यह वायु शीघ्रता से पुष्पिणी लताओं का आलिङ्गन कर मधुगन्ध से युक्त हुआ मन्द मन्द बह रहा है भ्रमरसमूह इसका यशोगान कर रहा है। यह वायु अपनी पत्नी के मुख का चुम्बन कर उसकी विरह-व्यथा को दूर करता है।

---

1 कुवलयाश्वीय नाटक, प्रथमाङ्क
2 श्रीदामचरित नाटक 1 17
3 कलानन्दक नाटक, 3 6
4 वही 3 10
5 वही, 3 12
6 वही, 3 14
7 अनङ्गविजय भाण, पद्य 21-22
8 मदनसञ्जीवनभाण, पद्य 27
9 प्रद्युम्नविजय नाटक, 5 18-19

मानव

प्रात काल मुनिजन शय्या से उठकर वटु को वेदाध्यापन करते है ।[1]

रात्रि मे धनिको के साथ भोग कर उनके धन का अपहरण कर तथा उन्हें कौपीनमात्राशुक बनाकर ताम्बूल खाये हुई हँसती हुई वेश्यायें प्रात काल अपने गृहो को लौटती हैं ।[2] सूर्योदय की आशका से भीत कतिपय अग्निहोत्री आर्द्रवस्त्र ही पहिने हुए उछल कर दौडते हैं ।[3]

प्रातःकाल विप्र सरोवर मे स्नान कर पुष्प, दर्भ तथा समिधायें लेकर सूर्य की पूजा करते हैं ।[4] द्रविडकन्यायें इस समय सरोवर में स्नान करती हैं । सरोवर मे स्नान करने के लिये आई हुई सुन्दरियाँ अपने वस्त्रो को शिलाओ पर पटक कर स्वच्छ करती है ।[5] स्नान कर स्त्रियाँ तथ पुरुष शिव के दर्शन के लिये मन्दिर जाते हैं ।[6] मानव आवश्यक कार्यों के सम्पादन मे लग जाते हैं । यह समय देवो को भी आनन्ददायक होता है। इस समय ब्रह्मा तथा विष्णु प्रसन्न होते हैं और शिव भूतगणो सहित नृत्य करते हैं ।[7]

तारागण

सदाशिवोद्गाता ने यह उत्प्रेक्षा की है कि प्रातःकाल तारागण प्राचीशैल पर विचरण करने वाली हस्तिनियो के झुण्ड से गिरे हुए जलबिन्दुओ के सदृश प्रतीत होते हैं ।[8] इस समय आकाश मे तारागण विरल हो जाते हैं । उषा के कारण वे किञ्चित् विच्छायित हो जाते हैं। विश्वेश्वर पाण्डेय ने यह कल्पना की है कि ये तारागण रात्रि मे अपने प्रेमियो के साथ विहार करती हुई देवाङ्गनाओ की कबरियो से च्युत मल्लिकापुष्प हैं ।[9]

---

1. सभापतिविलास नाटक, 3 1
2 मदनसञ्जीवन भाण, पद्य 21
3 वही, पद्य 23
4 वही, पद्य 24
5 वही, पद्य 29-30
6 वही
7 चन्द्राभिषेक नाटक, 2 56
8. प्रमुदित गोविन्द नाटक, 3.2
9 नवमालिका नाटिका 4 1

रात्रि अपने पति चन्द्रमा को प्रातःकाल पश्चिम दिशा के प्रति अनुरक्त देखकर मानो क्रोध से अपनी तारकारूपिणी हारभूषा का परित्याग कर रही हैं। रात्रि सापत्न्यक को क्षमा नहीं कर सकती।[1] इस समय दो तीन तारे ही चित्रित के समान आकाश में दिखाई देते हैं।[2]

प्रातःकाल नक्षत्रमाला श्वेत चन्दन के बुद्बुद् के समान हो जाती है। ऋषि-समूह सहित शुक्र भी दीप के समान दीन दशा को प्राप्त हो जाता है।[3] तारागण गगनमण्डल में लुप्त हो जाते है। वे क्षीण हो जाते हैं।[4] इस समय तारागण अपने प्रकाश के म्लान होने के भय से भीरु के समान दिखाई देते हैं।[5]

आकाश तथा दिशायें

प्रातःकाल प्राची दिशा अरुण किरणरूपी कुङ्कुम से अरुणित पूर्व पर्वत रूपी स्तनवाली दिखाई देती है। इस समय अरुणाशुलेखा शोणप्रवाह के समान सैन्धव एकदेशवाले आकाश को अलङ्कृत करती है।[6] भूलोक की प्रतिहारवेदी यह पूर्व दिशा भी आगन्तुक लक्ष्मी का सम्मान करने के लिये अरुण पाद्यजल धारण किये हुए है।[7] इस समय सूर्य को अपने गर्भ म धारण किये हुई प्राची आपाण्डुमुखी दिखाई दे रही है।[8] दिशायें दीर्घ के समान दिखाई देती हैं।[9] आकाशतल दूरोत्क्षिप्त के समान दिखाई देता है।

आनन्दराय मखी ने प्रातःकाल प्राची दिशा में दिखाई देती हुई श्वेतिमा को पुण्यात्मा के चित्त में आविर्भूत हुई शुद्धि के समान बताया है। पूर्व दिशा में इस समय सूर्य की वरेण्य ज्योति आविर्भूत हो जाती है।[10] इस समय प्राची कुसुम्भ तथा

---

1. वसुमतीपरिणय नाटक, 3.14
2. सभापतिविलास नाटक, 3.1
3. मदनसञ्जीवनभाण, पद्य 20
4. प्रभावतीपरिणय नाटक, 6.5
5. सीताराघव नाटक, 4.1
6. मुकुन्दानन्दविन्द नाटक, 3.1
7. वही, 3.2
8. वसुमतीपरिणय नाटक, 3.13
9. वही, 3.15
10. विद्यापरिणय नाटक, 7.8

केसर के समान वर्णवाली कतिपय किरणों से युक्त है।[1] प्रात काल सूर्य की किरणें पूर्व दिशारूपिणी वेश्या के मुख पर लिखित सिन्दूर-रेखा के समान दिखाई देती हैं।[2] इस समय सूर्य की किरणें दिशाग्रो को काश्मीररसवसमूह से पूर्ण करती हैं।[3]

प्रातःकाल वारुणी का सेवन कर लौटे हुए सूर्य को देखकर प्राची स्मेरमुखी हो जाती है।[4] प्राची समाधिसम्पत्ति म बढी योगी की आत्मवृत्ति के समान सत्त्व-प्राया होकर प्रकाशित होती है।[5]

मध्याह्न

वृक्ष

मध्याह्न मे वृक्ष शुष्क से हो जाते हैं। उष्ण वायु उन्हें पत्रविहीन कर देती है।[6] प्रचण्ड ग्रातप के कारण पक्षीगण वृक्षों की शाखाग्रो पर लुठन करते हैं, जिससे वृक्ष हिलते हुए दिखाई देते हैं। कतिपय वृक्ष सरोवर के जल के अन्तर्गत सन्तापित चक्राङ्गो को भी अपने जटालवालो मे अन्तर्हित कर लेते हैं।[7]

सूर्यातप से तप्त वृक्ष मूच्छित के समान दिखाई देते हैं। उन पर पक्षी भी शब्द नही करते। वायु के न चलने के कारण वे वृक्ष निस्पन्द हो गये हैं। वृक्षो की यह दशा देखकर उनकी पत्नियो के समान छाया उनके चरणो पर गिर कर झिल्लीशब्दा द्वारा उत्क्रोश कर रही है।[8] गहन वृक्षो के कारण उपवन मे मध्याह्न मे भी सूर्य का प्रचार नही होता।[9] इस समय छाया पुञ्जीभूत होकर वृक्षों के नीचे चली जाती है।[10]

---

1 सीताराघव नाटक 41
2 मदनकेतुचरित प्रहसन पद्य 10
3 प्रभावतीपरिणय नाटक, 68
4 कलानन्दक नाटक, 36
5 प्रमुदितगोविन्द नाटक, 34
6 वही, 19
7. सभापतिविलास नाटक, 25
8 प्रभावतीपरिणय नाटक 156
9 प्रद्युम्नविजय नाटक, 34
10 कामविलासभाण, पद्य 93

सूर्य के प्रौढ प्रताप से युक्त होने पर वृक्षसमूह शीघ्रता से अपनी छाया को खींच लेता है।[1] उष्णता से त्रस्त पथिक विशाल वृक्षों के नीचे आश्रय प्राप्त करते हैं।[2] सूर्य के प्रचण्ड आतप के कारण पुष्प वृक्षों से टूटकर उनके आलवालों में गिर पड़ते हैं।[3]

सूर्य

मध्याह्न में सूर्य प्रचण्ड किरणों वाले हो जाते हैं। उनसे प्राणी कठोर दण्ड देने वाले राजा के अमात्य के समान ताप का अनुभव करते हैं। सूर्य स्वेच्छा से चारों ओर अपनी कठोर किरणों को विकीर्ण करते हैं, सूर्य की किरणों से तप्त सूर्यकान्त-मणि से ऊर्ध्वगामी ज्वालायें निकलती हैं।[4] सूर्य अत्यन्त तीव्र किरणों से संसार को तपाते हैं। छाया और संज्ञा नामक दोनों पत्नियों के पार्श्व में होते हुए भी नलिनी के प्रति प्रौढ अनुराग के कारण सूर्य की द्वादश मूर्तियाँ इस समय सन्तप्त हो रही हैं।[5]

चोक्कनाथ कवि ने मध्याह्न के सूर्य के विषय में यह उत्प्रेक्षा की है कि शीघ्र-गमन से परिश्रान्त सूर्य क्षणमात्र विश्राम की कामना करता हुआ मानो गोपुरशिखर पर अधिवास कर रहा है।[6] जगन्नाथ कवि ने कहा है कि इस समय गगन रूपी हस्ती पर आरूढ सूर्य अपनी प्रचण्ड किरणों से दिङ्मण्डली को शोषित कर रहा है।[7] सूर्य की प्रचण्ड किरणों द्वारा तपाये जाने पर जाज्वल्यमान सूर्यकान्तमणि के शिखरों द्वारा प्रासादसमूह ऐसा प्रतीत होता है ऐसा प्रतीत होता है जैसे इसमें चारों ओर उज्ज्वल कुरविन्द पताकायें आबद्ध कर दी गई हो।[8] इस समय सूर्य अपने प्रताप से विश्व को तपाते हैं।[9] वह अपनी किरणों से पृथ्वीमण्डल को दुरालोक कर देते हैं। वेङ्कटेश्वर कवि ने यह उत्प्रेक्षा की है कि सूर्य पशुपति का ताण्डव देखने के लिये गगनक्रोड में पहुँच गया है।[10]

---

1. लक्ष्मीस्वयंवर समवकार, 1.24
2. कुक्षिम्भरभैक्षवप्रहसन, पद्य 59
3. शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक. 1'35
4. प्रमुदितगोविन्द नाटक, 1.9-10
5. वही, 3 18-19
6. सेवन्तिकापरिणय नाटक, 1.57
7. अनङ्गविजय भाण, पद्य 74
8. वही, पद्य 77
9. सभापतिविलास नाटक, 3.41
10. वही, 5 10

सूर्य का रथ मध्याह्न तक दीर्घमार्ग को आक्रान्त कर आकाश के मध्य मे विकुण्ठितगति होकर निस्पन्द मा हो जाता है। इस विषय मे जगन्नाथ कवि ने यह उत्प्रेक्षा की है कि अरुण आकाशगङ्गा के जल मे अश्वो को स्नान करा कर विश्राम दे रहा है।[1]

मध्याह्न मे सूर्य अपनी तीव्र किरणो को चारो ओर विकीर्ण करता है। वह आकाश के मध्य मे स्थिर होकर ससार को प्रज्वलित करता है।[2] इस समय सूर्य रत्नो से विरचित कुम्भावली तथा प्रासादाग्र पर बनाये गये उदग्र कुम्भ के सदृश प्रतीत होता है। वह तप्त स्वर्ण के समान तेजस्वी हो जाता है देवराज कवि ने यह उत्प्रेक्षा की है कि मध्याह्न मे पद्मनाभ-मन्दिर के अग्रभाग मे स्थित स्वर्णकलश के साथ मिलकर सूर्यबिम्ब पद्मनाभमन्दिर की शोभा के दो विपुल स्तनो का निर्माण करता है।[3]

मध्याह्न मे सूर्यमण्डल अत्यन्त प्रखर हो जाता है। सूर्य अपनी किरणो से विश्व के अन्तराल मे प्रसृत तमसमूह को नष्ट कर देता है। बाणेश्वर शर्मा ने यह यह उत्प्रेक्षा की है कि इस समय सूर्य कोप से प्रज्वलित हो रहा है। वह दुरालोक हो गया है। उसने आकाश रूपी प्रासाद के शीर्ष पर अपना चरण रखा है। वह पर्वतो तथा वृक्षो के शिखर पर मानो भयप्रद्रुत अन्धकार को देखने के लिए आरूढ हुआ है।[4]

मध्याह्न मे सूर्य अपनी कठोर किरणो के अन्धकारसमूह को पकडता है। रामवर्मा ने यह उत्प्रेक्षा की है कि सूर्य को अन्धकार के प्रति इसलिये शत्रुता हो गई है कि उसने उसे दिक् स्त्री के आश्लेष के लिये जाते हुए देखा था।[5] सूर्य के भय से तरलित हुआ अन्धकार छाया के दम्भ से वृक्षो के नीचे पहुँच गया है। सूर्य एक वैद्य के समान कमलो के रात्रि रूपिणी स्त्री के सङ्ग से उत्पन्न शोथ को करुणापूर्वक अपनी दीप्तियुक्त किरणो द्वारा शमित कर रहा है।[6] वह लोगो के आलोक को छिन्न करने वाले अन्धकार को शमित करता हुआ व्योम के मध्य मे जल रहा है।

---

1 रतिमन्मथ नाटक, 1,30
2 राघवानन्द नाटक, 1 30
3 बालमार्तण्डविजय नाटक, 4 59
4 चन्द्राभिषेक नाटक, चतुर्थाङ्क
5, शृङ्गारसुधाकर भाण, पद्य 34
6. वही, पद्य, 36

वेङ्कट सुब्रह्मण्याध्वरी ने कहा है कि मध्याह्न मे सूर्य व्योमपर्वत के शिखर पर आरूढ होकर दुर्दर्शनीय हो जाते हैं। द्विगुणोष्मा से ससार को पीडित करते हैं।[1] हरिहरोपाध्याय ने कहा है कि मध्याह्न मे सूर्य की प्रचण्ड किरणो से पूर्ण ससार अङ्गारको से पूर्ण किये गये के समान प्रतीत होता है।[2] काशीपति कविराज ने यह उत्प्रेक्षा की है कि सूर्य उच्चतर पर्वतो के मस्तको पर अपने किरण रूपी चरणो को रखकर गुहाओ मे लीन अन्धकार को खोजने के लिए आकाश के मध्य मे आरूढ हो रहा हैं।[3] सूर्य क्रोधपूर्वक अपनी किरणो को फैलाकर छाया को नष्ट करने का प्रयास करता है। वेङ्कप्प कवि ने यह कल्पना की है कि सूर्य अन्धकार को देख-देख कर अपनी किरणो द्वारा नष्ट करने के लिए मानो व्योमाग्र पर आरूढ हो गया है।[4] मध्याह्न मे सूर्य आकाश के मध्य मे स्थिर हो जाते हैं।[5]

मध्याह्न में सूर्य का ताप प्रतिक्षण बढता जाता है। वह अपनी किरणो से सरोवरो का पान करता हुआ शीघ्रता से आकाश के मध्य मे आरूढ हो जाता है।[6] रामचन्द्र शेखर ने यह उत्प्रेक्षा की है कि सूर्य की उष्णता से डरा शीत इस समय राजाओ के शय्यागृहो मे छिप गया है।[7]

छाया

मध्याह्न मे सूर्य के आतप के भय से छाया अपनी रक्षा के लिए उद्यत हुई वृक्षों की शरण मे चली जाती है। वृक्ष अपने पल्लवरूपी हाथो से सूर्य की किरणो को रोक कर शरणागत छाया की रक्षा करते हैं।[8] इस छाया पुञ्जीभूत होकर वृक्षो के नीचे चली जाती है।[9] मध्याह्न मे छाया का अभाव रहता है।[10]

---

1. बसुलक्ष्मीकल्याण नाटक, 1 59
2. प्रभावतीपरिणय नाटक, 1 55
3. मुकुन्दानन्द भाण, पद्य 157
4. कामविलास भाण, पद्य, 93
5. कुवलयाश्वीय नाटक, द्वितीयाङ्क
6. मलयजाकल्याण नाटिका, 1.40–41
7. कलानन्दक नाटक, 1 56
8. मुकुन्दानन्द भाण पद्य 159
9. कामविलास भाण, पद्य 93
10. लक्ष्मीस्वयंवर समवकार, 1.24

पशु-पक्षी तथा भ्रमर

मध्याह्न मे पक्षियो के लिए मार्ग मे सञ्चार करना सुकर नही है।[1] इस समय भ्रमर कमलबीजकोष रूपी मञ्च पर सो जाते हैं। कपोत वृक्षो के कोटरो मे क्रीडा करते हैं।[2] पक्षीगण चित्रलिखित के समान मौन धारण कर लेता है।[3] उन्नत कमलिनीदल की शीतल छाया मे बैठने की इच्छा करने वाले, अपने चञ्चु से बिसाङ्कुर को एक दूसरे के मुख मे डालने के लिए उद्यत, रसपूर्ण क्रीडा करते हुए चक्रवाको के लिए यह मध्याह्न भी सुखावह होता है।[4] इस समय सूर्य की प्रचण्ड किरणों से तप्त कमल को भ्रमर भयपूर्वक देखते है। मध्याह्न में सारस लहरो रूपी *डोलिका मे भ्रमण का परित्याग कर देते हैं।*[5] *प्रचण्ड आतप के कारण पक्षीगण वृक्षो* की शाखाओ पर लुठन करते हैं।[6] चक्रवाक सरोवर के जल के अन्तर्गत सन्ताप का अनुभव कर वृक्षो के जटालवालो मे छिप जाते हैं।

मध्याह्न मे गृहहरिण तृषा के कारण पात्र मे रखे हुए शीतल जल को पीता है।[7] मध्याह्न को सूचित करने के लिए बजाये जाने वाले पटह की ध्वनि को सुनकर पञ्जर मे स्थित शुक भय से उद्भ्रान्त होते हैं।[8] इस समय मयूरसमूह जलप्रपातो से युक्त तथा सूर्यकिरणो से शून्य वन प्रदेशो मे पहुँचते हैं।[9] सर्प सुगन्धित वायु से तृप्त होकर नदीतीर पर अपने बिलो मे सो जाते हैं,[10] वन मे हाथी हथिनियो के साथ नदी मे स्नान करते हैं।[11]

मध्याह्न मे रोमन्थ करती हुई अलसनेत्र वनमृगी वृक्षमूल मे सो जाती है। मीनसमूह तप्त जल को त्याग कर पङ्कसमूह मे प्रविष्ट हो जाता है। तापाभिभूत हस्ती मरुजल मे इतस्ततः दौडता हुआ पद्मिनी को उत्कण्ठापूर्वक व्यावर्तित करता

---

1. प्रमुदितगोविंद नाटक, 3 18
2. मणिमाला नाटिका, 4.14
3. वही, 4.16
4. वसुमतीपरिणय नाटक, 1.33
5. समापतिविलास नाटक, 2.3
6. वही, 2 5
7. जीवानन्दन नाटक, 4.1
8. वही, 4 2
9. जीवानन्दन नाटक, 4 3
10. वही, 4.3
11. वही, 4.4

है ।[1] इस समय कालज्ञ वीथिकाम्रो मे कू-कू शब्द करते है। उलूक गहन पत्रों मे छिप जाते हैं। बिडाल ऊपर को ग्रोर पैर कर उच्चारण करते हैं ।[2]

मध्याह्न मे भेरीध्वनि सुनकर वानर ग्रानन्द से नृत्य करते हैं। इस समय चक्रवाक कमलपत्र पर निद्रित सा दिखाई देता है। हस ग्रपनी पत्नियो को ग्रपने पक्षो से ग्राच्छादित किये हुए हैं । कारण्डवगण ताप से मुक्ति पाने के लिए जल मे स्नान कर रहे हैं। भ्रमर कैरवकोश को भिन्न कर उसके गर्भकुहर म स्थित है ।[3] इस समय मयूर चम्पा की छाया मे है। कपोत गोपानसीगर्भ मे जाकर सो जाते हैं। शारिका मन्द कूजन करती है ।[4] हस्तीसमूह जल म स्नान कर पिप्पल वृक्ष के नीचे जा रहा है। ग्रश्वसमूह रम्भावृक्ष का ग्रासेवन कर रहा है। ग्रपनी त्रोटी मे सर्प लिए मयूरसमूह निकुञ्ज के समीप ग्रा रहा है। कपोतसमूह कथनकेलियुक्ता वलभी पर ग्रारूढ हो रहा है[5]

मध्याह्न में सूर्य की किरणो से सन्तप्त हरिणीसमूह ग्रपने दूध पीनेवाले शावको के साथ पत्रावलीयुक्त वटवृक्षो की छाया मे बैठकर रोमन्थ करता है ।[6] उष्णता से तप्त मृगगण वृक्षो की छाया मे विश्राम करता है ।[7]

हरिहरोपाध्याय ने मध्याह्न मे हसो के क्रियाकलापो का वर्णन किया है। वे हस दीर्घिका मे निपतित होकर नलिनीदल की छाया से ग्रपने श्रम को दूर करते है। वे सरलता से मृणालो को उखाड कर खाते हैं। वे मञ्जुल कूजन कर रहे हैं ।[8] मध्याह्न मे भ्रमर मरन्दापूर्ण पद्मकोश मे जाते हैं। विकसित कमल के ग्रघ. पत्र-पुंज मे निविष्ट भ्रमर इस समय सूर्य को कुछ भी नही समझते है ।[9]

चयनी चन्द्रशेखर रायगुरु ने मध्याह्न मे सर्पों का वर्णन किया है। इस समय सूर्यकान्तमणि के उष्ण हो जाने से सर्पों की क्रीडावलभि मे ग्रौष्ण्य पहुँचता है ग्रौर वे सर्पिणियो के भोगभाग के ऊपर निकलते हैं। वे सर्प बार-बार श्वास छोडते हुए

---

1. विद्यापरिणय नाटक, 1.44
2. धम्पातुरञ्जनप्रहसन, पद्य 57
3. मदनसञ्जीवन भाण, पद्य 61,63
4. वही, पद्य 64
5. कुमारविजय नाटक, 3.15
6. शृङ्गारसुधाकर भाण, पद्य 35
7 वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक, 1.60
   वेङ्कटसुब्रह्मण्याध्वरिकृत,
8. प्रभावतीपरिणय नाटक, 1.54
9. प्रद्युम्नविजय नाटक, 3.5

अपने ग्रीवारूपी दण्डो से पृथुफण रूपी आतपत्रों को तान रहे हैं।[1] इस समय अपनी जलपूर्ण शुण्डाओं को ऊपर की ओर उठाये हुए जलमग्न हस्ती ऐसे प्रतीत होते है मानो वे कमलसद्म मे विराजमान लक्ष्मी का उपचार कर रहे हों।[2] राजहस आतपत्र रूपी कमलों के नीचे शैवलशय्या पर बैठ जाते हैं।[3] सूर्यकिरणो की चण्डिमा से तृपित मृगयूथ मिथ्यावारि की ओर दौड रहे है। चक्रवाकियाँ कामक्रीडा मे आसक्त है।[4] क्रीडामयूर अपनी छाया से आतप को दूर कर मयूरी को सम्मावित कर रहा है।[5] तप्त सूर्यकान्तमणि के परिष्वङ्ग से पक्षियों के चरण निरन्तर जल रहे हैं।[6]

मध्याह्न मे सूर्य के प्रचण्ड आतप से सन्तप्त पक्षी कूजन न करते हुए धैर्य को *त्याग कर बिलासवनी मे बैठा हुआ है। वृक्षो के मूल मे सोये हुए कृष्णमृग उष्ण* श्वासो के व्याज से मानो अपने ताप को बाहर निकाल रहे है। कमलवन मे आश्रित कोक निश्शङ्क होकर अपनी प्रियाओं के साथ क्रीडा करते हुए झंकार करते हुए प्रसन्न होते हैं।[7] चक्रवाकमिथुन कठोर आतप मे मध्याह्न मे वनस्थली मे कामक्रीडा करते है।[8] इस समय भ्रमर रूपी यति कुसुमपराग रूपी विभूति मे लिपटे हुए तथा कुछ कुछ जल्पन करते हुए मधुपान के मिष से भ्रमरियों को पकड रहे हैं।[9]

इस समय गहन वृक्षो के कोटरो मे अपनी चञ्चुओं के द्वारा पोषित शिशुओं सहित बैठे हुए पक्षी पिपासाकुल हुए न तो उठते हैं और न उडते हैं। उन्हे अपने पक्षो के सूख जाने का भय है।[10]

वायु

मध्याह्न मे वायु उष्ण हो जाता है।[11] वह स्तम्भित-सा हो जाता है।[12] वह

---

1. मधुरानिरुद्ध नाटक, 4 20
2. वही, 4 23
3. वही, 4.24
4. वही, 4 25
5. वही, 4 26
6. वही, 4 27
7. लक्ष्मीस्वयवर समवकार, 1.25–27
8. कुशिक्षरमैक्षव प्रहसन, पद्य 60
9. वही पद्य 65
10. मलयजाकल्याण नाटिका, 1.40
11. प्रमुदितगोविन्द नाटक, 1.9
12. मणिमाला नाटिका, 4.16

तापत्रस्त के समान स्पन्दित नहीं होता है।[1] वायु के न चलने के कारण वृक्ष निस्पन्द हो जाते हैं।[2] मध्याह्नवायु की गन्ध की कलामात्र से आतप दूर हो जाता है। यह वायु मनुष्यों के हृदय का अपहरण करता है। मध्याह्नवायु वियोगियों को व्यथित करता है।[3]

देव तथा मानव

मध्याह्न मे प्राणी ताप अनुभव करते हैं।[4] इस समय सुकोमल हृदय वाले लोगों के लिये मार्ग मे सचार करना सुकर नहीं है।[5] नारियाँ हरिचन्दन लगा रही हैं। मानवों का मन कहीं भी विनोद प्राप्त नहीं करता।[6] शरीर पर चन्दनमयी चर्चा, मुक्ताजालमयी कुचप्रावृति, जलार्द्र नलिनीपत्र से उपनीत वायु, धारायन्त्रयुक्त निकुञ्जभवन तथा रम्भावन मध्याह्न मे सुन्दरियों को सुख देता है।[7]

इस समय सूर्यकिरणों द्वारा भूमि के तप्त हो जाने के कारण चरणों से विकल होते हुए लोग मार्ग मे मूच्छित हो रहे हैं। श्रान्त वधुएँ गर्भसदन मे शयन कर रही हैं। मनुष्यों के मुख पर श्रमाम्भसम्भेद हो रहा है। मध्याह्न मे भगवान् प्रसन्नवेङ्कटनायक का शङ्ख बजता है।[8]

मुनीन्द्रगण मृगों को स्नान कराकर धीरे-धीरे अपने आश्रमों में वापिस ला रहे हैं। देवभक्तगण स्नान कर, भस्मालेपन कर, शिव का चिन्तन करते हुए, रुद्राक्षमाला धारण किये हुए, सूर्य की किरणावली को चन्द्रिका के समान समझते हुए शिव की सेवा के लिये यत्र-तत्र विचरण कर रहे हैं। मध्याह्न सन्ध्या कर मुनिगण शिव की पूजा कर रहे हैं।[9]

मध्याह्न मे लोग घोर आतप को सहन न करते हुए आवास के लिए शीतल प्रदेश चाहते हैं। उग्र आतप से पीडित पथिक मार्ग में वृक्ष के नीचे छाया से शीतल प्रदेश मे शीघ्रता से पहुँच रहे हैं। नारियों के मुख पर बनाया गया मकरीपत्र का

---

1. विद्यापरिणय नाटक, 1.45
2. प्रभावतीपरिणय नाटक, 1.56
3. कुशिकमर्दनसंव प्रहसन, पद्य 66-67
4. प्रमुदितगोविन्द नाटक, 1 9
5. वहीं, 3 18
6. मणिमाला नाटिका, 4.15-16
7. वसुमतीपरिणय नाटक, 1.34
8. अनङ्गविजय भाण, पद्य 75, 76
9. सभापतिविलास नाटक, 2 4, 6, 7, राघवानन्द नाटक, 1.31

अलङ्करण स्वेदविन्दुओ से लुप्त हो गया है । उसके बिम्बोष्ठ की चिक्कणता फूत्कार वायु से नष्ट हो गई है । उस मुख के नेत्रो की तारकायें तांमत होने के कारण निद्रा की प्रतीति करा रही है ।[1]

मध्याह्न मे लोग स्नान करते हैं, वस्त्र धारण करते हैं, काल के उचित जप करते हैं, देवो को नमस्कार करते हैं तथा भोजन करते हैं ।[2] धान के खेत की रक्षा करती हुई तरुणी तरुण पथिक के साथ शृङ्गार-चेष्टायें करती है । वह तरुणी नदी-तीर पर उपवन मे कदलीवृक्ष के पत्रो के नीचे खडी है ।[3] तीव्रातप के कारण लोगो के कक्षपुट से स्वेद निकलता है ।[4]

मध्याह्न मे भेरीशब्द को सुनकर भीत सिद्धाङ्गनायें आकाश मे अपने पतियो को दृढता से पकड लेती हैं ।[5] घनश्याम कवि ने मध्याह्न मे जल मे कुम्भ को मज्जित कर सरोवर मे क्रीडा करती हुई सुन्दरी का वर्णन किया है ,[6] उन्होने मध्याह्न में चरणों को जलाने वाली धूलि का भी वर्णन किया है ।[7] राजा लोग इस आतपवेला को कमल के मधूली परिमलों से सुगन्धित शिशिर वायु के कारण शीतलतल वाले सरोवर के तट पर व्यतीत करते हैं ,[8] कामिनियाँ अपने स्तन पाटीरपङ्क से लिप्त कर लेती हैं । प्रचण्ड उष्णता के कारण इन कामिनियो को स्वेद आता है जिससे उनके स्तनो पर बने हुए चित्र लुप्त हो जाते हैं । कामुक लोग कामिनियो का आलिङ्गन करते हैं और चुम्बन लेते हैं ।[9] धनिक लोग इस आतपवेला को चामर की शीत वायु, श्रीखण्डद्रव तथा स्वेच्छानुकूल नारियो के साथ व्यतीत करते हैं ।[10]

कमलो का सुगन्धिभार समस्त योगियो को माध्यन्दिन सन्ध्या के लिए प्रोत्साहित करता है ।[11] इस समय जगती अपने नेत्रो को निमीलित कर योगिनी के समान कमलप्रणयी और ज्योतिर्मय सूर्य का निरन्तर ध्यान करती हुई, ताप को सहन न

---

1. जीवानन्दन नाटक 4 2, 4, 5
2. जीवानन्दन नाटक, 4 6
3. वही, 4 7
4. धूर्तानुरञ्जन प्रहसन, पद्य 57
5. मदनसञ्जीवन भाण, पद्य 61
6. वही, पद्य 65
7. वही, पद्य 67
8. मदनकेतुचरित प्रहसन, पद्य 62
9. वही, पद्य 63
10. वही, पद्य 64
11. बालमार्तण्डविजय नाटक, 3.42

करती हुई जिस किसी भी प्रकार अपने श्रेय की आकांक्षा कर रही है ।[1] सूर्य के प्रचण्ड प्रताप को सहन करने मे असमर्थ हुआ गृहस्थ गृह का तथा पान्थवर्ग तरुतल का आश्रय ले रहा है ।[2] योगी लोग माध्याह्निक विधान के लिए नदीतट पर जाते है ।[3] धनिक युवक चन्द्रकान्तमणि के प्राङ्गण मे वासन्तीवलयित वलीक मे सुन्दरियो का अधरपान करते हुए तथा उनके साथ मधुर भाषण करते हुए इस आतपवेला को व्यतीत करते हैं ।[4] मध्याह्न में लोगों को भूख लगती है और वे भोजन करते है । रुक्मिणीपरिणय नाटक मे वसुभद्र और उनका मित्र मध्याह्नवेला को कात्यायनीमन्दिर मे व्यतीत करते हैं ।[5] मध्याह्न मे प्राणियो के नेत्रों का तेज मन्द पड जाता है ।[6] इस समय मरीचिका क्षण भर के लिये जललहर का भ्रम उत्पन्न कर नेत्रो को आनन्द प्रदान करती हैं ।[7]

मध्याह्न मे सूर्य के द्वारा तपाये गये यानवाही लोग सम्भ्रान्त चित्त हुए मार्ग को ढूंढते हैं ।[8] मनुष्य आतप से कष्ट का अनुभव करते हैं । आराधक लोग मध्याह्न सन्ध्या करते हैं ।[9] सूर्य को अर्घ्य देकर द्विजगण उसकी स्तुति करते हैं । ब्राह्मण समस्त देवो को अग्निहोत्र से तृप्त करते है ।[10] इस समय जठरानल अन्त करण को आकुलित कर देता है ।[11]

मध्याह्न के प्रौढातप मे उष्णता से त्रस्त पथिक विशालवृक्षो के नीचे आश्रय प्राप्त करते है ।[12] इस समय विजन उद्यान मे शीतल वायु का सेवन कर मिथुन विविध प्रकार की क्रीडायें करते हैं । युवकगण वधुओ के कुचमण्डल का आलिङ्गन

---

1. चन्द्राभिषेक नाटक, 2.65
2. वही, 2.66
3. वही, द्वितीयाङ्क का अन्त
4. शृङ्गारसुधाकर भाण, पद्य 37
5. रुक्मिणीपरिणय नाटक, द्वितीयाङ्क
6. प्रभावतीपरिणय नाटक, 1.55
7. प्रद्युम्नविजय नाटक, 1.48
8. वही, 1.49
9. वही, 1.50
10. वही, 1.51
11. वही, 3 3
12. कुक्षिम्भरभैक्षवप्रहसन, पद्य 59

कर तापोपशान्ति करते हैं।[1] इस समय चन्द्रकान्तमणिनिर्मित चन्द्रशालाओं में विहार करने वाली नारियों की उक्ति को कपोतपोतक अपने कूजितों द्वारा मानो गर्हणा करते हैं।[2]

सायंकाल

दिवस

सन्ध्या के समय सूर्य दिनश्री सहित अस्ताचल रूपी गृह में प्रवेश करता है।[3] सूर्य के पश्चिम समुद्र में आधे से अधिक डूबने पर आकाश ऐसा प्रतीत होता है मानो वह सन्ध्यावधू के द्वारा दिवस के लिए बनाई गई कुङ्कुमपङ्क की शोणशय्या हो।[4] इस समय बहती हुई मन्द वायु दिन के समाप्त होने की सूचना देती है।[5] इस समय अधिक रागवाली तथा रक्तकमल का अवगुण्ठन किये हुई सन्ध्यावधू स्वेच्छा से दिन को अपना पति चुन रही है।[6] दिवसान्त में सूर्य वारुणी का सेवन करता है।[7] इस समय दिवस की विरति हो जाने से सूर्य की किरणों की आभा शान्त हो जाती है।[8]

सन्ध्या

इस समय सन्ध्या देवी गगनतल को माञ्जिष्ठ किरणों से युक्त कर रही है।[9] सन्ध्याकिरणसमूह से यह आकाश माणिक्य से आकुल हरितोपलभूमि की शोभा *धारण किये हुए है।*[10] *सन्ध्या की सुन्दरता के छद्म से दिवादीपिका की ज्वाला* प्रोज्ज्वलित हो गई है। सन्ध्या की यह अरुणिमा फुल्ल हल्लकवीथी के समान है। वह आकाश रूपी उद्यान में उद्यत पूर्णप्रसमूह की प्रोद्भिन्न गुच्छावली के समान है।[11] कवि रामवर्मा ने सन्ध्या के समय पश्चिम दिशा की अरुणिमा के विषय में

1 कलानन्दक नाटक, 1 54-55
2 वही, 1 56
3 प्रमुदितगोविन्द नाटक, 2 5
4. अनङ्गविजय भाण पद्य 124
5 जीवानन्दन नाटक, पद्य 44
6 चन्द्रिका वीथी, पद्य 23
7. शृङ्गारसुधाकर भाण, पद्य 86
8 लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक, 1 14
9 मणिमाला नाटिका, 2 11
10 वही, 2.12
11 वही, 2 13

यह उत्प्रेक्षा की है कि यह सूर्य की किरणो के सघट्टन से जलते हुए अस्ताचल की सूर्यकान्तमणि से निकलती हुई दीप्ति के कारण है अथवा यह उज्जृम्भित समुद्र की वडवाग्नि के कारण है।[1] इस अरुणिमा को देखकर कवि को यह प्रतीत होता है कि सूर्य को अर्घ्य प्रदान करने के लिये वरुण ने समुद्र के जठर से पलाश-कपिश रत्नांशुओं के द्वारा बन्धुजीव पुष्पों की छाया का समालम्बन किया है।[2] कवि ने कल्पना की है कि प्रतिदिन दिन के अन्त मे वारुणी का सेवन करने से सूर्य सत्पथ से भ्रमित होकर अस्ताचलशिखर पर गिरकर प्रशिथिल किरणो वाला हुआ लाल तेज को धारण किये हुए है।[3]

कवि सदाशिव ने सन्ध्या के समय पश्चिम दिशा म विस्तीर्ण होती हुई अरुणिमा के विषय मे यह उत्प्रेक्षा की है कि यह पश्चिम दिशा और सूर्य के परस्पर रमण करने स उत्पन्न रज और रक्त है।[4] सन्ध्याराग का कारण कवि ने सूर्य की रथनेमि का शैलधातुधूलि से क्षत हो जाना बताया है।[5] प्रधान वेङ्कप्प न सन्ध्यातप की एक महायवनिका के रूप म उत्प्रेक्षा की है जिसस प्रतीची दिशा ने अपने आपको पिहित कर लिया है।[6]

रामचन्द्रशेखर ने सन्ध्या की अरुणिमा को चक्रवाकमिथुन की विरहाग्नि बताया है।[7] उन्हीं कवि ने इस अरुणिमा के पश्चिम दिशा रूपी विलासिनी की माणिक्यकञ्चुली होने की उत्प्रेक्षा की है।[8] उन्होने कहा है कि सन्ध्या की यह अरुणिमा सूर्यरथ क अश्वो के बलपूर्वक आकाश से उतरने पर उनके खुरपुटो से दलित अस्ताचल की धातुधूलि के समान है।[9]

सूर्य

सूर्य के सप्ताश्व अस्ताचल पर पहुँच कर मन्द हो जाते है। इस समय

---

1 शृङ्गारसुधाकर भाण, पद्य 84
2. वही, पद्य 85
3 वही, पद्य 86
4 लक्ष्मीकल्याण नाटक, 2 4
5 वही, 2 6
6 कामविलास भाण, पद्य 120
7. कलानन्दक नाटक, 7 20
8. वही, 7.21
9 वही, 7.19

सूर्य बन्धूकपुष्प के समान हो जाते हैं ।[1] सूर्य पश्चिम दिशा मे चले जाते है ।[2] वे सन्ध्या के प्रति अनुरक्त हो जाते हैं । पर्वतो के शिखरो से विकसित शोणपुष्पो को चुनते हुए पत्राङ्गपिण्डरुचिर सूर्य अस्ताचलशिखर का चुम्बन करते हैं ।[3] इस समय दिगङ्गना के हस्त मे स्थित प्रज्वलित किरणसमूहरूपी वर्तिका से युक्त कामदेव का सूर्यरूपी नीराजनरत्नपात्र अस्ताचलरूपिणी वेदिका मे विद्योतित हो रहा है ।[4] अनादि कवि ने सायं कालीन सूर्य-बिम्ब के सम्बन्ध मे विविध उत्प्रेक्षायें करते हुए उसे द्युजलधि की ऊपर उठती हुई विद्रुममण्डली, प्रद्युम्न की पत्नी प्रभावती का माणिक्यस्फुटपेटक, कामदेव का पट्टातपत्र, अस्ताचल रूपी सरोवर का विकसित रक्तकमल तथा वारुणी नारी की कोमल कर्णिका बताया है । सूर्य वारुणी नारी के कुङ्कुमपङ्कसकुल ललाट की लीला को धारण किये हुए है ।[5] सूर्य के पश्चिमाम्भोधि मे गिरने पर वडवाग्नि के भय से जलसमूह मानो घूमने लगता है ।[6]

छाया को पीछे से विपुल करते हुए सूर्य पश्चिम मे जाते हैं ।[7] सूर्य रूपी सिंह नभोवनान्त मे सचरण कर पातालगुहा की ओर अभिमुख हो जाता है ।[8] वेङ्कटेश्वर कवि ने उत्प्रेक्षा की है कि अपने आतपप्रवाह से सूर्यकान्तमणि से उद्गत हुए अनलकणसमूह से मानो तप्तशरीर होकर सूर्य पश्चिमसागर मे गिर रहा है ।[9] सूर्य मानो अपने आतप को मुक्त करने के लिये पश्चिम समुद्र मे मज्जित हो रहा है ।[10]

विट सूर्य अपनी कनकपिङ्गल किरणो से वारुणी दिशा का चुम्बन करता है ।[11] काल ने सूर्य की शोभा को विगलित कर दिया है । वह सूर्य जो अन्धकार को

---

1. प्रमुदितगोविन्द नाटक, तृतीयाङ्क
2. वही, 3.30
3. मणिमाला नाटिका, 2 1
4. वही, 2 2
5. मणिमाला नाटिका, 2 3
6. वही, 2 7
7. सेवन्तिकापरिणय नाटक, 1.19
8. अनङ्गविजय भाण, पद्य 125
9. सभापतिविलास नाटक, 2 9
10. जीवानन्दन नाटक, 4 45
11. मदनसञ्जीवन भाण, पद्य 85

नष्ट करने मे निपुण था, जलसमुदाय को शोभायुक्त करता था, कोको द्वारा आदर-पूर्वक देखा जाता था, अब अन्धकार के द्वारा लक्षित हुआ शोभाहीन होकर अस्ताचल कुक्षि से परिपतित हो रहा है।[1] सूर्य अब चरमजलधितीर के समीप शय्यानिविष्ट हुआ हीन किरणो वाला हो गया है।[2] वह काल रूपी अजगर द्वारा निगीर्ण कर लिया जाता है।[3]

प्रधान वेङ्कप्प ने अस्त होते हुए सूर्य के विषय मे यह उत्प्रेक्षा की है कि सूर्य सागर के समीप इसलिये गया है कि वह यह देखना चाहता है कि समुद्र के रत्नो मे क्या मेरे समान कोई रत्न है।[4] सूर्य का समस्त तेज मुहूर्तमात्र मे गलित हो जाता है। इस समय सूर्य वारुणी दिशा की शिरोमणि के समान प्रतीत हो रहा है।[5] काशीपति कविराज ने कहा है कि सूर्य का पश्चिम समुद्र मे गिरना उचित ही है। उसने सत् का अपमान किया था तथा जडो को शोभा प्रदान की थी। उसने ससार को परिताप दिया था।[6] कवि ने उत्प्रेक्षा की है कि वारुणी का सेवन करने से यह त्रैलोक्यपुण्यपादप सूर्य भी पतित हो रहा है।[7] कनकाकृति सूर्य मानो इसी क्रोध से अस्त हो रहा है कि मैंने अपने पद पर रहते हुए सभी पक्षियों, दानवो अथवा देवो का अभीष्ट पूर्ण किया, परन्तु मेरी आपत्ति के समय कोई मुझे आश्रय नही दे रहा है।[8]

प्रधान वेङ्कप्प ने कहा है कि सूर्य वारुणी का सेवन कर आकाश मे विलङ्घ सचरण कर अपस्मृति के वशीभूत हुआ अरुण होकर समुद्र मे गिर रहा है।[9] अस्ताचलवन के कण्टकित वृक्षो से विघट्टित होने के कारण सूर्य जर्जरितवस्त्र वाले

---

1 प्रद्युम्नविजय नाटक, 2 41

2 वही, 3.7

3 वही 3 11

4 वीरराघव व्यायोग, पद्य 87

5 सीताकल्याणवीथी, पद्य 62

6 मुकुन्दानन्द भाण पद्य 226

7 राजविजय नाटक, द्वितीयाङ्क

8 वही,

9 कुक्षिम्भरिभैक्षवप्रहसन, पद्य 82

दिखाई दे रहे है । तप्त लौह पिण्ड के सदृश सूर्य समुद्रजल म मग्न हो जाते है ।[1] विशाल नभ प्राङ्गण मे चलने के कारण श्रस्त तथा श्ररुण के द्वारा निरुध्यमान वक्रकन्धरावाले हुए, फेन करने हुए सूर्याश्व ग्रस्ताचल के ऊपर चढने से दूर से कण्टकवृक्षो को देखकर उन पर आश्रय लेते हैं ।[2]

अस्त होत हुए सूय का रक्तवर्ण का देखकर कवि कल्पना करता है कि कमला को विलपित कर तथा उनके घन का अपहरण कर क्या यह दण्डधारी परि-व्राजकाग्रणी सूर्य अपनी शुद्धि कर रहा है । यह सूर्य रक्तवस्त्र धारण कर अस्ताचल की अधित्यका म भृगुपात करने के लिये आ गया है ।[3] सूर्य अपने रम्य रागभार को कामुको तथा कामिनियो के हृदय मे रखकर अस्त हो जाता है ।[4] अस्ताचल की रागयुक्त अधित्यका मे जाकर सूर्य उसके साथ रति कर सकुचित किरणो वाला होकर समुद्र मे जाना चाहता है ।[5]

आकाश तथा दिशायें

सूर्यास्त के समय पूर्व दिशा रूपिणी वधू समस्त उपपति-रतिकुशला का वष धारण किये हुए अन्धकार के व्याज से अपने हृदय पर कस्तूरीपत्ररेखा लगा रही है । सूर्य राग को त्याग कर यहाँ से पश्चिम दिशा मे चले गय है, इससे पीडित प्राची अपने को अन्धकारयुक्त कर रही है ।[6] इस समय गगनतल सिन्दूर की भ्रान्ति उत्पन्न करने वाले सान्ध्य राग से रञ्जित हो रहा है ।[7] इस सयय विरहिणी कोकियो के विरह ज्वालाधूम्र के सदृश अन्धकार दिशाग्रा के मुखो का स्पर्श कर रहा है । इस समय सूर्य पश्चिम दिशा मे अनुरक्त है ।[8] पूर्व दिशा अन्धकार के मिष से स्याही रूपी अपने अश्रुजल को उन्मुक्त करती है । इस समय पश्चिम दिशा प्रसन्न होती है

---

1 मधुरानिरुद्धनाटक, 5 20
2 वही, 5 30
3 वही, 7 31
4 *लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक, 4 41*
5 वही, 4 42
6 प्रमुदितगोविन्दनाटक, 3 29-30
7. वही, तृतीयाङ्क
8 वही, 7 21

तथा पूर्व दिशा मलिन हो जाती है।[1] इस समय सरक्त सूर्य का सरक्ता प्रतीची के साथ अनुरूप सम्बन्ध हो जाता है।[2]

इस समय सूर्य बभ्रुवर्णवाले मेघखण्डों से पश्चिम दिशारूपिणी सुन्दरी का मुख आच्छादित कर देता है जिससे ताराओं सहित उदित होता हुआ चन्द्रमा मेरी प्रिया को न देखे। इसका कारण यह है कि अन्तःपुर में रहने वाली नारियाँ परपुरुषों द्वारा परामृष्ट न हों।[3] इस समय नभ प्राङ्गण तमालवृक्ष के सदृश गहन अन्धकार से आक्रान्त हो जाता है।[4] इस समय लाक्षा की भाँति लोहित भानुबिम्ब ऐसा प्रतीत होता है मानो नभ प्राङ्गण दावानल से आलिङ्गित हो गया हो। नभः प्राङ्गण में चन्द्रमा भी शीघ्रता से उदित हो रहा है।[5]

अपने प्रिय सूर्य के अस्ताचल गृह में पहुँचने पर दूर से ही प्रसन्न वारुणी दिशा ने रक्त वस्त्र धारण कर लिया है। अन्य सभी दिशाओं के मुखों पर नीलिमा आ गई है।[6] इस समय दिङ्मण्डल कामियों के मन में सक्रान्त व्यामोह रूपी समुद्र में निमग्न हो गया है।[7] दिशायें अन्धकार से दुर्लक्ष्य हो गई है।[8] आकाश में सन्ध्या की अरुणिमा फैल रही है।[9] इस समय सूर्य रागवान् हुआ अनुरागिणी पश्चिम दिशा का आलिङ्गन कर रहा है।[10] इस समय प्रतीची दिशा इसे क्षमा करने में असमर्थ है कि चन्द्रमा प्राचीमुख को चुम्बित करता हुआ मेरा आलिङ्गन करेगा।[11] इस समय पश्चिम दिशा लाल हो जाती है।[12]

---

1 नवमालिका नाटिका, 1 31
2 वसुमतीपरिणय नाटक, 2.48
3 सीताराघवनाटक, 1.28
4. चन्द्राभिषेक नाटक, 1.49
5. वही
6 प्रभावतीपरिणय नाटक, 2.26
7. वही, 5.31
8. वही, 5.35
9. सीताकल्याणवीथी, पद्य 64
10 मुकुन्दानन्दभाण, पद्य 222
11. कामविलास, पद्य 120
12 दुर्वृत्तपारशीयनाटक द्वितीयाङ्क

तारागण

इस समय आकाश कतिपय लक्ष्य कतिपय तथा अलक्ष्य तारागण से युक्त है।[1] *तारकायें रात्रिरूपिणी अभिसारिका के क्रमुक हैं।*[2] *यह ताराखपी लाजाञ्जलि* ताम्रवर्ण की सूर्यकिरणो रूपी अग्नि मे विकीर्ण की जा रही है।[3] यह तारकावली विकसित चम्पकपुष्पो के सदृश दिखाई देती है।[4] ये तारागण रात्रि मे चमकते हैं।[5] कवि रामवर्मा ने तारकाओ के विषय मे उत्प्रेक्षा की है कि ये तारागण सन्ध्या-ताण्डव मे दक्ष शिव के जटासमूह से निकलने वाली गङ्गा के जलबिन्दु हैं, जो आकाश मे फैल गये है। ये तारागण दीर्घ आकाशमार्ग को पार करने से परिश्रान्त सूर्यरथ के अश्वो के मुख से उद्वान्त फेनसमूह है।[6] वेङ्कटसुब्रह्मण्याध्वरी ने उत्प्रेक्षा की है कि दिवस ने सन्ध्याग्नि को अपने समक्ष रखकर श्यामा निशा के साथ विवाह करते हुए होमसमय मे आकाश मे चारो ओर शिष्ट लाजाओ को विकीर्ण कर दिया है। ये लाजायें ही तारागण के अपदेश से आकाश मे चारो ओर दिखाई दे रही हैं।[7]

सदाशिव दीक्षित ने यह उत्प्रेक्षा की है कि तारागण दुग्ध के वे बिन्दु हैं जो समुद्रमन्थन के समय आकाश मे सागर की बडवाग्नि के कारण वाष्प रूप मे ऊपर पहुँच गये थे। *वे पयोबिन्दु ही गुरुत्व तथा लघुता को धारण किये हुए वायु के द्वारा* मध्यगत रात्रि मे वहा भ्रमण करते है।[8] सूर्यास्त के पश्चात् आकाश मे अनेक तारकायें राज्य करती हैं।[9]

शङ्कर दीक्षित ने तारागण के विषय मे विविध उत्प्रेक्षायें की हैं। उन्होने *कहा है कि मन्थन से क्षुब्ध क्षीरसागर के उछलते हुए दुग्धबिन्दु आकाशरूपी*

---

1. सेवन्तिकापरिणय नाटक, 1.19
2. कुमारविजय नाटक, 4 10
3. *चन्द्रिकावीथी, पद्य 23*
4. वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक... [चन्द्राभिषेक नाटक], 1.49
5. *शृङ्गारसुधाकरभाण, पद्य 87*
6. वही, पद्य 89
7. वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक, 3.16
8. लक्ष्मीकल्याण नाटक, 2.29, 32
9. प्रभावतीपरिणय नाटक, 5 30

प्राङ्गण मे लघु गुरु तारागण के छल से रिङ्गण कर रहे हैं।[1] तारागण उदयाचल के गह्वर में सोकर उठे हुए अन्धकार रूपी भल्लूक के मुखकुहर की दन्तपङ्क्ति है।[2] सन्ध्या रूपी मुखवाला वानर स्वर्ग रूपी वृक्ष पर आरूढ होकर दिशारूपिणी शाखाओं को हिलाता हुआ ताराRूपी कुसुमसमूह विकीर्ण कर रहा है।[3]

प्रधान वेङ्कप्प ने कहा है कि तारागण अत्यन्त क्षुधित अन्धकाररूपी भूतो के समक्ष परिक्षिप्त लाजाओ के समान चारो ओर दिखाई दे रहे हैं।[4] वीरराघव ने तारकाओ को गुलिकायें कहा हैं।[5] कृष्णदत्त मैथिल ने यह उत्प्रेक्षा की है कि तारागण शिव के सन्ध्यानृत्य के समय जटाजूटो से गिरे हुए गङ्गा के जलबिन्दु हैं अथवा कामदेव के विश्वविजय के लिये प्रस्थान करते समय विकीर्ण किये गये लाजा हैं।[6] रामचन्द्रशेखर ने तारकाओ को विकीर्ण लाजाओ के समान बताया है।[7] उन्होने उत्प्रेक्षा की है कि तारागण सन्ध्या के समय नृत्य करते हुए शिव के जटाजूट मे भ्रमण करने वाली गङ्गा की तरङ्गो से उठे हुए जलबिन्दु हैं। ये तारागण रात्रिरूपिणी वधू के द्वारा चन्द्रमा के लिये सज्जित किये गये पुष्पोपहार हैं।[8] तारागण अम्बराङ्गणरूपी महापण के अन्दर कालरूपी नैगम के द्वारा प्रसारित मुक्तागण हैं। ये राजा मन्मथ के कीर्त्यङ्कुर हैं तथा स्त्री के मानरूपी सर्प को नष्ट करने मे कोरक के समान हैं।[9]

रात्रि के समय अन्धकार के फैल जाने के कारण कवि चन्द्रशेखर ने यह उत्प्रेक्षा की है कि रात्रि तारागण रूपी स्फटिकाक्षमाला को लेकर अपने नेत्रो को बन्द कर जप कर' रही है।[10]

---

1. प्रद्युम्नविजय नाटक, 5.3
2. वही, 5.4
3. वही, 5 5
4. कुक्षिम्भरभैक्षवप्रहसन, पद्य 84
5. मलयजाकल्याणम् नाटिका, 3.10
6. कुवलयाश्वीय नाटक, द्वितीयाङ्क
7. कलानन्दकनाटक. 7.25
8. वही, 7.27
9. वही, 7.28
10. मधुरानिरुद्ध नाटक, 5.22

पशुपक्षी

सूर्यास्त के समय मन्थर तथा पर्णभक्षी पक्षी श्रेणीबद्ध होकर अपने आलय को जाते हैं।[1] गायें यवों का भोजन कर जल पीकर सूर्य की कठोर किरणों के भय से मुक्त हुई पर्वतों से भूमि पर उतरती हैं।[2] इस समय कोकियां विरहाग्नि से पीडित हो जाती है।[3] चक्रवाकी की दीन दशा हो जाती है।[4] पक्षीगण अपने कोटर के समीप कूजन करते हुए भ्रमण कर रहे हैं।[5]

इस समय कमलों को त्याग कर एकत्रित हुए भ्रमर मानो नीलोत्पलों का अन्वेषण करते हुए आकाश में भ्रमण कर रहे हैं। सामिस्वादित अब्जकन्द को चन्चुपुट में निक्षिप्त कर कमलसरोवर के तट पर स्थित कोकद्वन्द्व चिरकाल से ध्यान लगाये हुए है।[6]

चक्रवाककुल मलिन हो जाता है।[7] चक्रवाकमिथुन काकुध्वनि करते हैं।[8] इस समय वियुक्त हो जाने के कारण रोते हुए चक्रवाकमिथुन कमलों से युक्त क्रीडा-सरोवर में दिखाई देते है।[9] सूर्य के अस्त होने पर चक्रवाकियों के नेत्रों में अश्रु आ जाते हैं।[10] रागाकुल चक्रवाकमिथुन इस समय परस्पर विघटित हो जाते हैं।[11] कमल के आवृत हो जाने से उसके अन्तर्गत भ्रमर भ्रमरी से वियुक्त हुआ झङ्कार तथा लुठन करता हुआ दुःखी हो रहा है।[12] कवि जगन्नाथ ने सन्ध्या के समय चक्रवाकमिथुन की करुण दशा का वर्णन किया है।[13] अपनी प्रिया के साथ एक ही

---

1 प्रमुदितगोविन्द नाटक, 3 30
2 वही, सप्तमाङ्क
3 वही, 7 31
4 मणिमाला नाटिका, 2 10
5 सेवन्तिकापरिणय नाटक, 1 19
6 वही, 1 20
7 नवमालिका नाटिका, 1 31
8 वही, 1 32
9 वसुमतीपरिणय नाटक, 2 46
10 अनङ्गविजयभाण, पद्य 126
11. सभापतिविलास नाटक, 2.8
12 वही, 2 10
13 रतिमन्मथ नाटक, 2.29

मृणालनाल पर बैठा हुआ चक्रवाक 'हम दोनो को विरह की पीडा होगी' इस बात को न जानते हुए भी अन्त पीडा युक्त है ।[1]

वेङ्कटेश्वर कवि ने सूर्यास्त के समय भ्रमर की दीन दशा का वर्णन किया है । इस समय कमल के अन्तर्गत मधुभरी का पान करती हुई अपनी प्रिया को कमल के सकुचित हो जाने पर बन्द देखकर भ्रमर झङ्कार करता हुआ, विलुठन करता हुआ दीन दिखाई दे रहा है ।[2] सूर्यास्त के समय पक्षीगण अपने नीडो को लौट जाते हैं और मधुर कूजन करते हैं ।[3]

घनश्याम कवि ने सूर्यास्त के समय कमलिनी को पतिव्रता नारी के रूपमे प्रतिपादित किया है । अपने पति सूर्य के समुद्र मे मग्न हो जाने पर कमलिनी अपने शिर से भ्रमररूपी बालों को दूर हटा देती है । अपने पति के मर जाने पर कमलिनी केशहीन हो जाती हैं ।[4] इस समय दीन होकर क्रन्दन करते हुए चक्रवाकमिथुनो के विषय मे कवि ने कल्पना की है कि वे यह कह रहे हैं कि हमारा मित्र सूर्य शोभाशून्य होकर प्रमादवश शीघ्र ही समुद्र मे गिर गया, हम क्या करें, हम लोग मारे गये ।[5] भ्रमर तो याचको के समान कुक्षिभर हैं । वे सोच रहे हैं कि जिस सूर्य के अधिकार मे हम लोगो ने पराम्बुजरस प्राप्त किया - वह चला गया है तो चला जाये, अभी हम लोगो को कैरवसार प्रदान करने वाला चन्द्रमा उदित होगा ।[6]

सूर्यास्त के समय पक्षीगण वृक्षो के उच्चभाग पर बनाये गये अपने नीडो मे जाते हैं ।[7] चक्रवाकमिथुन विघटित होता है । रात्रि मे उलूको की तारकायें चमकती हैं ।[8] चक्रवाकियो मे कामाग्नि जलती है ।[9] पति सूर्य के अस्त हो जाने पर मूर्च्छित अम्बुजवनी को उज्जीवित करने के लिये ही चक्रवाकी अपने पति को त्याग कर रुदन

---

1 जीवानन्दन नाटक, 4.44
2 रामानन्द नाटक, 3.23
3 मदनसञ्जीवन भाण, पद्य 86
4 वही, पद्य 88
5 वही पद्य 89
6 वही, पद्य 90
7. शृङ्गारसुधाकर भाण, पद्य 81
8 वही, पद्य 87
9. वही, पद्य 88

कर रही है। अपने शब्दो द्वारा शोक प्रकट करते हुए पक्षीगण वन को जा रहे हैं।[1] सूर्य के अस्त होने पर भ्रमर सरोवर का परित्याग कर देते हैं। हरिहरोपाध्याय ने इसे देखकर कहा है कि सभी लोग सम्पत्ति के साथी होते हैं, विपत्ति का कोई नही।[2]

अस्त होते समय सूर्य चक्रवाक को अश्रुपूर्ण कर देता है।[3] इस समय पक्षीगण अपने नीडो को लौटते हैं। कोक शोकाकुल हो जाते हैं।[4] इस समय उलूक, आखु तथा सर्प प्रसरण करते हैं।[5] इस समय चकोर सायंतन आतप को देखकर नवचन्द्रमा की ज्योत्स्ना के पान करने की कामना करता है।[6] सूर्य के अस्ताचल के दूसरे भाग मे चले जाने पर चक्रवाकमिथुन एक दूसरे से विलग हो जाते हैं।[7] इस समय चक्रवाकमिथुन आधे खाये हुए कमल को बाहर निकाल रहा है।[8]

वेङ्कटाचार्य ने सूर्यास्त के समय अपने नीडो को लौटते हुए पक्षियो का उल्लेख किया है।[9] इस समय चिररसमुक्ता कमलिनी को त्याग कर भ्रमर पुष्पित कुमुदिनी के पास जाते हैं।[10] सूर्यास्त के समय पक्षियो का कलरव दिग्विजय के लिये उद्यत कामदेव के प्रस्थानारम्भ की सूचना देने मे दक्ष कञ्चुकिकुल है।[11] चन्द्रशेखर कवि ने कहा है कि वे विद्वान् भी अज्ञ हैं, जो सूर्य के रथ को एक चक्र वाला कहते हैं। इस रथ के अस्ताचल की विषम भूमि मे आरूढ होने पर चक्रनिवह विच्छेद को प्राप्त करता है।[12]

---

1. प्रभावतीपरिणय नाटक, 2 27
2. वही, 5.27
3. प्रद्युम्नविजय नाटक, 3.7 ब
4. वही, 3 9
5. वही, तृतीयाङ्क
6. सीताकल्याण वीथी, पद्य 62
7. मुकुन्दानन्द भाण पद्य 227
8. कामविलास भाण, पद्य 119
9. शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक, 5 37
10. रामविजय नाटक, द्वितीयाङ्क
11. कलानन्दक नाटक, 7'26
12. मधुरानिरुद्ध नाटक, 7.32

सूर्यास्त हो जाने से अन्धकार के फैलने पर पक्षी वृक्षों की शाखाओं पर अपने नीडों में सो जाते हैं। मयूरगण वृक्षों के अभ्यन्तराल में सो जाता है।[1]

मानव

सूर्यास्त के समय श्रीकृष्ण गायें चराकर वृन्दावन से गोकुल लौटते हैं।[2] स्त्रियाँ प्रसन्न होती हैं।[3] राजा सन्ध्याविधि सम्पन्न कर आस्थानमण्डप में अपनी प्रतीक्षा करते हुए लोगों से मिलन के लिए जाता है।[4] सूर्य के अस्त होने पर विरहिणियों के चित्त में व्यथा तथा युवकों के हृदय में काम अवतीर्ण होते हैं।[5] वधुओं के हृदय में राग विजृम्भित होता है। विलासीजन कुपितकान्ता को अनुनय से प्रसन्न करना चाहते हैं। वैदिक कर्मों के अनुष्ठान में तत्पर ब्राह्मणसमूह भक्तिपूर्वक सन्ध्या की उपासना करता है।[6] इस समय शिव के प्रदोषाभिषेक को सूचित करने वाली यश. पटहध्वनि की जाती है।[7] सूर्य के अस्त हो जाने पर सब म्लान हो जाते हैं।[8] लोग सन्ध्यावन्दनादि के लिए नदी पर जाते हैं।[9]

सुन्दरियों के आनन्द में वृद्धि होती है।[10] खल, चोर तथा कुलटादि मलिनों के प्रसरण का यही अवसर है।[11] इस समय पथिक के हृदय में कामाग्नि प्रसरण करने लगती है और उसका मनोविमोह पद-पद पर बढ़ने लगता है।[12] पति के प्रणयापराध करने से उत्पन्न स्त्रियों का कोप कम हो जाता है। कामदेव ऐक्षव धनु उठा लेता है।[13]

---

1 लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक, 2 15
2. गोविन्दवल्लभ नाटक, नवमाङ्क
3. नवमालिका नाटिका, 1.31
4 वसुमतीपरिणय नाटक, द्वितीयांक
5. अनङ्गविजय भाण, पद्य 126
6 जीवानन्दन नाटक, 4.45
7. मदनसञ्जीवन भाण
8. वही, पद्य 87
9 चन्द्राभिषेक नाटक, प्रथमाङ्क
10. शृङ्गारसुधाकर भाण, पद्य 87
11. प्रद्युम्नविजय नाटक, तृतीयाङ्क
12. मुकुन्दानन्द भाण, पद्य 225
13. ॰ नविलास भाण, पद्य 119

व्याघ्राजिन तथा कुशासन लिये हुए मुनिजन सन्ध्याकाल मे गायत्री की उपासना करते हैं। सन्ध्या की उपासना कर तथा नवीन जल से कलशो को भरकर मृगो के साथ मुनि अपने आश्रम मे प्रवेश करते हैं।[1] वियोगीजन कामदेव के चन्द्र-किरण रूपी बाणो से पीडित होते हैं।[2]

पुष्प

सन्ध्या के समय कमल निमीलित हो जाते हैं।[3] इस समय कुमुदसमूह विकसित होता है।[4] सूर्य के अस्त होने पर कमल मे सकोच् तथा उत्पल मे सम्फुल्लता दिखाई देती है।[5] पतिव्रता कमलिनी अपने पति सूर्य के समुद्र मे मग्न हो जाने पर अपने शिर से भ्रमर रूपी बालो को दूर हटा देती है। अपने पति के मर जाने पर वह केशहीन हो जाती है।[6]

कमलो की निस्तन्द्र लक्ष्मी के साथ ही सूर्य अस्त हो जाता है। कैरवसमूह विकसित हो जाता है।[7] विधाता के द्वारा सूर्य को अगाध समुद्र मे गिराने के लिए अस्ताचल पर ले जाये जाने पर कमलो ने अपना मुख मुद्रित कर लिया है। इसका कारण यह है कि विपत्ति मे कोई अपना प्रणय प्रदर्शित नहीं करता।[8] दैवयोग से अपने पति सूर्य के अस्त हो जाने पर अम्बुजवनी ने दीर्घ मूर्च्छा प्राप्त की है।[9]

अरविन्दमरन्द के मिष से मानो पद्मावली रो रही है। कुमुदिनी इस समय हर्षाश्रुओ को उन्मुक्त कर रही है।[10] कमलिनी मलिन हो गई है।[11] पति के द्वारा हाथ के छोड दिये जाने पर पद्मिनी विमना दिखाई दे रही है।[12] सूर्य को अस्त देख

1. कल्याणनन्दक नाटक, 7 23
2. वही, 7.40
3. सेवन्तिकापरिणय नाटक, 1.20
4. नवमालिका नाटिका, 1 31
5. अनङ्गविजय भाण, पद्य 126
6. मदनसञ्जीवन भाणा, पद्य 88
7. शृङ्गारसुधाकर भाण पद्य 87
8. प्रभावतीपरिणय नाटक, 5.25
9. वही, 2.27
10. प्रद्युम्नविजय नाटक, 3.8
11. वही, 3 9
12. कामविलास भाण, पद्य 119

कर भ्रमरों के कोलाहल से रोती हुई, सोती हुई, अत्यन्त शोक करती हुई कमलिनी ताप से अथवा काम मृतप्राय हो रही है।[1] चन्द्रमा रूपी परपुरुष के आगम के भय से मौन हुई कमलिनी सूर्योदय के लिये रात्रि में तपस्या कर रही है।[2] अमित अमृत वाले चन्द्रमा का अपमान कर प्रमात से इस कमलिनी ने अन्य नारी कुमुदिनी के पति चन्द्रमा की कामना नहीं की।

कुमुदिनी भ्रमरों के छल से अपना प्रणय प्रकट कर रही है तथा प्रणयरङ्ग मना है। कुमुदिनी मानो परिमुद्रित कमलिनी का अपहास कर रही है।[3] सूर्य के अस्त हो जाने पर उसकी किरणावली के रक्तकमलों में सलीन हो जाने तथा विकसित हो जाने तथा विकसित होते हुए कुवलयों के उदर से नीलता के कारण अलक्ष्य गहन अन्धकार बाहर निकलता है।[4] सूर्य कदम्ब को अरुणिमा से युक्त करता है।[5] सूर्य मन्द-मन्द भ्रमर शब्दों के द्वारा कमलवनी को सोती हुई विचार कर अपनी किरणों से उसे निराकुल कर देता है।[6]

समीर

दिन के समाप्त होने की सूचना देने वाली, खिली हुई कुमुदिनी के सरोवर से उत्पन्न गन्ध से भ्रमरों को चारों ओर खींचता हुआ मन्द वायु बिना रोक टोक के बह रहा है।[7] इस समय विकसित कुटज मल्ली के पुष्पों से निकलती हुई मधूली-सुगन्धि से युक्त समीर बहता है।[8] इस समय ललित तथा मृदु समीर के कारण राग की वृद्धि होती है।[9]

चन्द्रमा

वैषयतीकरण

चन्द्रमा अन्धकार को नष्ट करता है। वेङ्कटेश्वर ने कहा है कि अन्धकार के द्वारा ध्वस्त ससार के पुनर्निर्माण में चन्द्रमा स्वतन्त्र विधाता है। वह शृङ्गारोप-

---

1 रामविजयनाटक, द्वितीयाङ्क
2. वही,
3. वही,
4. कलानन्दक नाटक, 7.22
5. लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक, 2.14
6. वही, 2.15
7. जीवानन्दन नाटक, 4 44
8. लीलावती वीथी
9. लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक, 2.14

निषद् के रहस्यवचनो द्वारा जानने योग्य परब्रह्म है। वह नारियो के मानरूपी वन के लिए महाकुठार है।[1] सम्पूर्णकलासमूह से सुन्दर रक्तमण्डलवाला चन्द्रमा उदित होते ही रात्रि मे भ्रमर करने वाले गहन अन्धकार द्वारा स्वीकार किये जाने के लिए आकाङ्क्षित उद्दामरागवाली पतिंवरा वधू के समान सन्ध्या को स्वेच्छा से ग्रहण करता है।[2] चन्द्रमा निशाकामुक तथा युवतियो पर दाक्षिण्य प्रकट करने वाला है।[3] सदाशिव दीक्षित ने चन्द्रमा को प्राची, ज्योत्स्ना, तारा तथा प्रतीची का कामुक कहा है।[4] उन्होने चन्द्रमा की अपनी पत्नियो सहित जलक्रीडा का वर्णन किया है। उदयाचल से अस्ताचल तक प्रालेय रूपी नीर से उज्ज्वल, अमिततारकारूपी कैरवकुल से युक्त रोदसी रूपी सरोवर का सश्रय करता हुआ, दिशारूपिणी अष्टनारियो को प्रेमपूर्वक *हस्त से स्पर्श करता हुआ यह चन्द्रमा जलक्रीडा कर रहा है।*[5]

सदाशिव दीक्षित ने चन्द्रमा का वर्णन एक गोपालक के रूप मे किया है। चन्द्रमा की किरणें ही उसके गोवृन्द हैं। गोपकुल (यदुवश) का जनक यह चन्द्रमा रूपी गोपालक प्रति रात्रि प्रमुदित होकर अन्धकाररूपी तृणो का भक्षण करने वाले अपने गोवृन्द को रोदोगोष्ठ मे ले जाकर, चकोरीवत्सों के द्वारा तदनुसृति से चन्द्रकान्तमणियो के स्विन्न होने पर उस दुग्ध को पृथ्वी रूपी स्थाली मे दुहता है।[6]

चन्द्रमा मे अनेक गुण है। चन्द्रमा का उदय क्षीरसागर से हुआ है, उसके सहोदर रिभु है, सज्जनो के साथ उसकी स्थिति है वह विष्णुपदाश्रय तथा अपने अशो से सुपर्वा के समान है। चन्द्रमा द्विजराज है, परन्तु उसका दोष यह है कि वह क्षयी और कलङ्की है।[7] वह विरहियो के जीवन को हरने के लिये बद्धपरिकर है।[8]

चन्द्रमा कामदेव का सहायक है। अन्धकार-रूपी समुद्र के पार करने से चन्द्रमा अगस्त्य की दशा को साधित किये हुए है।[9] समस्त ससार को आनन्द प्रदान

---

1. समापतिविलास नाटक 2 20
2 सीताराघव नाटक, 1 25-26
3 सदाशिव दीक्षित विरचित वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक, 3 44
4 *वही, 3 52*
5. लक्ष्मीकल्याण नाटक, 2 30
6 वही, 2 31
7 *लक्ष्मीकल्याण नाटक, 2.33*
8 प्रद्युम्नविजय नाटक पञ्चमाङ्क
9. सीताकल्याणवीथी, पद्य 65

करने मे निपुण चन्द्रमा ने अन्धकाररूपी व्याधि को नष्ट कर दिया है।[1] शिव के वहि न नेत्र के समीप चिरकाल से रहने के कारण उसकी दाहशक्ति का अपहरण कर, यह स्वभावतः शीतल चन्द्रमा विरहियो को जलाता है।[2] चन्द्रमा मलयानिल के द्वारा उत्पन्न कामाग्नि के द्वारा स्त्रीपुरुषो के मनो को प्रतप्त कर फिर प्रणयरूपी टङ्कण के द्वारा द्रवीभूत कर स्त्रीपुरुषो के मनरूपी स्वर्ण को एकरसवाला बना देता है।[3]

चन्द्रमा को उपालम्भ देती हुई सत्यभामा कहती है कि आपको विद्वानो ने 'दोषाकर' उचित ही कहा है, क्योकि आप युवतियो को सन्ताप प्रदान करते हैं।[4]

चन्द्रमा सकलकलानिधान, सुधानिधि, जगत् के ताप को शमित करने वाला तथा शिव के मस्तक का अलङ्कार है।[5] चन्द्रमा जगत् का उपकारक तम का सहारक तथा समुद्र का वर्धक है।[6] वह शिव के मस्तक पर स्थित है।

चन्द्रमा रूपी अग्नि मरुत् रूपी व्यजन से बीजित की गई, मधुकरावली से धूमिल हुई, प्रकीर्ण तारागण रूपी स्फुलिङ्ग के समान शोभावाली, कोकिलारव से सम्मिश्रित चटचट ध्वनि वाली हुई वियोगिनीरूपी समिधाओ को उग्र अस्त्रो से जला रही है।[7]

सूर्यास्त के कारण जब तक सभी दिशाओ म अन्धकार व्याप्त नही हो पाता तब तक उदयाचल पर समुद्र के मध्य से अभिराम द्विजराज चन्द्रमा उदित होता है और सम्यक् प्रकार से सन्ध्या की उपासना करता है।[8]

सदाशिवोद्गाता ने कहा है कि रात्रि के अतिरिक्त और कौन परमानन्दकन्द चन्द्रमा को उत्पन्न कर सकता है ?[9] कामुक चन्द्रमा रात्रि रूपिणी वासकसज्जिका के समीप जाकर अपनी किरणो द्वारा उसके वस्त्र को अनावृत कर देता है। यही कारण है कि रात्रि की सखियो के समान ये कतिपय दिशायें रात्रि पर हँस रही हैं।[10]

---

1. सीताकल्याण वीथी, पद्य 67
2. मुकुन्दानन्द भाण, पद्य 252
3. वही,
4. शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक, 1.43
5. कुवलयाश्वीय नाटक, 1.3
6. वही, 1.4
7. कलानदक नाटक, 7 39
8. मधुरानिरुद्ध नाटक, 7.33
9. प्रमुदितगोविन्द नाटक, 7.17
10. वही, 2 18

चन्द्रमा कमलो का अन्तक है तथा रथपद नामक द्विज का द्रोही है । इतने दोष होने पर भी यह चन्द्रमा ससार को आह्लाद प्रदान करता है ।[1]

चन्द्रमा लोक को प्रकाशित करता है । वह नक्षत्रों को अवहेलित करता है, प्रकाश को समुद्वेलित करता है तथा प्रेम को शृङ्खलित करता है । वह समुद्र को विपुलित करता है । वह चन्द्रकान्तमणियों को स्रवित करता है । अपनी किरणो द्वारा दुरन्धकार रूपी हस्ती को नष्ट कर चन्द्रमा दिशाओ को आदीपित करता है ।[2]

चन्द्रमा देवो को जीवन प्रदान करता है । वह मानिनियो के मान को उन्मूलित करता है । वह अन्धकार के उच्चाटन मे मन्त्र का कार्य करता है । वह आकाश रूपी सरोवर की सीमा का मराल है ।[3] वह ससार रूपी नेत्रों के लिये *आनन्दरसायन* है ।[4]

सदाशिव दीक्षित ने चन्द्रमा को दोषाकर, कुटिल तथा कलङ्कित कहा है,[5] चन्द्रमा जड ब्रह्मा द्वारा उत्पादित किया गया है । अतः वह वसुलक्ष्मी के मुख से तुलना किये जाने योग्य नही है ।

चन्द्रमा अपने कराग्रोदित नवसुधासारो से रोदसी को आलिम्पित करता है । वह अन्धकार रूपी हालाहल की विक्रिया को नष्ट करता है और नवनवोन्मीलित विलासो के द्वारा दिग्वधुओ का आश्लेष करता है ।[6] चन्द्रमा दिशाओ रूपिणी स्त्रियों के मुखो पर छाये हुए अन्धकार को अपनी किरणो द्वारा नष्ट करता है । वह सूर्य की किरणो द्वारा क्लान्त पृथ्वीतल को अपनी अमृतमयी किरणो से आनन्दित करता है ।[7]

चन्द्रमा ही भुवन मे ऐसा है, जिसे शिव ने अपने मस्तक पर धारण किया है । वह अमृत, कौस्तुभ तथा पारिजात का सहोदर है । स्वय विष्णु श्रीकृष्ण के रूप मे चन्द्रमा के वश मे आविर्भूत हुए ।[8]

---

1. प्रमुदित गोविन्द नाटक, 4.15
2. नवमालिका नाटिका, 3 24–25
3. रतिमन्मथ नाटक, 3.31
4. वही, 3.31
5. वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक, 2.15
6. लक्ष्मीकल्याण नाटक, 2.28
7. प्रभावतीपरिणय नाटक, 1.3
8. वही, 1.4

चन्द्रमा शीतकिरणो वाला होते हुए भी सूर्य के समान उद्वेगकारी है। वह दिगम्बर होते हुए भी अम्बर धारण किये है। वह दिन-संताप को लय करता है। अपनी किरणो द्वारा अन्धकार को नष्ट करता हुआ चन्द्रमा गगनशिखरसौध पर अधिरूढ होकर भुवनतल को राजा के समान देखता है।[1]

कृष्णपक्ष मे क्रमश क्षीण होते हुए चन्द्रमा के विषय मे कवि ने कल्पना की है कि चन्द्रमा के जीवित रहते हुए काल जो खण्ड-खण्ड कर उसके मण्डल को काटता है, वह पथिकों का हनन करने से अर्जित उसके पाप का अनुरूप ही दण्ड है।[2] चन्द्रोदय के समय सागर म जो तरङ्ग उठते हैं, उन्हे देखकर काशीपति कविराज ने यह कल्पना की है कि सागर अपने तरङ्ग रूपी हाथो को ताडित कर क्रन्दन करता है और चन्द्रमा से कहता है कि तुम विरहियो को मारने के लिये वृथा ही मेरे जठर से उत्पन्न हुए।[3]

वेङ्कटाचार्य तृतीय ने उत्प्रेक्षा की है कि चन्द्रमा का सत्यभामा से प्रद्वेष है, क्योकि सत्यभामा ने अपने नखो द्वारा चन्द्रमा की पत्नियो तारकाओ को, स्निग्ध हसितो के द्वारा ज्योत्स्ना को तथा तिलककला के द्वारा लक्ष्म को विजित कर दिया है। इसी प्रद्वेष के कारण अमृतधाम होते हुए भी चन्द्रमा समुद्र से प्राप्त और्वाग्नि को विकीर्ण कर रहा है।[4] वसुलक्ष्मी के मुख की शोभा से पराजित होकर त्रपा का अनुभव करता हुआ चन्द्रमा उसके समक्ष स्थित नहीं रह सकता।[5]

उदय

सायंकाल स्त्रियां द्वारा प्रज्वलित किये गये सहस्रो मङ्गलदीपो के साथ ही उदयाचलशिखरसौध पर प्राची रूपिणी नारी द्वारा प्रदीप के समान चन्द्रमा का उदय होता है।[6] दिशाओ के अन्धकार द्वारा दुर्लक्ष्य कर दिये जाने पर प्राची मे अत्यन्त कान्तिवाले तथा अमृत की वृष्टि करने वाले चन्द्रमा का उदय होता है।[7]

उदय होता हुआ चन्द्रमा क्रमश अरुणछवियुक्त, काश्मीररजरज:पिण्ड, कनकबिन्दु, त्रिभुवनकमलकन्द, पूर्व दिशा के मस्तक पर स्थित कर्पूरमिश्रित ललित-

---

1. प्रद्युम्नविजय नाटक, पञ्चमाङ्क
2. मुकुन्दानन्द भाण
3. वही, पद्य 256
4. शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक, 5 45
5. वेङ्कटसुब्रह्मण्याध्वरिकृत वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक, 3 47
6. प्रभावतीपरिणय नाटक, प्रथमाङ्क
7. वही, 5 35

चन्दनबिन्दु, ज्योत्स्नामृत से पूर्ण कलश, मुक्ताकुन्दुक, नवनीतपिण्ड, श्वेतभस्मपिण्ड, दधि और दुग्ध से स्नापित वैद्यनाथलिङ्ग तथा लक्ष्मी के स्तन के समान होता है।[1] उदय के समय चन्द्रमा अपने शत्रु अन्धकार पर अत्यन्त क्रोध के कारण पहिले काषायवर्ण के शरीरवाला दिखाई देता है। फिर वह अत्यन्त निर्मल हो जाता है। मातलि चन्द्रमा की निर्मलता की तुलना राम की निर्मलता से करता है।[2]

पूर्व दिशा इस समय किसी विरागी यमी के स्फटिकमय शीधुपात्र के समान चन्द्रमा की प्रभा को धारण किये रहती है।[3] चन्द्रोदय के समय विचित्र शोभा दिखाई देती है। यह शोभा अन्धकार के लिये दावानल के समान है। यह उदयाचल की किराती की मञ्जुगुञ्जावली के समान तथा विरहदलित कोकी के हृदय से बाहर निकलती हुई रक्तलहरी के समान दिखाई देती है।[4]

उदय के समय चन्द्रमण्डल नवीन जपापुष्पस्तबक की शोभा धारण करता है। वह आकाशलक्ष्मी के अरुणतन्तु से निर्मित कन्दुक के भ्रम को उत्पन्न करता है।[5] अभिनवोदित चन्द्रमा की किरणों के स्पर्शमात्र से उन्मथित अन्धकारसमूह दिशाओं के जघनों से विगलित वस्त्र के समान स्फुरित होता है।[6]

नवोदित चन्द्रमा की किरणें पहले पर्वतों के मस्तकों पर पड़ती हैं। कतिपय किरणें दिङ्नारियों के मस्तक को श्वेत करती हैं। कतिपय किरणें भूमि पर पडकर केतकरजसमूह के रूप में परिणत हो जाती है।[7]

चन्द्रमा प्राची को अलङ्कृत करता है। वह अपनी किरणों द्वारा अस्ताचल-भूमि को भी दर्पपूर्वक देखता है। इस समय अन्धकारसमूह पूर्ण रूप से नष्ट हो जाता है।[8] चन्द्रोदय के पूर्व पूर्वदिशा में कान्ति फैल जाती है। यह कान्ति स्वर्ग में अमन्दगति से बहती हुई मन्दाकिनी में लगे हुए प्रफुल्ल हल्लक पुष्पों के समान

---

1. प्रद्युम्नविजय नाटक, पञ्चमाङ्क
2. वीरराघव व्यायोग, पद्य 90
3. कुक्षिम्भरभैक्षव प्रहसन, पद्य 85
4. कलानन्दक नाटक, 7.31
5. वही, 7.32
6. वही, 7.35
7. प्रमुदितगोविन्द नाटक, 2.20
8. वही, 2.21

है। यह आकाशरूपी सागर में विद्रुमावलीविलास को धारण किये रहती है।[1] यह शुभ्रकान्ति आकाश रूपी वन में विस्फुट प्रबल बन्धुजीव पुष्पों के समान दिखाई देती है। यह उदयाचल की गुहा में परिस्फुरित सिद्धौषधियों का भ्रम उत्पन्न करती है।[2]

इसी समय इन्द्र के द्वारा पूर्व दिशा के उदयाचल रूपी स्तन पर परिस्फुरित माणिक्यमाणवकम जरी का विभ्रम उत्पन्न करती हुई चन्द्रकला का उदय होता है। चन्द्रकला के मिष से विजयी कामदेव का सिन्दूरद्रव से सुन्दरगुणवाला किंशुकधनु विभावित होता है। इस योद्धा के द्वारा क्षिप्त की गई तारकपङ्क्ति युवकों के मन रूपी खञ्जन को फाँसने के लिये रस्सी है।[3]

इस समय चन्द्रमण्डल कुचन्दनबिन्दु के समान प्राची के मुख को अलङ्कृत कर रहा है। यह उदयाचलशिखर पर विकसित अशोकस्तबक के समान मनोहर है।[4] परिक्षतशरीरवाला होने के कारण सागर में मय से अधिक लोहित हुआ चन्द्रमा उदयाचल पर आरूढ होता है।[5]

चन्द्रमा अन्धकार के समुद्र में आये हुए फेनसमूह, प्रक्षिप्त नवनीत, नभ-सरोवर में उत्पन्न हुए गौरपद्म, प्राची राजकुमारी के पटीरतिलक तथा रात्रिवधू के उज्ज्वल रूप्यभाजन के सदृश प्रतीत होता है।[7]

सूर्य के समुद्र में पतित होने पर चन्द्रमा उदित होता है। प्रायः प्रबल तेजस्वी शत्रु के नष्ट हो जाने पर ही लोग प्रसन्न होते हैं।[8]

घनश्याम कवि ने चन्द्रमा के विषय में अनेक प्रकार की कल्पनायें की हैं। उन्होंने चन्द्रमा को सागर में पतित सूर्य के लिये शनैश्चर द्वारा दिया गया पिण्ड, दिग्विजय से उत्पन्न कामदेव का कीर्तिबिम्ब, आकाश रूपी माणवक का रजत-केलिचक्र तथा प्राचीवधू के मस्तक पर लगाया गया चन्दनबिन्दु बताया है।[7]

---

1. मणिमाला नाटिका, 2.16
2. वही, 2.17
3. वही, 2.18
4. वही, द्वितीयाङ्क
5. सभारसिकिलास नाटक, द्वितीयाङ्क
6. वही, 2.21
7. मदनसञ्जीवन भाण, पद्य 97
8. वही, पद्य 96

रामवर्मा ने चन्द्रमा के आकाश रूपी समुद्र का शङ्ख, संस्थूल मुक्ताफल, कामदेव का तालव्यजन अथवा श्वेतातपत्र, रात्रिरूपिणी नदी के स्वच्छ-पुलिन अथवा श्वेतकमल अथवा देवों का स्फाटिक भाजन होने की आशङ्का की है।[1] वेङ्कट-सुब्रह्मण्याध्वरी ने चन्द्रमा को प्राची के ललाटस्थल पर लगा हुआ सुन्दरतिलक, आकुल भृङ्गों से मुक्त लीलारविन्द तथा प्राची का कौतुकपद्मरागमुकुर कहा है।[2] क्षीरसागर में विष्णु के शयन से उनकी बाहु द्वारा लालित पृथ्वी की ओर देखती हुई लक्ष्मी का कोपारुण तथा किञ्चित् चलायमानभ्रूवाला मुख मुख पूर्णिमा की रात्रि में प्रत्यग्र शशयुक्त चन्द्रबिम्ब के छल से दिखाई दे रहा है।[3] चन्द्रमा विश्व-शरीर वाले शिव को लक्ष्य बनाकर कामदेव द्वारा मात्सर्यवश मुक्त किया गया अङ्गारों से सन्तप्त लौह है।[4]

सदाशिव दीक्षित ने चन्द्रमा को पूर्वाचलशृङ्ग का मण्डनमणि, प्राची के मुख समुदञ्चित आम्रतिलक, कामदेव का खेटायुध, देवों का पानपात्र, क्षीरसागर का भाण्ड तथा वियोगियों के अन्तक कामबाण को तीक्ष्ण करने के लिये शाणप्रस्तर बताया है।[5] वेङ्कटाचार्य तृतीय ने चन्द्रमा के कामदेव के छत्र तथा पश्चिमशैल-कन्दरदरीसुप्तोत्थित सिंह का उच्छ्रित पुच्छ होने की उत्प्रेक्षा की है।[6]

चन्द्रमण्डल

अनादि कवि ने चन्द्रमण्डल के रति का रत्नगर्भक, कामदेव का माणिक्य-भद्रासन, शची की यावकपट्टिका, ऐरावतहस्ती की गण्डस्थली, उदयाचल रूपी शिव के मस्तक पर लगा हुआ पुण्ड्र तथा मन्दारपुष्पसमूह होने की कल्पना की है।[7] चन्द्रमण्डल शची की मरकतपाञ्चालिका कनकपेटिका होने की शङ्का उत्पन्न करता है।[8] चन्द्रबिम्ब सुरत के समय स्खलित शची की पुष्पकलिका के सदृश प्रतीत होता है। यह पवनवेग के कारण नन्दनवन से त्रुटित आकाश में लोटते हुए केशरसाररज

---

1 शृङ्गारसुधाकर भाण, पद्य 92
2. वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक, 3.49
3 वही, 3.50
4 वही, 3.51
5. वही, 3.45
6. शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक, 1.24
7. मणिमाला नाटिका, 2.19
8. वही,

के समान दिखाई देता है।[1] चन्द्रमण्डल लास्यकला के समय विगलित रति के ताटङ्कचक्र के समान प्रतीत होता है। यह उदयाचल रूपी हस्ती के शिरस्तट पर बनाई गई रोचनिका का भ्रम उत्पन्न करता है।[2] यह इन्द्राणी के हस्त से निपतित वलय की शङ्का उत्पन्न करता है। यह उदयाचल रूपी हस्ती के शिर पर स्फुट स्वर्णकलश का भी भ्रम उत्पन्न करता है।[3]

चन्द्रबिम्ब कामदेव के लिये बनाये गये श्रीखण्डपिण्ड के समान प्रतीत होता है। यह कलङ्क के मिष से कस्तूरिकापूपत से उल्लसित के समान नेत्रों को आनन्द प्रदान करता है।[4] चन्द्रमण्डली कपित्थफलमण्डली का भ्रम उत्पन्न करती है।[5] आकाश का अलङ्कार चन्द्रमण्डल त्रैलोक्य मे कामदेव की जयपत्रिका को प्रकट करता हुआ प्रकाशित होता है।[6]

वेङ्कटेश्वर कवि ने कहा है कि संसार मे यह भ्रान्ति है कि चन्द्रमा गौर-शरीर वाला है, क्योंकि वह उदयाचल पर बन्धूकपुष्प के समान दिखाई देता है। वास्तव मे दूर से उत्पतन के कारण उत्पन्न श्रम से विलोल उत्सङ्ग मे विद्यमान मृग के रोमन्थ से वह चिह्नित है।[7] रामवर्मा ने चन्द्रबिम्ब के पूर्वाचलशिखा पर सुशोभित मन्दारगुच्छ, अन्धकार रूपिणी नारी का कुरुविन्दकन्दलदलप्रोतोज्ज्वल, कुण्डल, प्राची वेश्या का सुवर्णदर्पण तथा व्योमश्री का सिन्दूराभ कुन्दुक होने की उत्प्रेक्षा की है।[8] सदाशिव दीक्षित ने चन्द्रमण्डल के कोकिलधूमकेतुलसित, चकोरीतप का सर्वस्वफलोपपादन, क्षीरसागर के पुण्य की चरमसीमा तथा वश्याञ्जनगर्भा सिद्धगुटिका का विस्फूर्जित होने की कल्पना की है।[9]

शङ्कर दीक्षित ने उत्प्रेक्षा की है कि निशावधूटी कार्पास से बीजों को विशकलित करती है और वे बीज तथा तूलराशि तारागण तथा चन्द्रमा के मिष

---

1. मणिमाला नाटिका, 2.20
2. वही, 2.21
3. वही, 2.22
4. वही, 2.25
5. वही, तृतीयाङ्क
6. वही, 3.40
7. समापतिविलास नाटक, 2.23
8. शृङ्गारसुधाकर भाण, पद्य 90
9. लक्ष्मीकल्याण नाटक, 2.20

से विलसित होते है।[1] काशीपति कविराज ने कहा है कि चन्द्रबिम्ब के बहाने से कामदेव विषमय अमृत को प्रयुक्त करता है। वह बाहर से श्वेत है तथा अन्दर से काला। यही कारण है कि यह देखने मात्र से प्रवासी विरहियो को जला देता है।[2] चन्द्रमण्डल पुण्डरीक के समान प्रतीत होता है।[3]

ज्योत्स्ना

अन्धकार से आवृत अम्बरतल ज्योत्स्न से स्वच्छ हो जाता है।[4] चन्द्रमा की किरणें अन्धकार को नष्ट करती हैं तथा चक्रवाको के सन्ताप को उद्दीप्त करती हैं।[5] चन्द्रज्योत्स्ना को देखकर यह भ्रम हो जाता है कि दिगङ्गनायें एक दूसरे पर श्रीखण्डपिष्टातक लगा रही है। चन्द्रकिरणो को देखकर अपक्व रस तथा सिताभ्रचूर्ण का भ्रम हो जाता है।[6] चन्द्रमा पूर्व दिशा से विमल हरितालप्रभापूर को विकीर्ण करता है। ज्योत्स्ना नन्दनवन की कदम्बवाटिका का वर्धमान परागसमूह है।[7]

चन्द्रज्योत्स्ना के मिष मे आकाश मे जैसे ही जैसे समुज्ज्वल पुण्यसमूह प्रकाशित होता है, वैसे ही वैसे अन्धकार के छल से पापसमूह भाग जाता है।[8] आकाश रूपी हस्ती के अवगाहन के लिये जिस ओर से चन्द्रमा अपने किरण रूपी जल को शीघ्रता से फेंकता है उस ओर से वह हस्ती अन्धकार के मिष से अपने शरीर से गन्दगी का परित्याग करता है।[9] निशीथ मे कामदेव चन्द्रज्योत्स्ना रूपी छत्र को धारण किये हुए ससार पर विजय प्राप्त करता हुआ प्रसन्न होता है।[1] चन्द्र मण्डल से ज्योत्स्नारूपी अमृतसार प्राप्त होता है।[10]

---

1. प्रद्युम्नविजय नाटक, 5 43
2 मुकुन्दानन्द भाण, पद्य 251
3 कलानन्दक नाटक, 7 33
4 प्रमुदितगोविन्द नाटक, 2 19
5 वही, 2 22
6 वही, 2 23
7. मणिमाला नाटिका, 2 23
8 वही, 2 26
9 वही, 2.27
10 वही, 3 2
11. वही, 3 38

चन्द्रज्योत्स्ना क्रमशः प्रासादशिखर, मन्दिरशिरोभाग, प्राकाराग्रतल, उन्नत महीभाग, अनावृत भूमि तथा अङ्गणों के प्रान्तभाग मे फैल जाती है।[1] वेङ्कटेश्वर कवि ने उत्प्रेक्षा की है कि ज्योत्स्ना आकाश को विलंघित करने से परिश्रान्त चन्द्रमा के वे स्वेदबिन्दु हैं जो लोकों को परिपूरित करते है।[2] चन्द्रमा की किरणें अमृतयुक्त होने के कारण सबको आनन्दित करती हैं।[3]

चन्द्रज्योत्स्ना की पाण्डिमा पहिले चारों ओर पूर्व दिशा को आलिङ्गित करती है। यह पाण्डिमा क्षीरसागर के फेन, स्वर्ग से पतित श्वेत मेघपङ्क्ति, स्वर्वधू के क्षौमवस्त्र तथा प्रौढनितम्बिनी रात्रि के स्मित के सदृश होती है।[4] चन्द्रमा की स्वर्ण के समान शोभावाली शीत किरणें अन्धकार रूपी पापसमूह को नष्ट करने मे आकाश गङ्गालहरी की सहचरी हैं। वे चकोरीचञ्चु के लिये टक के समान हैं। वे शत्रुस्त्री के लिये अग्नि मे प्रक्षिप्त घृतधारा के समान है।[5] चन्द्रमा रूपी जलद मानो क्षीरसागर से दुग्धपान कर अपनी किरण रूपी दुग्धनाडियों से निरन्तर अमृत की वृष्टि करता है। यदि ऐसा न हो तो चकोर की पारणविधि कैसे हो सके, किस प्रकार से समय पर जलवृष्टि हो, जिससे ताप दूर हो सके एव बीजापन हो सके।[6]

चन्द्रकिरणें कामदेव के अभिनव कीर्त्यङ्कुर हैं। ये लोकों की विरहाग्नि के वर्धन मे घृत के समान हैं। ये पान्थों को मारने के लिये प्रोत्क्षिप्त वज्राङ्कुश के समान हैं।[7] चन्द्रमा की किरणें अन्धकार रूपी समुद्र से पृथ्वी को ऊपर उठाती हैं।[8] हरिहरोपाध्याय ने चन्द्रमा की किरणों का वर्णन अभिसारिका के रूप मे किया है। अभिसारिका की दूती रात्रि है।[9] चन्द्रकिरणों के कारण रात्रि तथा चन्द्रमा की

1. अनङ्गविजय भाण, पद्य 151
2. समारतिविलास नाटक, 2 24
3 विद्यापरिणय नाटक, 6.32
4. मदनसञ्जीवन भाण, पद्य 95
5. लक्ष्मीकल्याण नाटक, 2.23
6 वही, 2 24
7. वही, 2 25
8 प्रभावतीपरिणय नाटक, 5 36
9. वही, 5 37

कान्ति दूसरे ही हो जाते है। ऐसा प्रतीत होता है कि वृक्षो, पर्वतो, नदियों तथा दिशाओं सहित यह पृथ्वीमण्डल धवलिमा मे मग्न हो गया है।[1]

चन्द्रोदय होने पर चन्द्रिका चारो ओर फैलती है। यह चन्द्रिका दुग्धप्रवाह, स्फटिकमय कैलाश से निकलते हुए प्रभासमार तथा शिवताण्डव मे पार्वती के कर से उन्मुक्त पटवासचूर्ण के समान रोदसीकुहर को आपूरित कर देती है।[2] शङ्कर दीक्षित ने यह उत्प्रेक्षा की है कि त्वष्टा के द्वारा चन्द्रमा के काटे जाने पर उसके कण-कण चन्द्रिका के रूप मे उच्छलित होते है।[3] उन्होने यह कल्पना की है कि रात्रि द्वारा तारका रूपी विमल तन्दुल के पीसे जाने पर यह चन्द्रिका बाहर निकल रही है।[4] चन्द्रमा की किरणें चकोरों के चञ्चुपुटो को तृप्त करने वाली अन्धकार को नष्ट करने वाली तथा पूर्व दिशा को अलङ्कृत करने वाली हैं।[5]

काशीपति कविराज ने यह उत्प्रेक्षा की है कि सूर्य रूपी कर्कश शाणचक्र के घर्षण से आकाश रूपी कृष्णलौह से गिरकर जो गहन चूर्ण ससार मे 'अन्धकार' नाम से प्रसिद्ध हुआ, वही अब चन्द्रमा के मिष से सिद्धपारदमहाबिन्दु के समायोग से रुपये की चांदी के समान धवल हो गया है और हम उसे ज्योत्स्ना कहने लगे हैं।[6] चन्द्रमा की किरणें तमालवृक्षो के ऊपर गिरकर अन्धकार को हटाती है। वे यमुना की लहरो की शोभा धारण करती हैं।[7]

रामचन्द्र शेखर ने तप्त स्वर्ण के समान चन्द्रकिरणो का वर्णन किया है। उन्होंने उत्प्रेक्षा की है कि चन्द्रकिरणें पूर्वाचल की गैरिकधूलि है। ये पृथ्वी को उद्विग्न कर उठे हुए शेषनाग के फणामाणिक्य के तेज के अङ्कुर है अथवा कामदेव के धनु से उन्मुक्त शोकाग्निबाण हैं।[8] चन्द्रकिरणें नीलकमल पत्र के समान सुन्दर

---

1. प्रभावतीपरिणय नाटक, 5 39
2 प्रद्युम्नविजय नाटक, पञ्चमाङ्क
3 वही, 5 6
4 वही, 5 7
5. वही, 5 17
6 मुकुन्दानन्द भाण, पद्य 246
7 मलयजाकल्याणम् नाटिका, 3 9
8 कलानन्दक नाटक, 7 30

तेज वाली आकाश सीमा में विष्णु के कण्ठ में धारण की गई मुक्तावली के समान दिखाई देती हैं।[1]

चन्द्रिका गङ्गा तथा यमुना की लहरों के मिलन के समान है। यह राजा कामदेव के चामर के समान है। यह समस्त दिशा रूपिणी नारियों के स्तनतटों पर अङ्कित चन्दन के समान है। यह सागर की फेनच्छटा के समान है।[2]

चन्द्र–कलङ्क

अनादि कवि ने नायक के मुख से कहलवाया है कि सुन्दरी नायिका के सौन्दर्ययुक्त तथा अमृतलहरीसौभग का हरण करने वाले मुख से पराजित कर दिये जाने के कारण चन्द्रमा में कलङ्क आ गया है।[3] चोक्कनाथ कवि ने कहा कि *कुम्भकोण नगर के राजप्रासाद पर विहार करते हुए कीरशिशु ने फल की भ्रान्ति से चन्द्रमा को काट लिया है जिससे उसमें कलङ्क हो गया है*।[4] वेङ्कटेश्वर कवि के अनुसार अन्धकार रूपी योद्धा के साथ युद्ध करने पर उसके प्रहार से चन्द्रमा के शरीर पर जो व्रण उत्पन्न हुआ, वही उसका कलङ्क है।[5] उन्होंने आगे कहा है कि चन्द्रमा में जो श्यामल चिह्न है उसे कतिपय लोग मृग अथवा शश कहते हैं, परन्तु मेरे विचार से वह कामदेव के गाढशरों से क्षीण किसी अध्वगप्रेयसी के चञ्चल नेत्रों की तारकारुचिझरी है जो चन्द्रमा में मग्न हो गई है।[6]

वेङ्कटसुब्रह्मण्याध्वरी ने कहा है *कि सूर्य की प्रचण्ड किरणों द्वारा मर्दित तथा* संप्लोषित, मूर्च्छा से आमीलित नील नलिनी को अपने अङ्क में निविष्ट कर चन्द्रमा अपनी मृदुकिरणों के स्पर्श से आश्वस्त कर रहा है। वही प्रिया नील नलिनी चन्द्रमा में कलङ्क के छल से निगूहित है।[7] सदाशिव दीक्षित ने उल्लेख किया है कि त्रिपुरदाह के समय चन्द्रमा शिव के रथ का चक्र था, इसलिये त्वष्टा ने उसे मध्य में रन्ध्रवाला ही बनाया था। अतः उस रन्ध्र का मध्यवर्ती आकाश-

---

1 कलानन्दक नाटक, 7.34
2. वही, 7.36
3 मणिमाला नाटिका, 3.41
4. कान्तिमतीपरिणय नाटक, 1.27
5. सभापतिविलास नाटक, 2.22
6. वही, 2.25
7. वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक, 3.52

विभाग चन्द्रमा में कलङ्क के मिष से विभावित होता है।[1] उन्होंने आगे कहा है कि चन्द्रमा ने प्रतिदिन समुद्र में स्नान कर, प्रत्येक रात्रि सन्मार्ग में विष्णु की सेवा कर, उस पुण्य से निरस्तपाप होकर विष्णु के नेत्रत्व को प्राप्त किया। अत चन्द्रमा में जो कलङ्क दिखाई देता है, वह विष्णु के नेत्र की मनोरम शोभावाली तारका है।[2]

काशीपति कविराज ने चन्द्रमा के कलङ्क को उसके अन्तर्गत स्थित कलङ्कः दास नामक व्यक्ति कहा है।[3] प्रधान वङ्कप्प ने कहा है कि यह चन्द्रकलङ्क छायामण्डल के समान चमत्कारी प्रतीत होता है।[4] काल रूपी सर्प द्वारा संसार के शरीर पर काटे जाने से वहाँ ग्रन्थकार के मिष से विष आविर्भूत हुआ। वह विष विधाता द्वारा चन्द्रमा रूपी मणि को पिलाया गया। इस कारण चन्द्रमा में कलङ्क हो गया है।[5] वेङ्कटाचार्य ने कहा है कि इन्द्र ने सुधा के समान स्वच्छ छवि वाले चन्द्रमा को अपने गृह से जाते हुए जो नीलहारलतिका अर्पित की, वही इसमें कलङ्क स्वरूप दिखाई दे रही है।[6]

चयनी चन्द्रशेखर रायगुरु ने उल्लेख किया है कि पहले विधाता ने चन्द्रमा को नायिका के मुख की उपमा प्राप्त कराने के लिये उस पर कस्तूरीवर्ण से दो नेत्रों को बनाया था, परन्तु फिर भी नायिका के मुख से चन्द्रमा की न्यूनता आवश्यक समझ कर उसे पुन लिम्पित कर दिया है। इसी कारण चन्द्रमा में यह कलङ्क दिखाई देता है।[7] कवि कृष्णदत्त ने कहा है कि जब चन्द्रमा का हनन करने के लिये विरहिणी नारी ने उस पर क्रूर कटाक्ष रूपी बाणों की वृष्टि की तब चन्द्रमा ने अपने शरीर की रक्षा के लिये चर्म धारण किया जो उसके लाञ्छन के रूप म दिखाई देता है।[8]

---

1. लक्ष्मीकल्याण नाटक, 2 34
2. वही, 2 36
3 मुकुन्दानन्द भाण, पद्य 30
4 कामविलास भाण, पद्य 121
5 मुकुन्दानन्द भाण, पद्य 248
6 शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक, 2 49, 5 59–60
7. मधुरानिरुद्ध नाटक, 7.36
8 सान्द्रकुतूहलम्प्रहसन, 3 17–18

पुष्प

चन्द्रमा के उदय से कुमुदवन विकसित होता है ।[1] विकसित कुमुदसमूह की सुगन्धि चारों ओर फैल जाती है ।[2] चन्द्रमा पद्मों को सम्मीलित करता है ।[3] चन्द्रमा का उदय होने पर पद्मिनियों के मुखों की शोभा कम हो जाती है, भ्रमर बन्दी हो जाते हैं तथा कुमुदिनी अपने प्रफुल्लित कुसुमों में मानो उन पर हँसती है ।[4]

चन्द्रोदय होते ही नीलोत्पल विकसित हो जाते हैं। उन नीलोत्पलों में आवृत भ्रमर भी शयन से जाग्रत हो जाते हैं। भ्रमरों की झङ्कार के समस्त दिशायें गुञ्जित हो जाती हैं ।[5] चन्द्रमा कुमुदिनी के हास में वृद्धि करता है ।[6] चन्द्रमा कैरवों तथा चकोरों की निद्रा भङ्ग करने में निपुण है ।[7] चन्द्रमा का राग कुमुद-कलिकाओं द्वारा लीढ किये जाने पर क्षीण हो जाता है ।[8] चन्द्रमा कुमुदों द्वारा सम्मानित किया जाता है ।[9] चन्द्रमा की किरणें कमलों को मुद्रित करने वाली हैं ।[10] चन्द्रोदय होते ही कैरव विकसित हो जाते हैं ।[11]

सरोवर में कुमुदश्रेणी को मीलित तथा कमलश्रेणी को उन्मीलित देखकर रुष्ट हुआ चन्द्रमा कुमुदश्रेणी को उन्मीलित तथा पद्मश्रेणी को मीलित करता है ।[12] चन्द्रमा कमलों को विकसित कर देता है ।[13] इस समय चन्द्रमा के द्वारा परिचुम्बित तथा अङ्क में उपलालित कुमुदिनी आनन्दित होती है ।[14]

---

1 मणिमाला नाटिका, द्वितीयाङ्क
2. वही 2.28
3 नवमालिका नाटिका, 3 24
4 अनङ्गविजय भाण, पद्य 152
5 सभापतिविलास नाटक, 2 22
6 रतिमन्मथ नाटक, 3 31
7. जीवानन्दन नाटक, 4.43
8. शृङ्गारसुधाकर भाण, पद्य 91
9 वेङ्कटसुब्रह्मण्याध्वरिकृत वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक, 3 53
10. प्रद्युम्नविजय नाटक, 5 43
11. कामविलास भाण, पद्य 122
12. शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक, 1.25
13 वही, 2 48
14. वही, 2 50

चन्द्रमा कुमुदिनी को सुख देता है। वह कुमुदिनी झङ्कार करते हुए भ्रमरो द्वारा अपनी मञ्जीरशिञ्जा को प्रकट करती है, गिरते हुए पराग द्वारा अपने नेत्रो के आनन्दाश्रुओ को प्रकट करती है तथा चन्द्रमा की कौमुदी के रूप मे चारु हास प्रकट करती है।[1] सूर्य के वियोग से विकृत कमल रूपी अपने नर्मालय से प्रस्थान कर मुखरित भ्रमरमण्डली के गुञ्जन से मानो मणिमञ्जीर शब्द करती हुई लक्ष्मी नवविकसित कैरवो पर जाकर मानो चन्द्रमा पर आक्रमण करती है।[2]

चन्द्रोदय के समय कुमुदिनी विकसित होती है। मधुरसोत्कर के द्वारा कुमुदिनी को प्रमोदाश्रुओ से युक्त करता हुआ, भ्रमरो के शब्दो से मञ्जुलभाषिणी करता हुआ चन्द्रमा उसे आनन्दित करता है। कुमुदिनी अपने शोक का परित्याग करती है।[3]

मानव

चन्द्रज्योत्स्ना मानवो को शृङ्गार से भर देती है। चन्द्रमा की किरणें बन्धकियो के सङ्केतमूल मे प्रवेश करती हैं।[4] चन्द्रोदय से मानव प्रसन्न होते हैं, चन्द्रमा के उदय से नेत्रो को अपरिचित तृप्ति उत्पन्न होती है, चित्त मे अननुभूत आनन्द उत्पन्न करता है, त्वचा को ऐसा आनन्द मिलता है मानो उस पर कर्पूरचूर्ण लगा दिया गया हो।[5] चन्द्रमा कामदेव की जगत्प्रियता को आविष्कृत करता है।[6] सर्वसाधारण्य से नेत्रो को आनन्द प्रदान करने वाला चन्द्रमा कतिपय व्यक्तियो के मन को प्रसन्न करता है तथा कतिपय व्यक्तियो के मन को अप्रसन्न।[7]

निशीथ मे कामदेव चन्द्रज्योत्स्ना रूपी छत्र को धारण किये हुए ससार पर विजय प्राप्त करता हुआ अत्यन्त प्रसन्न होता है।[8] निशीथ के ऊर्ध्वयाम मे चन्द्र-किरणो से शीतल वायु प्रवाहित होता है। यह वायु देवदम्पति के सुरतगलित वक्ष-

---

1 कलानन्दक नाटक, 7 37
2 मधुरानिरुद्धनाटक, 7 95
3 लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक, 2 16
4 प्रमुदितगोविन्द नाटक, 2 22
5 वही, 4 13
6 वही, 4 14
7. प्रमुदितगोविन्द नाटक, चतुर्थाङ्क
8 मणिमाला नाटिका, 3 2

गन्धसौगन्ध्यवीची से दिङ्नदियों को भरता है।[1] चन्द्रमा मानवों के क्रोध को विदलित करता है, हृदय को आन्दोलित करता है तथा भ्रान्तियों को दुरखलित करता है। स्त्रियों के मुख की तुलना करता हुआ चन्द्रमा विरहियों को कष्ट देता है।[2]

चन्द्रमा प्रासादो पर रति के अन्त में सुन्दरियों की साडी के समान सम्मोहित करता है।[3] शश के व्याज से धारण किये गये विष के द्वारा चन्द्रमा चक्रवाको तथा विरही मानवो को मोहित करता है।[4] विरही मानव चन्द्रमण्डल से भीत होते हैं।[5] चन्द्रमा अपनी किरणों से युवतियों को पीडित करता है।[6] विष के साथ उत्पन्न हुए चन्द्रमा का विरहिमारणकर्म उचित ही है।[7]

चन्द्रोदय विरहिणियों के लिए कण्टकस्वरूप है।[8] चन्द्रमा की किरणें विरही मानवो के लिए दावाग्नि तुल्य है।[9] वियुक्त सुन्दरियों की शापवह्नि चन्द्रमा पर आक्रमण कर उसे क्रमश. खाती है।[10]

चन्द्रमा समस्त लोको के नेत्रों को आनन्द प्रदान करने वाला है।[11] चन्द्रमा प्रवासी विरहियों को जलाता है।[12] चन्द्रोदय के समय कामदेव रूपी धीवर चन्द्र-मण्डलमयी नवीन कलङ्कालिका पर आरूढ होकर ससार रूपी समुद्र मे तारकाओ रूपी गुलिकाओ के द्वारा चन्द्रमाप्रभारूपिणी वागुरा को विस्तृत कर विरही रूपी मीनो को कष्ट देता है।[13] रात्रि मे कामदेव का चन्द्रकिरणो रूपी बाणो द्वारा वियोगियो पीडित करता है।[14] विरहतप्ता नारी चन्द्रमा के दर्शन से अधिक सन्तापवाली हो जाती है।[15]

---

1. मणिमाला नाटिका, 3.38
2. नवमालिका नाटिका, 3 24-25
3. विद्यापरिणय नाटक, 6.32
4. वेङ्कटसुब्रह्मण्याध्वरिकृत वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक, 3 47
5. सदाशिवदीक्षितकृत वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक, 3 43
6. वही, 3 46
7. वही, 3 47
8. सदाशिवदीक्षितकृत वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक, 2 29
9. वही, 2 27
10. वही. 2 36
11. सीताकल्याणवीथी, पद्य 65 के पहले
12. मुकुन्दानन्दभाण, पद्य 251
13. मलयजाकल्याणम् नाटिका, 3 9-10
14. कलानन्दक नाटक, 7.40
15. सानकुतूहल प्रहसन, 3.17

ऋतु–वर्णन

वसन्त

अट्ठारहवीं शताब्दी के अधिकांश रूपककारों ने वसन्त ऋतु का वर्णन किया है। इस ऋतु में पृथग्जातीय पुष्पों का सौरभ, भृङ्गों के शब्द तथा पक्षियों का कलरव परस्पर मिलकर एक साथ ही प्रत्येक व्यक्ति में अद्भुत चमत्कार उत्पन्न करते हैं।[1] वसन्तसमय गृहोद्यानों को कोकिल के पञ्चमस्वर से निनादित करता है।[2] यह विविध विकसित कुसुमों से वनान्त को अलङ्कृत करने वाला, तथा विरहियों के हृदय में दुरन्त चिन्ता उत्पन्न करने वाला है। यह समस्त संसार के लिये एकमात्र सुन्दर है।[3]

रामवर्मा ने वसन्त का वर्णन एक विट के रूप में किया है। मुख पर तिलक लगाये हुए, भ्रमर रूपी मुग्ध केशोंवाला, प्रकाशमान दाडिम से रक्त अधरपुटवाला, विकसित पुष्परूपी स्मितवाला, उत्तुङ्ग स्तबक रूपी स्तनों से आनत कोमल लता रूपिणी स्त्रियों को आनन्दित करता हुआ वसन्त विटोत्तम के समान है।[4] मलयानिल से हिलते हुए शाखा रूपी हस्तों द्वारा तथा हर्षोद्गत कोकिल रवों द्वारा अनामय पूछता हुआ, केसरवन के स्यन्दित होते हुए मरन्द के छल से पाद्य अर्पित कर, पल्लववीजनों द्वारा यह वसन्त प्राणियों के घर्मोद्गम को हर लेता है।[5]

कहीं मधुर कोकिलों से युक्त, कहीं स्खलित होते हुए भ्रमरों वाले कमलों से उज्ज्वल, कहीं हंसहेला से युक्त वसन्तलक्ष्मी प्राणियों के मन का हरण करती है।[6] अपनी सुगन्धि से दिशाओं को पूर्ण करती हुई वसन्तलक्ष्मी पद्मिनीमात्र पर निवृत्त हुए भ्रमर को शीघ्रता से बुलाती है।[7] वसन्त रूपी सूर्य मन्द मरुत् रूपी अरुण के द्वारा मान रूपी अन्धकार को नष्ट करता है, उद्धत भ्रमरों के वचन से क्रमश पद्मिनियों को सम्मोहित करता है, पुष्पों को विकसित करता है, सज्जनों को

---

1. नवमालिका नाटिका, 1 14
2. अनङ्गविजय भाण, पद्य 11
3. वही
4. शृङ्गारसुधाकर भाण, पद्य 5
5. वेङ्कटसुब्रह्मण्याध्वरिकृत वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक, 2 9
6. वही, 2.15
7. सदाशिव दीक्षित कृत वसुमतीकल्याण नाटक, 1 14

सत्क्रिया बोधित करता है तथा पथिको को कष्ट देता है ।[1] वसन्त रूपी कारु मूल से लेकर अग्रपत्र तक प्रवालपटलज्वाला वाला वाले वृक्षाग्नि मे बाणो को सन्तप्त कर उन्हे भ्रमर रूपी विष से युक्त कर चन्द्रमारूपी शाणश्मशान मे जप करता हुआ कामदेव का मन्दानिल रूपी दिव्य रथ बनाकर विरहियो का त्रास देता है ।[2]

वसन्त मत्त कोकिलो के पञ्चमस्वरमय गीतो भ्रमरियो के गीतो विकसित मल्लिका की सुगन्धि, मन्दानिल स्पन्दितो तथा पुष्पमञ्जरियों से युक्त प्रवालवृक्षो द्वारा विरहियो को कष्ट देने के लिये कामदेव को बुलाता है ।[3] सदाशिव दीक्षित ने वसन्त का वर्णन राजा के रूप मे किया है । उपवन रूपी सभा मे समस्त वृक्षो रूपी सामाजिको के समक्ष भ्रमर रूपी गायको द्वारा दुहराई गई स्तुतिवाला, लतारूपिणी नारियो द्वारा पुष्पस्तबक रूपी चामर की वायु से बीजित किया जाता हुआ, पुष्पो को विकसित करता हुआ वसन्त मन्त्री मरुत् के साथ विराजमान होता है ।[4]

वसन्त विकसित पुष्प रूपी नेत्रवाला, मरन्द रूपी आनन्दाश्रुओ से युक्त, वायु द्वारा हिलाये जाने पर सरसशिर कम्पयुक्त है ।[5] अपने श्रावको पुष्पो से अलङ्-कृत करता हुआ, मत्त भ्रमरो के गीतामृत से मत्त हुई, कोकिलाओ के पञ्चमस्वर द्वारा कामदेव को बुलाती हुई, उद्यानाङ्गण को विविध कुसुमो से सुमज्जित करती हुई यह वसन्तलक्ष्मी वासकसज्जिका नायिका के समान मुदित करती है ।[6] रामचन्द्र शेखर ने कल्पना की है कि वनान्तलक्ष्मी ने वसन्त रूपी पति के आगमन के सम्मान मे चम्पककोशमालिका रूपी दीपकाङ्कुर बनाये हैं ।[7]

वृक्ष तथा लतायें

वसन्त म पलाश वृक्ष प्रस्फुटित हो जाते है ।[8] इस समय पलाशवन मानो विरहियो का विरहाग्नि से प्रज्वलित पुष्पवाला हो जाता है ।[9] पलाश के वक्र तथा

---

1 सदाशिव दीक्षित कृत वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक, 1 52
2 वही, 1.53
3 वही, 3 27
4, वही, 3 31
5 वही, 4 35
6 वही, 4 7
7 कलानन्दक नाटक, 6 28
8 गोविन्दवल्लभ नाटक, 2 23
9 अनङ्गविजय भाण, पद्य 26

ताम्रवर्ण के कराल कोरक मानो उसके नख है जिनके द्वारा वह वियोगियो के मन को उद्भिन्न करने का प्रयास करता है।[1] अरुण पलाशपुष्प विरहियो के मन को जलाते हैं।[2] किंशुकावली अपने सफुल्ल पुष्पो से आकाश को रक्त वर्ण का कर देती है और विरहियो को पीडित करती है।[3] वसन्त मे विकसित पलाशपुष्प रावण को सीता के अधर की स्मृति दिलाते हैं।[4]

वसन्त मे शिरीष वृक्षो की द्युति अनुपम हो जाती है। वे अपने प्रवालसमूह से सूर्य की उदयकालीन किरणो द्वारा समालग्न किये गये के समान, कर्णावतसोचित-मञ्जरीसमुदायो मे शैवालो के समान तथा भृङ्गो की स्फीत उद्गीतियो से कामोज्जीवनमन्त्र जपते हुए के समान प्रतीत होते हैं।[5] वसन्त म कदलीवृक्ष कामदेव की जयध्वजाओ के समान प्रतीत होते हैं। पुष्पित अशोक, आम्र तथा चम्पक वृक्ष वसन्त का सैन्य हैं।[6]

वसन्त मे आम्रवृक्ष अपनी शाखारूपिणी भुजाओ से कामदेव पर पुष्प विकीर्ण करता है।[7] पुष्पो से गौर आम्रवृक्ष भुजङ्गयुक्त शिव के समान प्रतीत होता है।[8] आम्रवृक्ष अपने विलोल लतामुजाग्र से अपने स्कन्ध पर अधिरूढ नीलकण्ठ को मानो नचाता है। आम्रवृक्ष पर भ्रमर भ्रमण करते है।[9] मलयानिल से कम्पित आम्रवृक्ष का नाटय देखकर सभी वनवासी प्रसन्न होते है।[10] इस समय आम्रवृक्ष से मञ्जरियाँ स्फुटित होती हैं, जो वसन्त की उत्पुलकावली के सदृश प्रतीत होती हैं।[11] आम्र और अशोक वृक्षो तथा लतिकाओ पर वसन्तलक्ष्मी विहार करती है।[12]

---

1 चन्द्रिका वीथी, पद्य 10
2 प्रभावती परिणय नाटक, 5 11
3 कुक्षिम्भरभैक्षव प्रहसन, पद्य 6
4 सीताराघव नाटक, 4 11
5 नवमालिका नाटिका, 1 15
6 अनङ्गविजय भाण, 12
7. वही, पद्य 29
8 वही, पद्य 32
9 समापतिविलास नाटक, 1 18
10 वही, 1 20
11. वज्राभिषेक नाटक, 1 24
12. लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक, 2 8

वसन्त मे चम्पकवृक्षो पर पुष्प विकसित होते हैं ।[1] चाम्पेयवल्ली विकसित होकर अरुण हो जाती है ।[2] चम्पकवृक्षों की सुगन्धिसम्पत्ति का भ्रमरमिथुन उपभोग करते हैं ।[3] वसन्त प्रतिहतिगुरु चम्पकवृक्षों को पुष्पो से विनत करने के लिए मानिनी नारी के हस्तो द्वारा सिञ्चित कराता है । इस समय द्वेषविकल भ्रमरसमूह कुसुमित चम्पकलताओ में प्रवेश करता है ।[4]

इस समय बालाशोक विटपरिषद् की भ्रान्ति उत्पन्न करते हैं । उसके समस्त *अङ्गो से मुकुलश्रेणी के प्रकट होने से ऐसा प्रतीत होता है मानो वे माणिक्यभूषा धारण* किये हो । वे सान्द्र, स्निग्ध तथा अरुण किशलय रूपी उत्तरीय वस्त्र को धारण करते है । उनके शिर शब्दायमान भ्रमर रूपी केशो से सुशोभित हैं ।[5] अशोक वृक्षो के स्निग्ध बालपल्लवो के मूल पर मुकुल निकुरम्ब परिपुञ्जित होते हैं ।[6]

वसन्त म बकुलवृक्ष पीत पुष्पो से युक्त होते है ।[7] उन पर भ्रमण करते हुए मधुमत्त भ्रमर चञ्चलता से मकरन्द गिराते हैं ।[8] ये तरुण बकुलवृक्ष इस समय अविरल कुसुमित है । इन वृक्षो के शिखरो हर छिपा हुआ भ्रमरसमूह सरक्त अङ्गारो मे डाले गये श्रीखण्डचूर्णसमुद्गक से समुद्गत धूम्रसमूह के समान प्रतीत होता है ।[9]

शाल, सरल तथा श्रीखण्डवृक्ष भी इस समय अपने ऊर्ध्वोल्लसित विशाल-पल्लवसमूह के *सुशोभित होते हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि इस पल्लवसमूह के छद्म* से वसन्त हाथ मे आतपत्र लिये हैं ।[10]पुन्नागवृक्ष भी सुन्दर दिखाई देते हैं । इस समय कुरबक वृक्षो पर पुष्प विकसित होते हैं ।[11] तिलक वृक्ष वनलक्ष्मी के तिलक के *समान दिखाई देता है* ।[12]

---

1 लीलापरिणय नाटक, 1 5
2 वीरराघव व्यायोग, पद्य 13
3 *मलयजाकल्याणम् नाटिका, प्रथमाङ्क*
4 वही, 1 2
5 चन्द्रिका वीथी
6 वही,
7 प्रभावतीपरिणय नाटक, 5 9
8. मुकुन्दानन्द भाण
9 मलयजाकल्याणम् नाटिका, प्रथमाङ्क
10. वही
11 भृङ्गारतरङ्गिणी नाटक, 3 2-4
12. मलयजाकल्याणम् नाटिका, 1 33

वसन्त मे माधवीलता अपने पुष्पो से वायु को सुगन्धित करती है ।[1] पुष्पिणी मल्लीलता का आलिङ्गन कर कामी के सदृश मन्दानिल लवङ्गलतिकागृहो मे प्रवेश करता है ।[2] मानरसिक भ्रमरो के गीत गाने पर मन्दानिल सूत्रधार के समान नव-मल्लिकाओ को नचाता है ।[3] इस समय नवीन कुन्दवल्ली के गूढ स्तनो पर चन्दन-पल्लव लगे हुए प्रतीत होते ह ।[4] लताओ के हल्लीसक को देखता हुआ मलयपवन बहता है ।[5] मन्द समीर रूपी शिक्षक के समादेश से मञ्जरी नेत्रो को आनन्द प्रदान करती है। उसके स्तवक रूपी स्तन उत्कम्पित होते है ।[6] विलासी जन प्रसन्न भ्रमरो के गीतो से युक्त, मुग्ध तथा नवीन पुष्पा से शोभित मल्लिका से आम्रवृक्ष को सयुक्त करते हैं ।[7] विकसित वासन्तिकालतावल्लरी मे छिपे हुए भ्रमर मलयवायु से उल्लसित होकर शब्द करत ह ।[8] वसन्त स्तबक रूपी उत्तुङ्गस्तनो से आनत कोमललतारूपिणी स्त्रियो को आनन्दित करता है ।[9] इस समय माधवीलता धन्य है। दीर्घकाल स सम्मानित कुन्दवल्ली के प्रति दैवयोग से वैर हो जाने के कारण भ्रमर युवा विरक्त होकर अमन्दमकरन्दगुर्वी माधवी लता के प्रति स्वय ही आकृष्ट होता है ।[10]

लतारूपिणी नारियाँ अपने सफुल्ल स्तवकरूपी चामरो से राजा मलयानिल को मानो सम्बीजित करती है ।[11] मलयानिल रूपी शिशु लतारूपिणी धात्री के अङ्ग का स्पर्श करता हुआ, उनके सम्फुल्ल स्तबकरूपी स्तनो से निकले हुए मधुरूपी क्षीर को चूसता है ।[12] इस समय पुष्पित मल्लिका के मधु का पान करते हुए भ्रमर कोलाहल करते है ।[13] लता रूपिणी नारियो मे आसक्त हितकारी वृक्ष गृहस्थ के

---

1 अनङ्गविजय भाण, पद्य 27

2 वही, पद्य 28

3 वही, पद्य 30

4 वही पद्य 31

5 लीलापरिणय नाटक, 1 16

6 विद्यापरिणय नाटक, 1 16

7 वही, 1 17

8 शृङ्गारसुधाकर भाण, पद्य 4

9 वही, पद्य 5

10 वेङ्कटसुब्रह्मण्याध्वरिकृत वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक, 1 17

11. लक्ष्मीकल्याण नाटक, 1 48

12 वही, 1 49

13 वही, 1 50

समान प्रतीत होते है।[1] इस समय मन्दवायु वसन्त के समक्ष लता रूपिणी नर्तकियो को नचाता है।[2] भ्रमरों के उपजात से अरुण हुए पुष्पनेत्रों वाली, श्वास से सक्षुब्ध प्रवालरूपी अधरवाली, अन्य लता रूपिणी नायिका का अधिक आमोद से आलिङ्गन कर आये हुए मन्द वायु को देखकर अशोक लता *खण्डिता नायिका के समान* दिखाई देती है। इस समय लताओं की सुगन्धि उडती है।[4] माधव रूपी तरुण विट के द्वारा आलिङ्गित की गई लता रूपिणी नारी प्रमुदित होती हैं।[5] मलयानिल द्वारा चालित लताओं से पराग गिरता है।[6] वासन्तिका लता पर भ्रमरों के गुञ्जन से दिशायें *मुखरित होती हैं*।[7] *विलसित होता हुआ यूथीकलिकासमूह कामदेव की* दन्तपङ्क्ति के समान प्रतीत होता है।[8]

पक्षी तथा भ्रमर

वसन्त मे कोकिल सुमधुर गीत गाते है तथा भ्रमर पुष्परस पान करते ह।[9] उपवन में अभ्यन्तरवर्ती शुकसमूह एक वृक्ष के जम्बू तथा रसाल होने का भ्रम उत्पन्न करता है।[10] श्वेतकपोतो द्वारा समाक्रान्त वृक्षा को देखकर उनके पुण्डरीक वृक्ष होने का सन्देह होता है।[11] कोकिलों की कूक तथा हंसो के निनाद से उपवन आक्रान्त हो जाते हैं।[12] *कोकिलस्वर वसन्त का रणभेरी शब्द है*।[13] *भ्रमण करते हुए भ्रमरो की* झङ्कार से दिशायें पूर्ण होती है तथा वनो मे कोकिलो का मनोज्ञ स्वर सुनाई देता है।[14] पुष्पसुगन्धि का उपहार लिये हुए तथा झङ्कारा द्वारा आशीर्वाद देते हुए भ्रमर कामदेव का स्वागत करते हैं।[15] ये भ्रमर मदाकुल है।[16]

---

1 लक्ष्मीकल्याण नाटक, 1 56
2 वही, 3 28
3 वही, 4 7
4 कामविलासभाण, पद्य 13
5 उर्वशीसार्वभौमेहामृग, 1 6
6 मुकुन्दानन्दभाण,
7 रत्नानन्दक नाटक, 7 13
8 मधुरानिरुद्ध नाटक 1 8
9. गोविन्दवल्लभ नाटक, 1 13
10 *कान्तिमतीपरिणय नाटक, 3 10*
11. वही
12 वही, 3 13
13 अनङ्गविजयभाण, पद्य 12
14 वही, पद्य 27
15 वही, पद्य 29
16 सभापतिविलास नाटक, 1 5

हरित पक्षो, प्रवालसदृश चञ्चुपुटो, प्रमदालाप कलाओ तथा कूजाओ के द्वारा शुक वसन्त मे प्रमोद देते है।[1] मधुरस का पान करती हुई भ्रमरियो चारो ओर मधुर झङ्कार करती हुई मन्मथ के बल को बढाती है।[8] अपने पक्षो को फैलाकर नृत्य करती हुई सुमधुर केकाशब्दो के द्वारा दिशाओ को जयकाहली के समान गुञ्जित करती हुई मयूरावली शोभित होती है।[9] हस अपने दोनो पक्षो द्वारा चामर की शोभा प्रकट करते है। उनके चञ्चु तथा चरण शोण है। वे तरुणियो को गमन का उपदेश देते है।[4]

वनचर पक्षियो के श्रुतिमनोहर मङ्गल शब्दो के द्वारा वसन्त मानो राजा चित्रसेन की दिग्विजय को सूचित करता है।[5] मत्त भ्रमरो तथा कोकिलो की विजृम्भित ध्वनि दुन्दुभिध्वनि के समान प्रतीत होता है।[6] वसन्त को देखकर हर्षित हुआ कोकिल मानो उसकी स्तुति करता है।[7] मधुपान करते हुए भ्रमर वसन्त की कीर्ति को उद्घोषित करते है तथा कोकिल आम्राङ्कुरो का भक्षण कर उसका यश गाते है।[8] मत्त कोकिल रूपी बन्दीजनो द्वारा विरदावो से प्रशसित, भृङ्गियो के गान की अतिशय रसानुभूति के कारण मन्दायमानगति मलयानिल वन मे राजा के समान क्रीडा करता है।[9]

शुको तथा सारिकाओ के कलरव द्वारा वसन्त अपने आगमन को प्रकट करता है।[10] पक्षिकुल अपनी वाणी द्वारा बार बार वसन्त का यशोगान करता है।[11] भ्रमर मल्लीमुकुलकुहर म विद्यमान मरन्द का पान करते है।[12] मधुरमरन्दबिन्दुओ

---

1 रतिमन्मथ नाटक 3 32
2 वही, 3 34
3 वही, 3 35
4 वही, 3 36
5 चन्द्राभिषेक नाटक, 1 22
6 वही, 1 23
7 वेङ्कटसुब्रह्मण्याध्वरिकृत वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक, 2 12
8 वही, 2 16
9 लक्ष्मीकल्याण नाटक, 1 48
10 वही, 1 50
11 वही, 1.51
12. प्रभावतीपरिणय नाटक, 5.12

का पान करते हुए भ्रमर बालरसाल मञ्जरियों के साथ विहार करते हैं।[1] ये भ्रमर आम्रपुष्प के पराग से स्वयं को पवित्र करते हैं।[2] रसाल तथा बकुल वृक्षों पर भ्रमण करता हुआ भ्रमरसमूह तृप्ति नहीं प्राप्त करता।[3] भ्रमरों की काकली-ध्वनि से ऐसा प्रतीत होता है मानो वायु कामदेव की स्तुति में वीणा बजा रहा हो।[4] पुंस्कोकिलगण प्रतिदिन आम्रवृक्ष की बालकलिका के मरन्दरस का पान करते हैं। उनसे उच्छिष्ट मकरन्द का भ्रमर पान करते हैं।[5]

वायु

वसन्त में प्रतिपद पर गमन निरुद्ध करने वाला, भ्रमरकुल द्वारा निनादित तथा मकरन्दबिन्दुओं से सुरभित मलयपवन बहता है।[6] यह पवन कामियों के चिकुरों को आन्दोलित करता है, सुवेलपर्वतशिखरों को मर्दित करता है, एलावन को समुन्मीलित करता है, द्रविडनारियों के मन में कामक्रीडा की अभिलाषा उत्पन्न करता है तथा सरोवर में लहरें उत्पन्न करता है।[7] यह वायु कार्णाट नारियों के कर्णपूर का स्पर्श करने से सुगन्धित हो गया है। यह मालवी नारी के मस्तक पर लगे हुए सिन्दूर को हटाता है, कुन्तली नारियों के कुन्तलों को नत करता है, लाटदेशीय नारियों के ललाटजल से संवृत है तथा मलयपर्वत से उत्पन्न हुआ है।[8]

मलयाचल के चन्दनवन के आसङ्ग से सुगन्धित यह वायु विरहियों को मारने में दक्ष है।[9] यह शीतल होते हुए भी विरहियों को अत्यन्त उष्ण प्रतीत होता है।[10] यह नायिका नवमालिका का उत्पीडक है।[11] यह सुगन्धित पुष्पों के

---

1. प्रभावतीपरिणय नाटक, 5.13
2. मलयजाकल्याणम् नाटिका, 1.30
3. मधुरानिरुद्ध नाटक, 2.10
4. वही, 3.1
5. वही, 3.2
6. कान्तिमतीपरिणय नाटक, 1.10
7. नवमालिका नाटिका, 1.18
8. वही, 1.19
9. वही, 1.20
10. वही, 3.8
11. वही, 3.11

मकरन्द बिन्दुओं से तुन्दिल है। यह केलिवन के वृक्षों को हिलाता है।[1] निरन्तर प्रवाहशील यह वायु मानो सौहार्द के कारण चन्दनवृक्षों से सगमित होता है।[2] मकरन्दकणतुन्दिल मन्द वायु से चन्दन वृक्ष किञ्चित् समुच्चलित होते हैं।[3] यह वायु ललित तथा मृदुल है।[4] यह मधुर भ्रमरझङ्कारों को सुनता हुआ, वीचि-लोलान्तरों में विहरण करता हुआ प्रवाहित है।[5]

मलयभुजङ्गों के प्रासङ्ग से मलयवायु भी मानो भुजङ्ग के समान हो गया है, अन्यथा वह पथिकों को कैसे मारता ?[6] मलयवायु विरहियों के मानसाह्लाद को चुरा लेता है।[7] इस वायु के प्रत्येक स्पर्श पर विरहियों में कम्प उत्पन्न होता है।[8] यह वायु युवकों के श्रमजलबिन्दुओं को हटाता है, भृङ्गियों को सङ्गीतभङ्गी-कला सिखाता है तथा चोलदेशीय नारियों के शिर पर बँधी हुई बकुलमाला की गन्ध चुराता है। यह श्रीखण्डपर्वत का बन्धु है।[9] यह चन्दनवृक्षों में लिपटे हुए सर्पों की श्वासों से निकली हुई विषज्वालाओं से युक्त है।[10] अत. यह विरहियों को सन्ताप देता है।

वसन्त मलयपवन रूपी आयुध ग्रहण किये हुए है। वसन्त ने इसे मलय-पर्वत के शिलातल पर घटित कर तीक्ष्ण किया है तथा हिमनिर्झर से मार्जित किया है।[11] यह पवन नवीन आम्राङ्कुरपाटीर के परिमल से युक्त है।[12] गुरु कामदेव के वहुमारभरण से मन्द हुआ, कामदेव द्वारा प्रेरित किया गया यह मत्त मन्दानिल

1 अनङ्गविजय भाण, पद्य 26
2. वही, पद्य 28
3 वही, पद्य 31
4 नीलापरिणयनाटक, 1 5
5 वही, 1 16
6 वही, 3 13
7 वही, 3 14
8 वही, 3 20
9 रतिमन्मथ नाटक, 3 29
10 चन्द्रिकावीथी, पद्य 9
11. चन्द्राभिषेक नाटक, 1.27
12. वेङ्कटसुब्रह्मण्याध्वरिकृत वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक, 1.16

विचरण करता है।[1] यह निरपेक्ष वायु अपनी सुगन्धि के द्वारा प्रत्येक दिशा में वसन्त की कीर्ति स्थापित करता है।[2]

मलयपवन रूपी ब्रह्मचारी नादेयोर्म्मि में मज्जनविधि सम्पन्न कर, प्रफुल्लित पुष्पाकर के समीप नित्यकर्मविधि साधित कर, कामाग्नि कार्योन्मुख हुआ, सदैव पुष्पपरागवासित मधुक्षेपस्विणी भिक्षा का व्रतधारण किये हुए कामरूपी ब्रह्मविचार में अपनी बुद्धि को शिक्षित करता है।[3] यह मनस्विनी नारियों के मानवृक्ष का उन्मूलित करने में शूर है।[4]

कामदेव का मित्र मलयानिल पौष्पपराग रूपी गुग्गुलुरज को क्षिप्त कर कामाग्नि को प्रज्वलित करता है। अगस्त्याश्रय में उत्पन्न, सम्भोगखिन्न सर्पिणियों द्वारा पीत तथा श्वास के छल से बहिर्निष्कासित यह मलयानिल विषज्वाला द्वारा स्पृष्ट किया गया है।[5]

सारविवेचन द्वारा दश दिशाओं को सुरभित करता हुआ, पक्षियों को वच प्रपञ्चनकला अध्यापित करता हुआ यह मलय समीर पृथक् विद्वान् के समान उद्यान के समीप आता है।[6] अर्भक के समान मलयानिल पुष्परज में भृङ्गशिशुओं के साथ क्रीडा करता है।[7] यह मन्द वायु क्रीडासरोवर में लहरों के साथ जलक्रीडा करता है, पुष्पपरागों पर भृङ्गियों के साथ पिष्टातकक्रीडा करता है, कोकिलाओं के साथ गाता है, आम्रवृक्ष पर दोलाविहार करता है तथा लताओं के साथ गुप्तक्रीडा करता है।[8]

आगस्त्याश्रम तथा भूमिवलय में दिन रात सञ्चरण करता हुआ, प्रत्येक उपवन को विकसित करता हुआ पुष्पों के गुणों को स्थापित करता हुआ, स्मृतिमात्र से ही वियोगियों को रमणीदर्शन के लिये उत्सुक करता हुआ यह वायु सुरों का

---

1 वेङ्कटसुब्रह्मण्याध्वरिकृत वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक, 2 14
2 वही, 2 16
3 सदाशिवदीक्षितकृत वसुलक्ष्मीकल्याण नाटक, 2 6
4 वही, 2 7
5 वही 2 8
6 लक्ष्मीकल्याण नाटक, 1 46
7 वही 1 49
8 वही, 3 24

उपकार करने मे सलग्न है ।[1] यह वायु रूपी मन्त्री राजा वसन्त के साथ उपवन रूपी सभा मे विराजमान है ।[2] यह मलयपवन की लताम्रो को म्रान्दोलित करता है ।[3] सरोवर के जलबिन्दुम्रो से म्रवदात यह वायु स्तनभार से भङ्गुरलताम्रों के साथ प्रत्येक वन मे विहार करता हुम्रा म्रपना समय सुखपूर्वक व्यतीत करता है ।[4] यह वायु विन्ध्यपर्वतवासी हस्तियो के बहते हुए दानजल के पान से मत्त, पर्वतो से निकलते हुए निर्झरो मे स्खलित होता हुम्रा गोदावरी के जलबिन्दुम्रो से युक्त होता है ।[5]

शनै शनै बहता हुम्रा मलयपवन म्रपने स्वामी मन्मथ को कृतार्थ करता है ।[6] काम्योत्पादन मे मलयानिल को कोई विजित नही कर सकता ।[7] यह वायु सकल्प के कारण व्यसनयुक्त, म्रमृत से पूर्ण, बार बार सर्ववधुम्रो द्वारा पान किये जाने से म्रवशिष्ट, लोपामुद्रा की कामक्रीडा के स्वेद तथा मेद से म्रौर म्राम्राङ्कुर-सुरभि से युक्त है ।[8] यह वायु मन्दारवृक्ष के पराग से दिशाम्रों को निबिडित करने वाला, देवनदी के सलिल से युक्त तथा वसन्तलक्ष्मी के निश्वासवायु के समान है ।[9]

कामदेव तथा मानव

वसन्त मे कामदेव सर्वत्र विचरण करता है । इस समय भृङ्ग, हस तथा पिक अपनी म्रपनी प्रियाम्रो से युक्त हो जाते हैं ।[10] प्रत्येक पुष्प पर नाद करता हुम्रा भ्रमर मकरन्द को ग्रहण कर पहले म्रपनी प्रियतमा को देता है फिर स्वय पान करता है ।[11] हस म्रपनी प्रियतमा को वृक्ष की छाया मे निविष्ट कर सरोवर के

---

1. लक्ष्मीकल्याण नाटक, 3 29
2 वही, 3 31
3. प्रभावतीपरिणय नाटक, 5 9
4 वही, 5.16
5 वही, 5.18
6 कामविलास भाण, पद्य 14
7 रामविजय नाटक, प्रथमाङ्क
8. मधुरानिरुद्ध नाटक, 2.13
9. लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक, 2 9
10 कान्तिमतीपरिणय नाटक, तृतीयाङ्क
11. वही, 3.11

अभ्यन्तर से कमलिनीनाल लाकर उसके मुख में अर्पित करता है। पिक आम्रपल्लव का आच्छेदन कर मुख मे निक्षिप्त कर अपनी वधू की निद्राविरति की प्रतीक्षा करता हुआ वृक्षस्कन्ध पर स्थित है।[1]

वसन्त कामदेव को प्रसन्न करने का मानो व्रत लिये हुए है।[2] अपने इक्षु-कोदण्ड-दण्ड पर मधुकणरूपी विप से युक्त बाणो को लिए हुए अङ्गुलियो के मधुप-वलय रूपी मौर्वी का स्पर्श करता हुआ कामदेव विरहियो के मर्म पर प्रहार करता है।[3] कामदेव को यह दाहकत्व शिव के मस्तक की अग्नि से प्राप्त हुआ है।[4] कामदेव निश्शङ्क होकर विरहियों पर बाण उन्मुक्त करता है।[5]

मलयसमीर, माधवनिशा, चन्द्रमा, शुक, पिक, भ्रमर, मयूर, कलहंस तथा अप्सरायें कामदेव की सेना है।[6] कामदेव वसन्त का मित्र है। वह मधुपान करता हुआ त्रपा से स्खलित हो रहा है।[7] कामदेव अपने प्रियमित्र ऋतुराज वसन्त को आया हुआ देखकर सन्तोष का अनुभव करता है। वह कायव्यूह बनाकर अपने पुष्पबाणों से सभी स्थानो को पूर्ण करता है।[8] वह पथिको के लिये विषम भय प्रकट करता है।[9] उसके प्रभाव से अभिसारिकायें अपने स्तनो तथा कमलनेत्रावली को सज्जित कर अभिसरण करती हैं।[10]

क्रुद्ध कामदेव दुर्मन्त्रो द्वारा अभिमन्त्रित, भ्रमरमिलित पौष्प बाणो को वियोगियो पर उन्मुक्त कर रहा है।[11] राजा कामदेव अपने अमात्य वसन्त के साहाय्य से अपने नवीन पुष्परूपी बाणो द्वारा विश्व को विजित करने के लिए आता है।[12]

---

1. कान्तिमतीपरिणय नाटक, 3 12
2 वही, 1.5
3. नीलापरिणय नाटक, 3.6
4. वही, 3.7
5. वही, 3 20
6. रतिमन्मथ नाटक, 3.28
7. चन्द्राभिषेक नाटक, 1.26
8 वही, 1.34
9. वही, 1 35
10. वही, 1.36
11. लक्ष्मीकल्याण नाटक, 4 33
12. वही, 4.5

कामदेव विरहियों को मारने के लिए अङ्गारों के समान पल्लवों में अपने बाणों को तपाता है।[1] लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक में हस्ती और हस्तिनी की प्रणयलीला का वर्णन है।[2]

ग्रीष्म ऋतु

अभिनव पाटल-सौरभों द्वारा समस्त दिशाओं को आक्रान्त करती हुई ग्रीष्मर्तु मानवों में स्वेद उत्पन्न करती है। इस ऋतु में सूर्य का ताप इतना प्रचण्ड होता है कि तडागों तथा अन्य जल स्थानों का जल वाष्प रूप में उड़कर मेघों का निर्माण करता है। वर्षा ऋतु में पुनः इस जल की वृष्टि होती है जिससे संसार प्रसन्न होता है।[3]

अधिक उष्णता के उदय से युवकों के गाढालिङ्गनकौतुक को विरलित करता हुआ, दिन में प्रत्येक मार्ग में वृक्षतल को नियमित करता हुआ, प्राणियों को स्नान के लिए प्रेरित करता हुआ, उत्फुल्ल पुष्पों की सुगन्धि से दिशाओं को सम्बन्धित करता हुआ, आकाश को मेघों से शून्य करता हुआ ग्रीष्म ऋतु उज्जृम्भित होता है।[4]

ग्रीष्म ऋतु में सूर्य के ताप से व्याकुल पान्थों को वृक्षों की छाया में शान्ति मिलती है। सरोवर में स्नान करना सुन्दर लगता है तथा सूर्यास्त के समय दिन रमणीय होता है।[5] ग्रीष्म के उष्ण होते हुए भी वह रावण को सीता के स्मित का अनुहरण करने के कारण अच्छा लगता है।[6]

ग्रीष्म ऋतु में औषधियाँ सत्त्वहीन, स्निग्धतारहित और लघु हो जाती हैं। इस ऋतु में सूर्य की उष्णता से शोषित प्राणियों द्वारा पिया गया जल लघु और रूक्ष होने के कारण वायु का संचय करता है।[7]

ग्रीष्म ऋतु में प्रभावती तथा प्रद्युम्न जलक्रीडा करते हैं। वे कर्पूर, चन्दन, चन्द्रोपल, शैवल मृणाल, हिम तथा अन्य शिशिर वस्तुओं का सेवन करते हैं।[8]

---

1 मलयजाकल्याणम् नाटिका, 1.32
2 लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक, 4 14
3 लक्ष्मीकल्याण नाटक, 4 8
4 वही, 4 9
5 पुरञ्जनचरित नाटक, 2 19
6. सीताराघव नाटक, 4.11
7. जीवानन्दन नाटक, 4 38
8. प्रद्युम्नविजय नाटक, षष्ठाङ्क

वर्षा ऋतु

वर्षा मेघजल से ग्रीष्म को शान्त करती है।[1] ग्रीष्म ऋतु से सन्तप्त जीवो के लिए वर्षा मृतसञ्जीवनी के समान है। वर्षा मे वृक्ष पल्लवित हो जाते हैं। वर्षा दीर्घपृष्ठराजिता, स्विद्यद्गण्डस्थल वाली, कलापागमनोहरा, अधिक वर्णशोभा को धारण किये हुई, अधिक सुन्दर शरीरवाली, आमलकी तथा लाक्षारस से रञ्जित और विद्रुम से सुशोभित मदालसा वेश्या के समान आती है।[2]

आकाश तथा मेघ

वर्षा ऋतु मे आकाश मेघाच्छन्न हो जाता है। आकाश मे नीलमेघो की ध्वनि विजृम्भित होती है। रामपाणिवाद ने इस ध्वनि के विषय मे अनेक उत्प्रेक्षायें की हैं। उन्होंने इस ध्वनि को कामदेव के चाप की ध्वनि, स्वर्ग मे जाते हुए हसो के प्रयाणपटह का घोष, घनागम का हुङ्कार अथवा वनिता का मानाङ्कुर बताया है।[3] मेघो के अन्दर विद्योतमान विद्युद्गण से दिशामुख कपिशवर्ण का हो जाता है। वर्षा निदाघ को नियमित करती है।[4]

वर्षा ऋतु मे मेघ सर्वत्र मेदुरित होते हैं। वे विह्वल चातक को अपनी गम्भीरध्वनि द्वारा शीघ्र ही आनन्द प्रदान करते है।[5] मेघो मे स्फुरित मौक्तिकहार के समान शोभावाली विद्युत् वियोगियो का मानो परिहास करती है।[6] मेघो में शोभित अनियतप्रक्रियावाली विद्युत् वेश्याओ के समान दिखाई देती है।[7] इस समय सूर्यचन्द्रादि ग्रहगण कभी कभी मेघो द्वारा आच्छन्न कर लिए जाते हैं। व्योमोदर को कज्जल से विलिम्पित करते हुए मेघ दौड़ते है।[8]

वर्षा म आकाश के मेघो से आच्छन्न हो जाने पर चारो ओर अन्धकार फैल जाता है। इस विषय मे हरिहरोपाध्याय ने उत्प्रेक्षा की है कि सूर्य वर्षा द्वारा बुझा

---

1 गोविन्दवल्लभ नाटक, 3 26

2 प्रद्युम्नविजय नाटक, षष्ठाङ्क

3 लीलावती वीथी, पद्य 32

4 कान्तिमतीपरिणय नाटक, तृतीयाङ्क

5. लीलावती वीथी, पद्य 7

6 लक्ष्मीकल्याण नाटक, 4.12

7. वही, 4.14

8. प्रभावतीपरिणय नाटक, 6 21

दिये जाने की आशङ्का से पुनः लौटकर पूर्वाचल की गुहा में प्रविष्ट हो गया है।[1] वर्षा में सूर्य के छिप जाने पर गर्जते हुए मेघ मानो अन्धकार के राज्याभिषेक किये जाने की ढक्काध्वनि करते हैं। मेघों के मध्य चमकती हुई विद्युत् नायिका प्रभावती के हृदय को अपनी ओर आकृष्ट करती है।[2] हरिहरोपाध्याय ने वर्षाकाल में मेघों की गर्जना का वर्णन किया है।[3] उन्होंने वर्षा म आकाश में विचरण करती हुई मेघपङ्क्ति को विन्ध्यपर्वत से बाहर निकलती हुई हस्तिपङ्क्ति के समान बताया है।[4] यह मेघावली रावण के सदनाङ्गण में विकट नृत्य करने वाले राक्षसों की लास्य-कला का अनुकरण करती है।[5]

वर्षा में आकाश को मेघों से आकुल करने वाले मेघों के विषय में शङ्कर दीक्षित ने यह उत्प्रेक्षा की है कि ये मेघ कामदेव की सेना के हस्तियों, इन्द्र द्वारा काटे जाने से वित्रासित खर्वपर्वतों, रत्नगिरिनीलमणिशिखरों तथा पूर्णिमा के चन्द्रमा की किरणों द्वारा खण्डित प्रौढान्धकारखण्डों के समान हैं।[6]

वर्षा में आकाश के मेघों से आच्छन्न हो जाने पर भूलोक नीलमणि से फैलते हुए कर्पूरों के समान अन्धकार से आपूरित हो जाता है। इस समय रात्रि और दिवस का विभाग करना भी दुष्कर है। ससार असूचीसचार अन्धकारसमूह से सकुल होता है।[7] विचरण करते हुए मेघों द्वारा राहु के समान चन्द्रमा पी लिया जाता है।[8] मेघ रावण को सीता के रम्य धम्मिल्ल का स्मरण दिलाता है।[9] मेघ मानो अगस्त्य मुनि द्वारा पिये गये समुद्र का जल बरसाते हैं।[10]

पृथ्वी

वर्षा ऋतु पृथ्वी पर नवीन हरितदूर्वारूपी आस्तरण बिछाती है।[11] शीत से

---

1 प्रभावतीपरिणय नाटक, 6 42
2 वही, 6 43
3 वही, 6 51
4 प्रद्युम्नविजय नाटक 6 6
5 वही 6 8
6 वही, षष्ठाङ्क
7. वही,
8 प्रद्युम्नविजय नाटक, 6 10
9. सीताराघव नाटक, 4 11
10 धनदानुरञ्जन प्रहसन, पद्य 26
11 लक्ष्मीकल्याण, नाटक, 4 10

शीत हुई के समान पृथ्वी इस समय नव तृणा रूपी वस्त्र को धारण कर लेती है।[1] पृथ्वी मेघों के विमल जल मे लीन हो जाती है।[2] वह नवीन वृक्षो के अङ्कुरो से युक्त होती है और उस पर अनेक वृक्ष उगते है।[3] वह भ्रमरो से युक्त होती है।[4]

पर्वत

वर्षा ऋतु मे एक साथ ही उदित होकर गगनतल मे मिलित मेघो से पर्वत-शिखरो पर जल गिरता है। इसस झनझनलनिनाद उत्पन्न होकर कन्दराओ को मुखरित करता है।[5] वर्षा पर्वतो के ऊपर कदम्बपुष्पो की उज्ज्वल माला बांधती है।[6]

नदी तथा जलाशय

वर्षा ऋतु मे जल अस्वच्छ रहता है।[7] नदियां मे जल की मात्रा अधिक हो जाती है।[8] सरोवरो मे जल आ जाता है।[9]

वन

वर्षा मे विद्युत् प्रदीप से युक्त वन म मयूर नृत्य करते हैं।[10] पवन वन को प्रकम्पित करता है।[11] वर्षा वन को धवल कुसुमो से अवभासित करती है। विरहिता वनिता के समान वनस्थली बाणपत्र रूपी लोचनों से वाष्प उन्मुक्त करती है। यह *वनस्थली कहीं नीलकण्ठको से युक्त वसुधा, कहीं शकुनिमुक्त अक्षो से समापर्वकथा तथा* कहीं भीष्मार्जुनशिखण्डिकलित भीष्म पर्वकथा के समान दिखाई देती है।[12]

---

1 लक्ष्मीकल्याण नाटक, 4 14
2 प्रद्युम्नविजय नाटक, 6 6
3 वही, 6 9
4 *लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक, 4 22*
5 कान्तिमतीपरिणय नाटक तृतीयाङ्क
6 लक्ष्मीकल्याण नाटक, 4 10
7 जीवानन्दन नाटक, 4 35
8 *प्रभावतीपरिणय नाटक, 6 50*
9 प्रद्युम्नविजय नाटक, षष्ठाङ्क
10 लीलावती वीथी, पद्य 6
11 प्रभावतीपरिणय नाटक, 6 50,52
12 प्रद्युम्नविजय नाटक, षष्ठाङ्क

पुष्प

वर्षा में कदम्बमुकुल उन्मीलित होते हैं।[1] मालतीपुष्पों से पराग निरन्तर गिरता है।[2] रामपाणिवाद ने कल्पना की है कि सूर्य के दिगङ्गनाओं में छिप जाने से लज्जित हुई कमलिनी जल में छिप जाती है,[3] इस समय यूथिका घर्म से क्लान्त होने के कारण पाण्डुरशरीरा हो जाती है। वह निरन्तर चूते हुए जल रूपी अश्रुओं से पृथ्वी को ससिक्त करती है। वह पौरस्त्य पवन के द्वारा मानो निःश्वास उन्मुक्त करती है।[4]

वर्षा में कमल जल में डूब जाते हैं।[5] कदम्ब वृक्ष पर पुष्प विकसित होते हैं।[6]

पवन

वर्षा में प्रचण्डसमीर दिशाओं को कम्पित करता है।[7] पौरस्त्य मरुत् केतकी-पत्र से गिरती हुइ माध्वीकधारा को सर्वत्र विकीर्ण करता है। स्निग्ध नीलकमल के समान नीलमेघघटा के सम्पर्क से यह पवन शीत हो जाता है। यह हूण वेश्याओं की वेणीमाला से सुगन्धित है।[8] यह जलदानिल नायिका प्रभावती की गण्डपाली को पुलकित करता है।[9] यह पवन वनावली को लोल करता है।[10]

पशुपक्षी

वर्षा में वन्य हाथी अपने शुण्ड से हथिनी की शुण्ड को अवलम्बित कर अपने लोल नेत्रों को निमीलित कर मेघधारा द्वारा आकुलित किये जाने पर भी कामवश आलसी हो जाता है।[11] वानर अपने शिशु को गोद में लेकर एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष की शाखा पर उछलता है। शीतल मन्दवायु से कम्पित होकर वह अपनी प्रिया का

1. वसुमतीपरिणय नाटक, 1.7
2. लीलावती वीथी, पद्य 17
3. वही, पद्य 33
4. वही, पद्य 34
5. प्रभावतीपरिणय नाटक, 6.47
6. प्रद्युम्नविजय नाटक, षष्ठाङ्क
7. कान्तिमतीपरिणय नाटक, तृतीयाङ्क
8. लीलावती वीथी, पद्य 6
9. प्रभावतीपरिणय नाटक, 6.23, 26
10. वही, 6.52
11. प्रद्युम्नविजयनाटक, 6.11

आलिङ्गन करता है।[1] हाथी मदजल से युक्त हो जाते हैं। रमण के लिए लालसित मराल गमन में आलस करते हैं।[2] सर्प बिल में जाने लगते हैं। कतिपय हाथी सिंह के मुख में जाते हैं।[3]

वर्षा में वृक्षों के कोटरो में परिलीन पक्षी शरीरसन्निवेश को सकुचित कर पक्षों द्वारा अपने शिशुओं को समाच्छादित कर लेते हैं।[4] केकायें प्रतिदिशा में जृम्भित होती हैं।[5] मयूर वन में नृत्य करते हैं। वह नृत्य गम्भीर मेघ रूपी ध्वनि से मनोहर तथा भ्रमरियों की मधुरगीतकला से युक्त है।[6] मयूरों की केकाध्वनि विरहियों को दुःख देती है।[7] वर्षाकाल मयूरनृत्य से प्रिय लगने वाला है।[8] इस समय मयूरताण्डव मनोविनोद करता है। नृत्य करते हुए मयूर के कलाप चलायमान है, नेत्र तारक व्याकुल है तथा गलनाल से कलध्वनि निकल रही है। मयूरीशब्दों द्वारा वर्षा ऋतु मानों कामदेव की विद्यमानता को प्रकट करती है।[9]

वर्षा सारस को सरोवर में निमज्जित करती है।[10] बकुलवाटिका में मयूर नृत्य करते हैं।[11] मेघों की कर्णानन्दप्रदायिनी ध्वनि को सुनकर मयूर के हृदय में कौतुक स्फुरित होता है। वह अपने पंखों को फैलाकर नृत्य करता है।[12] मयूर मेघ-ध्वनि का अनुद्रवन करते हैं तथा भेक उस ध्वनि के अनुकरण का प्रयास करते हैं।[13]

---

1. प्रद्युम्नविजय नाटक, 6.12
2. वही, 6.6
3. वही, 6 13
4. कान्तिमतीपरिणय नाटक, तृतीयाङ्क
5. वसुमतीपरिणय नाटक, 1.7
6. लीलावती वीथी, पद्य 6
7. वही, पद्य 17
8. वही, पद्य 31
9. लक्ष्मीकल्याण नाटक, 4.10
10. प्रद्युम्नविजय नाटक, 6 4
11. वही, 6.6
12. लक्ष्मीदेवनारायणीय नाटक, 4 21
13. लक्ष्मीकल्याण नाटक, 4.13

देव तथा मानव

वर्षा ऋतु मे विष्णु वसुमती के अङ्क मे अपने चरण रखकर शेषशय्या पर योगनिद्रा का अनुभव करते हैं ।[1] कामदेव गर्वित होता है ।[2]

वर्षा मे शीतल वायु के कारण जठराग्नि से प्राणियो म विदाह उत्पन्न होता है । यही विदाह पित्त का सचय करता है ।[3] वासगृह मे युवको के एकान्त विभ्रम बढ जाते हैं ।[4] वर्षाकाल पथिको का प्राणान्तक तथा विद्युत् वल्ली से सुखकारक है ।[5] वर्षा ऋतु जलवृष्टि से मानवो के नेत्रो को रञ्जित करती है ।[6] मेघध्वनि सुनकर तथा पतित जलकणो को देखकर पुलकित हुए नगरवासी कोलाहल करते हैं ।[7] घनाम्बुकण नायिका प्रभावती के मुख को वक्र करते है ।[8]

वर्षा कृषको की चिन्ता दूर करती है ।[9] इस समय राजाग्रा की यात्रायें शिथिल हो जाती हैं ।[10]

शरद्

शरद् ऋतु मे कमल विकसित होत है । हस मानसरोवर से दक्षिण की ओर चल देते हैं । वापी तथा जलाशय का जल अधिक स्वच्छ हो जाता है । आकाश मे श्वेत मेघ दिखाई देते हैं । सूर्य दिशाओं को निर्मल करने में समर्थ अपनी किरणो को निर्बाध होकर उन्मुक्त करता है । पथिका के चरणो का आक्रमण सहन न करता हुआ पङ्क शीघ्र ही खण्डित हो जाता है ।[11] इस ऋतु मे चरणा से सुखपूर्वक चला जा सकता है । इसमे पूर्णचन्द्रोदय अन्धकार तथा रोग को नष्ट करता है । मेघो के दिगन्तो मे चले जाने पर जल का कालापन शान्त हो जाता है ।[12] शरीर म कम्पन

1 वसुमतीपरिणयनाटक, 1 8
2. वही, 1.7
3 जीवानन्दन नाटक, 4 35
4. वसुमतीपरिणय नाटक, 1 7
5 लीलावती वीथी, पद्य 31
6 लक्ष्मीकल्याण नाटक, 4 10
7. प्रभावतीपरिणय नाटक, 6 20
8. वही, 6 24
9. प्रद्युम्नविजय नाटक, षष्ठाङ्क
10. वसुमतीपरिणय नाटक, 1.7
11. जीवानन्दन नाटक, 4 18-19
12. वही 1.3-4

उत्पन्न करने वाली वर्षा ऋतु की वायु इस ऋतु में सहसा बन्द हो जाती है ।[1] इस ऋतु में वर्षा के बहुत थोडा होने से पङ्क सूख जाता है । सूर्य की उष्णता से द्रवीभूत पित्तसचय पित्तजन्य व्याधियों को उत्पन्न करता है ।[2]

आकाश तथा दिशायें

शरद् ऋतु में आकाश मे निर्मल घन रहते हैं जिनसे यह प्रतीत होता है कि या तो आकाश नन्दनवन के कुसुमो से आपूर्ण है अथवा मन्दाकिनी के मृणालकुलो से आच्छन्न है ।[3] अनादि कवि ने उत्प्रेक्षा की है कि श्वेतमेघसमूह के व्याज से आकाश म इस समय यह सुरो का पुष्पमय विमानसघ दिखाई देता है ।[4] नील आकाश म स्फुरित होते हुए निर्मल मेघसघ कनील यमुनाजल मे स्फुरित होते हुए गङ्गाजल की भ्रान्ति उत्पन्न करते हैं ।[5] वर्षा काल मे प्रचुर नीर क्षरण करते हुए जिन मेघो ने पङ्क के मिष से कलङ्क को पृथ्वी पर छोड दिया था, वे अद्वयवादी विशद मेघ आकाश म विविध प्रासादो की मति उत्पन्न करते हैं ।[6] आकाश मे विचरण करता हुआ शरत्कालीन मेघ निर्मल योगी के समान प्रतीत होता है ।[7]

सूर्य

शरद ऋतु म सूर्य के आलोक से शोभा फैलती है । दिवस विशद होते हैं ।[8]

पृथ्वी तथा वन

शरद् ऋतु पृथ्वी पर पङ्कसमूह को प्रशमित करता ह । यह राजहस को पृथ्वी पर विहार कराता है ।[9] इस समय पक्व व्रीहिवन दग्ध स्वर्ण के समान दिखाई देते हैं ।[10]

---

1. जीवानन्दन नाटक, 4 18
2. वही, 4 36
3. मणिमाला नाटिका, प्रथमाङ्क
4. वही, 1 20
5. वही, 1.21
6. वही, 1.22
7. लक्ष्मीकल्याण नाटक, 4 15
8. जीवन्मुक्तिकल्याण नाटक, 1.4
9. लक्ष्मीकल्याण नाटक, 4.16
10. मणिमाला नाटिका, 1 26

सरोवर

शरद् ऋतु में सरोवर श्याम कमलों से सान्द्र हो जाते हैं।[1] विकसित नील कमलों से शोभित सरोवर नेत्रों को आनन्द प्रदान करता है।[2] सरोवर में कोकनदावली विलसित होती है। इसकी कान्ति से सरोवर का जल भी रुधिर की भ्रान्ति उत्पन्न करता है। इसके तट पर जाकर सुन्दरियाँ इसका जल पीने तथा इसमें स्नान करने की इच्छा करती हैं।[3]

इस समय सरोवर का जल स्वच्छ हो जाता है और वह हृदय को आनन्द प्रदान करता है।[4] कुवलयों से युक्त सरोवरों में तरङ्गसंघ उठते हैं।[5]

पुष्प

शरल्लक्ष्मी काश, कैरव तथा पुण्डरीकादि को विकसित करती है।[6] काश के व्याज से कामदेव की कीर्ति सर्वत्र फैलती है।[7] इस समय विकसित विविध पुष्प कामदेव की शरावली के समान प्रतीत होते हैं।[8] सरोवर में मधुरस से पूर्ण कमल विटनेत्रयुक्त तरुणीमुख के समान प्रतीत होता है।[9]

इस ऋतु में विविध कुसुमों को धारण किए हुए वृक्ष तथा लतायें ऐसे प्रतीत होते हैं मानो नन्दनवन से वनदेवता दुर्गा की अर्चना के लिए पृथ्वीतल पर आई हो।[10] दुर्गार्चन के लिये विविध कुसुमों का सज्जित कर यह शरद् रूपिणी नायिका जनसंघात को उद्विग्न करती है। यह जपापुष्प रूपी अधर से विराजित है, विकसित काश रूपी स्मित से युक्त है, श्वेत मेघ रूपी पट से आवृत है, शुकालि रूपिणी काञ्चीलता धारण किये है तथा रुचिर हंसकों से समन्वित है।[11] प्रफुल्लित कमल

---

1. मणिमाला, नाटिका, 1 16
2. वही, 1.24
3. वही, 1 25
4. राघवानन्द नाटक, 1.6
5. वही, 1 7
6. मणिमाला नाटिका, 1.15
7. वही, 1.16
8. वही, 1 19
9. वही, 1 23
10. वही, 1 46
11. वही, 1.47

ही जिसका मुख है, ऐसी शरद् विकसित हास करती है।[1] रावण शरद् ऋतु का इसलिये सम्मान करता है क्योंकि वह विकसित कमलो के द्वारा उसे सीता की मुखलक्ष्मी का स्मरण दिलाती है।[2]

पशु-पक्षी

शरद् ऋतु मे मत्त मराला का मञ्जुस्वर सुनाई देता है।[3] श्याम कमलो से सान्द्र सरोवर मे विचरण करती हुई हंसपंक्ति यमुना के मध्य से बहती हुई गङ्गा की जलराशि का भ्रम उत्पन्न करती है।[4] इस समय हंसों का अभ्युदय होता है।[5] हंसों का अविरल प्रचार रहता है।[6] हंस विकसित कमल वन मे विचरण करते हैं।[7] बकसमूह को दूर करने वाला तथा भ्रमरो द्वारा गान किये गये वैभव वाला राजहंस सुगन्धित मकरन्द से मेदुर पद्म पर सुशोभित होता है।[8]

इस ऋतु मे मृगसमूह भय का परित्याग कर शालि की रक्षा करने वाली नारी को, जिसके हाथ मे निबिड लगुड है तथा जो अरुण वस्त्र पहिने है, नवीन पल्लसमूह से सुशोभित वल्ली समझकर उसे चारों ओर से सूंघता है।[9] चमरी अपने वीजित चामर को न्यस्त करती है। मृगी अपने कर्णोत्पलो को ढूंढती है।[10] इस समय गगनसरणी मे शुकालिका उसी प्रकार दिखाई देती है जैसे मदनमहोत्सव मे नीलरत्न-तोरणमालिका। शुकावली के छल से अरुणरत्नमयी नीलमञ्जरी मानो आकाश रूपी वन का आश्रय लिये हुए है।[11]

हेमन्त ऋतु

हेमन्त ऋतु मे नदिया तुहिनार्द्र वालुकायुक्त तीरो से सुशोभित होती हैं।

---

1. गोविन्दवल्लभ नाटक, 3 26
2. सीताराघवनाटक, 4.11
3 मणिमाला नाटिका, 1 15
4. वही, 1.16
5 जीवन्मुक्तिकल्याण नाटक, 1.4
6. वीरराघव व्यायोग, पद्य, 7
7. वही, पद्य 8
8. बालमार्तण्डविजय, 1.13
9. मणिमाल नाटिका, 1.30
10. वही, 1.31
11. वही, 1.34

चन्द्रमा भी उदित होता हुआ दिखाई देता है।[1] इस समय मनुष्यों में बल होता है तथा औषधियों में शक्ति होती है।

जल स्निग्ध और निर्मल रहता है तथा अतीवगुणकारी होता है। जो प्राणी इस जल को पीते हैं उनमें सूर्य के मन्द होने से हिममिश्रित वायु से अङ्गों में स्तब्धता आ जाने पर विदग्धता से, स्नेह से तथा तुषारमार से कफ का संचय होता है।[2]

हेमन्त ऋतु ज्योत्स्ना में विहरणरुचि को रोकती है। जलविहार तो दूर ही रहा, यह चन्दनरसानुलेप की भी स्पृहा उत्पन्न नहीं करती। वायु स्मरणमात्र से शरीर में कम्प उत्पन्न कर देता है। यह ऋतु कन्दर्पज्वर के समान पथिकों का संहार करती है।[3] इस समय रात्रियों के दीर्घ होने के कारण विरहियों की वेदना बढ़ जाती है।[4]

हेमन्त ऋतु जनसाधारण में आर्ति-वितरण करता है। यह हिमजल के द्वारा अग्नि के स्वाभाविक गुण उष्णता को दूर करता है।[5]

शिशिर ऋतु

शिशिर ऋतु शृङ्गारलीलोदय के कारण कामदेव की आदिम मित्र है। यह अलङ्करणविधि में कौतूहल उत्पन्न करता है। हिमपात के कारण यह ऋतु गृह के अतिरिक्त निद्रा उत्पन्न नहीं करती।[6]

जनपद

अनादि कवि ने उत्कल का वर्णन किया है। यह समुद्र के मन्द निनदों से मयूरों को उल्लसित करता है। यहाँ पुरुषोत्तमक्षेत्र मोक्षास्पद है। यहाँ आम्नाय-चतुष्टय को स्फुटित करने के लिये विधाता प्रकट हुए थे।[7] अनादि कवि ने

---

1 सेवन्तिकापरिणय नाटक, 1 15
2 जीवानन्दन नाटक, 4 37
3 लक्ष्मीकल्याण नाटक, 4 19
4 सीताराघव नाटक, 4 11
5 लक्ष्मीकल्याण नाटक 4 18
6 वही 4 20
7 मणिमाला नाटिका, 4 11

काम्पिल्य, कम्बोज, कामरूप, केरल, कुन्तल, कलिङ्ग, कर्णाट, अङ्ग तथा बङ्गादि जनपदों का भी उल्लेख किया है।[1]

कृष्णदत्त मैथिल ने दक्षिण पाञ्चाल का वर्णन किया है। वहाँ लताओं पर भ्रमरों का भाङ्कार शब्द तथा कोकिलों की कुहुक रसिकों को आनन्दित करते हैं। वहाँ सुन्दरियों का पञ्चम राग भी सुनाई देता है। कहीं मनोहारिणी मृदङ्गध्वनि फैली है, कहीं वेदव्याख्या की जाती है, कहीं पुराणपठन होता है तो कहीं काव्यालाप।[2]

वीरराघव ने मलय जनपद का वर्णन किया है। वहाँ अनेक प्रमदवन हैं। वहाँ अनेक चन्दनवृक्ष लगे हैं जिनकी सुगन्धि चारों ओर फैलती है। वहाँ पणस, नारिकेल, पूग, तक्कोल, लवङ्ग तथा एला के अनेक वृक्ष हैं। मुनि भार्गव वहाँ निवास करते हैं। यह जनपद सभी जनपदों का माननीय है।[3] यती चन्द्रशेखर रायगुरु ने मगध, मथुरा, अवन्ती, मद्र, माहिष्मती, विदर्भ तथा हस्तिनापुर जनपदों तथा उनके राजाओं का उल्लेख किया है।[4]

नगर

अट्ठारहवीं शताब्दी के रूपकों में उज्जयिनी, वाराणसी, द्वारिका, दक्षिण द्वारिका, मिथिला, अयोध्या, लङ्का, श्रीपुरी, कुण्डिनपुर, तञ्जापुरी, वृषभानुपुरी, सुब्रह्मण्यनगर, कुम्भकोण, मूकाम्बिकानगर, वृन्दावन तथा अमरावती आदि का वर्णन है।

ध्वजायें

उज्जयिनी नगर कनकाट्टकुट्टिमस्थितपताकालता रूपी जिह्वाग्रों से स्वर्ग को लेलिह्यमान करती हुई शोभित है।[5] पुष्करद्वीप की राजधानी क्षितिज को सुशोभित करने वाली अनेक स्फुरणशील मणिमयी ध्वजाओं से अलङ्कृत है।[6]

---

1. मणिमाला नाटिका, चतुर्थाङ्क
2. पुरञ्जनचरित नाटक, 2·18
3. मलयजाकल्याणम् नाटिका, पञ्चमाङ्क
4. मधुरानिरुद्ध नाटक, षष्ठाङ्क
5. मणिमाला नाटिका, 4.12
6. वही, 2.29

मुकाम्बिका नगरी मे आकाश पताकाओ से अभिव्याप्त है।[1] लङ्का नगरी बजती हुई किङ्किणियो से युक्त ध्वजपटो से सुशोभित है।[2] मिथिलानगरी मे लगी हुई अनेक उच्च ध्वजायें मानो स्वर्गङ्गा का स्पर्श करती हैं।[3] वृषभानुपुरी विचित्र ध्वजाओ से विराजित है।[4] दक्षिणी द्वारिका नगरी मे मृदुल पवन के आसङ्ग स चलायमान ध्वजायें दिखाई देती है। मधुर शब्द करने वाली मणिमय घण्टिकाओ के द्वारा ये ध्वजायें मानवमन को अपनी ओर आकृष्ट करती है।[5] कुण्डिनपुर मे फहराती हुई ध्वजायें समुद्र की प्रबल जललहरो द्वारा लुलित की गई के समान दिखाई देती हैं।[6]

उद्यान

उज्जयिनी मे अनेक उद्यान है।[7] वृषभानुपुरी के उपवन विविध पुष्पो से सुसज्जित है।[8] तञ्जापुरी मे अनेक उद्यान हैं, जिनम भ्रमर गुञ्जन करते हैं।[9] वृन्दावन मे लताकुञ्जो मे भ्रमर झङ्कार करते हैं।[10] वहाँ वृक्ष भी श्रीकृष्ण के नाम का जप करते हैं।[11] कुण्डिनपुरी के चारो ओर उद्यान है।[12]

मार्ग

द्वारिका नगरी के मार्गों म दोनो ओर पुष्प पडे रहते हैं।[13]

---

1 सेवन्तिकापरिणयनाटक, 1.25
2 सीताराघवनाटक, 5.1
3 सीताकल्याण वीथी, पद्य 14
4 गोविन्दवल्लभ नाटक, तृतीयाङ्क
5 लीलापरिणय नाटक, 1 13
6 विवेकचन्द्रोदय नाटक
7 मणिमाला नाटिका, 4 83
8 गोविन्दवल्लभ नाटक, तृतीयाङ्क
9 अनङ्गविजय भाण
10 पुरञ्जनचरित नाटक, 4 15
11. वही, 4 17
12. विवेकचन्द्रोदय नाटक
13 रुक्मिणीपरिणयनाटक, पञ्चमाङ्क

प्रासाद

उज्जयिनी मे स्वर्गीय गृहो की भी निन्दा करने वाले मणिगृह हैं।[1] वृषभानुपुरी के राजप्रासाद स्फटिक के बने हैं।[2] कुम्भकोण नगर के गृह विविध मणियो से विचित्रित जालकवाले हैं। इन मनोरम गृहो के शिखर गगनचुम्बी हैं।[3] इन गृहो के द्वार स्वर्णकुम्भो से विलसित हैं। यहाँ के प्रासाद अनेक प्रकार के मणितोरणो से युक्त हैं।[4] यहाँ के राजप्रासाद का द्वार चारों ओर अनेक उच्च मणिस्तम्भो से सुशोभित है। यह उच्च राजप्रासाद इन्द्रभवन का भी तिरस्कार कर रहा है।[5] इस राजप्रासाद से देखने पर कुम्भकोण नगर के समस्त सुरमन्दिर कमलाकरो, सुधालिप्तशिखर हसो, कावेरीनदी कुल्या तथा पृथ्वी पर विराजमान समस्त कलभ भ्रमरो के समान दिखाई देते हैं।[6]

तञ्जापुरी के प्रासादो मे स्त्री चरणो मे पहिने हुए मणिमञ्जीरो के शब्द निरन्तर सुनाई देते हैं।[7] यहाँ चन्द्रकान्तमणियो से निर्मित प्रासादश्रेणियाँ हैं।[8]

लङ्का के गृहो की स्वर्णभित्तियाँ इन्द्रमणियो से युक्त हैं।[9] वहाँ के उच्च प्रासाद-शिखरो पर स्खलित मेघो के उत्सङ्ग से निकलते हुए जलधाराप्रवाह से नदी की भ्रान्ति उत्पन्न होती है। लङ्का मध्यमलोक का एकमात्र मणिकनकमय अलङ्कार है।[10]

श्रीपुरी के उच्च प्रासादो पर चन्द्रज्योत्स्ना मे नागरिकगण ललनाओ के साथ विहार करते हुए आनन्दित होते हैं।[11] वहाँ के प्रासादो मे अनेक वातायन हैं।[12]

---

1 मणिमाला नाटिका, 4.83
2 गोविन्दवल्लभनाटक, तृतीयाङ्क
3 कान्तिमतीपरिणय नाटक 1 19
4 वही 1 26
5 वही, 1 27
6. वही, 1 28-29
7. अनङ्गविजय भाण, 5 1
8 वही,
9 सीताराघवनाटक, 5 1
10 वही, 5 3
11. लक्ष्मीकल्याण नाटक, 1.27
12. वही, 1.28

मिथिलानगरी अनेक मन्दिरों से सुशोभित है। उसके चारों ओर परिखायें हैं। उसमें अनेक दुर्ग हैं। यह नगरी विभामञ्जरी के समान प्रकाशित है।[1] द्वारिका नगरी के प्रासादों की भित्तियाँ रत्नजटित हैं। इन भित्तियों में अनेक दर्पण लगे हुए हैं।[2] वहाँ प्रत्येक गृहाङ्गण में नारिकेल वृक्ष हैं तथा प्रत्येक द्वार पर पारिजात पुष्पों का समूह है।[3] वहाँ प्रासादों के गवाक्ष दर्पणयुक्त हैं।[4] यह स्वर्णदुर्ग से सुशोभित है। यह विविध प्रासादों से रम्य है।[5]

विपणियाँ

उज्जयिनी में विशाल विपणियाँ हैं।[6]

नागरिक

उज्जयिनी में निवास करने वाली स्त्रियों की द्युति रम्भादि से भी अधिक है।[7] वहाँ अनेक सुन्दरियाँ रहती हैं। वह कामीजनों के लिये कारागृह है।[8]

सुब्रह्मण्यनगर में बालक निर्भय होकर सर्पों के समक्ष खेलते हैं। वहाँ शिष्ट जन विशिष्ट पत्रों पर बैठते हैं। वहाँ षष्ठी उपवास के पुण्य से वन्ध्या शीघ्र ही पुत्र उत्पन्न करती है।[9] वहाँ अनेक आचार्य रहते हैं।[10]

तञ्जापुरी में अनेक विलासी तथा रसिक लोग रहते हैं। वे अपने वक्षःस्थल पर चन्दन लगाते हैं।[11] वहाँ विलासिनी नारियों के संघटन में विदग्ध अनेक पीठमर्द,

---

1. सीताकल्याण वीथी, पद्य 26
2. शृङ्गारसर्वस्वभाणो नाटक, प्रथमाङ्क
3. वही, 1.32
4. रुक्मिणीपरिणय नाटक, पञ्चमाङ्क
5. विवेकचन्द्रोदय नाटक, 3.1
6. रुक्मिणीपरिणय नाटक, पञ्चमाङ्क
7. मणिमाला नाटिका, 4.83
8. रुक्मिणीपरिणय नाटक, पञ्चमाङ्क
9. मन्दारवतीपरिणय नाटक, 1.3
10. वही, 1.4
11. अनङ्गविजय भाण

विट, चेट तथा तथा विदूषक विद्यमान हैं।[1] वह सुन्दरी नारियों की मानो पेटिका है। वहाँ पुम्प तरुणियों के साथ विहार करते हैं।[2]

श्रीपुरी की तरुणियाँ सुन्दर गीत गाती हैं। इसम अनेक पुण्यशील तथा विद्वान् निवास करते हैं। इसमे अनेक योद्धा रहते हैं।[3]

द्वारिका मे सुन्दरियो की मञ्जु मञ्जीरध्वनि रसिकों को सुख देती है। यह वन्य कन्याओं से उपशोभित है।[4] वहाँ के नागरिक श्रीकृष्ण की कीर्ति गाते है।[5] इसमे रहने वाले देव, द्विज तथा यादव आनन्दित रहते हैं।[6] वाराणसी को मुक्तिक्षेत्र समझकर उसमे अनेक मुनि विद्याभूमि विचार कर अनेक जिज्ञासु तथा अप्सरापुर जानकर अनेक विट रहते हैं।[7]

पशुपक्षी

वृन्दावन विविध पक्षियो के सङ्गम से मव्य है। वहाँ के हरिण चित्र म चमत्कार उत्पन्न करते है।[8] वहाँ शुक मयूर, सारस तथा कोकिल सस्वर कूजन करते हैं।[9] वृषभानुपुरी के उपवनो मे हस, कारण्डवादि जलचर तथा अण्डज सुस्वर करते हैं। वहाँ भ्रमर झङ्कार करते हैं।[10]

तञ्जापुरी अनेक अश्वो के शब्दो से शब्दायमान है। वहाँ की राजवीथिका अश्वो तथा हाथियो से आकीर्ण है।[11] श्रीपुरी म अनेक अश्व तथा हाथी हैं। इसमे अनेक राजहस हैं।[12] मिथिला नगरी मे अनेक उद्दाम तथा मदजल युक्त

1 अनङ्गविजय भाण
2 वही,
3 लक्ष्मीकल्याण नाटक, प्रथमाङ्क
4. शृङ्गारतरङ्गिणीनाटक, प्रथमाङ्क
5 रुक्मिणीपरिणय नाटक, पञ्चमाङ्क
6 विवेकचन्द्रोदय नाटक, 21
7 रुक्मिणीपरिणयनाटक, पञ्चमाङ्क
8 गोविन्दवल्लभ नाटक, 1 गीत 8
9 वही, 1 43
10 वही, तृतीयाङ्क
11 अनङ्गविजय भाण
12 लक्ष्मीकल्याणनाटक, प्रथमाङ्क

हाथी हैं।[1] द्वारिका मे अनेक शुक तथा पिक है। वहाँ कमलो पर अनेक भ्रमर उड़ते हैं।[2]

सम्पत्ति

तञ्जापुरी लक्ष्मीविलास का आश्रय है।[3] श्रीपुरी स्वर्णमयी है।[4] मिथिला नगरी निरवद्य वीरलक्ष्मी को धारण किये है। इसमें अनेक रथ, गज, अश्व तथा पैदल हैं।[5]

देव

उज्जयिनी मे अर्द्धनारीश्वर शिव विद्यमान हैं। इन्हे योगी स्वयं ब्रह्मानन्द मानते हैं। इन अर्द्धनारीश्वर का कौतुकपूर्ण शरीर वामाङ्ग मे कर्पूरो से तथा दक्षिणाङ्ग मे माणिक्यो से निर्मित है।[6]

उज्जयिनी मे महाकाल शिव तथा कामदेव निवास करते हैं।[7]

वाराणसी पृथ्वी पर शिव की राजधानी के रूप मे प्रसिद्ध है। तत्त्वावबोध हुए बिना ही वहाँ शरीरत्याग करने से मुक्ति की प्राप्ति होती है।[8] वह मुक्तिदायिनी है।[9] वहाँ विराजमान विश्वनाथ प्राणियो का सासारिक भय नष्ट करने वाले, करुणाशील तथा तपस्या द्वारा साक्षात् देखे जा सकने वाले है।[10] वहाँ कालभैरव भी विराजमान है।[11]

वृन्दावन मे वासुभद्र ने कालिय नाग का दमन किया था। वहाँ उन्होंने गोवर्धन पर्वत धारण कर समस्त व्रज की रक्षा की थी।[12]

---

1. सीताकल्याणवीथी, पद्य 26
2. शृङ्गारतरङ्गिणीनाटक, 1.33–34
3. अनङ्गविजय भाण
4. लक्ष्मीकल्याणनाटक, प्रथमाङ्क
5. सीताकल्याणवीथी, पद्य 15
6. मणिमाला नाटिका, 4.13
7. रुक्मिणीपरिणय नाटक, पञ्चमाङ्क
8. सभापतिविलास, नाटक, 4 53
9. वही, 4.54–55
10. वही, 4.56
11. रुक्मिणीपरिणय नाटक, पञ्चमाङ्क
12. वही, पञ्चमाङ्क

श्रीपुरी में पद्मनाभ विष्णु विराजमान है।[1] यह नगरी भगवल्लीलावतार से उज्ज्वल है। इस पुरी में सम्फुल्ल कमल से भगवती लक्ष्मी उत्पन्न हुई।[2] यह नगरी भवसागर की नौका तथा मुक्ति की सखी के समान दिखाई देती है।

द्वारिका में स्थित लोग मायान्धकार से आवृत होकर भगवान् श्रीकृष्ण को मित्र, बन्धु, पिता तथा पति आदि रूपों में आत्मसदृश मानते है। यहाँ के लोग भगवान् के दिव्य तेज को अपने चर्मचक्षुओं से देखते हैं।[3]

युद्ध

अट्ठारहवीं शताब्दी के कतिपय रूपकों में युद्ध का वर्णन है। प्रमुदित॰ गोविन्द नाटक[4] में देवों और दैत्यों का, वसुमती परिणय नाटक[5] में विजयवर्मा और यवनराज का, रतिमन्मथनाटक[6] में मन्मथ और शम्बर का तथा प्रद्युम्न विजय नाटक[7] में प्रद्युम्न और वज्रनाभ की सेना का युद्ध वर्णित है। इसी प्रकार वीरराघव व्यायोग[8] में राम और राक्षसों की सेना का, महेन्द्रविजय डिम[9] में महेन्द्र और बलि का, उर्वशीसार्वभौमेहामृग[10] में पुरुरवा तथा महेन्द्र का, शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक[11] में इन्द्र और कृष्ण का, मधुरानिरुद्धनाटक[12] में अनिरुद्ध तथा बाणासुर की सेना का तथा भञ्जमहोदय नाटक[13] में बलभद्र भञ्ज और सुदलदेव का युद्ध वर्णित है।

---

1. लक्ष्मीकल्याण नाटक, प्रथमाङ्क
2. वही, 1.31
3. लीलापरिणय नाटक, 1.7-8
4. प्रमुदितगोविन्द नाटक, षष्ठाङ्क
5. वसुमतीपरिणय नाटक, चतुर्थाङ्क
6. रतिमन्मथ नाटक, चतुर्थाङ्क
7. प्रद्युम्नविजयनाटक, सप्तमाङ्क
8. वीरराघव व्यायोग
9. महेन्द्रविजय डिम, तृतीयाङ्क
10. उर्वशीसार्वभौमेहामृग, चतुर्थाङ्क
11. शृङ्गारतरङ्गिणीनाटक, चतुर्थाङ्क
12. मधुरानिरुद्ध नाटक, अष्टमाङ्क
13. भञ्जमहोदय नाटक, सप्तमाङ्क

वाद्य

युद्ध के समय मुरज, भेरी, पटह, प्रानक, काहल, पणव, गोमुख, ढक्का तथा वशी प्रादि वाद्य बजाये जाते थे।[1] राजा बलभद्रभञ्ज के युद्ध के लिये प्रस्थान करने पर भेरी, वेणु, मृदङ्ग, मर्दल, ढक्का तथा निस्साण प्रादि वाद्यो को बजाया गया था और माङ्गल्यपूर्ण स्तुतिगीत गाये गये थे।[2] वीरराघव व्यायोग मे युद्ध के लिये प्रयाण करती हुई राक्षसो को चतुरङ्गिणी सेना दुदुभि वादन कर रही थी।[3]

वाहन

युद्ध मे योद्धा विविध वाहनो पर प्रारूढ होते थे। प्रमुदितगोविन्द नाटक मे देवगण हस्ती, प्रश्व तथा रथ और दैत्यगण हस्ती, प्रश्व, उष्ट्र, गर्दभ, महिष, गृध्र, वनकङ्क तथा पिशाचो पर प्रारूढ थे।[4] वज्रनाभ की सेना मे प्रनेक हाथी हैं।[5] ये हाथी शत्रुसेना का मर्दन करते हैं। उसकी सेना मे प्रश्व भी हैं।

लौकिक प्रस्त्र-शस्त्र

युद्ध मे योद्धा विविध प्रकार के प्रस्त्रो का प्रयोग करते थे। प्रमुदितगोविन्द नाटक[6] मे युद्ध मे देवगण शूल, शरास तथा चक्रदण्ड का और दैत्यगण शूल, कुन्त, कृपाण, शक्ति, तोमर, धनुष, मुद्गर तथा पण का प्रयोग कर रहे थे। वीरराघव व्यायोग[7] मे राक्षसगण प्रास, कुन्त, प्रसि, शूल, परशु तथा मुसलादि प्रायुधो को धारण किये थे। वे पट्टिश, सायक, गदा, निस्त्रिंश तथा कट्टीरक भी लिये थे।[8] उर्वशीसार्वभौमेहामृग मे दिक्पाल धनुष बाण, खड्ग तथा प्रासादि आयुध लिये थे।[9] मधुरानिरुद्ध नाटक मे मुष्टियुद्ध तथा भुजयुद्ध का वर्णन है।[10]

---

1. प्रमुदितगोविन्दनाटक, षष्ठाङ्क
2. भञ्जमहोदय नाटक, 5 9
3 वीरराघव व्यायोग, पद्य 28
4 प्रमुदितगोविन्द नाटक, षष्ठाङ्क
5. प्रद्युम्नविजयनाटक, 7.21
6. प्रमुदितगोविन्द नाटक, षष्ठाङ्क
7. वीरराघव व्यायोग, पद्य 22
8. वही, पद्य 38
9 उर्वशीसार्वभौमेहामृग, 4.11
10. मधुरानिरुद्धनाटक, 8 18

अलौकिक अस्त्र-शस्त्र

मायायुद्ध मे अलौकिक अस्त्र-शस्त्रो का प्रयोग किया जाता था। विजयवर्मा और यवनराज मायायुद्ध मे एक दूसरे का प्रतिकार करने वाले तामसास्त्र, सूर्यास्त्र, पार्जन्यास्त्र, वायव्यास्त्र, पार्वतास्त्र तथा वज्रास्त्र का प्रयोग करते हैं।[1] रतिमन्मथ नाटक मे मन्मथ और शम्बर के मायायुद्ध मे शम्बर अपनी माया से हाथियो, अश्वो, रथो तथा योद्धाओ का निर्माण करता है। ये हाथी मन्मथ को चारों ओर से घेर लेते है। मन्मथ अपने आयुधों से उन्हे नष्ट करता है।

शम्बर मन्मथ पर तामसास्त्र से प्रहार करता है। इससे चारो ओर गहन अन्धकार फैल जाता है। मन्मथ प्रभाकरास्त्र से उसका प्रतिकार करता है। पुन शम्बर मन्मथ पर पार्जन्यास्त्र का प्रयोग करता है। इससे मेघ उत्पन्न होकर भयावह जलवृष्टि करते है। मन्मथ वायव्यास्त्र से इसका प्रतिकार करता है। शम्बर मन्मथ पर पार्वतास्त्र से प्रहार करता है। इससे चारो ओर पर्वत दिखाई देते है। मन्मथ वज्रास्त्र से उसका प्रतिकार करता है। मन्मथ शम्बर पर पन्नगास्त्र का प्रयोग करता है। इससे चारों ओर सर्प प्रकट हो जाते है। मन्मथ गरुडास्त्र मे उसका प्रतिकार करता है।

अपने समस्त अस्त्रो के विफल हो जाने पर शम्बर माया से भीषण पुरुष का रूप बनाता है। मन्मथ भी अपनी माया से शम्बर के समान रूप बनाकर उसे पराजित करता है।[2]

वीरराघव व्यायोग मे राम अपने अलौकिक बाणो द्वारा राक्षससैन्य मे स्वपन, जृम्भण तथा मोहन उत्पन्न करते हैं।[3]

दैत्यराज बलि इन्द्रजाल मे निपुण है।[4] वह अपने मायाजाल द्वारा अनेक योद्धाओं को उत्पन्न करता है। अपने मायाबल के द्वारा बलि कही विद्युज्ज्वाल के समान द्युति प्रकट करता था तथा कही दावाग्नि प्रकट कर अद्भुत रस उत्पन्न करता था। वह भय उत्पन्न करता था।

---

1. वसुमतीपरिणयनाटक, चतुर्थाङ्क
2. रतिमन्मथ नाटक, चतुर्थाङ्क
3. वीरराघव व्यायोग, पद्य 74
4. महेशविजय डिम तृतीयाङ्क

शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक[1] मे इन्द्र और कृष्ण के युद्ध मे इन्द्र कृष्ण पर आग्नेयास्त्र का प्रयोग करते हैं तथा कृष्ण वरुणास्त्र द्वारा उसका शमन करते हैं। इन्द्र कृष्ण पर नागास्त्र से प्रहार करते हैं तथा कृष्ण गरुडास्त्र द्वारा उसका शमन करते हैं।

युद्धभूमि

उर्वशीसार्वभौमेहामृग[2] मे युद्धक्षेत्र का वर्णन है। वहाँ कही पट्टिश घुमाया जा रहा था तथा कही सिंहध्वनि उदित हो रही थी। कही हृदयविदारक वीरवाद सुनाई दे रहा था तथा कही अश्व गिर रहे थे। शस्त्रो के परस्पराघात से निकले हुए स्फुलिङ्गो से युद्धभूमि पूर्ण हो जाती थी।[3] शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक मे युद्धभूमि मे यदुवंशियों द्वारा मारे गये हूणो और किरातो के मांस का भक्षण करते हुए गृध्रो का वर्णन है।[4]

योद्धाओ का आचार

शत्रु योद्धा एक दूसरे को अपशब्द कहते हुए युद्ध मे प्रवृत्त होते थे। मन्मथ शम्बर को कुमति तथा दुर्मुख कहता है। शत्रुयोद्धा एक दूसरे पर व्यङ्ग्य करते थे।[5] भञ्जमहोदय नाटक[6] मे राजा बलभद्र भञ्ज के सेनापति मान्धाता आदि शत्रु राजा सुढलदेव के नगर के चतुर्द्वारो पर स्थित पुरपालक सैनिको का वध कर प्राचीर का विलङ्घन कर नगर मे प्रविष्ट होते है। वहाँ वे शत्रुयोद्धाओ का वध करते हैं। वे शत्रु राजा को आबद्ध कर अपने राजा को सौंप देते हैं।

विजय

प्रमुदितगोविन्द नाटक मे युद्ध मे देवो के विजयी होने पर गन्धर्व, विद्याधर तथा अप्सरायें आकाश में तौर्यत्रिक प्रारम्भ करते है।[7] भञ्जमहोदय नाटक[8] मे विजय राजा बलभद्र भञ्ज युद्ध मे पराजित बद्ध शत्रु सहित उसके पुर मे स्थित बलराम, जगन्नाथ तथा सुभद्रा की तीन मूर्तियो को लेकर भेरी, मर्दल, ताल, काहल, तुरी, निस्साण तथा ढक्का के शब्दो द्वारा पृथ्वीतल को निनादित करता हुआ अपने पुर को वापिस आता है।

---

1 शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक, चतुर्थाङ्क
2 उर्वशीसार्वभौमेहामृग, 4 13
3. वही
4 शृङ्गारतरङ्गिणी नाटक, 4.25
5. रतिमन्मथ नाटक, चतुर्थाङ्क
6. भञ्जमहोदय नाटक, 7.43
7. प्रमुदितगोविन्द नाटक, षष्ठाङ्क
8. भञ्जमहोदय नाटक, 7 44

उपसंहार

अट्ठारहवीं शती में सैकडो रूपकों की रचना हुई, जिनमे से लगभग सौ मुझे प्राप्त हो सके। इनके अध्ययन से अट्ठारहवीं शती की राजनीतिक, सामाजिक तथा सास्कृतिक गतिविधियो का ज्ञान होता है। इनमे से विद्यापरिणय, सीताराघव तथा वसुलक्ष्मीकल्याण आदि कतिपय रूपक उच्चकोटि के है।

इस शती के कतिपय नाटक कला की दृष्टि से अनुपम हैं। कृष्णदत्त मैथिल के पुरञ्जनचरित नाटक को कला की दृष्टि से विश्वसाहित्य मे स्थान दिया जा सकता है। इसका अभिनय और वस्तुसघटन सरस हैं। मदनकेतुचरितप्रहसन भी ऐसा ही मनोरम है। यहाँ रामपाणिवाद ने सामाजिको को रसविभोर करते हुए उनके मनोरञ्जन का अद्भुत साधन उपस्थित किया है।

अनेक रूपको मे चरित्र-निर्माण की सामग्री प्रस्तुत की गई है। बालमार्तण्ड-विजय मे राजा मार्तण्ड वर्मा का भगवद्भक्ति का आदर्श अनुकरणीय है। राजा मार्तण्डवर्मा राज्य को महामोहप्रद तथा भक्ति से दूर हटाने वाला समझते हैं। वे कहते हैं—

राज्येन किं भवेत्पुंसो महामोहप्रदायिना।
यस्मिन्निविशमानस्य हरिभक्तिर्दवीयसी ।।

परन्तु भगवान् पद्मनाभ उनके भाव को समझकर उन्हें आदेश देते है—

हृद्गतं ते प्रजानामि मदीयं कुरु शासनम्।
इदं राज्यं ध्रुवस्येव न ते मोहाय कल्पते ।।

इसी प्रकार विवेकमिहिर तथा अन्य रूपको मे भी चरित्रनिर्माण के उपादान कलापूर्ण ढग से प्रस्तुत किये गये हैं।

अट्ठारहवीं शताब्दी भारत मे राजनीतिक और सामाजिक विघटन तथा विप्लव का समय था। इस विघटन को रोकने तथा वीरो को प्रोत्साहित करने के लिए रूपककारो ने डिम, व्यायोग तथा समवकार लिखे। इस दिशा मे प्रधान वेङ्कप्प

का प्रयत्न श्लाघनीय है। उनके महेन्द्रविजयडिम, वीरराघव व्यायोग तथा लक्ष्मी-स्वयंवर समवकार ओजोगुण तथा वीररस का संचार कर सामाजिकों को स्फूर्ति प्रदान करते हैं। हृदय मे वीररस का सञ्चार होते ही योद्धा अपने शत्रुओं को नष्ट करने के लिए निकल पड़ता है—

> अद्याहं कलयामि भीतचलितप्रक्षुब्धधूताहतान्
> क्लान्तश्रान्तपलायितप्रतिहतप्रच्छिन्नभिन्नानरीन् ॥

यह सन्देश दिया प्रधान वेङ्कप्प ने समाज को।

आनन्दरायमखी ने ससार के कल्याण की कामना करते हुए राजाओं को धर्ममार्ग से ही प्रजा की रक्षा करने का उपदेश दिया है—

> अस्तु स्वस्ति जगत्त्रयाय जगती रक्षन्तु भूमीभुजो
> धर्मेणैव पथा भवन्तु सुखिनः सर्वेऽपि गोब्राह्मणाः ॥
> पर्जन्यान्नमखक्रमेण जगतश्चक्रं सदावर्तताम्
> विद्वांसो विजयीभवन्तु भगवद्भक्त्या त्रयी वर्धताम् ॥

संस्कृत के पूर्ववर्ती नाटकों मे जिन कलात्मक प्रवृत्तियों का बीजाधान अथवा किञ्चित् विकास हुआ, उनका पूर्ण विकास हमे अट्ठारहवीं शती के रूपकों मे दिखाई देता है। अश्वघोष द्वारा प्रवर्तित प्रतीक नाटकों का विकास इस शती के जीवानन्दन, विद्यापरिणय, विवेकचन्द्रोदय, शिवलिङ्गसूर्योदय तथा पूर्णपुरुषार्थचन्द्रोदय मे मिलता है। अतः रूपकों के विकास के अध्ययन मे इस शती के रूपकों का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

इन रूपकों म कतिपय रूपक ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। रूपककारों ने प्रायः अपनी देखी हुई समसामयिक घटनाओं का ही इनमे वर्णन किया है। अत. ऐतिहासिक रूपक इतिहास की प्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत करते हैं। बालमार्तण्डविजय, राजविजय, मञ्जमहोदय तथा जयरत्नाकर इस दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण हैं।

इन रूपकों मे नई नाटकीय विधायें और प्रयोग मिलते है। कृष्णलीला-तरङ्गिणी तथा गिरागीति गेय रूपक हैं। चन्द्रशेखरविलास तथा पञ्चमापाविलास आन्ध्रप्रदेशीय यक्षगानों की शैली में लिखे गये हैं। कामकुमारहरण तथा विघ्नेश-जन्मोदय असमिया अङ्कियानाट शैली के रूपक हैं। पारिजातहरण, रुक्मिणीपरिणय तथा गौरी-स्वयंवर मिथिला के कीर्तनिया नाटक की शैली मे विरचित है।

घनश्याम के नवग्रहचरित तथा डमरुक रूपकों के क्षेत्र मे नये प्रयोग हैं। नवग्रहचरित मे अङ्कों के स्थान पर प्रपञ्चों का प्रयोग हुआ है। इसमे तीन प्रपञ्च

हैं। इसी प्रकार डमरुक मे अङ्कों के स्थान पर अलङ्कारो का प्रयोग किया गया है। इसमें दस अलङ्कार हैं।

कर्णकुतूहल के रचयिता भोलानाथ ने यद्यपि इसे नाटक की संज्ञा दी है, पर इसमे रूपक या उपरूपक के लक्षण प्राप्त नहीं होते। यह तो एक कुतूहल मात्र है। इसी प्रकार सान्द्रकुतूहल के कर्ता कृष्णदत्त ने यद्यपि अपनी इस कृति को नाटक कहा है, तथापि इसमे रूपक अथवा उपरूपक के लक्षण विद्यमान न होने से यह भी एक कुतूहल मात्र है। यद्यपि इसमे हास्य की प्रधानता के कारण कतिपय विद्वानो ने इसे प्रहसन की संज्ञा दी है, परन्तु इसमे प्रहसन के लक्षण नही पाये जाते। इसमे चार अङ्क हैं, जिनमे से प्रत्येक की वस्तु पृथक् है।

कृष्णनाथ सार्वभौम भट्टाचार्य की कृति आनन्दलतिका मे अङ्को के स्थान पर कुसुमो का प्रयोग हुआ है। इसमे पाँच कुसुम हैं। यह नाटकीय कविता है। वस्तुत यह नाटकीय गति-विधि से हीन है।

चिरञ्जीव भट्टाचार्य की विद्वन्मोदतरङ्गिणी मे आठ तरङ्ग हैं। इसमे नाट्य-शैली अपनाई गई है। यह रोचक कृति रूपको के क्षेत्र मे एक अभिनव प्रयोग है।

मञ्जमहोदय के कर्त्ता ने यद्यपि अपनी इस कृति को नाटक कहा है, तथापि इसमे नाटक के सभी लक्षण प्राप्त नही होते। इसकी सम्पूर्ण कथा केवल दो पात्रो के संवाद के रूप मे वर्णित है।

चित्रयज्ञ नाटक की रचना बगाल की लोकप्रिय 'यात्रा' की शैली पर की गई है। भरतचन्द्र रायगुणाकर की कृति चण्डी' भी रूपको के क्षेत्र मे एक अभिनव प्रयोग है। इसमे यत्र तत्र बगभाषा के गीत सन्निविष्ट हैं। इसमे प्राकृत के स्थान पर बग-भाषा का प्रयोग हुआ है। जयरत्नाकर नाटक मे अङ्क के स्थान पर 'कल्लोल' हैं। इसमे ग्यारह कल्लोल हैं।

अट्ठारहवी शती के रूपककारों ने रूपको के परम्परागत दस भेदो म से प्राय सभी भेदो के रूपकों की रचना की। इस शती के प्रधान वेङ्कप्प ने बारहवी शती के कलिञ्जर के राजा परमर्दिदेव के मन्त्री वत्सराज के समान रूपको के कतिपय दुर्लभ भेदो की कृतियों की रचना की है। उन्होने नाटक और प्रकरण को छोडकर रूपक के शेष अन्य भेदो की रचना की। तदनुसार उन्होने कामविलासभाण, कुक्षिम्भर-भैक्षवप्रहसन, महेन्द्रविजयडिम, वीरराघव व्यायोग, लक्ष्मीस्वयवर अथवा विबुधानन्द-समवकार, सीताकल्याणवीथी, रुक्मिणीमाधवाङ्क तथा उर्वशीसार्वभौमेहामृग का प्रणयन किया। अट्ठारहवी शती के किसी प्रकरण का उल्लेख अब तक प्राप्त नही हुआ है।

नाटिकाओं की भी रचना हुई। इस शती की तीन नाटिकायें अब तक मिली है। इनके नाम हैं—नवमालिका, मणिमाला तथा मलयजाकल्याण। इसके अतिरिक्त इस शती का एक उपरूपक 'रासगोष्ठी' भी मिला है।

अनेक प्रतीक नाटकों का प्रणयन हुआ। ये प्रतीकनाटक हैं—जीवानन्दन, विद्यापरिणय, जीवन्मुक्तिकल्याण, पुरञ्जनचरित, विवेकचन्द्रोदय, विवेकमिहिर, शिवलिङ्गसूर्योदय, पूर्णपुरुषार्थचन्द्रोदय, अनुमितिपरिणय, प्रचण्डराहूदय तथा भाग्य-महोदय।

ऐतिहासिक रूपकों का भी पर्याप्त मात्रा में निर्माण हुआ। ये रूपक हैं—कान्तिमतीपरिणय, सेवन्तिकापरिणय, बालमार्तण्डविजय, लक्ष्मीदेवनारायणीय, वसु-लक्ष्मीकल्याण, चन्द्राभिषेक, भाग्यमहोदय, लक्ष्मीकल्याण, जयरत्नाकर तथा चन्द्र-कलाकल्याण।

प्रतीक नाटकों तथा ऐतिहासिक रूपकों के अतिरिक्त इस शती में रामायण, महाभारत तथा पुराणों की वस्तु पर आधारित अनेक रूपकों का निर्माण हुआ। ये रूपक हैं—रतिमन्मथ, कुमारविजय, गोविन्दवल्लभ, सीताराघव, रुक्मिणीपरिणय, कुवलयाश्वीय, प्रमुदितगोविन्द, राघवानन्द, प्रद्युम्नविजय, प्रभावतीपरिणय, शृङ्गार-तरङ्गिणी तथा मधुरानिरुद्ध। इसी प्रकार समापतिविलास तथा नीलापरिणय की वस्तु भी प्रख्यात है।

अनेक भाण तथा प्रहसनों की रचना हुई। अनङ्गविजय, मदनसञ्जीवन, मुकुन्दानन्द, कामविलास तथा शृङ्गारसुधाकर इस शती के प्रमुख भाण हैं। उन्मत्त-कविकलश, चण्डानुरञ्जन, मदनकेतुचरित तथा कुक्षिम्भरभैक्षव इस शती के प्रमुख प्रहसन हैं।

तञ्जोर के मराठा शासक संस्कृत के पोषक थे। इनके आश्रय में नल्लाध्वरी तथा चोक्कनाथ आदि रूपककारों ने अपनी कृतियों का प्रणयन किया। आनन्दराय-मखी, वेङ्कटेश्वर, धनश्याम, जगन्नाथ तथा रामचन्द्रशेखर ने भी इसी वंश के राजाओं के आश्रय में अपने रूपकों की रचना की। त्रावणकोर का राजवंश भी संस्कृत विद्वानों का पोषक था। आन्ध्र के अनेक राजपरिवार तथा जमींदार, महाराष्ट्र के पेशवा, मैसूर के वोडेयार राजा, केलदि के नायक वंश तथा जयपुर के राजवंश ने भी अनेक संस्कृत रूपककारों को आश्रय दिया। मिथिला, नवद्वीप, वर्धमान तथा राजनगर में भी इस शती में रूपकों का प्रणयन हुआ। बुन्देलखण्ड, उडीसा, गुजरात तथा असम में भी इस समय अनेक रूपकों की रचना हुई। इसके अतिरिक्त नेपाल के राजवंश के

आश्रय में भी संस्कृत रूपकों का निर्माण हुआ। इस प्रकार भारत के प्रायः सभी प्रदेशों और भारत के बाहर नेपाल ने भी इस शती के संस्कृत रूपकों के विकास में अपना योग दिया।

अट्ठारहवीं शती के कतिपय रूपककार विभिन्न शास्त्रों के प्रगाढ विद्वान् थे। विश्वेश्वर पाण्डेय व्याकरण, साहित्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र तथा मीमांसा के उद्भट विद्वान् थे। आफ्रेट ने इनकी लगभग 22 कृतियों का उल्लेख किया है। घनश्याम ने शताधिक ग्रन्थों का निर्माण किया। उन्होंने संस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत तथा अन्य भाषाओं में भी ग्रन्थों की रचना की। रामपाणिवाद उच्च कोटि के कवि, नाटककार तथा टीकाकार थे। उन्होंने रूपक के अल्पप्रसरणक भेदों वीथी तथा प्रहसन का निर्माण किया। हरियज्वा संस्कृत तथा मराठी भाषाओं के पण्डित थे। प्रधान वेङ्कण्प संस्कृत कन्नड तथा तेलुगु भाषाओं के विद्वान् थे। भाग्यमहोदय के रचयिता जगन्नाथ चित्र, नृत्य तथा संगीत कलाओं में भी प्रवीण थे। इन्हें काव्यशास्त्र तथा रसालङ्कार से विशेष प्रेम था।

रूपककारों ने अपनी अभिरुचि, पात्रों के चरित्र में उत्कर्षाधान, अभीष्ट रस-सिद्धि तथा अन्य नाट्यशास्त्रीय नियमों का पालन करने के लिए उपजीव्य काव्य से संगृहीत मूलकथा में कतिपय मौलिक परिवर्तन तथा परिवर्धन किये हैं। इससे उनकी उच्चकोटिक कल्पनाशक्ति का परिचय मिलता है।

पूर्ववर्ती रूपककारों की भाँति इस शती के रूपककारों ने भी एकमात्र रस को ही साध्य बनाकर उसके उद्बोध कराने का प्रयास किया है। उन्होंने कोमल तथा गम्भीर दोनों ही प्रकार के रसों के चित्रण में दक्षता प्रदर्शित की है। इस शती के रूपकों में नवरसों की निष्पत्ति की गई है। कतिपय रूपकों में पात्रों का बाहुल्य है। ये पात्र विभिन्न कोटियों के हैं।

अट्ठारहवीं शती के रूपककारों ने पूर्ववर्ती रूपककारों के समान प्रकृतिवर्णन की परम्परा का अपने रूपकों में पालन किया है उन्होंने सूर्योदय मध्याह्न, सन्ध्या, चन्द्रोदय, पर्वत, वन तथा सागरादि का अपने रूपकों में यथास्थान वर्णन किया है। इन रूपककारों द्वारा किया गया प्रकृतिवर्णन कालिदास तथा भवभूति आदि प्राचीन रूपककारों का अनुकरण किया मात्र नहीं है। इन्होंने अपनी अभिनव कल्पनाओं द्वारा प्रकृति का एक नवीन रूप प्रस्तुत किया है।

इस शती के रूपककारों की भाषा तथा शैली पर पूर्ववर्ती रूपककारों की भाषा तथा शैली का प्रभाव है। वाल्मीकि, वेदव्यास, कालिदास, भवभूति, विशाखदत्त

भट्टनारायण, बाणभट्ट तथा भर्तृहरि का प्रभाव इस शती के विभिन्न रूपककारो की भाषा तथा शैली पर स्पष्ट दिखाई देता है। इन रूपककारो ने अपने रूपको मे विभिन्न छन्दो और विविध अलकारो का प्रयोग किया है। इनकी रचनाओ मे गौडी, पाचाली तथा वैदर्भी रीतियो का प्रयोग हुआ है। इन्होने प्रसाद, माधुर्य तथा ओज तीनो गुणो का यथास्थान प्रयोग किया है। इनके रूपको मे सस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत, मैथिली, असमिया, आन्ध्री, तमिल, मराठी, हिन्दी तथा बगाली आदि विविध भाषाओ का प्रयोग हुआ है।

इस शती के कतिपय रूपककारो ने विभिन्न रागो तथा तालो मे गीतो का निर्माण कर उन्हे अपने रूपको मे प्रयुक्त किया है। द्वारकानाथ तथा कृष्णदत्त ने जयदेव के गीतगोविन्द की शैली मे गीतो की रचना कर उन्हे अपने रूपको मे सजोया है। इस शती के रूपको मे सस्कृत के अतिरिक्त मैथिली, असमिया, तेलुगु, तमिल, हिन्दी तथा मराठी के गीत प्राप्त होते हैं। इन रूपको मे सरल तथा कठिन दोनो ही प्रकार के सवाद मिलते है। अधिकाश रूपको की भाषा लोकोक्तियो तथा सूक्तियो से मण्डित है।

इस शती के दो नाटक, चन्द्रकलाकल्याण तथा वसुलक्ष्मीकल्याण क्रमश नञ्जराजयशोभूषण तथा रामवर्मयशोभूषण नामक अलङ्कारग्रन्थो के नाटक अध्याय मे नाट्यशास्त्रीय नियमो के अनुसार निर्मित नाटक के उदाहरण के रूप मे सन्निविष्ट है। इनमे सभी नाटकीय सधियो तथा सन्ध्यङ्गो का यथास्थान प्रयोग किया गया है। इनमे पूर्णरूप से नाट्यशास्त्रीय नियमो का पालन किया गया है।

अनेक रूपको म विष्कम्भक तथा प्रवेशक के प्रयोग द्वारा कथाशो की सूचना दी गई है। कतिपय रूपको मे चूलिका, अङ्कास्य तथा अङ्कावतार का भी प्रयोग हुआ है। सभापतिविलास तथा कुमारविजय नाटको मे गर्भाङ्क का भी प्रयोग किया गया है। बालमार्तण्डविजय नाटक के अन्तर्गत 'दिग्विजय' नामक निबन्धन का प्रयोग हुआ है, जिसे पाठक रङ्गरञ्जक सामाजिको को पढकर सुनाता है।

रूपको के परम्परागत भेदो की रचना नाट्यशास्त्रीय नियमो के अनुसार की गई है। नाटक, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथी, अङ्क तथा ईहामृग के निर्माण मे शास्त्रीय नियमो का पालन किया गया है। इन रूपको मे प्राय. पात्रोचित भाषा का प्रयोग हुआ है। कतिपय रूपको मे आकाशभाषित का प्रयोग किया गया है तथा अन्य मे नेपथ्य से सूचनायें दी गई हैं।

रूपको मे नान्दी, प्रस्तावना, नाट्यधर्मो, वीथ्यङ्गो तथा पताकास्थानको का प्रयोग हुआ है। नाटिकाओ का प्रणयन भी शास्त्रीय नियमो के अनुरूप हुआ है। प्राय.

सभी रूपको मे भरतवाक्य के द्वारा रूपककारो ने अपना सन्देश दिया है और मानवता के कल्याण की कामना की है। इन सभी रूपको मे रूपककार का आशावादी दृष्टि-कोण सामाजिको को उल्लास प्रदान करता है।

इस शती मे रूपको का अभिनय देवमहोत्सवो के समय एकत्रित विद्वानो के मनोरञ्जन के लिए किया जाता था। कीर्तनिया नाटक का अभिनय रात्रि मे होता था। इसके अभिनेता समाज के विभिन्न वर्गो के व्यक्ति होते थे। अभिनेताओ का प्रमुख सूत्रधार होता था, जिसे मैथिली भाषा मे नायक कहते थे। रंगमञ्च के रूप मे एक ऊँचे चबूतरे का उपयोग किया जाता था। नान्दीपाठ के पश्चात् सूत्रधार रंगमञ्च पर प्रवेश करता था। उसके साथ उसकी पत्नी नटी भी रहती थी। वे लेखक तथा अभिनय के अवसर का परिचय दर्शको को देते थे। कीर्तनिया नाटक म नायक तथा नायिका के अतिरिक्त दो तीन सखियाँ, नारद तथा विदूषक भी रहते थे। इन नाटको म गद्य का प्रयोग कम होता था। इनमे विविध दृश्यो का प्रदर्शन करते समय उनका वर्णन गीतो म कर दिया जाता था। कीर्तनिया नाटको के दर्शक विद्वान् तथा निरक्षर दोनो होते थे। इन नाटको मे सगीत के अतिरिक्त विदूषक की भूमिका विशेष आकर्षक होती थी।

यक्षगान का प्रादुर्भाव पहले तेलुगु साहित्य मे हुआ। यक्षगानो का परि-चयात्मक भाग, जिसे सूत्रधार करता था, गद्यात्मक होता था। इसमे गीतयुक्त अभि-नय की प्रधानता रहती थी। इसीलिए यक्षगानो मे दरु, चूर्णिका तथा कैवार आदि छन्दो मे विरचित गीत गाये जाते थे। यक्षगान का प्रारम्भ नान्दी से होता था।

इस शती म असमिया अकियानाट शैली म लिखे गये कामकुमारहरण तथा विघ्नेशजन्मोदय आदि संस्कृत रूपको मे सूत्रधार का ही प्राधान्य दिखाई देता है। सूत्रधार ही रूपक का प्रारम्भ करता है और वही अन्त भी। वह प्रस्तावना मे रंगमञ्च पर आ जाता है तथा रूपक के अन्त तक प्रधान पात्र रहता है। अङ्किया-नाट के सदृश इन रूपको मे गीति का प्राधान्य रहता है। इनमे प्रत्येक अङ्क मे अनेक गीत हैं। इनमे सवाद की अपेक्षा सूत्रधार के व्याख्यानो का ही आधिक्य है। अङ्कियानाट के समान इनमें भटिमा तथा पर्फाटिका का प्रयोग अनेक स्थलों पर किया गया है। इन रूपको में अङ्कियानाट से केवल एक ही भिन्नता है। अङ्कियानाट मे एक ही अङ्क होता है, परन्तु इनमे अनेक अङ्क हैं। इन रूपको के रचयिताओं ने न तो पौराणिक मूलकथा मे आवश्यक परिवर्तन किये हैं और न पात्रोन्मीलन के प्रति समुचित ध्यान दिया है।

इस शती के वैद्यनाथ वाचस्पति भट्टाचार्य द्वारा रचित संस्कृत रूपक 'चित्रयज्ञ' के आधार पर बंगाली भाषा में अनेक यात्राओं का निर्माण हुआ। इन यात्राओं में भी कथोपकथन के बीच अनेक गीत होते थे।

इस प्रकार परिमाण तथा गुणोत्कर्ष की दृष्टि से अट्ठारहवीं शती का रूपक-साहित्य महत्त्वपूर्ण है। इन रूपककारों के कथावस्तुविन्यास, नाट्यशिल्प, भाषा-शैली गीतियोजना तथा संवाद-योजना में अनेक नवीनतायें हैं। इस शती के रूपककारों की कल्पना, भाषा और भाव में पूर्ववर्ती रूपककारों की अपेक्षा पर्याप्त नवीनतायें हैं। एक ओर तो रूपककारों ने प्राचीन विषय लेकर उसे अभिनव ढंग से प्रस्तुत किया है और दूसरी ओर उन्होंने नवीन विषयों को भी ग्रहण किया है। यद्यपि इस शती के कतिपय रूपककार कालिदास, भवभूति, विशाखदत्त तथा भट्टनारायण आदि पूर्ववर्ती रूपककारों से प्रभावित हैं, तथापि उन्होंने वस्तुविन्यास में मौलिकता प्रदर्शित की है। इस शती के रूपककारों की गीतियोजना भी कालिदासादि पूर्ववर्ती रूपककारों की गीति-योजना से भिन्न है। इस शती के कतिपय रूपकों में विविध रागों तथा तालों में रचित गीतों का बाहुल्य है। ये गीत संस्कृत के अतिरिक्त मैथिली, असमिया आदि भाषाओं के भी हैं।

पूर्ववर्ती रूपककारों के समान इस शती के रूपककारों में भी पाण्डित्यप्रदर्शन की प्रवृत्ति दिखाई देती है, परन्तु हरियज्वा आदि कतिपय रूपककारों ने लोकरुचि को ध्यान में रखते हुए सरल संस्कृत में रूपकों की रचना की है।

अट्ठारहवीं शती का रूपककार यद्यपि रूपकों की प्राचीन शास्त्रीय परम्परा का अनुयायी था, तथापि वह एक नवीन परम्परा को जन्म देने के लिए भी प्रयत्नशील था। यह देखते हुए इस शती के रूपकसाहित्य को ह्रासोन्मुख नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः यह विकासोन्मुख है। इसमें विकास के अनेक लक्षण हैं। इस शती के रूपककारों ने राजनीतिक तथा सामाजिक विघटन और विप्लव के वातावरण में भी अपनी कृतियों द्वारा संस्कृत रूपक-साहित्य को समृद्ध किया है।

संस्कृत साहित्य के इतिहास में अट्ठारहवीं शती की बहुत बड़ी देन है। विश्वेश्वर पाण्डेय, घनश्याम, रामपाणिवाद तथा प्रधान वेंकप्प इसी शती में उत्पन्न हुए। इन्होंने अपनी विविध रचनाओं द्वारा संस्कृत भारती के भण्डार को समृद्ध किया। यद्यपि कालिदास तथा भवभूति नाटकों के प्रशंसक कतिपय आलोचक इन रूपकों की श्रेष्ठता को स्वीकार भले ही न करें, तथापि इससे इन रूपकों का महत्त्व कम नहीं होता। इस शती के कतिपय रूपकों में पूर्ववर्ती प्रसिद्ध रूपककारों के

रूपको के समान उदात्त कल्पना, ओज, राजनीतिक दांव पेच तथा करुणव्यथा का चित्रण है। इस शती के भाणो तथा प्रहसनो मे तीक्ष्ण सामाजिक व्यङ्ग्य हैं। इनमे रूपककारो ने सामाजिक दोषो को उद्घाटित कर उन्हे दूर करने के लिए सामाजिको का ध्यान आकर्षित किया है। वस्तुत अट्ठारहवी शती के सामाजिक इतिहास मे इन भाणो तथा प्रहसनो का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

किसी काल के साहित्य की देन उस काल की रचनाओ के परिमाण, स्तर तथा उद्देश्यो पर निर्भर रहती है। इस देन मे उस काल के लेखको की निष्ठा का प्रमुख स्थान होता है। इस दृष्टि से अट्ठारहवी शती के रूपको तथा रूपककारो का बहुत महत्त्व है। राजनीतिक विप्लव के होते हुए भी इन रूपककारो ने इतने अधिक रूपको की रचना की। ये रूपक इस शती की चरित्रगत विशेषताओ के प्रतिनिधि हैं। इस शती के रूपको मे यह बीज निहित है, जो आगे चलकर उन्नीसवी शती के पल्लवित और पुष्पित हुआ और आज बीसवी शती मे भी सस्कृत रूपक साहित्य को सुवासित कर रहा है। इस शती के कतिपय रूपको मे आधुनिक चलचित्रो का मूल देखा जा सकता है।

परिशिष्ट 1

वेङ्कटकृष्ण दीक्षित

वेङ्कटकृष्ण दीक्षित का जन्म मद्रास राज्य के दक्षिण अर्काट जिले के पल्लवकचेरि नामक ग्राम मे हुआ था। वे वाधूलगोत्रीय ब्राह्मण थे। उनके पिता महोपाध्याय वेङ्कटाद्रि तथा माता मङ्गलाम्बिका थी। उन्होने बाल्यकाल मे अपने पिता से साङ्ग श्रुति, काव्य, नाटक, रस तथा अलङ्कार की शिक्षा प्राप्त की थी। उन्होने शास्त्रो का अध्ययन पल्लवकचेरि वासुदेवाध्वरी तथा वेदान्त का अध्ययन परम शिवेन्द्र सरस्वती के निरीक्षण मे किया था। वे सस्कृत भाषा, वाङ्मय, तत्त्वज्ञान तथा औषधिविज्ञान के पण्डित थे। वे तेलुगु तथा मराठी के भी विद्वान् थे। उनके पाण्डित्य की प्रशसा करते हुए वीरराघवयज्वा ने कहा है—

> वेङ्कटकृष्णाध्वरिणः कवितप्रागल्भ्यमवगाह्य ।
> आढौकते मनो मे प्रौढि भवभूतिकालिदासादेः ।।

वेङ्कटकृष्ण दीक्षित ने श्रीरङ्गपत्तन, त्रिचनापल्ली तथा चेञ्जी की राजसभाओ मे प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। उनको तञ्जौर के राजा शाहजी (1684–1711 ई) ने अपनी राजसभा मे आमन्त्रित किया था। 1693 ई. मे शाहजी ने 45 पण्डितो को तिरुवसनल्लूर ग्राम (शाहजिराजपुरम्) प्रदान किया था, उनमे से वेङ्कटकृष्ण दीक्षित भी एक थे।

वेङ्कटकृष्ण दीक्षित ने सस्कृत मे निम्नलिखित कृतियो का निर्माण किया—

1 नटेशविजय काव्य[1]
2, रामचन्द्रोदय काव्य
3. उत्तरचम्पू
4. कुशलवविजय नाटक

1, टी. के. बालसुब्रह्मण्यम् द्वारा सम्पादित तथा 1912 ई. में श्रीरङ्गम् से प्रकाशित।

कुशलवविजयनाटक मे छ अङ्क है। इसकी वस्तु कुश और लव का राम के साथ युद्ध है। युद्ध में राम को पराजित कर कुश और लव विजयी होते हैं। यह अभी अप्रकाशित है। इसकी देवनागरीलिपि मे लिखित एक प्रतिलिपि केरल विश्वविद्यालय त्रिवेन्द्रम् के हस्तलिखित ग्रन्थागार मे उपलब्ध है।

पेरी अप्पा कवि

पेरि अप्पा कवि के पिता का नाम अण्णाशास्त्री तथा माता का नाम लक्ष्मी था। *पेरि अप्पा कवि को तञ्जौर के राजा शाहजी (1684–1711 ई) का आश्रय* प्राप्त था। वे तञ्जौर के समीप पञ्चनद अथवा तिरुवयर मे रहते थे। वे रामचन्द्र दीक्षित, नल्लाकवि, श्रीधरवेङ्कट, वेदकवि, कविराक्षस तथा वेङ्कटकृष्ण दीक्षित के समकालीन थे। उनका समय सत्रहवी शताब्दी का अन्तिम तथा अट्ठारहवी शताब्दी का प्रारम्भिक भाग है।

पेरि अप्पा शास्त्री ने निम्नलिखित ग्रन्थो का निर्माण किया—

1. शृङ्गारमञ्जरीशाहराजीयनाटक।
2 षड्दर्शनसिद्धान्तसग्रह का एक अध्याय।

शृङ्गारमञ्जरीशाहराजीय नाटक की वस्तु शाहजी तथा शृङ्गारमञ्जरी का विवाह है। इस नाटक का प्रथम अभिनय पञ्चनद (तिरुवैय्यरु) मे भगवान् पञ्चनदीश्वर की चैत्रयात्रा के समय किया गया था। यह नाटक अभी अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति ओरिएण्टल मैनुस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी, मद्रास मे मिलती है। यह नाटक अपूर्ण ही मिलता है।

अप्पाध्वरी

अप्पाध्वरी अथवा अप्पा कवि पेरि अप्पा कवि से भिन्न हैं। अप्पाध्वरी के पिता का नाम चिदम्बरभरवी था। वे श्रीवत्सगोत्रीय ब्राह्मण थे और तञ्जौर जिले मे मायावरम् से आठ मील दूर किलियूर नामक स्थान मे रहते थे। उन्हे राजा शाहजी (1684–1711 ई०) का आश्रय प्राप्त था। शाहजी के विनय करने पर उन्होंने धर्मशास्त्रीय निबन्ध आचारनवनीत का निर्माण 1696 ई० मे प्रारम्भ किया था तथा 1704 ई० मे उसे सम्पूर्ण किया।

अप्पाध्वरी ने आचारनवनीत के अतिरिक्त निम्नलिखित दो ग्रन्थो की भी रचना की—

1 गौरीमायूरमाहात्म्यचम्पू।
2. मदनभूषणभाण।

मदनभूषणभाण में विट मदनभूषण तथा गणिका बकुलमञ्जरी के समागम का वर्णन है। यह भाण अभी अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति तञ्जौर के सरस्वतीमहल पुस्तकालय में उपलब्ध है।

मुद्दुराम

मुद्दुराम कौण्डिन्यगोत्रीय ब्राह्मण थे। उनके पिता का नाम रघुनाथाध्वरी तथा माता का नाम जानकी था। वे तञ्जौर (चोलदेश) के निवासी थे। उन्हें राजा शाहजी (1684-1711 ई) का आश्रय प्राप्त था। शाहजी ने उन्हें अश्व, हस्ती, शिविका, कनकाभिषेक, हार, अग्रहार तथा कविराक्षस की उपाधि प्रदान की थी।

मुद्दुराम की एकमात्र कृति है—रसिकतिलकभाण। रसिकतिलकभाण का प्रथम अभिनय कमलापुरी (तञ्जौर) में भगवान् त्यागराज के वसन्तोत्सव के समय किया गया था। इस भाण की वस्तु विट रसिकशेखर तथा कनकमञ्जरी का समागम है। यह भाण अभी अप्रकाशित है। इसकी हस्तलिखित प्रति यूनिवर्सिटी मैनुस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी, त्रिवेन्द्रम् में मिलती है।

महामहोपाध्याय जगदीश्वर भट्टाचार्य

जगदीश्वर भट्टाचार्य का समय सत्रहवीं शताब्दी का अन्तिम तथा अट्ठारहवीं शताब्दी का प्रारम्भिक भाग है। वे तर्कशास्त्र के विद्वान थे। उन्होंने तर्कशास्त्र में निम्नलिखित ग्रन्थों का प्रणयन किया—

1 तर्कामृत
2 शब्दशक्तिप्रकाशिका
3 जागदीशी

जगदीश्वर ने रूपकों के क्षेत्र में 'हास्यार्णव प्रहसन' की रचना की। यह प्रकाशित हो चुका है। इसकी अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं। बंगीय साहित्य परिषत् कलकत्ता में उपलब्ध इस प्रहसन की एक हस्तलिखित प्रति से यह ज्ञात होता है कि इसकी रचना 1701 ई के लगभग की गई थी।

हास्यार्णव प्रहसन में दो अङ्क हैं। इसमें राजा अनयसिन्धु, अनुचर अधर्मवादी, मन्त्री कुमतिवर्मा, वेश्या बन्धुरा तथा उसकी पुत्री मृगाङ्कलेखा, उपाध्याय विश्वभण्ड तथा शिष्य कलहाङ्कुर आदि धूर्तों के चरित का वर्णन है।

वेङ्कटेश्वर

वेङ्कटेश्वर कौण्डिन्यगोत्रीय ब्राह्मण थे। वे रामभद्र दीक्षित के प्रशिष्य थे। उनके पिता का नाम दक्षिणामूर्ति था। उन्हे राजा शाहजी (1684–1711 ई) का आश्रय प्राप्त था।

वेङ्कटेश्वर की निम्नलिखित कृतियां अब तक प्राप्त हुई हैं—

1 रामभद्र दीक्षित के पतञ्जलिचरित की टीका।
2 उणादि निघण्टु।
3 मानुप्रबन्ध प्रहसन अथवा वेङ्कटेश प्रहसन अथवा लम्बोदर प्रहसन।

मानुप्रबन्ध प्रहसन मे वक्रनासयमी तथा गृध्री के निन्द्य चरित का वर्णन है। गृध्री के साथ अवैधानिक सम्बन्धो के लिये राजा वक्रनासयमी को दण्डित करता है। वक्रनासयमी को गोलाङ्गूल बनाकर और उसके हाथ बाँधकर राजपुरुष उसे उसकी पत्नी निपुणिका के पास ले जाते हैं।

यह प्रहसन मैसूर से 1890 ई मे प्रकाशित हो चुका है।

वैद्यनाथ तत्सत्

वैद्यनाथ तत्सत् के पिता का नाम श्रीरामभट्ट तथा माता का नाम द्वारका देवी था। वे तत्सत् नामक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। वैद्यनाथ का जन्म वाराणसी मे सत्रहवी शताब्दी के अन्तिम भाग म हुआ था। उनके पिता श्रीराम-भट्ट अथवा रामचन्द्र ने 1710 ई म शास्त्रदीपिका प्रभा नामक टीका की रचना की थी। वैद्यनाथ ने श्रीकृष्ण लीला नाटिका की रचना उस समय की थी जब वे कवि तथा अलङ्कारमर्मज्ञ के रूप मे प्रसिद्ध हो चुके थे।

वैद्यनाथ तत्सत के द्वारा विरचित निम्नलिखित ग्रन्थ अब तक ज्ञात हुए हैं—

1 उदाहरणचन्द्रिका।
2 काव्यप्रदीप की टीका प्रभा।
3 श्रीकृष्णलीला नाटिका।

श्रीकृष्णलीला नाटिका अभी अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति कलकत्ता संस्कृत कालेज, कलकत्ता मे मिलती है। इस नाटिका का प्रथम अभिनय शरद् ऋतु में कमलालययात्रामहोत्सव के समय महाजनकदेव के आदेश से किया गया था। इस नाटिका की वस्तु श्रीकृष्ण और राधा का विवाह है। इस

नाटिका मे श्रीकृष्ण के मित्र विजयनन्दन का भी चन्द्रप्रभा के साथ सगम होता है।

4 अप्पय दीक्षित के कुवलयानन्द पर अलङ्कारचन्द्रिका नामक टीका।

वरदाचार्य अथवा अम्मालाचार्य

वरदाचार्य को अम्मालाचार्य भी कहा जाता है। उनके पिता का नाम घटिकाशत सुदर्शन था। एक घटिका मे शतश्लोको का निर्माण करने के कारण सुदर्शन को 'घटिकाशत' कहा जाता था। वरदाचार्य मद्रास के समीप काञ्चीपुरी मे रहते थे। वे तर्कशास्त्र तथा अन्य शास्त्रो के पण्डित थे। वे ब्रह्मसूत्र पर श्रीभाष्य के रचयिता आचार्य रामानुज के भागिनेय सुदर्शन के पौत्र वात्स्य वरद गुरु की पांचवी पीढी मे उत्पन्न हुए थे।

वरदाचार्य के समय के विषय मे विद्वानो मे मतभेद है। एम. कृष्णमाचार्य के अनुसार वरदाचार्य रामभद्रदीक्षित के समकालीन थे और उनका समय अट्ठारहवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। कृष्णमाचार्य ने लिखा है कि रामभद्रदीक्षित के शृङ्गार-तिलक भाण से स्पर्धा करने के लिये वरदाचार्य ने वसन्ततिलक भाण की रचना की थी। सम्भवत वरदाचार्य का समय सत्रहवी शताब्दी का अन्तिम भाग तथा अट्ठारहवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध है।

वरदाचार्य की निम्नलिखित कृतियां प्राप्त होती हैं—

1 रुक्मिणीपरिणय चम्पू

2 लक्ष्मीशतक

3 **वसन्ततिलक भाण अथवा अम्मालभाण**

वसन्ततिलक भाण का प्रथम अभिनय मकरध्वज के वसन्तोत्सव के समय किया गया था। इसमे विट शृङ्गारशेखर का गणिका वासन्तिका के साथ समागम का वर्णन है। यह भाण प्रकाशित हो चुका है।

4 यतिराजविजय अथवा वेदान्तविलास नाटक

यतिराजविजय नाटक मे छ अङ्क हैं। यह प्रतीकात्मक नाटक है। इसका प्रथम अभिनय रङ्गराज के चैत्रयात्रोत्सव के समय किया गया था। इस नाटक का उद्देश्य विशिष्टाद्वैतमत की अन्य मतो की अपेक्षा श्रेष्ठता प्रतिपादित करना है। इसमें विशिष्टाद्वैत के प्रवर्त्तक आचार्य रामानुज के चरित को नाटकीय रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह तिरुपति से प्रकाशित हो चुका है।

गोकुलनाथ उपाध्याय

गोकुलनाथ उपाध्याय के पिता का नाम पीताम्बर तथा माता का नाम उमादेवी

था। व मिथिला म दरभङ्गा जिल म मधुवनी के समीप मगरौनी ग्राम म रहते थे। वे मैथिल ब्राह्मणा के फणदहा वश म उत्पन्न हुए थे और उनका गोत्र वत्स था। गोकुलनाथ के दो पुत्र थे जिनके नाम रघुनाथ तथा लक्ष्मीनाथ थे। गोकुलनाथ की एकमात्र पुत्री का नाम कादम्बरी था। डॉ० वेङ्कटराघवन् तथा डॉ० श्रीधर भास्कर वर्णेकर के अनुसार गोकुलनाथ का समय अट्ठारहवीं शताब्दी है।

गोकुलनाथ न निम्नलिखित ग्रन्थो की रचना की—(1) अमृतोदय नाटक (2) कुसुमाञ्जलि टिप्पणी (3) एकावली (4) कादम्बरी कीर्तिश्लोक (5) कादम्बरी प्रदीप (6) कादम्बरी प्रश्नोत्तरमाला (7) काव्यप्रकाश टीका (8) रश्मिचक्र (9) दिक्कालनिरूपण (10) तत्त्वचिन्तामणिदीधीति-विद्योत (11) पदवाक्यरत्नाकर (12) मासमीमासा (13) मिथ्यात्वनिर्वचन (14) शिवस्तुति अथवा शिवशतक (15) खण्डनकुठार (16) आलोक टिप्पणी (17) आधाराधेयभाव-तत्त्वपरीक्षा (18) मुक्तिवादविचार (19) विशिष्टवैशिष्ट्यबोध (20) तर्कतत्त्व-निरूपण (21) प्रबोधकादम्बरी (22) द्वन्द्वविचार (23) मदालसा नाटक (24) सूक्तिमुक्तावली (25) शुद्धिविवेक (26) अशौचनिर्णय (27) वृत्ततरङ्गिणी (28) रसमहार्णव (29) बौद्धाधिकारविवरणम (30) मूयाम्यसाधनप्रकरण (31) शक्तिवाद (32) लाघवगौरव-रहस्य (33) न्यायसिद्धान्ततत्त्व।

अमृतोदयनाटक

अमृतोदयनाटक म न्यायदर्शन के सिद्धान्तो का सरलतापूर्वक स्पष्ट किया गया है। यह प्रतीक नाटक है। इसमे पाँच अङ्क है जिनके नाम क्रमश श्रवणसम्पत्ति, मननसिद्धि, निदिध्यासनधर्मसम्पत्, आत्मदर्शन तथा अपवर्गप्रतिष्ठा है। इस नाटक की प्रस्तावना का नाम साधनचतुष्टयसम्पत्ति है। यह प्रकाशित हो चुका है।

मदालसा नाटक

मदालसा नाटक मदालसा और कुवलयाश्व के मार्कण्डेयपुराण मे वर्णित प्रेमाख्यान पर आधारित है। यह *अप्रकाशित* है। इसकी एक *हस्तलिखित प्रति* गवर्नमेण्ट ओरियण्टेल मैनुस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी, मद्रास म मिलती है।

देवानन्द

देवानन्द को देवनाथ उपाध्याय भी कहा जाता है। वे मैथिल ब्राह्मणो के सकराढि वश मे उत्पन्न हुए थे तथा दक्षिणमिथिला मे पर्वतपुर म रहते थे। देवानन्द के पिता का नाम रघुनाथ तथा माता का नाम गुणवती देवी था। डा० जयकान्त मिश्र ने देवानन्द का समय सत्रहवी शताब्दी का प्रारम्भ निश्चित किया है।

देवानन्द की केवल एक ही कृति मिलती है—उषाहरण नाटक। यह नाटक अभी अप्रकाशित है।

उषाहरण नाटक

उषाहरण कीर्तनिया नाटक है। इसकी वस्तु श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध द्वारा बाणासुर की पुत्री उषा के अपहरण की प्रसिद्ध पौराणिक कथा है। यह उमापति के पारिजातहरण नाटक के समान ही एक गेय नाटक है। इसमे छ अङ्क है। इसके कतिपय मैथिलगीत करुण रस से पूर्ण हैं। अनिरुद्ध को नागपाश से बद्ध देखकर उषा करुण विलाप करती है।

पेरुसूरि

पेरुसूरि के पिता का नाम वेङ्कटेश्वर तथा माता का नाम वेङ्कटाम्बा था। पेरुसूरि के पितामह का नाम भी पेरुसूरि था। वे आन्ध्रप्रदेशीय कौशिकगोत्रीय ब्राह्मण थे। पेरुसूरि ने अपने ग्रन्थ 'औणादिक पदार्णव' मे काञ्चीपुरी की नगराधिदेवता कामाक्षीदेवी की अनेक स्थलो पर स्तुति की है। इससे सूचित होता है कि वे सम्भवतः काञ्चीपुरी मे रहते थे। पेरुसूरि के गुरु वासुदेवाध्वरी थे।

टी०आर० चिन्तामणि ने कहा है कि यदि पेरुसूरि के गुरु वासुदेवाध्वरी को सिद्धान्तकौमुदी की 'बालमनोरमा' टीका के कर्ता वासुदेवाध्वरी से अभिन्न मान लिया जाय तो पेरुसूरि का समय पर्याप्त निश्चितता के साथ अट्ठारहवी शताब्दी का प्रारम्भ माना जा सकता है।

एम० कृष्णमाचार्य ने पेरुसूरि का समय अट्ठारहवीं शताब्दी होने का उल्लेख किया है। सम्भवत पेरुसूरि का समय अट्ठारहवी शताब्दी का प्रारम्भ है।

पेरुसूरि ने निम्नलिखित ग्रन्थो का प्रणयन किया—

1. औणादिक पदार्णव।
2. श्रीरामचन्द्रविजय
3. भरताभ्युदय
4. चकोरसन्देश
5. वेङ्कट भाण
6. *वसुमङ्गल नाटक*

वेङ्कट भाण का उल्लेख वसुमङ्गल नाटक की प्रस्तावना मे मिलता है। यह भाण अभी तक प्राप्त नही हुआ है। वसुमङ्गलनाटक की एक हस्तलिखित प्रति गवर्नमेण्ट ओरिएण्टल मैनुस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी, मद्रास मे प्राप्त है। वसुमङ्गल नाटक मे

पाँच अङ्क हैं। इसकी वस्तु उपरिचर वसु तथा पर्वत कोलाहल की पुत्री गिरिका का विवाह है। यह नाटक अभी अप्रकाशित है।

विट्ठलकृष्ण विद्यावागीश

विट्ठल कृष्ण विद्यावागीश बीकानेर के राजा सुजानसिंह (1690–1735ई०) के आश्रय मे रहते थे। उन्होंने निम्नलिखित ग्रन्थों की रचना की—

1, हास्यकौतूहल प्रहसन
2 अनूपसिंह गुणावतार

हास्यकौतूहल प्रहसन अभी अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर मे मिलती है. अनूपसिंह गुणावतार एक काव्य है जिसमे बीकानेर के राजा अनूपसिंह (1974–1709 ई०) का यशोगान किया गया है। यह काव्य बीकानेर मे प्रकाशित हो चुका है।

भाष्यकार

भाष्यकार के पिता का नाम कालहस्तीश्वर था। कालहस्तीश्वर वेणुपुर के राजा बसवभूपाल (1698–1715 ई०) के प्रेमभाजन थे। वे मीमांसा तथा वेदान्त के पण्डित थे।

भाष्यकार ने अपने भानु नामक गुरु का श्रद्धापूर्वक उल्लेख किया है। भानु से भाष्यकार ने व्याकरण की शिक्षा प्राप्त की थी। भाष्यकार ने आञ्जनेयविजयनाटक का प्रणयन किया। यह नाटक अभी अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति प्राच्यविद्या शोध संस्थान, मैसूर म मिलती है।

आञ्जनेयविजय नाटक का प्रथम अभिनय भगवान् रामचन्द्र के अवतारोत्सव के समय किया गया था। इस नाटक की वस्तु रामायण से ली गई है। इसमे हनुमान् की विजय का वर्णन ह। यह नाटक अपूर्ण ही प्राप्त होता है।

वेङ्कटवरद

वेङ्कटवरद मद्रास राज्य के दक्षिण अर्काट जिले मे श्रीमुष्ण ग्राम मे रहते थे। वे श्रीमुष्ण के वैष्णवाचार्यो के वश मे उत्पन्न हुए थे। वेङ्कटवरद के पिता अप्पलाचार्य, पितामह वरददेशिक तथा प्रपितामह श्रीनिवास थे। वेङ्कटवरद का समय अट्ठारहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है।

वेङ्कटवरद की एक ही कृति अब तक मिली है—श्रीकृष्णविजय डिम। श्रीकृष्णविजय की प्रस्तावना मे वेङ्कटवरद ने अपनी कृतियो का उल्लेख किया है।

वेङ्कटवरद ने वेङ्कटशविषयक अनेक प्रबन्धो का निर्माण किया । इन प्रबन्धों के नाम हैं—

1 श्रीनिवासचरित्र ।
2 श्रीनिवासकुशलाभिचन्द्रिका ।
3 श्रीनिवासामृतार्णव ।
4 श्रीदिव्यदम्पतिवरस्तव ।
5 अग्निकामकल्पवल्ली ।

श्रीकृष्णविजय की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि वङ्कटवरद ने इसकी रचना 77 वर्ष की आयु में की थी । इस रूपक का प्रथम अभिनय श्रीमुष्ण में श्रीमुष्णपुर नायक भगवान् विष्णु की सभा में वसन्त ऋतु में यज्ञ के समय किया गया था।

श्रीकृष्णविजय रूपक अभी अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति गवर्नमेण्ट ओरिएण्टल मैनुस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी मद्रास में मिलती है। यह रूपक अपूर्ण ही प्राप्त होता है। इसमें चार यवनिकान्तर तो पूरे मिलते हैं तथा पाचवें यवनिकान्तर का केवल कुछ ही भाग मिलता है।

श्रीकृष्णविजय की वस्तु अर्जुन और सुभद्रा का विवाह है।

रूपचन्द्र

रूपचन्द्र बीकानेर के राजा सुजानसिंह (1690–1735 ई०) के आश्रय में रहते थे। उन्होंने सुजानसिंह के मन्त्री सर्वजपुत्र आनन्दराम के मनोविनोद के लिए 1730 ई० में एक नाटिकानुकारि षड्भाषामय प्रपत्र की रचना की थी। यह षड्भाषामय पत्र रूपकों की शैली में लिखा गया है। इस पत्र में संस्कृत, मागधी, शौरसेनी तथा पैशाची आदि छः भाषाओं का प्रयोग किया गया है। इन भाषाओं का इस पत्र में प्रयोग किये जाने से यह स्पष्ट है कि रूपचन्द्र को इनका पर्याप्त ज्ञान था।

विट्ठल

विट्ठल ने बीजापुर के आदिलशाही वंश के इतिहास पर आधारित एक छायानाटक की रचना की। आदिलशाही वंश का 1489 ई० से 1660 ई० तक बीजापुर पर राज्य रहा। विट्ठल का समय अट्ठारहवीं शताब्दी है।

विट्ठल का उपर्युक्त छायानाटक अभी अप्रकाशित है। इस छायानाटक की एक हस्तलिखित प्रति का उल्लेख राजेन्द्रलाल मित्र ने 'कैटलाग आफ संस्कृत मैनु-

स्क्रिप्ट्स इन द लायब्रेरी ग्राफ हिज हायनेस द महाराजा ग्राफ बीकानेर' मे दिया है।

राघवेन्द्र कवि

राघवेन्द्र कवि का समय अट्ठारहवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध है। उनकी केवल एक ही कृति मिलती है—राधामाधव नाटक। यह नाटक अभी तक अप्रकाशित है। इसकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ अब तक मिली हैं। इनमे से एक हस्तलिखित प्रति भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इण्स्टीट्यूट, पूना तथा दूसरी हस्तलिपि प्रति विश्वेश्वरानन्द वैदिक रिसर्च इन्स्टीटयूट, होशियारपुर म मिलती है। पूना की हस्तलिखित प्रति की तिथि सवत 1784–1727 ई० है तथा होशियार की हस्तलिखित प्रति की तिथि सवत् 1815–1758 ई० है।

राधामाधव नाटक की प्रस्तावना मे इसके रचयिता को आधुनिक कवि कहा गया है। इस नाटक का प्रथम अभिनय नारद मुनि के आदेश स श्रीकृष्ण के रासोल्लास-महोत्सव के समय किया गया था। इसमे गोकुलेश्वर कृष्ण की वृन्दावनरासलीला का वर्णन है। श्रीकृष्ण और राधा की शृगारलीलायें इस रूपक की वस्तु है। इसमे सात अङ्क हैं।

अनन्तनारायण

अनन्तनारायण पाण्ड्यप्रदेश म चोरवन नामक ग्राम के निवासी थे। वे भारद्वाजगोत्रीय ब्राह्मण थे। वे कौशिकगोत्रीय वरदराज शास्त्री के भागिनेय और शिष्य थे। वे केरल प्रदेश म कालीकट के जामोरिन राजा मानविक्रम तथा त्रिचूर के राजा रामवर्मा के आश्रित कवि थे।

अनन्तनारायण की निम्नलिखित कृतियाँ प्राप्त होती है—

1 शृङ्गारसर्वस्व भाण

2. विष्णुसहस्रनाम की 'हरिभक्ति कामधेनु' टीका।

उपर्युक्त कृतियो मे से शृङ्गारसवस्व भाण की रचना कवि न कालीकट के जामोरिन राजा मानविक्रम के तथा हरिभक्तिकामधेनु टीका की रचना (कोचीन) के राजा रामवर्मा के आश्रय मे की थी।

शृङ्गारसर्वस्वभाण का प्रथम अभिनय राजा मानविक्रम के समक्ष तिरुनावाय नामक स्थान पर माघमहोत्सवयात्रा अर्थात् मामाङ्क महोत्सव के समय किया था। डॉ० के० कुञ्जुन्निराजा ने लिखा है कि अन्तिम मामाङ्क 1743 ई० मे होने के कारण यह निश्चित है कि इस भाण का निर्माण इस तिथि के पूर्व किया गया था। सम्भवत अनन्तनारायण का समय अट्ठारहवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध है।

शृङ्गारसर्वस्व भाण में नायक विट के दो मित्र एक सुन्दरी को वसन्ततिलक नामक व्यक्ति से विघटित कर नायक के साथ सघटित करते हैं। यह भाण अभी अप्रकाशित है। इसकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ गवर्नमेण्ट ओरिएण्टल मैनुस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी, मद्रास में मिलती हैं।

साम्बशिव

साम्बशिव के पिता का नाम कनकसभापति था। वे श्रीवत्सगोत्रीय ब्राह्मण थे। उनके गुरु श्रापद्दुद्धारणपुत्र स्वामिशास्त्री थे। वे गोपालसमुद्रग्राम (मद्रास राज्य के तिन्नेवेलि जिले के अन्तर्गत) में रहते थे।

साम्बशिव ने शृङ्गारविलास भाण की रचना की थी। यह भाण अभ अप्रकाशित है। इसकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ गवर्नमण्ट ओरिएण्टल लायब्रेरी, मैसूर तथा एक गवर्नमेण्ट ओरिएण्टल मैनुस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी, मद्रास में मिलती हैं।

शृङ्गारसर्वस्व भाण की मैसूर की हस्तलिखित प्रतियों में कवि के आश्रयदाता यवनसार्वभौम को नष्ट करने वाले, देवाजिमहाम्बा के पुत्र कृष्णमहाराज का उल्लेख है तथा मद्रास की हस्तलिखित प्रति की प्रस्तावना में कालीकट के जामोरिन राजा मानविक्रम को कवि का आश्रयदाता बताया गया है। इसमें यह स्पष्ट है कि कवि साम्बशिव मैसूर के राजा डाडा कृष्णराज वोडियार (1714–1732) तथा कालीकट के जामोरिन राजा मानविक्रम के आश्रित कवि थे। कालीकट के जामोरिन राजाओं में मानविक्रम नामक एक से अधिक राजा हुए हैं। डॉ० ई० कुञ्जुन्निराजा के अनुसार साम्बशिव के आश्रयदाता मानविक्रम उद्दण्डशास्त्री के आश्रयदाता मानविक्रम से अर्वाचीन हैं।

साम्बशिव को आच्चान दीक्षित भी कहा जाता था। डा० क० कुञ्जुन्नि राजा ने आच्चान दीक्षित के निम्नलिखित दो ग्रन्थों का उल्लेख किया है—(१) अन्योक्तिमाला तथा (2) आस्थानभूषण।

कविभूषण गोविन्द सामन्तराय

कविभूषण गोविन्द सामन्तराय के पिता का नाम रामचन्द्र सामन्तराय तथा पितामह का नाम विश्वनाथ सामन्तराय था। वे भारद्वाजगोत्रीय ब्राह्मण थे। वे अट्ठारहवीं शताब्दी के मध्य में उत्कल प्रदेश में खुर्द शासन के अधीन बाँकी राज्य में रहते थे।

गोविन्द सामन्तराय द्वारा विरचित निम्नलिखित तीन ग्रन्थ अब तक मिले हैं—

1 सूरिसर्वस्व

2 वीरसर्वस्व
3 समृद्धमाधवनाटक

समृद्धमाधव नाटक मे सात अङ्क हैं। इसमे श्रीकृष्ण और श्रीराधा की शृङ्गारित लीलाओ का वर्णन है। इसका प्रथम अभिनय वसन्तकाल मे जगन्नाथपुरी (उडीसा) के जगन्नाथ मन्दिर मे किया गया था।

यह नाटक अभी अप्रकाशित है। इस नाटक की एक हस्तलिखित प्रति एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता में मिलती है।

तिरुमल कवि

तिरुमलकवि का नाम तिरुमलनाथ अथवा त्रिमलनाथ था। उन्हे अय्यलनाथ भी कहा जाता था। उनके पिता का नाम बोम्मकण्ठि गङ्गाधर था।

तिरुमल के द्वारा विरचित 'कुहनाभैक्षव' नामक एक प्रहसन मिलता है। इस प्रहसन का प्रथम अभिनय भगवान् गोपीनाथ के वसन्तोत्सव के समय किया गया था। इस प्रहसन मे एक सन्यासी, अहमदखान नामक मुसलमान के अधिकार मे रहने वाली एक महिला से प्रणय करता है और उसे अपने शिष्य की सहायता से प्राप्त करता है।

कुहनाभैक्षव प्रहसन अभी अप्रकाशित है। इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ मद्रास मैसूर तथा वाराणसी के हस्तलिखितग्रन्थागारो मे मिलती है।

तिरुमल आन्ध्रप्रदेशीय ब्राह्मण थे। सम्भवत वे नृसिंह कवि 'अभिनव कालिदास' द्वारा उल्लिखित उनके मित्र आलूर तिरुमल कवि 'अभिनव भवभूति' हैं। आलूर तिरुमल मैसूर राज्य के सर्वाधिकारी नन्जराज (1739–59 ई०) के आश्रित कवि थे।

नारायणस्वामी

नारायणस्वामी के पिता का नाम मण्डोरुनारायण पण्डित था। नारायणस्वामी के गुरु नृसिंहसूरि को मैसूर राज्य के सर्वाधिकारी नन्जराज (1739–59ई०) का आश्रय प्राप्त था।

नारायणस्वामी की एक कृति अब तक प्राप्त हुई है। इसका नाम है—कैतवकलाचान्द्रभाण। इस भाण का प्रथम अभिनय श्रीरङ्गपत्तन मे वसन्त के समय किया गया था। इस भाण की प्रस्तावना मे नारायणस्वामी द्वारा विरचित चिन्तामणिदीक्षित–व्याख्यान का उल्लेख किया गया है। इससे सूचित होता है कि वे दर्शन शास्त्र के भी विद्वान् थे। नारायण स्वामी सरस कवि थे।

शेषगिरिकवि

शेषगिरिकवि के पिता का नाम शेषगिरीन्द्र तथा माता का नाम भागीरथी था। उनके एक पूर्वज अण्णयसुधी मैसूर के राजा के विश्वासपात्र मन्त्री थे। वे आन्ध्र प्रदेश में श्रीरालपल्ली नामक ग्राम के निवासी थे। वे श्रीवत्सगोत्रीय ब्राह्मण थे।

शषगिरीन्द्र प्रतिष्ठित विद्वान् थ। उन्होंने कर्णाटभाषा में महाभारत नामक नाटक की रचना की थी। वे मैसूर के राजा कृष्णराज द्वितीय (1734–66 ई०) को विद्याभ्यास करात थ।

शषगिरिकवि की दो रचनायें अब तक मिली हैं। इनके नाम हैं—शारदा तिलक भाण और कल्पनाकल्पक नाटक।

शारदातिलकभाण का प्रथम अभिनय श्रीरङ्गपत्तन म किया गया था। इस भाण का दृश्य श्रीरङ्गपत्तन म ह। कल्पनाकल्पक नाटक का प्रथम अभिनय श्रीरङ्गपत्तन में भगवान श्रीरङ्गनायक के चैत्रयात्रोत्सव के समय किया गया था।

शारदातिलकभाण तथा कल्पनाकल्पक नाटक अभी अप्रकाशित है। इन दोनो की हस्तलिखित प्रतिया ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीटयूट, मैसूर मे मिलती ह। सम्भवत इन दोनो रूपको की रचना अट्ठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध म की गई थी।

शेषगिरिकवि राज्यकार्यधुरन्धर होते हुए भी सरस कविता करत थे।

रामचन्द्रवेल्लाल

रामचन्द्र वेल्लाल क पिता का नाम चन्द्रशेखर वेल्लाल था। चन्द्रशेखर उच्चकोटि के कवि थे। रामचन्द्र को मैसूर के राजा कृष्णराज द्वितीय (1734–66 ई०) के सेनापति तथा मन्त्री देवराज का आश्रय प्राप्त था। देवराज वीरराज क पुत्र तथा सर्वाधिकारी नन्जराज के अग्रज थ।

रामचन्द्र वेल्लाल की दो कृतियाँ अब तक मिली है—

1 कृष्णविजय व्यायोग तथा
2. सरसकविकुलानन्द भाण।

कृष्णविजय व्यायोग का प्रथम अभिनय श्रीरङ्गनगरपरिवृढ भगवान् श्रीरङ्गनायक के शरदुत्सव क समय किया गया था। इस अभिनय के समय कवि के आश्रयदाता देवराज सभानायक थे। इस व्यायोग की वस्तु रुक्मिणीहरण की प्रसिद्ध

पौराणिक कथा है। यह व्यायोग मैसूर से कन्नड तथा आन्ध्रलिपियों मे पृथक् पृथक् रूप से प्रकाशित हो चुका है।

सरसकविकुलानन्द भाण का प्रथम अभिनय *वसन्त ऋतु मे श्रीपुरनायक शिव* के चैत्रयात्रामहोत्सव के समय किया गया था। इस भाण मे विट भुजङ्गशेखर का अपनी प्रेयसी कामलता के साथ समागम का वर्णन है। यह भाण आन्ध्रलिपि म मैसूर स प्रकाशिन हो चुका है।

भारतचन्द्रराय गुणाकर

भारतचन्द्र राय गुणाकर क पिता का नाम नारायण राय था। भारतचन्द्र का जन्म 1722 ई० म बगाल के हुगली जिल के परा वसन्तपुर नामक ग्राम मे हुआ था। उन्होंने सस्कृत, फारसी तथा बगाली भाषाओं का अध्ययन किया था। वे *नवद्वीप (नदिया, बगाल) के राजा कृष्णचन्द्र राय (1728–82 ई०) के सभापण्डित* थ। राजा कृष्णचन्द्र राय ने उन्हे गुणाकर की उपाधि स विभूषित किया था।

भारतचन्द्र न बङ्गभाषा म अनेक ग्रन्थो की रचना की। उनके चण्डी नाटक म सस्कृत, बगला तथा फारसी भाषाओं का प्रयोग किया गया ह। सूत्रधार सस्कृत म भाषण करता ह तथा नटी बगला मे। इस नाटक मे प्राकृत के स्थान पर बगला भाषा का प्रयोग किया गया है। इस नाटक म केवल तीन पात्र ह— चण्डी, महिषासुर और प्रजा। इसकी कथावस्तु चण्डी के द्वारा महिषासुर के वध किये जाने की पौरा-*णिक कथा ह। इस नाटक मे यत्र तत्र बगला-गीतो को निविष्ट किया गया है।* ये गीत विभिन्न रागों और तालों मे निर्मित किये गयेह और इनसे भारतचन्द्र का सङ्गीत-पाण्डित्य प्रकट होता है। इस नाटक में प्रयुक्त की गई बगला भाषा मे हिन्दी, सस्कृत तथा फारसी के अनेक शब्दो का प्रयोग किये जाने स वह कतिपय स्थलो पर दुरूह हो गई है। यह नाटक कलकत्ता मे प्रकाशित हो चुका है।

विद्यावागीश

विद्यावागीश क पिता का नाम आचार्य पञ्चानन था। विद्यावागीश की एक ही कृति अब तक उपलब्ध हुई है। इस कृति का नाम है—श्रीकृष्णप्रयाण नाटक।

श्रीकृष्णप्रयाणनाटक की रचना विद्यावागीश ने असम के आहोम राजा प्रमत्तसिंह (1744–51 ई०) के मन्त्री दुवारावंशी गङ्गाधर बडफुकन के आदेश स की थी। विद्यावागीश को मन्त्री गङ्गाधर बडफुकन का आश्रय प्राप्त था।

श्रीकृष्णप्रयाण नाटक की वस्तु महाभारत के उद्योगपर्व से ली गई है। इसमे

दो अङ्क हैं । इसमें श्रीकृष्ण पाण्डवों के दूत बनकर दुर्योधन को समझाने के लिये जाते हैं । वे दुर्योधन से कहते हैं कि तुम पाण्डवों का राज्यभाग उन्हें लौटा दो ।

श्रीकृष्णप्रयाण नाटक शङ्करदेव द्वारा प्रवर्तित अङ्कियानाट शैली में लिखा गया है । असमिया भाषा के गीतों के अन्तर्निविष्ट किये जाने से यह नाटक आकर्षक हो गया है । इस नाटक के विभिन्न पात्र संस्कृत में भाषण करते हैं । यह नाटक अभी अप्रकाशित है । इसकी एकमात्र हस्तलिखित प्रति उपेन्द्रचन्द्र लेखारु, वैष्णव इन्स्टीट्यूट, वृन्दावन के पास मिलती है ।

ईश्वर शर्मा

ईश्वर शर्मा केरलप्रदेश में बिम्बली नामक ग्राम में रहते थे । बिम्बली वर्तमान वटकुङ्कूर ग्राम है । ईश्वर शर्मा केरलप्रदेशीय नम्बूतिरी ब्राह्मण थे । उनके गुरु व्याघ्रदेशम नामक ग्राम के निवासी नम्बूतिरी ब्राह्मण थे ।

ईश्वर शर्मा ने अपने शृङ्गारसुन्दर भाण में एक स्थल पर गोश्री (कोचीन) के राजा अभिरामवर्मा का यशोगान किया है । इससे यह प्रतीत होता है कि वे कोचीन के राजा के आश्रित कवि थे । ईश्वर शर्मा का समय 1750 ई० के समीप है ।

ईश्वर शर्मा की केवल एक ही कृति प्राप्त होती है–शृङ्गारसुन्दरभाण । यह भाण त्रिवेन्द्रम् से प्रकाशित हो चुका है ।

शृङ्गारसुन्दरभाण का प्रथम अभिनय वसन्त ऋतु में कोचीन में हुआ था । इस भाण का दृश्य कोचीन में है । इस भाण में बिम्बलीदेश तथा उसकी गौणी नदी के तट पर स्थित मन्दिर का भी उल्लेख है । इस भाण में अभिराम नामक विट अपने मित्र भ्रमरक को उसकी प्रेयसी केशरमालिका से संघटित करता है ।

श्रीकान्त गणक

श्रीकान्तगणक 'श्रीभड्डुला' नाम से प्रसिद्ध थे । उनकी 'गणक' पदवी से यह प्रकट होता है कि वे ज्योतिषी थे । उनका समय अट्ठारहवीं शताब्दी का मध्य भाग है । वे गौरीस्वयंवर नाटिका के रचयिता लाल कवि के परवर्ती हैं । वे मिथिला में रहते थे ।

श्रीकान्त गणक द्वारा विरचित 'श्रीकृष्णजन्मरहस्य' नामक नाटक अब तक मिला है । इस नाटक की कथावस्तु विष्णुपुराण से ली गई है । इसमें श्रीकृष्ण के जन्म का वर्णन है । इसमें दो अङ्क हैं । यह मिथिला के कीर्तनिया नाटकों की परम्परा में लिखा गया है । इस नाटक में मैथिली भाषा के गीतों को अन्तर्निविष्ट किया गया है । यह नाटक इलाहाबाद से प्रकाशित हो चुका है ।

कर्ण जयानन्द

कर्ण जयानन्द मिथिला मे रहते थे। वे कर्णकायस्थ थे। ब्रजनाथसिंह 'विनोद' ने लिखा है कि कर्णजयानन्द की एक कविता से ज्ञात होता है कि वे मिथिला के राजा माधवसिंह (1776-1808 ई०) के समय मे विद्यमान थे। कर्णजयानन्द का समय अट्ठारहवी शताब्दी का अन्तिम भाग प्रतीत होता है।

कर्णजयानन्द की केवल एक ही कृति उपलब्ध हुई है—रुक्माङ्गद नाटक। इस नाटक मे रुक्माङ्गद के चरित का वर्णन है। यह कीर्तनिया नाटक है। इसमे संस्कृत, प्राकृत तथा मैथिली भाषाओं का प्रयोग किया गया है।

रुक्माङ्गद नाटक अभी अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति अनन्त लाल पाठक, करान, बलहर (दरभंगा) के पास है।

धर्मदेव गोस्वामी

धर्मदेव गोस्वामी को असम के आहोम राजा लक्ष्मीसिंह (1769-80 ई०) का आश्रय प्राप्त था। वे असम में कँहुती सत्र में रहते थे। उन्होंने संस्कृत मे निम्नलिखित तीन कृतियों की रचना की—

1 धर्मोदय नाटक 2 धर्मोदय काव्य तथा 3 नरकासुरविजय काव्य।

धर्मोदय नाटक प्रतीकात्मक है। इसकी रचना कवि ने 1770 ई० में की थी। इसका प्रथम अभिनय आहोम राजाओं की राजधानी रङ्गपुर मे 1770 ई० मे मोआमडिया विद्रोह के पश्चात् राजा लक्ष्मीसिंह के पुन राज्याभिषेक के अवसर पर राज्यसभा मे किया गया था। इस नाटक की वस्तु ऐतिहासिक है। इसमे राजा लक्ष्मीसिंह के शासन काल मे हुए मोआमडिया विद्रोह का वर्णन है। राजभक्त कवि ने अधर्म के प्रतीक मोआमडियाओं की पराजय तथा धर्म के प्रतीक राजा लक्ष्मीसिंह की विजय का इस नाटक में सुन्दर वर्णन किया है।

धर्मोदय नाटक अभी अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति संस्कृत सञ्जीविनी सभा, नालवाडी, असम मे मिलती है।

नरसिंह मिश्र

नरसिंह मिश्र को उत्कल प्रदेश मे मयूरभञ्ज के निकट केओंझर के राजा बलभद्रभञ्ज (1764-92 ई) का आश्रय प्राप्त था। वे उत्कल प्रदेश मे रहते थे।

नरसिंह मिश्र की केवल एक ही कृति अब तक मिली है। इसका नाम है—भञ्जमहोदय अथवा शिवनारायणभञ्जमहोदय नाटिका। इसमे केओंझर के राजा

शिवनारायण भञ्ज के उपदेशो का वर्णन है। इसमे पाँच अङ्क है। प्रत्येक अङ्क का इसमे 'लोक' कहा गया है। इसके पञ्चमाङ्क का नाम 'जीवन्मुक्तिप्रतिपादन' है। इसका प्रथम अभिनय उत्कल प्रदेश के पुरुषोत्तमक्षेत्र (जगन्नाथपुरी) मे वसन्त ऋतु मे किया गया था।

शिवनारायण भञ्जमहोदय अभी अप्रकाशित है। इसमें पाँच अङ्क होने के कारण यह एक नाटक है, नाटिका नही। इस नाटक की एक हस्तलिखित प्रति उत्कल प्रदेश मे पुरी जिले मे दामोदरपुर के प गोपीनाथ मिश्र के पास मिलती है।

वेङ्कटाचार्य द्वितीय

वेङ्कटाचार्य द्वितीय के पिता का नाम श्रीनिवास तातार्य तथा माता का नाम वेङ्कटाम्बा था। वे आन्ध्रप्रदेशीय ब्राह्मण थे। वे सुरपुरम् के बुक्कपट्टण परिवार में उत्पन्न हुए थे। वे श्रीशैलवशीय थे। उनका गोत्र शठमर्षण था। उनके गुरु का नाम वेङ्कटदेशिक था। सुरपुरम् आन्ध्रप्रदेश के गुलबर्ग जिले मे स्थित है। वेङ्कटाचार्य द्वितीय का समय अट्ठारहवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। वे दर्शनशास्त्र के विद्वान् थे।

वेङ्कटाचार्य द्वितीय की निम्नलिखित कृतियाँ प्राप्त हुई है—

(1) अमृतमन्थन नाटक (2) सिद्धान्त रत्नावली
(3) सिद्धान्तवैजयन्ती (4) जगन्मिथ्यात्वखण्डन
(3) देशिक अष्टोत्तरशतनाम स्तोत्र (6) आनन्दतारतम्यखण्डन।

अमृतमन्थन नाटक मे पाँच अङ्क हैं। इसकी वस्तु समुद्रमन्थन की प्रसिद्ध पौराणिक कथा है। यह नाटक अभी अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, मैसूर मे मिलती है।

अण्णयाचार्य द्वितीय

अण्णयाचार्य द्वितीय वेङ्कटाचार्य द्वितीय के अनुज थे। वे श्रीनिवासाचार्य द्वितीय के ज्येष्ठ भ्राता थे। वे श्रीनिवास तातार्य तथा वेङ्कटाम्बा के पुत्र थे। उन्होंने कौण्डिन्य श्रीनिवास तथा वेङ्कटाचार्य द्वितीय से शिक्षा प्राप्त की थी।

अण्णयाचार्य द्वितीय की निम्नलिखित कृतियाँ प्राप्त होती है—

1. रसोद्धार अथवा सरसोदार माण 2. मुक्तौ आनन्दतारतम्य-खण्डन 3 तत्त्वगुणादर्शचम्पू 4. व्यावहारिकत्वखण्डनसार 5. आचार्यविंशति 6. अभिनववर्णामृत 7. पष्ठ्यर्थदर्पण।

श्रीनिवासाचार्य द्वितीय

श्रीनिवासाचार्य द्वितीय वेङ्कटाचार्य द्वितीय तथा अण्णयाचार्य द्वितीय के छोटे भाई थे। वे अण्णयादेशिक के पौत्र तथा श्रीनिवास तातार्य के पुत्र थे। उनके अग्रज अण्णयाचार्य द्वितीय उनके गुरु थे। वे सुरपुरम के कौशलवंशीय राजा राघव के पुत्र वेङ्कट (1773 1802) के गुरु थे।

श्रीनिवासाचार्य द्वितीय द्वारा विरचित निम्नलिखित ग्रन्थ अब तक मिले हैं—
1. *कल्याणराघव नाटक* 2 *तत्त्वमार्तण्ड* 3 *प्रणाधिकरणमञ्जरी अथवा* प्रणाधिकरण-सरणी-विवरणी 4 ग्रोद्धारवादार्य अथवा नयमणिकलिका 5 जिज्ञासादर्पण 6 ज्ञानरत्नप्रकाशिका 7 नाटयदर्पण 8 पञ्चतत्त्ववादिनीयास 9 प्रणवदर्पण 10 भेददर्पण 11 विरोधनिरोध अथवा भाष्यपादुका 12. *विरोध-वरूथिनी प्रमथिनी* 13 दर्पण 14 *नयद्युमणि तथा* उसकी दीपिका 15 *प्रधान-प्रतितन्त्रदर्पण* 16 *सिद्धान्तचिन्तामणि* 17 *दत्तरत्नप्रदीपिका* 18 मुक्तिदीपिका अथवा ग्रहणमुक्तिदीपिका 19 नीतिशतक 20 सुभाषितसग्रह 21 हरिमणिदर्पण।

कल्याणराघवनाटक म सात अङ्क हैं। इसकी वस्तु सीता और राम का विवाह है। यह वस्तु रामायण स ली गई है। यह नाटक अभी अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, मैसूर में मिलती है।

वुच्चि वेङ्कटाचार्य अथवा वेङ्कटाचार्य चतुर्थ

वुच्चि वेङ्कटाचार्य के पिता अण्णयाचार्य द्वितीय थ। उनके ज्येष्ठ भ्राता थ—श्रीनिवासाचार्य तृतीय तथा वेङ्कटाचार्य तृतीय। उनका समय अट्ठारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है।

वुच्चि वेङ्कटाचार्य द्वारा विरचित निम्नलिखित ग्रन्थ अब तक मिले हैं—

1 कल्याणपुरञ्जन नाटक 2 वेदान्तकारकावली
3 विष्णुसप्तविभक्तिस्तोत्र।

कल्याणपुरञ्जन नाटक म दो अङ्क हैं। इसकी वस्तु पुरञ्जन का विवाह है। इस नाटक की रचना कवि ने राजा तिरुमलराय के पुत्र राजा सोम के लिये की थी।

कौण्डिन्य वेङ्कट

कौण्डिन्य वेङ्कट के पिता का नाम वेदान्ताचार्य तथा माता का नाम अवकाम्बा था। उनके पितामह सम्पदाचार्य तथा पितामह के अग्रज आचार्य

दीक्षित थे। उनके प्रपितामह ग्रहोबिलाचार्य थे। वे कौण्डिन्यगोत्रीय ब्राह्मण थे। उनके गुरु श्रीनिवासाध्वरी थे। इन श्रीनिवासाध्वरी का तादात्म्य अण्णयाचार्य द्वितीय तथा श्रीनिवासाचार्य द्वितीय के गुरु कौण्डिन्य श्रीनिवास से किया गया है। इसी आधार पर कौण्डिन्य वेङ्कट का समय अट्ठारहवीं शताब्दी का अन्तिम भाग माना गया है।

कौण्डिन्य वेङ्कट की केवल एक ही कृति प्राप्त हुई है—रसिकजनरसोल्लास-भाण। यह भाण अभी अप्रकाशित है। इसकी हस्तलिखित प्रतियां गवर्नमेण्ट ओरिएण्टल मैनुस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी, मद्रास तथा ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, मैसूर तथा सरस्वतीभण्डार, मैसूर में मिलती हैं।

रसिकजनरसोल्लास भाण का प्रथम अभिनय वेङ्कटाद्रिनगर में भगवान् श्रीनिवास के समक्ष किया गया था।

अहोबिल नृसिंह

अहोबिल नृसिंह के पिता का नाम रामकृष्ण तथा पितामह का नाम नारायणसूरि था। उन्हें मैसूर के राजा कृष्णराज वोडेयार द्वितीय (1732-60 ई.) तथा चामराज वोडेयार (1760-76 ई) का आश्रय प्राप्त था। उनका समय अट्ठारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है।

अहोबिल नृसिंह की निम्नलिखित कृतियां अब तक प्राप्त हुई हैं—

1 नलविलास नाटक 2 अभिनवकादम्बरी अथवा त्रिमूर्तिकल्याण।

नलविलास नाटक में छ अङ्क हैं। इसकी वस्तु राजा नल तथा दमयन्ती की कथा है। इस नाटक का प्रथम अभिनय मैसूर के राजा चामराज वोडेयार (1760-76 ई.) के शासनकाल में नवरात्र महोत्सव के समय किया गया था।

नलविलासनाटक अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, मैसूर में मिलती है।

रघुनाथ सूरि

रघुनाथ सूरि मैसूर में रहते थे। वे कौशिकगोत्रीय ब्राह्मण थे। उनके पिता का नाम श्रीशैलनाथ सूरि था। उन्होंने अपनी गुरुपरम्परा में ब्रह्मतन्त्रघण्टावतार परकालमहादेशिक, रघुमार्य, सज्जयार्य, गोपालार्य, सदारि तथा रामानुज महादेशिक का उल्लेख किया है। डॉ. वी राघवन् ने रघुनाथसूरि के अन्य गुरु श्रीनिवास का उल्लेख किया है। रघुनाथ सूरि वैष्णव थे।

रघुनाथसूरि तन्त्र तथा साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उनकी निम्नलिखित दो कृतियाँ प्राप्त हुई हैं—1 प्रमावत नाटक तथा 2. इन्दिराभ्युदय चम्पू।

प्रभावत नाटक मे सात अङ्क हैं। इसका प्रथम अभिनय रङ्गनाथ की महोत्सवयात्रा के समय किया था। यह शृङ्गारप्रधान नाटक है।

प्रभावत नाटक अप्रकाशित है। इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, मैसूर तथा सरस्वती भण्डार, मैसूर म मिलती हैं। प्रभावत नाटक मे कथावस्तु का प्रतिपादन नाटय-लक्षणों के अनुसार किया गया है।

रामकृष्ण

रामकृष्ण को अभिनव-भवभूति कहा जाता है। व वत्सगोत्रीय ब्राह्मण थे। उनके प्रपितामह का नाम जगन्नाथ भट्टारक, पितामह का नाम वेङ्कटाद्रि भट्टारक तथा पिता का नाम तिरुमल भट्टारक था।

रामकृष्ण न भवभूति के उत्तररामचरित के आधार पर उत्तरचरित नाटक की रचना की थी। उत्तररामचरित के उत्तरकालीन जीवन की घटनाओं पर आश्रित है। यह नाटक अभी अप्रकाशित है। इसकी हस्तलिखित प्रति का उल्लेख हुल्श ने अपनी ग्रन्थसूची मे किया है। एम० कृष्णमाचार्य ने उत्तर-रामचरित नाटक का उल्लेख करते हुए इसका रचनाकाल सत्रहवीं शताब्दी बताया है।

नन्दीपति

नन्दीपति का जन्म मिथिला के बड़िया ग्राम मे पुगौरीवश म हुआ था। उनके पिता कृष्णपति, पितामह हरिपति तथा प्रपितामह रघुपति थे। नन्दीपति का वंश अपनी विद्वत्ता के लिये प्रसिद्ध था। नन्दीपति का समय सत्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना गया है।

नन्दीपति नाटककार तथा गीतकार दोनो ही रूपों मे प्रसिद्ध हैं। नन्दीपति ने निम्नलिखित रूपकों की रचना की थी—

1. कृष्णकेलिमाला 2 कदम्बकेलिमाला 3. रुक्मिणीस्वयवर अथवा रुक्मिणीहरण।

उपर्युक्त रूपकों मे से केवल कृष्णकेलिमाला ही अब तक मिला है। यह प्रकाशित है। नन्दीपति के गीतों को सकलित कर रामदेव झा ने 'नन्दीपति गीतिमाला' के नाम से प्रकाशित किया है।

कृष्णकेलिमाला मे चार अङ्क है। इसमे श्रीकृष्ण के जन्म तथा बालक्रीडाओं का वर्णन है।

कृष्णदास

कृष्णदास केरल प्रदेश म रहते थे। वे विष्णु के उपासक थे। एम कृष्णमाचार्य ने कृष्णदास का समय अट्ठारहवी शताब्दी का अन्तिम भाग बताया।

कृष्णदास की केवल एक ही कृति अब तक मिली है। इसका नाम है—कलावतीकामरूप नाटक। यह नाटक अभी अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति गवर्नमेण्ट ओरिएण्टल मैनुस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी, मद्रास मे मिलती है।

कलावतीकामरूप नाटक के चार अङ्क पूरे तथा पांचवें अङ्क का केवल कुछ भाग ही मिलता है। इस नाटक का प्रथम अभिनय केरल मे भगवान् विट्ठल के वसन्तकालीन यात्रामहोत्सव के समय किया गया था। इसमे राजा कामरूप तथा कलावती के प्रणय और विवाह का वर्णन है।

रङ्गनाथ

रङ्गनाथ द्रविडदश के निवासी थे। वे तमिल ब्राह्मण थे। वे ताम्रपर्णी नदी के तट पर स्थित एक ग्राम मे रहते थे। वे वेदो और शास्त्रो के पण्डित थे। उनकी केवल एक ही कृति अब तक मिली है। यह कृति है—दमयन्तीकल्याण नाटक। यह नाटक अभी अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति गवर्नमेण्ट ओरिएण्टल मेनुस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी मद्रास तथा दूसरी हस्तलिखित प्रति यूनिवर्सिटी मैनुस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी, त्रिवेन्द्रम् मे मिलती है। ये दोनो ही प्रतियाँ अपूर्ण हैं। इनमे प्रथम अङ्क पूर्ण तथा द्वितीय अङ्क का केवल कुछ ही भाग मिलता है। सम्भवतः रङ्गनाथ त्रावणकोर के राजा कात्तिक तिरुणाल रामवर्मा (1756-98 ई) के समकालीन कवि थे। रङ्गनाथ का समय अट्ठारहवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध है।

दमयन्तीकल्याण नाटक का प्रथम अभिनय केरल प्रदेश मे शुचीन्द्रम् के शिवमन्दिर मे शिव के वसन्तोत्सव के समय किया गया था। इस नाटक मे राजा नल और दमयन्ती के प्रणय और विवाह का वर्णन है।

गोपीनाथ चक्रवर्ती

गोपीनाथ चक्रवर्ती ब्राह्मण थे। उनकी केवल एक कृति उपलब्ध है—कौतुकसर्वस्व प्रहसन। यह कलकत्ता से प्रकाशित हो चुका है। इस प्रहसन की

इण्डिया आफिस लायब्रेरी, लन्दन में प्राप्त हस्तलिखित प्रति के आधार पर गोपीनाथ चक्रवर्ती का समय अट्ठारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध निश्चित किया जा सकता है।

कौतुकसर्वस्व प्रहसन का प्रथम अभिनय बंगाल में शरत्कालीन दुर्गापूजा के समय किया गया था। दुर्गापूजा बंगाल की अर्वाचीन प्रथा होने के कारण कौतुकसर्वस्व भी एक अर्वाचीन कृति है।

कौतुकसर्वस्व प्रहसन में दो अङ्क हैं। इसमें धर्मनाशपुर के राजा कलिवत्सल, मन्त्री शिष्टान्तक, पुरोहित धर्मानल, अनुयायी अनृतसर्वस्व तथा पण्डितपीडाविशारद, सभासद् कुकर्मपञ्चानन तथा प्रमत्तपणेन्वर और सेनापति रणजम्बुक के हास्यास्पद चरित का वर्णन है।

———

परिशिष्ट 2

अट्ठारहवीं शताब्दी के वर्गीकृत रूपक

नाटक

1 पुरञ्जनचरित
2 कुवलयाश्वीय
3 जीवानन्दन
4 विद्यापरिणय
5 जीवन्मुक्तिकल्याण
6 कान्तिमतीपरिणय
7 सेवन्तिकापरिणय
8 वसुमतीपरिणय
9 रतिमन्मथ
10 कुमारविजय
11 बालमार्तण्डविजय
12 गोविन्दवल्लभ
13 राजविजय
14 सीताराघव
15 रुक्मिणीपरिणय
16 विवेकचन्द्रोदय
17 विवेकमिहिर
18 कलानन्दक
19 प्रमुदितगोविन्द
20 शिवलिङ्गसूर्योदय
21 राघवानन्द
22 नीलापरिणय
23 सभापतिविलास
24 लक्ष्मीदेवनारायणीय
25 प्रद्युम्नविजय
26 पूर्णपुरुषार्थचन्द्रोदय
27 अनुमितिपरिणय
28 लक्ष्मीकल्याण
29 वसुलक्ष्मीकल्याण (वेङ्कटाध्वरिकृत)
30 वसुलक्ष्मीकल्याण (सदाशिवकृत)
31 प्रभावतीपरिणय
32 शृङ्गारतरङ्गिणी
33 चन्द्राभिषेक
34 मधुरानिरुद्ध
35 प्रचण्डराहूदय
36 भाग्यमहोदय
37 दमयन्तीकल्याण
38 भर्तृहरिनिर्वेद
39 शृङ्गारमञ्जरीशाहराजीयम्
40 कुशलवविजय
41 कलावतीकामरूप
42 मिथ्याज्ञानखण्डन
43 राधामाधव
44 चन्द्रकलाकल्याण

प्रतीक नाटक

1 जीवानन्दन
2 विद्यापरिणय
3 जीवन्मुक्तिकल्याण
4. पुरञ्जनचरित
5 विवेकचन्द्रोदय
6 विवेकमिहिर
7. शिवलिङ्गसूर्योदय
8 पूर्णपुरुषार्थचन्द्रोदय
9 अनुमतिपरिणय
10 प्रचण्डराहूदय
11 भाग्यमहोदय
12. मिथ्याज्ञानखण्डन

ऐतिहासिक रूपक

1 कान्तिमतीपरिणय
2 सवन्तिकापरिणय
3 बालमार्तण्डविजय
4 राजविजय
5 लक्ष्मीदेवनारायणीय
6 वसुलक्ष्मीकल्याण
7 चन्द्राभिषेक
8 भाग्यमहोदय
9 भञ्जमहोदय
10 लक्ष्मीकल्याण
11 जयरत्नाकर
12 शृङ्गारमञ्जरीशाहराजीय
13 चन्द्रिकलाकल्याण

भाण

1 अनङ्गविजय
2 मदनसञ्जीवन
3 मुकुन्दानन्द
4. कामविलास
5 शृङ्गारसुधाकर
6 शृङ्गारसुन्दर
7 सरसकविकुलानन्द
8 मदनभूषण
9 रसिकतिलक

प्रहसन

1 उन्मत्तकविकलश
2 चण्डानुरञ्जन
3 मदनकेतुचरित
4 कुक्षिम्भरभैक्षव
5 हास्यार्णव
6 कौतुकसर्वस्व
7 भानुप्रबन्ध

डिम

1 महेन्द्रविजय
2. श्रीकृष्णविजय

व्यायोग

1. वीरराघव
2. श्रीकृष्णविजय

समवकार

1. लक्ष्मीस्वयंवर अथवा विबुधदानव

वीथी

1. लीलावती
2. चन्द्रिका
3. सीताकल्याण

अङ्क

1. रुक्मिणी-माधव

ईहामृग

1. उर्वशीसार्वभौम

नाटिका

1. नवमालिका
2. मणिमाला
3. मलयजाकल्याण

सट्टक

1. आनन्दसुन्दरी
2. शृङ्गारमञ्जरी

उपरूपक

1. रासगोष्ठी

गद्यरूपक

1. कृष्णलीलातरङ्गिणी
2. विगीति

यक्षगान शैली के रूपक

1. चन्द्रशेखरविलास
2. पञ्चमायाविलास

असमिया अंकियानाट शैली के रूपक

1. कामकुमारहरण
2. विघ्नेशजन्मोदय
3. श्रीकृष्णप्रयाण
4. धर्मोदय

कीर्तनिया नाटक

1. पारिजातहरण
2. रुक्मिणीपरिणय
3. गौरीस्वयंवर
4. कृष्णकेलिमाला
5. श्रीकृष्णजन्मरहस्य

नवीन शैलियों के रूपक

1. नवग्रहचरित
2. डमरुक
3. कणकुतूहल
4. सान्द्रकुतूहल
5. नाटकानुकारि षड्भाषामय पत्र
6. आनन्दलतिका
7. विद्वन्मोदतरङ्गिणी
8. मन्त्रमहोदय
9. चित्रयज्ञ
10. चण्डी
11. जयरत्नाकर

छाया नाटक

1. विट्ठलकृत

———

सहायक ग्रन्थ सूची

'हिन्दी पुस्तकें'

1 अग्रवाल, डा० श्रीमती सरोज — प्रबोधचन्द्रोदय और उसकी हिन्दी परम्परा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 1962

2 उपाध्याय, आचार्य बलदेव — संस्कृत साहित्य का इतिहास (सप्तम संस्करण) शारदा मन्दिर वाराणसी, 1965

3. „ , महाकवि भास, एक अध्ययन, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1965

4 उपाध्याय, डा० रामजी — संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, इलाहाबाद, 1961

5. , , — मध्यकालीन संस्कृत-नाटक, संस्कृत परिषद्, सागर विश्वविद्यालय, सागर, 1974

6 ओझा, डा० दशरथ — नाट्य-समीक्षा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, देहली

7 कविराज, म०म०गोपीनाथ — काशी की सारस्वत साधना, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् पटना, प्रथम संस्करण, 2021 विक्रमाब्द

8. गैरोला, वाचस्पति — अक्षर अमर रहें, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1959

9 चतुर्वेदी, सीताराम — समीक्षा-शास्त्र, अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी, वि० 2020

10 जैन डा० जगदीश चन्द्र — प्राकृत साहित्य का इतिहास, वाराणसी, 1961

11 झा० म०म० परमेश्वर — मिथिला तत्त्वविमर्श दरभङ्गा 1949

12 नगेन्द्र, (सम्पादक) — भारतीय नाट्य-साहित्य, सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रन्थ, दिल्ली 1956

13 पुरोहित डा० शान्ति गोपाल — हिन्दी नाटकों का विकासात्मक अध्ययन साहित्य सदन देहरादून, 1964

14 भरतिया कान्तिकिशोर — संस्कृत नाटककार प्रयाग, 1959

15 महापात्र केदारनाथ — उड़िसा में संस्कृत साहित्य, राष्ट्रभाषा रजत जयन्ती ग्रन्थ में प्रकाशित लेख, उत्कल प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, कटक

16 मोतीचन्द्र, डा० — काशी का इतिहास हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर बम्बई 1962

17 मिश्र म०म० डा० उमेश — मैथिली भाषा और साहित्य बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् द्वारा पञ्च दशलोकभाषा निबन्धावली में प्रकाशित लेख

18 रसाल डा०रामशंकर शुक्ल — हिन्दी साहित्य का इतिहास, राय साहब रामदयाल अगरवाला इलाहबाद 1931

19 राय डा० गङ्गासागर — महाकवि भवभूति चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 1965

20. वरदाचार्य, प्रो० — संस्कृत साहित्य का इतिहास, कपिलदेव द्विवेदी द्वारा मूल अंग्रेजी से हिन्दी में अनूदित, इलाहाबाद

21 विनोद, बैजनाथ सिंह — मैथिली साहित्य (संक्षिप्त परिचय) अजन्ता प्रेस, पटना–4

22 सनाढ्य डॉ० देवर्षि — हिन्दी के पौराणिक नाटक, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1961

23 सहाय, शिवपूजन — हिन्दी साहित्य और बिहार, बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद्, पटना

24 सहाय प्रो०शिवपूजन तथा अन्य (सम्पादक) — जयन्ती स्मारक ग्रन्थ, श्रीरामलोचनशरण बिहारी की स्वर्ण जयन्ती पुस्तक भण्डार की रजत जयन्ती, पटना, 1942

25 श्रीकृष्णदास — हमारी नाट्य परम्परा, साहित्यकार संसद्, इलाहाबाद 1956

मराठी पुस्तक

1 वर्णेकर, डा० श्रीधर भास्कर — अर्वाचीन संस्कृत साहित्य, नागपुर, 1963

कन्नड पुस्तकें

1 नरसिंहाचार्य, आर०, — कर्णाटक–कविचरितम् वाल्यूम 3 बंगलौर, 1929

2 आयंगर, एम०एन० श्रीनिवास — संस्कृतकविचरिते, वाल्यूम 3

मलयालम् पुस्तक

1 एय्यर उल्लूर एस०परमेश्वर — केरल साहित्यचरित्रम् (भाग 1–5) त्रिवेन्द्रम्

संस्कृत पुस्तकें

1. कालिदास — अभिज्ञानशाकुन्तल
— विक्रमोर्वशीय

— मेघदूत
— कुमारसम्भव

2 धनञ्जय — दशरूपक
3 भट्टनारायण — वेणीसंहार
4 भर्तृहरि — नीतिशतक
5 भरत — नाट्यशास्त्र
6 भवभूति — उत्तररामचरित
7 मम्मट — काव्यप्रकाश
8 वाल्मीकि — रामायण
9 विश्वनाथ — साहित्यदर्पण
10 विशाखदत्त — मुद्राराक्षस
11 वेदव्यास — महाभारत

पुराण

1 भागवत पुराण (श्रीमद्भागवत)
2 विष्णुपुराण
3 पद्मपुराण
4 विष्णुधर्मोत्तरपुराण
5 मत्स्यपुराण
6 कूर्मपुराण
7 ब्रह्माण्डपुराण
8 स्कन्द महापुराण
9 वायुपुराण
10 ब्रह्माण्डपुराण
11 ब्रह्मवैवर्तपुराण
12 आदिपुराण
13 मार्कण्डेयपुराण
14 देवीभागवत
15 हरिवंश, विष्णुपर्व

ENGLISH BOOKS

1 *Bamzai* P N K — A History of Kashmir Metropolitan Book Company, 1962

2 Bhatt S C — Drama in ancient India, New Delhi *1961*

3 Bhattacharya D C — History of Navya-Nyaya in Mithila Darbhanga 1958

4 Chandrasekharan K — Sanskrit Literature The International Book House Limited, Bombay 1951

5 Chakravarti, M D — A short History of Sanskrit Literature Calcutta, 1936

6 Choudhary, Dr J B — 'Some unknow or less known Sanskrit poets discovered from the Subhashita sarasamuchchaya' published in B C. Law volume part II Poona 1946

7 „ — History of Duta-Kavyas of Bengal (Prachyavani Research series Vol 5) Calcutta 1953

8 Dasgupta H N — The Indian Stage

9 De Dr S K — History of Sanskrit literature, University of Calcutta 1947

10 „ — Aspects of Sanskrit Literature, Calcutta, 1959

11 „ — History of Sanskrit poetics, second revised edition, Calcutta, 1960.

12 Devasthali G V — Jagannatha pandita alias Umanandanatha published in Dr C Kunhanraza presentation volume, Adyar Library, Madras 1946

13 Dikshit, Dr Ratnamayidevi — Women in Sanskrit dramas Meharchand Lachhaman Das, Delhi 1964

14 Diwakar, K R (Ed) — Bihar through the ages Orient Longmans, Delhi, 1958

15 Dutt, K K — Bengal Suba Vol I

16 „ „ — Survey of India's social life and economic condition in the eighteenth century, Calcutta, 1961

17 Dutt R C — India under early British rule

18 Hickey, William — The *Tanjore Maratha principality in Southern India, the land of Chola, the Eden of the south*, Madras 1874

19 Horrwitz, E. P — *The Indian theatre, a brief survey of the Sanskrit drama*, Bombay, 1912

20 Hunter — Orissa Vol II

21 Indushekhar — Sanskrit drama, its origin and decline, Leiden 1960

22 Irwin William — Later Mughals, Vol I

23 Jagirdar R V — *Drama in Sanskrit literature*, Bombay 1947

24 John, Dowson — A classical dictionary of Hindu Mythology Routledge and Kegan paul, London, 1953

25 Josyer, G R — History of Mysore and the Yadava dynasty

26 Keith, A B — History of Classical Sanskrit literature Y M C A Publishing House *Calcutta*, 1936

27. , — The *Sanskrit drama in its origin*, development, theory and practice, Oxford University Press, London, 1954

28 Krishnamachariar, M — History of Classical Sanskrit literature, Madras 1937

29 Macdonell A A — A history of Sanskrit literature *Fifth edition*, Delhi, 1958

30 Majumdar, R. C. Raichoudhari, H C Dutt, K K — An advanced history of India, London 1946

31 Martin — Eastern India Vol II

32 Mishra Dr H R — Theory of rasa in Sanskrit drama with a comparative study of general dramatic literature Vindhyachal prakasan, Chhatarpur 1964

33 Mishra Dr J K — History of Maithili litearture, Vol I, Tirbhukti publications Allahabad, 1949

34 Mankad, D R — The types of Sanskrit drama Karachi 1936

35 Raghavan, Dr V — The number of Rasas, Adyar Library Adyar, 1940

36 „ — Sanskrit literature, published in the 'Contemporary Indian literature a Symposium, New Delhi

37 , (Ed) — Safrendra Vilasa of Sridhar Venkatesa (Tanjore Saraswati Mahal Series No 54) Tanzore, 1952 Introduction pp 1-76

38. Ray, R B — Orissa under Marathas (1751-1803) Kitab Mahal, Allahabad

39. Raja Dr C Kunhan — Survey of Sanskrit literature Bharatiya Vidya Bhawan, Bombay, 1960

40 Raja, Dr K K — *The* contribution of *Kerala to Sanskrit* literature, University of Madras, 1958

41. Rao, C Hayavadana — Mysore gazetteer compiled for Government, Vol II Historical part I New edition, Banglore, 1930

42 Sarma, Dr. E R S (Ed)—Rūpaka-Samiksā, Sri Venkatesvara *University, Tirupati, 1964*

43 Sarkar Sir Jadunath — Fall of the Mughal empire Calcutta 1932

44 Sarkar Dr S C and Dutt Dr K K — *Modern Indian History Allahabad* 1942

45 Sastri V A Ramaswami — Jagannatha Pandita (Annamalai Sanskrit Series No 8) *Annamalai Nagar* 1944

46 Shastri Gaurinath — A concise History of Classical Sanskrit literature Oxford University Press Calcutta 1960

47 Sen Dr S N — Administrative System of the Marathas *Calcutta* 1925

48 (Ed) — *Mahamahopadhyaya Prof* D V Potdar Sixty first birth day commemoration volume Poona 1950

49 Schuyler Montogomery Jr A M — A Bibliography of Sanskrit drama with an introductory Sketch of the *dramatic literature of India* The Columbia University Press New York 1906

50 Srinivasan C K — *Maratha Rule in Carnatic (Annamalai University Historical series No 5) Annamalainagar* 1944

51 Subramaniam K R — The Maratha Rajas of Tanjore Madras 1928

52 Singh S N — History of Tirhut from the earliest times to the end of the nineteenth century Calcutta 1922

53 Sirdesai D R Naik S R and Vyas Dr K C — India through the Ages Allied Publishers Bombay 1972

54 Vidyabhushana S C — History of Indian Logic

55 Wilson H H — Select specimens of the theatre of Hindus, Vol II (Second edition), 1835

56 , — Dramas or a Complete account of the Dramatic literature of the Hindus, Chowkhamba Sanskrit series office, Varanasi, Second edition Varanasi 1962

57 — The Theatre of the Hindus Calcutta 1955

58 Winternitz M — History of Indian literature Vol III, pt I (Classical Sanskit literature translated from the German with addition by Subhadra Jha Motilal *Banarasi Dass Varanasi, 1963*

59 *Wills M* — *History of Mysore*

CATALOGUES

1 Descriptive Catalogue of the Government Collections of manuscripts deposited at the Bhandarkar Oriental Research institute Poona, compiled by P K Gode, Vol XIV *Nataka, Poona,* 1937

2 A Catalogue of manuscripts in the library of H H the Maharana of Udaipur (Mewar), Itihasa Karyalaya, Udaipur (Mewar), *Rajputana* 1943

3 Catalogue of Sanskrit manuscripts in the Government Oriental library, Mysore Mysore 1922

4. A supplemental catalogue of manuscripts secured for the Government Oriental library, Mysore during 1923 28, Supplement No 1, Mysore, 1928

5 – do – during 1929-41, Supplement No II, Mysore

6 A supplemental catalogue of manuscripts second for the Oriental Research Institute Mysore during 1941-1954

7 Catalogue of Sanskrit manuscripts in Mysore and Coorg by Lewis Rice Banglore 1884

8 An alphabet cal index of Sanskr t manuscripts in the Government Or ental manuscripts l brary Madras by S *Kuppuswami Sastri and P P Subrahmanya Sastri Part* 1 Madras 1938 Part II Madras 1940 Part III Madras 1942

9 Triennial Catalogues of manuscripts for the Government Oriental Manuscripts Library Madras Volumes I IX

10 A descriptive catalogue of the Sanskrit manuscripts In *the Government Oriental Manuscripts Library Madras* by S Kuppuswami Sastri Vol XXI Kavyas Madras 1918

11 Lists of Sanskrit manuscripts in private libraries of Sou thern India Compiled arranged and indexed by Gustav oppert *Vol I Madras 1880 Vol II Madras 1885*

12 Reports on Sanskrit manuscripts in Southern India by *E Hultzsch Nos I to III Madras 1895 1896 and 1905*

13 *Catalogues of manuscripts in the Adyar library Madras*

14 A *descriptive Catalogue of* Sanskrit *manuscripts in the* Tanjore Maharaja Serfoji s Saraswati Mahal Library Tanjore by P P S Sastri Vol VIII Natakas Srirangam *1930 Vol XIX Srirangam 1934*

15 A descriptive Catalogue of the Sanskrit manuscripts in the H H The *Maharaja s Palace Library Trivandrum* edited by K Sambasiva Sastri Vol VII

16 A descriptive Catalogue of Sanskrit manuscripts in the Curator s office Trivandrum Vol VIII

17 Revised Catalogue af the palace Granthappura (Library) Trivandrum edited by K. Sambasiva Sastri Trivandrum 1929

18 Alphabetical index of the Sanskrit manuscripts in the University manuscripts Library Trivandrum Vols I II and III Trivandrum 1957 1965

19 A Descriptive Catalogue of Sanskrit manuscripts in the library of the Calcutta Sanskrit College Vol VI Kavya manuscripts edited by Hrishikesa Sastri and Sivachandra Gui Calcutta 1903

20 Notices of Sanskrit manuscripts (Second series) Vol IV by Mm H P Sastri Calcutta 1911

21 A Descriptive Catalogue of the Sanskrit Manuscrits in the Collection of the Asiatic Society of Bengal Vol VII Kavya manuscripts by Mm H P Sastri Calcutta 1934

22 A descriptive Catalogue of the Sanskrit manuscripts in the Vangiya Sahitya Parishat by Chinta Harana Chakravarti Calcutta 1935

23 A brief Catalogue of Sanskrit manuscripts in the post graduate department of Sanskrit Compiled by Pandit Amarendra Mohan Tarkatirtha under the auspicies of Prof Vidhusekhara Bhattacharya Sastri and Prof Satkari Mookerji University of Calcutta 1954

24 Catalogue of Sanskrit and Prakrit manuscripts in the Rajasthan Oriental Research Institute Jodhpur Pt I Pt II (B) Pt II (C) edited by Muni Jinavijayaji Jodhpur 1965

25 Catalogue of VVRI Manuscripts Collection (In two parts) by Viswa Bandhu Hoshiarpur 2015 V S

26 Catalogue of the sanskrit manuscripts in the Osmania University Library edited by Dr Aryendra Sharma and others and published by the Ssnskrit Academy Osma nia University Hyderabad

27 Catalogue of Sanskrit manuscripts in Deccan College Post Graduate and Research Institute Poona Vol II Kavya manuscripts by N G Kalelkar

28 Catalogue of the Anup Sanskrit Library Prepared by Dr C Kunhanraja and M Madhava Krishna Sharma, Fasciculus III Bikaner 1947

29 Report of a second tour in search of Sanskrit manuscripts made in Rajputana and Central India in 1904 5 and 1905 6 by Sridhar R Bhandarkar Bombay 1907 State Collection at Bikaner

30 A descriptive Catalogue of Sanskrit manuscripts of Orissa in the Collection of the Orissa State Museum Vol I and II edited by Kedarnatha Mahapatra Bhubaneswar, 1958 and 1960

31 A descriptive Catalogue of manuscripts in Mithila by Kashi Prasad Jayaswal Vol II Patna 1933

32 A descriptive Catalogue of ancient manuscripts obtained by Bihar Research Society, Patna, Vol VI (In Hindi) edited by Nalin Vilochana Sharma and Rama Narayana Shastri, Published by Bihar Rashtra Bhasha Parished Patna

33 A descriptive Catalogue of the Sanskrit manuscripts acquired for and deposited in the Sanskrit University Library (Saraswati Bhavan), Varanasi, during the years 1791-1950, Vol XI, Sahitya Manuscripts Compiled by the staff of the Manuscripts section of the Sanskrit University Library Varanasi, 1964

34 Catalogue of printed books and manuscripts in Sanskrit belonging to the Oriental Library of the Asiatic Society of Bengal, Compiled by Pandit Kunj Bihari Kavya tirtha under the supervision of Mm H P Sastri Calcutta 1904

35 A descriptive Catalogue of Sanskrit manuscripts in the Private Library of His Highness, the Maharaja of Jammu and Kashmir, by Ram Chandra Kak and Hara bhatta Sastri, Poona 1927

36 A Catalogue of Sanskrit manuscripts at the D H A.S, Compiled and edited by P C Choudhury, Department of Historical and Antiquarian Studies in Assam, Gauhati 1961

37 An alphabetical list of manuscripts in the Oriental Institute Baroda Vols I and II, Baroda, 1942

38 Catalogue of Old manuscripts in Sanskrit in the Collection of Sanatan Dharma Sabha Ahmadnagar 1962

39 A descriptive Catalogue of manuscripts in the Jain Bhandaras at Pattan, Compiled from the notes of the Late Mr C D Dalal by Lalchandra Bhagwandas Gandhi, Vols I and II Baroda 1937

40 A classified Catalogue of *Sanskrit and Kannada* manuscripts in the Saraswati Bhandaram of H H the *Maharaja of Mysore* Mysore, 1905

41 Lists of manuscripts Collected for the Government Manuscripts Library, By The Professor of Sanskrit at the Deccan and Elphinston Colleges since 1895 and 1899 Compiled by the Manuscripts department of the Bhandarkar Oriental Research Institute Poona published by the Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona 1925

42 A Catalogue of manuscripts in the Bharata Itihasa-Samsodhaka-Mandala Poona edited by G H Khare Poona 1960

43 A descriptive Catalogue of the Sanskrit manuscripts in the Icchharam Surya Ram Desai Collection in the Library of the University of Bombay, Compiled by H D Velankar, Bombay, 1953

44 *Government Oriental Series Class C No 4-Jina Ratna Kosa* An alphabetical Register of Jain Works and authors Vol I *Works* by *H D Velankar, Bombay 1944*

45 A descriptive Catalogue of the Sanskrit and Prakrit manuscripts (Bhagvat Singhji Collection and H M Bhadkanikar Collection in the Library of the University of Bombay Compiled by G V Devasthali Book I Published by the University of Bombay

46 Detailed report of a tour in search of Sanskrit manuscripts in Kashmir Rajputana and Central India by Dr G Buhler (Extra number of the Journal of the Bombay Branch of Royal Asiatic Society Bombay

47 A second Report of operations in search of Sanskrit manuscripts in the Bombay Circle April 1883 March 1884 by *Prof Peterson* Bombay 1884

48 A *third Report of operations in search* of Sanskrit manuscripts in the Bombay Circle Bombay 1887

49 Catalogue of Sanskrit and Prakrit manuscripts in the Central provinces and Berar by Hiralal Government Press Nagpur 1926

50 Catalogue of manuscripts in the Nagpur University Library edited by Dr V W Karambelkar Nagpur University Library Nagpur 1957

51 Catalogus Catalogorum by Theodor Aufrecht Pts I III Leipzig 1891 1896 and 1903

52 New Catalogus Catalogorum Vol I University of *Madras* 1949

53 *do Vol II University of Madras Madras*

54 *Nepal Rajakiya Virapustakalayastha* Pustakanam Brihat Suchi patram Tritiyo Bhagah Nataka (Rupaka) grantha Vishayakah edited by Buddhi Sagar Sharma Katha mandu 2019 V S

55 A Catalogue of palm leaf and selected paper manuscripts belonging to the Durbar Library Nepal by Mm H P Sastri with a historical introduction by *prof*

Cecil Bendall, published by Baptist Mission Press, Calcutta, 1905

56 Catalogue of two Collections of Sanskrit manuscripts preserved in the India Office Library, compiled by Charles H Tawney and F.W Thomas, printed by Eyre and Spottiswoode, London, 1903

57. Catalogue of the Sanskrit manuscripts in the Library of the India Office, Part VII, edited by Julins Eggling London, 1904

58 Catalogue of the Sanskrit and Prakrit manuscripts in the Library of the India Office, Vol II Pt II Brahmanical and Jaina Manuscripts by A..B Keith with a supplement Buddhist manuscripts by F W Thomas, Oxford, 1935

JOURNALS

1 The Journal of the Assam Research Society Gauthati, Assam, Vol XIV-1960

2 Journal of the University of Gauhati, Assam, Vol IV, 1953

3. Journal of the Andhra Historical Research Society, Rajamundary, Vol XIII, Pts I-II, April-July, 1940.

4 Journal of the Universiry of Bihar, Vol. IV, No 1-Humanities

5. Journal of the Bihar Research Society, Patna, Vol, XXXVII, 1951, Vol. XXXIX, Pt IV, 1953, Vol. XLII, Pts I-II, 1956, Vol. XLV, 1959

6 Journal of the Bihar and Orissa Research Society, Patna, Vol. III, 1917, Vol. IX, 1923, Vol. XXXIX 1953

7. Orissa Historical Research Journal, Vol. I 1952, Vol. IV, 1955-56, Vol VII, 1958-59

8 Journal of the Department of letters, Calcutta University, Calcutta, Vol. IX, 1923

9 *Bulletin of the Ramakrishna Mission Institute of Culture*, Calcutta, Vol XII, Nos 1-12, 1961

10 The Visva-Bharati, the Journal of Visva-Bharati Study Circle, Santiniketan, Vol IX, Pt I (New series) May, 1943-July 1943

11 *The Indian Historical Quarterly Calcutta*, Vol 5, 1929, Vol VI, *1930*, Vol VII *1931*, *Vol 9*, *1933*, *Vol XII*, 1936, Vol XIV, 1938, Vol XVII, 1941, Vol XIX, 1943

12 Jeurnal of the Madras University Madras Section A-Humanities Centenary Number, Vol XXVIII, No 2, *January*, 1957

13 Annals of *Oriental Research* Centenary number, University of Madras, 1957

14 The Journal of Oriental Research Madras, Vol. III, 1929, Vol IV, 1930 Vol XXV, 1955 56, Vol XXVI, 1956 57 and Vol XXVII, 1957 58

15 Triveni, Journal of *Indian* Renaissance Madras, Vol XI, *No 3 1939*

16 *Modern Review, Calcutta Vol 108 1960*

17 Journal of the Kerala University Oriental Manuscripts Library, Trivandrum, Vols I-XIII.

18 Journal of Indian History, *Trivandrum*, *Vol* XXVI, 1948, Vcl. XXX, 1952, *Vol* XXXIX, 1961

19 *Quarterly Journal of Mythic Society*, *Banglore*. Vol. XXII, 1931-32, Vol XXIV, 1933-34, Vol XXXI, 1940-41, Vol XL, 1949 50, Vol XLVIII, 1957-58

20 Annals of Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona, Vol XI, Pt III.

21 The Poona Orientalist, a quarterly Journal devoted to Oriental Studies, *Poona*, *Vol I*, *1936*, *Vol V*, *1941*, Vol. VIII, *1942-43*, Vol IX, *1944*

22 Bulletin of the Deccan College Research Institute, Poona Vol XI, 1950-51

23 The Indian Antiquary, a Journal of Oriental Research, Bombay, Vol XXXIII, Vol. LIII 1924

24 Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland, Volumes for the years 1950, 1956 and 1964

25 Journal of the Bombay Branch of Royal Asiatic Society (New Series), Vol 1941

26 Journal of the Oriental Institute, Baroda, Vol XVIII, No 4, June, 1969

27 The Saugor University Journal, Sagar, Vol I, No 2, 1952-53

28 Journal of the U P. Historical Society, Lucknow, Vol XVIII, Pts I-II July Dec 1945

29 Journal of the Ganganatha Jha Research Institute, Allahabad, Vol IX, Pt I 1952, Vol XVI, Pts III-IV, May-August, 1959

30 Proceedings and transactions of the All India Oriental Conference sixteenth session, Lucknow, 1951, eighteen th session, Annamalainagar Dec. 1955 Nineteenth session, Delhi, 1957

31 Proceedings of the Indian History Congress, third session, Calcutta 1939, Nineth Session, Annamalaina gar, 1945 and tenth session Bombay, 1947.

सस्कृत-पत्रिकाय

1. सागरिका, सस्कृत परिषद्, सागर विश्वविद्यालय सागर (म प्र) तृतीयवर्षे तृतीयाङ्क , वि स 2021, चतुर्थवर्षे प्रथमाङ्क , वि. स 2022 पञ्चमवर्षे प्रथमाङ्क, वि स. 2023, पञ्चमवर्षे तृतीयाङ्क , वि स 2023, षष्ठवर्षे तृतीयाङ्क , वि. स 2024।

2. सस्कृत-सञ्जीवनम्, बिहारसस्कृतसञ्जीवनसमाजस्य मुखपत्र मासिकम्, वाल्यूम, 22, 1962।

3. श्रीमत् सीतारामदासोङ्कारनाथप्रवर्तित प्रणवपारिजात , कलिकाता, वाल्यूम् 3,4, 1960-61।

4 सारस्वती-सुषमा, काशिक राजकीय सस्कृत महाविद्यालय पत्रिका, वाल्यूम 5,6, 1946-47।

5 सस्कृत-रत्नाकर:, सस्कृत साहित्यसम्मेलन काशी, मासिकमुखपत्रम्, वाल्यूम 16, सवत् 2009।

6 मञ्जूषा, भाग 12, 13, जन 1958 अक्टूबर 1958।

7. भारती, वर्ष 8, सवत् 2014।

हिन्दी-पत्रिकाएं

1. भारतीय साहित्य (आगरा विश्वविद्यालय हिन्दी-विद्यापीठ का मुख पत्र) आगरा, वर्ष 4, अंक 4, अक्टूबर 1959।
2. मिथिला-मिहिर, दरभङ्गा, मिथिलाङ्क, वसन्तपञ्चमी, 1936।
3. सम्मेलन-पत्रिका, प्रयाग, वाल्यूम् 38, 2008वी, वाल्यूम् 39, 2009 वी, वाल्यूम् 40, 2010 वी।
4. अजन्ता, वर्ष 5, अंक 3, मार्च 1953, वर्ष 6, अंक 2, फरवरी 1954, वर्ष 6, अंक 6, जून 1954, वर्ष 9, अंक 3, मार्च 1957, वर्ष 9, अंक 6, जून 1957, वर्ष 9, अंक 12, दिसम्बर 1957।
5. अवन्तिका, पटना, वर्ष 1, खण्ड 2, अंक 1, पूर्णाङ्क 7, मई 1953।
6. सरस्वती, प्रयाग, भाग 10, संख्या 6, जून 1909।